☆ श्रीकृष्ण का तान्त्रिक अर्चन-विवेचक ग्रन्थ ☆

महर्षिगौतमप्रणीतं

गौतमीयमहातन्त्रम्

हिन्दी टीकाकार

आचार्य श्रीनिवास शर्मा

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला
582

महर्षिगौतमप्रणीतं

गौतमीयमहातन्त्रम्

'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्योपेतम्

(श्रीकृष्ण का तान्त्रिक अर्चन-विवेचक ग्रन्थ)

भाषाभाष्यकारः
आचार्य श्रीनिवास शर्मा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

गौतमीयमहातन्त्रम्

पृष्ठ : 16+336

ISBN : 978-93-85005-32-9

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542-2335263

email : csp_naveen@yahoo.co.in

website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण 2015 ई.

मूल्य : ₹ 450.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11-23286537; 32996391

email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्राक्कथन

स्रष्टा द्वारा की गई सृष्टि में भारतभूमि को देवताओं के लिये निर्धारित स्वर्ग से भी श्रेष्ठता प्रदान की गई है। यही कारण है कि समस्त देवगण भी येन-केन प्रकारेण इस भारतभूमि पर अवतरित होने के लिये सदा-सर्वदा लालायित रहते हैं। अपने प्राक्काल से ही यह भारतभूमि भोगभूमि न होकर कर्मभूमि रही है। फलतः आरम्भ से ही यज्ञ-यागादि के अनुष्ठान की यहाँ अविच्छिन्न धारा प्रवहमान रही है। इसी क्रम में भविष्यद्रष्टा ऋषियों ने भविष्य में उपासकों द्वारा चारो पुरुषार्थों—धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति के लिए अमूर्त वैदिक साधनस्वरूप यज्ञ के अधिक व्ययसाध्य, कष्टकर एवं दुष्कर होते जाने के कारण समूर्त सरल साधना के लिये पाञ्चरात्र ग्रन्थों की रचना की थीं। इन पाञ्चरात्र ग्रन्थों को साक्षात् भगवान् के मुखारविन्द से निःसृत कहा जाता है; जैसा कि महाभारत के शान्तिपर्व में कहा भी गया है—

पाञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता तु भगवान् स्वयम्।

उन पाञ्चरात्रग्रन्थों में गौतमीय महातन्त्र अन्यतम है। लोकहित की कामना से महर्षि गौतम ने जब नारद से प्रश्न किया था तब महामुनि नारद ने विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण के मूर्ति की उपासना का विधान बतलाया था। वैष्णवों के पाञ्चरात्र उपासना-सम्बन्धी ग्रन्थों में गौतमीय महातन्त्र स्वयं में अद्वितीय है।

गौतमीय महातन्त्र में तीन शब्द हैं—गौतम, महा एवं तन्त्र। इन तीनों शब्दों में से प्रथमतः प्राप्त 'गौतम' शब्द सप्तर्षियों में अन्यतम और अविस्मरणीय एवं ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से अन्यतम महर्षि गौतम का बोधक है। इन्होंने कठिन तपस्या करने के उपरान्त अनेक शास्त्रों का प्रणयन किया था। भारतीय षड्दर्शन में न्यायदर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम ही हैं। इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्र, सूत्र, स्मृतिग्रन्थों का भी इन्होंने प्रणयन किया है। महान् योगी गौतम सदा समाहितचित्त रहते थे। कहीं आने-जाने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं थी; क्योंकि उनके चरण ही उनके लिये नेत्र का कार्य करते थे। इसीलिये उनकी ख्याति 'अक्षपाद' नाम से थी। श्रीमद्देवीभागवत

आदि में उनके बारे में बहुत से आख्यान मिलते हैं। उन्हीं महर्षि गौतम ने जगद्धिताय कृष्णोपासना के लिए इस तन्त्रग्रन्थ की रचना की है। उनकी पत्नी अहिल्या प्रातः-स्मरणीया पाँच देवियों में से एक हैं, जिनके स्मरणमात्र से ही पापों का नाश हो जाता है। कहा भी है—

अहिल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा।
पञ्च नाम स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥

द्वितीयतः प्राप्त 'महा' शब्द सर्वजनसंवेद्य हैं; जैसे—महापाप, महापुण्य, महापुरुष, महादेव आदि। महानता के द्योतक 'महा' शब्द का 'तन्त्र' शब्द के साथ योग इस तन्त्र की महनीयता का बोध कराने के लिये किया गया है। यतः दिव्यादिव्योभयभेदात्मक पाञ्चरात्र ग्रन्थों के अन्तर्गत ख्यात अदिव्य ग्रन्थों में प्रकृत ग्रन्थ विशिष्ट स्थान पर अवस्थित है।

तृतीयतः प्राप्त शब्द 'तन्त्र' विस्तारार्थक 'तनु' धातु के साथ ष्ट्रन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। 'तनोति तन्यतेऽनेन वा' अथवा 'तनोतीति तन्, त्रायत इति त्रः, तंश्चासौ त्रश्च' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो श्रद्धा उत्पन्न करता है, उपकृत करता है, कल्याणलीला को प्रकाशित करता है, उसे 'तन्त्र' अभिधान से अभिहित किया जाता है। ज्ञानराशि का विस्तार से प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों में विषयभेद के कारण ही पारस्परिक भेद दिखाई देते हैं। लोक में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो किसी के भी ज्ञान का विषय न हो। इसलिये जो कोई भी ग्रन्थ जिस-किसी ज्ञानविषय का विस्तार करता है, वह 'तन्त्र' पदवाच्य होता है। संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि जो ग्रन्थ समस्त ज्ञानराशि का विस्तार करता है, विस्तारपूर्वक प्रकट करता है एवं लोक में उसके अनुसार कुटुम्बसमूह का भरण-पोषण किया जाता है, वह ग्रन्थ 'तन्त्र' कहा जाता है। विश्वसारतन्त्र में कहा भी गया है—

तनोति विपुलानर्थान् तन्त्रमन्त्रसमन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥

अर्थात् तन्त्र-मन्त्र से समन्वित विपुल अर्थों का विस्तार करने एवं घोर दुःखमूलक संसारसागर से त्राणकारक होने के कारण इसे 'तन्त्र' कहा जाता है।

यद्यपि हमारा सनातन धर्म वेद और तन्त्रमूलक है तथापि आजकल वैदिक क्रियानुष्ठान अत्यन्त दुष्कर हो गये हैं। आज के समय में अभीप्सित होते हुये भी कोई विरला ही किसी अनुष्ठान को सविधि सम्पन्न कर सकता है। अतः गौतमीय

तन्त्र के अनुसार 'प्रशस्यं तान्त्रिकं कृत्यं वैदिकं वर्जयेत्कलौ'। वर्त्तमान में यज्ञादि वैदिक अनुष्ठान अतीव व्ययसाध्य हो चुके हैं; इसलिये तन्त्रमूलक धर्म की प्रधानता हो गयी है। तन्त्रसम्मत जप-ध्यान आदि की आन्तर साधना से कार्यसिद्धि सरलता से हो जाती है। तन्त्र के दो रूप हैं; एक साधन और दूसरा सिद्धान्त। तन्त्रसाधना प्रत्यक्ष फलप्रद है। इसकी साधना से भोग एवं पोक्ष—दोनों की प्राप्ति सम्भव है। महानिर्वाणतन्त्र में कहा भी है—

तन्त्रादितो भोगो मोक्षाय च सुखाय च।

यद्यपि तन्त्र मुख्यत: पारमार्थिक शास्त्र है तथापि इसमें लोकयात्रा-सिद्धि के लिए वहुत से उपाय निर्दिष्ट हैं। कहा गया है कि तन्त्र जीवन का वेद अर्थात् ज्ञान है। तन्त्रशास्त्र का क्षेत्र अतिविस्तृत और व्यापक है। तन्त्रग्रन्थों में सभी प्रकार की भौतिक समृद्धि, सभी प्रकार के अध्यात्मसम्पत् और बहुत प्रकार की सिद्धियों के अर्जन के उपाय वर्णित हैं। तन्त्रशास्त्र में विशिष्टाद्वैतवाद, शैवद्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद और शाक्त अद्वैतसिद्धान्त आदि दार्शनिक विचारों के भी दर्शन होते हैं।

गौतमीय तन्त्र में मन्त्र-बीज-ऋषि-छन्द-देवता-ब्रह्मपञ्चक न्यास-मातृका न्यास-प्राणायामादि का विश्लेषण किया गया है। दीक्षागुरु की आवश्यकता का निरूपण है। नित्य कृत्य में पूजा के पाँच भेद, स्नान, तर्पण, गायत्रीजप, शंखचक्रांकन, सूर्यपूजन, भगवत्स्वरूप आदि का निरूपण है। वैष्णवों की द्वादश शुद्धिविधि, वृन्दावन-नन्दादि का आवाहन-पूजन, भूतोत्सारण आदि का भी सम्यक् निरूपण दृगोचर होता है। इस तन्त्रग्रन्थ में अध्यायों की संख्या बत्तीस हैं, जिनमें से अन्तिम बत्तीसवें अध्याय में योग और उनके विविध अंगों का विवेचन किया गया है।

भारतीय संस्कृति के चार आधार हैं—श्रुति, स्मृति, पुराण और तन्त्र। कुलार्णव-तन्त्र में कहा भी है—

कृते श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः।
द्वापरेषु पुराणोक्तं कलावागमसम्मतम्॥

अर्थात् सत्ययुग गें वेदाचार, त्रेता में स्मार्त आचार, द्वापर में पुराणोक्त आचार और कलियुग में तन्त्रसम्मत आचार को ही प्रधानता दी गई है। वेदों में यज्ञों को विष्णुरूप कहा गया है—'यज्ञो वै विष्णुः' अर्थात् विष्णुपूजन ही यज्ञ है। जैसे यज्ञशाला में अग्निस्थापन होता है, वैसे ही देवालय में विष्णुमूर्ति की स्थापना की

जाती है। यज्ञशाला में जैसे स्वर्णकलश का स्थापन होता है, वैसे ही देवालय में रत्नकलश स्थापित किये जाते हैं। जिस प्रकार गार्हपत्यादि भेद से अग्नि पञ्चविध कही गयी है, वैसे ही देवालय में भी पाँच विग्रह होते हैं—ध्रुव, कौतुक, उत्सव, स्नपन और बलि। श्रौत कर्म में जैसे गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय का ग्रहण किया जाता है, वैसे ही ध्रुव विग्रह से परमात्मा को कौतुक विग्रह में ले जाया जाता है।

परमेश्वर विष्णु का अर्चन दो प्रकार से किया जाता है—समूर्त अर्चन और अमूर्त अर्चन। समूर्त अर्चन विग्रहों के और अमूर्त अर्चन यज्ञ के होमादि द्वारा सम्पन्न किया जाता है। अर्चना देवालयों में होती है। परमेश्वर का विग्रह चल और अचल दोनों होता है। अचल मूर्ति अपने स्थान से हटायी नहीं जाती। प्रत्येक वर्ष में अनेक उत्सव होते हैं, जिनमें प्रभु देवालय से बाहर गज-गरुड़ आदि वाहनों पर यात्रा में जाते हैं। इन्हें उत्सवविग्रह कहते हैं। इसी प्रकार स्नान, बलि तथा शयन के लिए भी पृथक्-पृथक् विग्रह होते हैं। स्नानविग्रह में प्रभु की अचल मूर्ति से कुश के द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। स्नपनविग्रह में प्रभु की प्रतिष्ठा करके ज्ञानार्चन के बाद पुनः ध्रुवविग्रह को स्थापित करने की विधि होती है। ध्रुवविग्रह प्रधान होता है। चार या पाँच मूर्तियाँ ध्रुवविग्रह के चारो ओर पूर्वादिक्रम से स्थापित होती हैं।

ये विग्रह तीन प्रकार के माने जाते हैं—चित्र, चित्रार्थ और चित्राभास। जो विग्रह अपने मान-प्रमाण-परिमाण-उपमान और लम्बमान से युक्त होते हैं, उन्हें चित्रबिम्ब या चित्रविग्रह कहते हैं। इस बिम्ब के सभी अवयव दृश्य होते हैं। यह बिम्ब लौकिक और पारलौकिक सभी फल प्रदान करने वाला होता है। चित्रार्थ विग्रह में सभी अवयव अदृश्य होते हैं और इससे केवल लौकिक फल अवाप्त किये जा सकते हैं। चित्राभास विग्रह उसे कहते हैं, जिसमें विग्रह की ऊँचाई-लम्बाई आदि पर अधिक विचार नहीं किया जाता। इन्हें वस्त्र, काष्ठ या भित्ति पर ही अंकित किया जाता है।

वैखानसों के मत से ये विग्रह तीन और पाँच रात्रों के मत से चार प्रकार की स्थिति में होते हैं। खड़ी मूर्ति, आसन पर बैठी मूर्ति और सोयी मूर्ति—ये तीन भेद वैखानस मानते हैं। इन भेदों के साथ पाञ्चरात्र में यान या वाहन पर स्थित विग्रह का चौथा भेद भी माना जाता है। ये सभी विग्रह भोग, योग, नीर और आभिचारिक भेद से परस्पर भिन्न होते हैं।

कामनाभेद से इन विग्रहों की अर्चा की स्थिति मानी जाती है। यज्ञों में होने वाले अर्थव्यय और असुविधाओं को ध्यान में रखकर जगत् के हित के लिये, कामनापूर्ति और अभीष्ट फलों की प्राप्ति के लिये मूर्तिपूजा का विधान अधिक रूप से किया जाता है।

प्रकृत पुस्तक के संस्कृत भाषा में निबद्ध होने से संस्कृत के जानकार ही इससे लाभ उठा सकते थे। सर्वजनसंवेद्य भाषा हिन्दी में व्याख्या से समन्वित होने पर कोई भी जिज्ञासु इसे पढ़कर ग्रन्थ का आशय समझ सकता है एवं सर्वलोकवन्द्य कृष्ण की सविधि उपासना करके भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त कर सकता है। इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय के अनुसार संसार में मनुष्य सभी प्रकार की अभिलाषाओं को कृष्णमन्त्र की उपासना से प्राप्त कर सकता है। भगवान् कृष्ण ने महाभारत में जो उपदेश अर्जुन को दिया था, उस श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है। उसी भगवान् कृष्ण की उपासना से सम्बद्ध प्रकृत गौतमीय तन्त्र का अवलम्ब ग्रहण करके कृष्ण-उपासना की विधियों से अवगत होकर यथेच्छ उपासना सम्पन्न कर ऐहलौकिक भोग एवं पारलौकिक मोक्ष—दोनों की ही प्राप्ति की जा सकती है।

एवंविध सर्वतन्त्रोत्तमोत्तम गौतमीय महातन्त्र के प्रकृत स्वरूप में सर्वजनसंवेद्य भाषा में कृत व्याख्या के साथ प्रकाशित कर सर्वजनसुलभ कराने का कल्याणकारी श्रेय चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के स्वनामधन्य स्वत्त्वाधिकारी गोलोकवासी नवनीतदास जी गुप्त को ही दिया जाना यथायथ रूप से न्यायसंगत है; यत: जिज्ञासुओं के लिये उन्हीं की सर्वलोकोपकारिणी बलवती आकांक्षा का यह मूर्त्त स्वरूप है।

यद्यपि मैं इस अतिशय गूढ़ विषय का कथमपि कोई आधिकारिक विद्वान् नहीं हूँ तथापि जब मैं यह देखता हूँ कि वर्त्तमानकालीन तथाकथित बौद्धिक युग में प्रत्येक क्षेत्र में स्वनामधन्य विद्वानों का ही बोलबाला है; वे सभी अपनी-अपनी तथाकथित आधिकारिता के बल पर तत्तत् विषयों पर लेखनी चलाकर जिज्ञासुओं को अज्ञानान्धकार के गर्त्त में निमग्न करने में पूरे मनोयोग से निरन्तर निमग्न हैं और जो कतिपय विषयमर्मज्ञ जन विद्यमान भी हैं, वे केवल दर्शकमात्र बनकर उनकी विशेषज्ञता पर कुपित होते हुये अरण्यरोदन-मात्र करके ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझकर अपने को कृतकृत्य सिद्ध करके आत्ममुग्ध हो रहे हैं। इस विषम परिस्थिति में ही

परम श्रद्धास्पद गोलोकवासी नवनीतदास जी गुप्त की प्रेरणा एवं सतत उत्साहवर्द्धन से उत्साहित होकर ही मैं इस दुर्ज्ञेय ग्रन्थ पर लेखनी चलाने की अकल्पनीय धृष्टता कर सका हूँ।

अस्तु; विषय के आधिकारिक ज्ञान से रहित होने के कारण सम्भव है कि भाषाभाष्य करने के क्रम में कतिपय त्रुटियाँ रह गई हों; अत: विज्ञजनों से क्षमाप्रार्थी होते हुये यह अपेक्षा करता हूँ कि वे उन त्रुटियों को परिमार्जित करते हुये प्रकाशक के माध्यम से इस अल्पज्ञ को भी उससे अवगत कराने का कष्ट अवश्य करेंगे।

गुरुपूर्णिमा, २०७२ **श्रीनिवास शर्मा**

विषयानुक्रमः

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

●

महर्षिगौतमप्रणीतं

गौतमीयमहातन्त्रम्

'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्योपेतम्

आगतं शिववक्त्रात्तु गतञ्च गिरिजामुखे ।
मतं श्रीवासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते ॥

* * * * * * * * * * * *

सार्द्धकोटिप्रमाणेन कथितं तस्य विष्णुना ।
रात्रिभिः पञ्चभिः सर्वं पाञ्चरात्रमिति स्मृतम् ॥

* * * * * * * * * *

रात्रिरज्ञानमित्युक्तं पञ्चेत्यज्ञाननाशकम् ।
तच्छास्त्रं पाञ्चरात्रं स्यादन्वर्थस्यानुरोधतः ॥

* * * * * * * *

आकाशवायुतेजांसि पानीयं वसुधा तथा ।
एता वै रात्रयः ख्याताचैतन्यास्तोजसोत्कटाः ॥

* * * * * *

नान्यः पन्था मुक्तिहेतुरिहामुत्र सुखाप्तये ।
यथा तन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च सुखाय च ॥

* * * *

।।श्रीः।।

महर्षिगौतमप्रणीतं

गौतमीयमहातन्त्रम्

'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्योपेतम्

प्रथमोऽध्यायः

[मुनि नारद द्वारा महर्षि गौतम के प्रति श्रीकृष्ण के दशाक्षर मन्त्र का श्रेष्ठत्व-प्रतिपादन।]

सिद्धाश्रमे वसन् धीमान् गौतमो भगवान् मुनिः।
तपःस्वाध्यायनिरतो भक्तिमान् पुरुषोत्तमे॥१॥
नमस्यन् शिरसा कृष्णं स्तुवन् वाचा जनार्द्दनम्।
जपन् कराभ्यां यज्ञेशं हृदा ध्यायन् सदा हरिम्॥२॥
समस्तश्रुतितत्त्वज्ञ इतिहासपुराणवित्।
मन्त्रौषधिक्रियासम्यग् योगसिद्धान्ततत्त्ववित्॥३॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थी नारदं प्रणिपत्य च।
विनयावनतो भूत्वा पर्यपृच्छद् द्विजोत्तमः॥४॥

* ज्योत्स्ना *

अभिलाषसुतः श्रीमान् श्रीनिवासः सतां मुदा।
ज्योत्स्नासंवलितञ्चक्रे तन्त्रं गौतमीयकम्॥

दशाक्षर कृष्णमन्त्र का माहात्म्य—षड्विध ऐश्वर्य-सम्पन्न, सिद्धाश्रम में निवास करने वाले, प्रज्ञा-समन्वित बुद्धिमान मुनि गौतम सर्वदा तप एवं स्वाध्याय में निरत रहते हुये पुरुषोत्तम की भक्ति में निमग्न रहते थे। वे शिर झुकाकर कृष्ण को प्रणाम करते थे एवं वाणी से जनार्दन की स्तुति करते थे। करमाला से मन्त्रजप करते हुये हृदय में सर्वदा यज्ञेश हरि का स्मरण करते रहते थे। सभी श्रुतियों के तत्त्व के ज्ञाता, इतिहास एवं पुराण को जानने वाले, मन्त्रों एवं औषधियों की विविध क्रियाओं

आगतं शिववक्त्रात्तु गतञ्च गिरिजामुखे।
मतं श्रीवासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते ॥

* * * * * * * * * * * *

सार्द्धकोटिप्रमाणेन कथितं तस्य विष्णुना।
रात्रिभिः पञ्चभिः सर्वं पाञ्चरात्रमिति स्मृतम् ॥

* * * * * * * * * *

रात्रिरज्ञानमित्युक्तं पञ्चेत्यज्ञाननाशकम्।
तच्छास्त्रं पाञ्चरात्रं स्यादन्वर्थस्यानुरोधतः॥

* * * * * * * *

आकाशवायुतेजांसि पानीयं वसुधा तथा।
एता वै रात्रयः ख्याताचैतन्यास्तेजसोत्कटाः ॥

* * * * * *

नान्यः पन्था मुक्तिहेतुरिहामुत्र सुखाप्तये।
यथा तन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च सुखाय च ॥

* * * *

।।श्रीः।।

महर्षिगौतमप्रणीतं

गौतमीयमहातन्त्रम्

'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्योपेतम्

प्रथमोऽध्यायः

[मुनि नारद द्वारा महर्षि गौतम के प्रति श्रीकृष्ण के दशाक्षर मन्त्र का श्रेष्ठत्व-प्रतिपादन।]

सिद्धाश्रमे वसन् धीमान् गौतमो भगवान् मुनिः।
तपःस्वाध्यायनिरतो भक्तिमान् पुरुषोत्तमे॥१॥
नमस्यन् शिरसा कृष्णं स्तुवन् वाचा जनार्दनम्।
जपन् कराभ्यां यज्ञेशं हृदा ध्यायन् सदा हरिम्॥२॥
समस्तश्रुतितत्त्वज्ञ इतिहासपुराणवित्।
मन्त्रौषधिक्रियासम्यग् योगसिद्धान्ततत्त्ववित्॥३॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थी नारदं प्रणिपत्य च।
विनयावनतो भूत्वा पर्यपृच्छद् द्विजोत्तमः॥४॥

* ज्योत्स्ना *

अभिलाषसुतः श्रीमान् श्रीनिवासः सतां मुदा।
ज्योत्स्नासंवलितञ्चक्रे तन्त्रं गौतमीयकम्॥

दशाक्षर कृष्णमन्त्र का माहात्म्य—षड्विध ऐश्वर्य-सम्पन्न, सिद्धाश्रम में निवास करने वाले, प्रज्ञा-समन्वित बुद्धिमान मुनि गौतम सर्वदा तप एवं स्वाध्याय में निरत रहते हुये पुरुषोत्तम की भक्ति में निमग्न रहते थे। वे शिर झुकाकर कृष्ण को प्रणाम करते थे एवं वाणी से जनार्दन की स्तुति करते थे। करमाला से मन्त्रजप करते हुये हृदय में सर्वदा यज्ञेश हरि का स्मरण करते रहते थे। सभी श्रुतियों के तत्त्व के ज्ञाता, इतिहास एवं पुराण को जानने वाले, मन्त्रों एवं औषधियों की विविध क्रियाओं

को सम्यक् रूप से जानने वाले, योगसिद्धान्त के तत्त्वज्ञ होते हुये भी धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टय के अभिलाषी उन द्विजश्रेष्ठ गौतम ने अतिशय विनम्रतापूर्वक भगवान् नारद को प्रणाम करके इस प्रकार पूछा।।१-४।।

भगवन् कामदा मन्त्राः शत्रूदासीनबान्धवाः।
विभिन्नफलदास्ते तु नैकत्र फलदा मताः ।।५।।
एतत्समफलाः सर्वे न मन्त्रा इति नः श्रुतम्।
येन सर्वफलावाप्तिः सर्वेषां बन्धुरेव यः ।।६।।
सर्ववर्णाधिकारश्च नारीणां योग्य एव यः।
तं ब्रूहि भगवन् मन्त्रमल्पायासफलप्रदम् ।।७।।
तव नाविदितं किञ्चिद् विद्यते सचराचरे।
इति श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठो नत्वा विष्णुमुवाच ह ।।८।।

हे भगवन्! शत्रु, उदासीन एवं बान्धवस्वरूप समस्त कामद मन्त्र विभिन्न प्रकार के फलों को देने वाले हैं। ऐसा माना जाता है कि उनमें से कोई भी एकाकी मन्त्र समस्त फलों को देने वाला नहीं हैं। हमने यह भी सुना हैं कि ये सभी मन्त्र एक समान फल प्रदान करने वाले नहीं हैं। हे भगवन्! जिस मन्त्र से समस्त फलों की प्राप्ति हो सके, जो सबका बन्धु अर्थात् सहायक हो, जिसमें सभी वर्णों का अधिकार हो, जो नारियों के भी योग्य हो एवं जो अल्प प्रयास से ही फल प्रदान कर सके, उस मन्त्र का उपदेश करें; क्योंकि इस सम्पूर्ण चराचर जगत् में आपके लिये कुछ भी अज्ञात नहीं है। मुनि गौतम के इन उपर्युक्त प्रश्नों को सुनकर भगवान् विष्णु को प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ नारद ने इस प्रकार कहा।।५-८।।

साधु पृष्टं मयाप्येवं पृष्टः प्रोवाच पद्मजः।
तथा ते कथयिष्यामि यथा प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।।९।।
सर्वे कामाः प्रसीदन्ति कृष्णमन्त्रजपाद् द्विज।
सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते ।।१०।।
गाणपत्येषु शैवेषु तथा शाक्तेषु सुव्रत।
वैष्णवेषु च सर्वेषु कृष्णमन्त्राः फलाधिकाः ।।११।।
विशेषतो दशार्णोऽयं जपमात्रेण सिद्धिदः।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ।।१२।।
अज्ञानतूलराशीनां ज्वलनोऽयं मुनीश्वर।
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ।।१३।।
अनेनाराधितः कृष्णः प्रसीदत्येव तत्क्षणात्।
तस्य संक्षेपतो वक्ष्ये सर्वं सम्यक् शृणुष्व मे ।।१४।।

आपने मुझसे बहुत अच्छा प्रश्न किया है, मैंने भी इसी प्रकार का प्रश्न बहुत पहले पद्मज अर्थात् ब्रह्मा से किया था। उस समय स्वयम्भु ब्रह्मा ने जिस प्रकार मुझसे कहा था, उसे उसी प्रकार से मैं आपसे कहूँगा। हे द्विज! कृष्णमन्त्र के जप से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। वैष्णवमन्त्र को सभी प्रकार के मन्त्रों में श्रेष्ठ कहा जाता है। हे सुव्रत! समस्त गाणपत्य, शैव, शाक्त और वैष्णवमन्त्रों में कृष्णमन्त्र अधिक फल प्रदान करने वाले होते हैं। उन सभी कृष्णमन्त्रों में भी यह दशाक्षर मन्त्र विशेषतया सिद्धि प्रदान करने वाला है। कृष्ण के इस दशाक्षर मन्त्र को जानने-मात्र से ही (सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य) चारो प्रकार की मुक्ति प्राप्त हो जाती है। हे ऋषिश्रेष्ठ! अज्ञानरूपी रूई के ढेर को जलाने के लिये यह दशाक्षर मन्त्र अग्नि के समान है। इसके समान कोई भी दूसरा मन्त्र इस संसार में नहीं है। इस मन्त्र से आराधना करने पर भगवान् कृष्ण तत्क्षण ही प्रसन्न हो जाते हैं; अत: इस मन्त्र के विषय में सब कुछ सम्यक् रूप से कहता हूँ; आप मुझसे श्रवण करें।।९-१४।।

पद्मयोनिरवापाग्र्यं देवराज्यं शचीपतिः।
अवापुस्त्रिदशाः स्वर्गं वागीशत्वं बृहस्पतिः ॥१५॥
पक्षिणामधिपः सोऽभूत् गरुडोऽपि द्विजोत्तम।
कश्चित् कृष्णं समाराध्य धनेशत्वमवाप्तवान् ॥१६॥
मन्त्रेण कृष्णभाराध्य चन्द्रः सर्वजनप्रियः।
करोति स्ववशे कामः सर्वांल्लोकाननेन च ॥१७॥

इस मन्त्र के प्रभाव से सर्वप्रथम भगवान् ब्रह्मा ने पद्मयोनित्व प्राप्त किया, शचीपति इन्द्र ने स्वर्गलोक का राज्य प्राप्त किया, देवताओं ने स्वर्गलोक प्राप्त किया और बृहस्पति ने वागीशत्व प्राप्त किया। हे द्विजोत्तम! वह गरुड़ भी इस मन्त्र के प्रभाव से पक्षियों का अधिपति हो गया। किसी ने (कुबेर ने) इस मन्त्र से कृष्ण की आराधना करके धनेशत्व प्राप्त किया। इस मन्त्र से कृष्ण की आराधना करके चन्द्रमा सबका प्रिय हो गया और कामदेव भी इसी मन्त्र के प्रभाववश सभी लोकों को अपने वश में करता है।।१५-१७।।

मन्त्राणां परमो मन्त्रो गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्।
मन्त्रराजमिमं ज्ञात्वा कृतार्थो जायते नरः ॥१८॥
पुत्रवान् धनवान् वाग्मी लक्ष्मीवान् पशुमान् भवेत्।
सुभगः सम्मतः श्लाघ्यो यशस्वी कीर्तिमान् भवेत् ॥१९॥
सर्वलोकाभिरामः स्यात् सर्वज्ञश्च भवेन्नरः।
अनेन त्रिषु लोकेषु याता मुक्तिं मुमुक्षवः ॥२०॥

भगवान् कृष्ण का यह दशाक्षर मन्त्र समस्त मन्त्रों में उत्तम है एवं गोपनीयों में भी परम गोपनीय है। इस मन्त्रराज को जान करके मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। इस मन्त्रराज का ज्ञाता मनुष्य पुत्रवान, धनवान, वक्ता, लक्ष्मीपति और पशुओं का स्वामी हो जाता है। वह मनुष्य सुन्दर, उत्तम विचार वाला, श्लाघ्य, यशस्वी एवं कीर्तिशाली हो जाता है। वह मनुष्य सभी लोकों में श्रेष्ठ और सर्वज्ञ हो जाता है। इस मन्त्र के प्रभाव से तीनों लोकों के मोक्षेच्छुकों को मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।।१८-२०।।

मन्त्रेणानेन मन्त्रज्ञे भक्तिः स्यात् प्रेमलक्षणा।
समस्ततीर्थभूतश्च समस्तक्षेत्रपावनः ॥२१॥
रवेरिव दुराधर्षः शुचेरिव शुचिः सदा।
शङ्करस्येव सिद्धीशो विष्णोरिव सदाश्रयः ॥२२॥
बहुना किमिहोक्तेन रहस्यं शृणु गौतम।
निर्वाणफलदो मन्त्रः किमन्यैर्बहुजल्पितैः ॥२३॥

इति गौतमीये महातन्त्रे प्रथमोऽध्यायः

●

इस मन्त्र से मन्त्रज्ञ में प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। यह मन्त्र समस्त तीर्थों एवं समस्त क्षेत्रों के समान पावन है। यह दशाक्षर मन्त्र सदा-सर्वदा सूर्य के समान दुराधर्ष, पवित्र के समान पवित्र, शंकर के समान सिद्धियों का स्वामी एवं विष्णु के समान सज्जनों के लिये आश्रयस्वरूप है। हे गौतम! इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ है? आप इसके रहस्य को मुझसे सुनें। अतिशय प्रलाप करने से क्या फायदा; यह मन्त्र निर्वाण अर्थात् मोक्षरूपी फल को देने वाला है।।२१-२३।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के प्रथम अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

द्वितीयोऽध्यायः

[नारद द्वारा गौतम से दशाक्षर मन्त्र का बीज एवं शक्ति, ब्रह्मपञ्चक, ऋषि-छन्द-देवता, मन्त्रादि न्यास, संहारादि न्यास, दशाक्षर मन्त्र, द्विविध मातृका, अन्तर्मातृका न्यास, मातृकाओं का चातुर्विध्य, प्राणायाम-माहात्म्य, प्राणायाम के भेद आदि का कथन।]

गौतम उवाच

समस्तवेदतत्त्वज्ञ सर्वागमविशारद।
अधुना ब्रूहि मे ब्रह्मन् मन्त्रराजं दशाक्षरम्॥१॥

कामन्यास—गौतम ने कहा—समस्त वेदों के तत्वों को जानने वाले एवं समस्त आगमों के ज्ञाता हे ब्रह्मन्! आप इस समय मन्त्रराज दशाक्षर मन्त्र का मुझसे विवेचन करें॥१॥

नारद उवाच

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि विधानं मुनिनिर्मितम्।
यावन्मन्त्रा ऋषिच्छन्दो दैवतान्यनुक्रमात्॥२॥

नारद ने कहा—अब मैं मुनियों द्वारा निर्मित विधान के अनुसार क्रमशः ऋषि, छन्द, देवता से समन्वित इस मन्त्र को कहता हूँ॥२॥

खान्ताक्षरं समुद्धृत्य त्रयोदशस्वरान्वितम्।
पार्णं तुर्यस्वरयुतं छान्तं धान्तं तथा द्वयम्॥३॥
अमृताक्षरमुद्धृत्य चैकतो मांसयुग्मकम्।
चतुर्थं मुखवृत्तेन पवनः स्वाहयान्वितः॥४॥
दशाक्षरमनुः प्रोक्तो दृष्टादृष्टफलप्रदः।

खान्त अर्थात् 'ख' के बाद वाला अक्षर 'ग' के साथ त्रयोदश स्वर 'ओ' को संयुक्त करने के उपरान्त पार्ण अर्थात् 'प' अक्षर के साथ तुर्य स्वर 'ई' को संलग्न करे। तदनन्तर छान्त अर्थात् छकारोत्तरवर्ती 'ज', धकारोत्तरवर्ती 'न', अमृताक्षर 'व', मांसयुग्म 'ल्ल' के पश्चात् पवर्ग के चौथे वर्ण 'भ' को मुखवृत अर्थात् 'आ' से युक्त करने के उपरान्त स्वाहा से अन्वित पवन अर्थात् 'य' लगाने से सम्पन्न 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह दशाक्षर मन्त्र दृष्ट-अदृष्ट समस्त फलों को देने वाला कहा गया है॥३-४॥

बीजं शक्तिं च वक्ष्यामि ब्रह्मविच्च परात्परम् ॥५॥
ब्रह्मार्णं मायया सार्द्धं मन्त्रार्णं नादबिन्दुकम् ।
एतद्बीजं समाख्यातं कृष्णतत्त्वं परात्परम् ॥६॥

हे ब्रह्मवित्! अब इस मन्त्र के बीज एवं शक्ति को कहता हूँ। ब्रह्मा के वर्ण 'क' के साथ माया 'ई' एवं अर्धमन्त्रार्ण 'ल्' को नाद-विन्दु से समन्वित करने से 'क्लीं' यह कृष्ण का बीजमन्त्र बनता है। इस बीजमन्त्र को कृष्ण का परात्पर तत्त्व कहा गया है।।५-६।।

शुक्रार्णममृतार्णेन मुखवृत्तेन संयुतम् ।
गगनं मुखवृत्तेन प्रोक्ता शक्तिः परात्परा ॥७॥
एषा शक्तिः परा सूक्ष्मा नित्या संवित्प्रदायिनी ।
ईश्वरो जगतां बीजं शक्तिर्गुणमयी त्वजा ॥८॥
परमात्मा तथा बुद्धिर्वायुः कुण्डलिनीति च ।
चतुर्विधं बीजशक्तिं सर्वमन्त्रेषु चिन्तयेत् ॥९॥

शुक्रार्ण अर्थात् 'स' को अमृतार्ण 'व' एवं मुखवृत्त 'आ' के साथ संयुक्त करके गगन अर्थात् 'ह' को मुखवृत्त 'आ' से संयुक्त करने पर परात्परा शक्ति 'स्वाहा' का उद्धार होता है। यह परा शक्ति सूक्ष्म, नित्य एवं संवित् प्रदान करने वाली है। जगत् का बीज ईश्वर है एवं गुणमयी अजन्मा यह शक्ति है। सभी मन्त्रों में इस बीजशक्ति का चिन्तन चार रूपों में करना चाहिये। ये चार रूप हैं—परमात्मा, बुद्धि, वायु और कुण्डलिनी।।७-९।।

त्रितयं तत्र सामान्यं तदिदानीं निरूप्यते ।
ईश्वरो जगतां बीजमाद्यं ब्रह्म तदुच्यते ॥१०॥
तस्य माया समाख्याता शक्तिर्गुणमयी तु या ।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सत्तम ॥११॥
तत्त्वानि चेश्वरश्चैव ब्रह्मेति पञ्चमं स्मृतम् ।
सर्गान्तः पुरुषश्चेति तुर्याख्या प्रकृतिः स्मृता ॥१२॥
तत्त्वानि मांसरूपाणि कालश्च तत्त्वरूपकः ।
ईश्वराख्यो भवेन्नादो बिन्दुश्चैतन्यचिन्मयः ॥१३॥
एतद्विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो महीं चरेत् ।
नास्य कालकलापेक्षा न तीर्थायतनानि च ॥१४॥
क्लींकारादसृजद्विश्वमिति प्राह श्रुतेः शिरः ।
ईकाराद्वह्निरुत्पन्नो नादाद्वायुरजायत ॥१५॥

बिन्दोराकाशसम्भूतिरिति भूतात्मको मनुः ।
स्वशब्देन च क्षेत्रज्ञो हेति चित्प्रकृतिः परा ॥१६॥
तयोरैक्यसमुद्भूतिः मुखवेष्टनवर्णकः ।
अत एव हि विश्वस्य लयः स्वाहार्णके भवेत् ॥१७॥

उन चार में तीन सामान्य हैं, जिनका अब मैं निरूपण करता हूँ। वे तीन हैं— ईश्वर, जगत् का आद्य बीज और ब्रह्म। इन तीनों को ही ब्रह्म के रूप में जाना जाता हैं। गुणमयी शक्ति को उस ब्रह्म की माया कहा गया है। हे सत्तम! नित्य प्रकृति एवं पुरुष, काल, ईश्वर, ब्रह्म—ये पाँच तत्त्व कहे गये हैं। सर्गान्त पुरुष है एवं चतुर्थ तत्त्व प्रकृति है। तत्त्व मांसरूप है एवं काल तत्त्वरूप है। नाद ईश्वर है एवं विन्दु चैतन्य चिन्मय है। इनको जानने-मात्र से ही मनुष्य जीवन्मुक्त होकर पृथ्वी पर विचरण करता है। उसे न तो कालकला की अपेक्षा रहती है और न ही तीर्थस्थलों की कोई आवश्यकता होती है। श्रुति का कथन है कि इस 'क्लीं' से ही विश्व की सृष्टि हुई है। ईकार से अग्नि की एवं नाद से वायु की उत्पत्ति हुई है; साथ ही बिन्दु से आकाश उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार यह 'क्लीं' मन्त्र भूतात्मक है। मन्त्र में प्रयुक्त 'स्वाहा' का 'स्व' क्षेत्रज्ञ का एवं 'ह' परा चित् प्रकृति का बोधक है। इन दोनों के ऐक्य से मुखवेष्टन वर्ण उत्पन्न होते हैं; इसीलिये इस स्वाहा में विश्व का लय कहा गया है।।१०-१७।।

गोपीति प्रकृतिं विद्याज्जनस्तत्त्वसमूहकम् ।
अनयोराश्रयव्याप्त्या कारणत्वेन चेश्वरः ॥१८॥
सान्द्रानन्दपरं ज्योतिर्वल्लभेन च कथ्यते ।
त्रिपादूर्ध्वमुदैत्पुरुष इत्याहुः परमा गिरः ॥१९॥
बीजोच्चारणमात्रेण चित्स्वभावः प्रजायते ।
वल्लभेन तु तद्दार्ढ्यं स्वाहयाऽज्ञाननाशनम् ॥२०॥
इत्येवं कथितं तत्त्वं मुने वै ब्रह्मसम्मतम् ।

इस दशाक्षर कृष्णमन्त्र का गोपी शब्द प्रकृति का एवं जन शब्द तत्त्वसमूह का वाचक है। इन दोनों के आश्रयस्वरूप होने के कारण परम आनन्दमय ज्योतिःस्वरूप ईश्वर को वल्लभ कहा गया है। वेदों ने इस पुरुष को 'त्रिपादूर्ध्व' शब्द से कहा है। इस बीजमन्त्र के उच्चारणमात्र से चित्स्वभाव उत्पन्न होता है, वल्लभ शब्द के उच्चारण से उसमें दृढ़ता आती है एवं स्वाहा शब्द अज्ञान का विनाशक कहा गया है। हे मुने! इस प्रकार यह ब्रह्मसम्मत तत्त्व मैंने आपसे कहा।।१८-२०।।

अथवा गोपी प्रकृतिर्जनस्तदंशमण्डलम् ॥२१॥
यज्ज्ञानात्साधकः श्रेष्ठो दिव्यानन्दः प्रवर्तते ।

अनयोर्वल्लभः स्वामी कृष्णाख्य ईश्वरः स्मृतः ।
कार्यकारणयोरीशः श्रुतिभिस्तेन गीयते ॥२२॥

अथवा 'गोपी' प्रकृति है एवं 'जन' उसका अंशमण्डल है। इसके ज्ञान से साधक श्रेष्ठ दिव्यानन्द में प्रवृत्त होता है। इन गोपीरूप प्रकृति एवं उसके जनरूप अंशमण्डल के वल्लभरूप स्वामी कृष्ण-नामक ईश्वर हैं। श्रुतियों का कथन है कि वह ईश्वर कार्य एवं कारण—दोनों का स्वामी है।।२१-२२।।

अनेकजन्मसिद्धानां गोपीनां पतिरेव वा ।
नन्दनन्दन इत्युक्तस्त्रैलोक्यानन्दवर्द्धनः ॥२३॥
चिन्तयेद्विरजो मन्त्री सत्त्वसम्पत्तिहेतवे ।
दशानामपि तत्त्वानां साक्षी चेता तथाऽक्षरः ॥२४॥
दशाक्षर इति ख्यातो मन्त्रराजः परात्परः ।
लुप्तबीजः स्वभावत्वाद्दशार्ण इति कथ्यते ॥२५॥
बीजपूर्वजपश्चास्य रहस्यं कथितं मुने ।

अथवा अनेक जन्मों में सिद्ध गोपियों के अधीश्वर कृष्ण हैं, जो नन्दनन्दन कहे गये हैं; क्योंकि ये तीनों लोकों को अतिशय आनन्द प्रदान करने वाले हैं। सत्त्वरूप सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये मन्त्रज्ञ साधक को इस दशाक्षर मन्त्र का चिन्तन करना चाहिये। इस मन्त्र के दश अक्षर दश तत्त्वों के साक्षीस्वरूप कहे गये हैं। ये दश अक्षर परात्पर मन्त्रराज के नाम से विख्यात हैं। स्वभावत: इसका बीज 'क्लीं' लुप्त है अर्थात् मन्त्राक्षर में उसकी गणना नहीं होती; इसीलिये इसे दशाक्षर कहते हैं। हे मुने! बीज के साथ ही इसका जप करना चाहिये, यह रहस्य मैं आपके समक्ष प्रकाशित कर रहा हूँ।।२३-२५।।

नारदश्च मुनिः प्रोक्तो छन्दो विराडिति स्मृतम् ॥२६॥
श्रीकृष्णो देवता चास्य दुर्गाधिष्ठातृदेवता ।
महेश्वरमुखाज्ज्ञात्वा यः साक्षात्तपसा मनुम् ॥२७॥
संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः ।
गुरुत्वान्मस्तकं वास्य पुरुषार्थचतुष्टये ॥२८॥
सर्ववेदव्यापकत्वाद्विराडिति निगद्यते ॥२९॥
सर्वमन्त्रेषु तत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते ।
अक्षरत्वात्पदत्वाच्च मुखे छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३०॥
विनियोगोऽस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टये ।
सर्वेषामेव जन्तूनां भाषणात् प्रेम्णा तथा ॥३१॥

हृदयाम्भोजमध्यस्था देवता तत्र तां न्यसेत्।
ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रफलभाग्भवेत्॥३२॥
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम्।

इस दशाक्षर मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द विराट्, देवता श्रीकृष्ण और अधिष्ठात्री देवता दुर्गा कहे गये हैं। यत: साक्षात् महेश्वर के मुख से मन्त्र को जानकर तप के द्वारा उसका साधन किया है; इसीलिये वे शुद्धात्मा नारद इसके ऋषि कहे गये हैं। अथवा पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति-हेतु गुरु अर्थात् सर्वश्रेष्ठ होने के फलस्वरूप इनका मस्तक पर न्यास करना चाहिये। समस्त वेदों में व्यापक होने के कारण विराट् कहा जाता है; यत: वह सभी मन्त्रों के तत्त्वों का आच्छादक होता है; इसीलिये छन्द कहलाता है। चूँकि वह अक्षर है एवं उसमें पदत्व भी है; अत: मुख में छन्द का न्यास करना कहा गया है। पुरुषार्थचतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति-हेतु इसका विनियोग कहा गया है। सभी जीवों के साथ प्रेमपूर्वक भाषण के कारण हृदयकमल के मध्य में देवता का न्यास करना चाहिये। ऋषि और छन्द का ज्ञान न रहने पर मन्त्र का कोई फल नहीं मिलता। विनियोग का ज्ञान न होने से मन्त्रों में दुर्बलता आती है।।२६-३२।।

मन्त्रन्यासमथो वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम्॥३३॥
प्रणवाभ्यां पुटं कृत्वा नमोऽन्तान् दशवर्णकान्।
दक्षाङ्गुष्ठादिवामान्तं न्यासः स्यात् सृष्टिरीरितः॥३४॥
वामाङ्गुष्ठादिदक्षान्तं संहृतिः परिकीर्तिता।
उभयोः करयोर्ज्येष्ठा पूर्विकास्थितिरिष्यते॥३५॥
संहृतिर्दोषसङ्घातहारिणी परिकीर्तिता।
विद्याप्रदा च सृष्ट्यन्ता वर्णिनां शुद्धचेतसाम्॥३६॥
स्थित्यन्ता या गृहस्थानां त्रयं काम्यानुरूपतः।
सहजानां वानप्रस्थे स्थित्यन्तं कश्चिदिच्छति॥३७॥
संहारान्तो मुनीनां च विरक्तस्य च सर्वशः।
न्यासत्रयं सदा कार्यमशक्तैरेकमेव हि॥३८॥

अब दृष्ट-अदृष्ट फल प्रदान करने वाले न्यास को कहता हूँ।

ऋष्यादि न्यास—

शिरसि नारदऋषये नम:।

मुखे विराट्छन्दसे नम:।

हृदि श्रीकृष्णाय देवतायै नम:।

गुह्ये क्लीं बीजाय नमः।
पादयोः स्वाहा शक्तये नमः।

सृष्टिन्यास—
दक्षाङ्गुष्ठे ॐ गों ॐ नमः।
दक्षतर्जन्यां ॐ पीं ॐ नमः।
दक्षमध्यमायां ॐ जं ॐ नमः।
दक्षानामायां ॐ नं ॐ नमः।
दक्षकनिष्ठिकायां ॐ वं ॐ नमः।
वामकनिष्ठिकायां ॐ ल्लं ॐ नमः।
वामानामायां ॐ भां ॐ नमः।
वाममध्यमायां ॐ यं ॐ नमः।
वामतर्जन्यां ॐ स्वां ॐ नमः।
वामाङ्गुष्ठे ॐ हां ॐ नमः।

स्थितिन्यास—
दक्षाङ्गुष्ठे ॐ गों ॐ नमः।
दक्षतर्जन्यां ॐ पीं ॐ नमः।
दक्षमध्यमायां ॐ जं ॐ नमः।
दक्षानामायां ॐ नं ॐ नमः।
दक्षकनिष्ठायां ॐ वं ॐ नमः।
वामाङ्गुष्ठे ॐ हां ॐ नमः।
वामतर्जन्यां ॐ स्वां ॐ नमः।
वाममध्यमायां ॐ यं ॐ नमः।
वामानामायां ॐ ल्लं ॐ नमः।
वामकनिष्ठायां ॐ ल्लं ॐ नमः।

संहारन्यास—
वामाङ्गुष्ठे ॐ हां ॐ नमः।
वामतर्जन्यां ॐ स्वां ॐ नमः।
वाममध्यमायां ॐ यं ॐ नमः।
वामानामायां ॐ भां ॐ नमः।
वामकनिष्ठायां ॐ ल्लं ॐ नमः।
दक्षकनिष्ठायां ॐ वं ॐ नमः।

दक्षानामायां ॐ नं ॐ नम:।

दक्षमध्यमायां ॐ जं ॐ नम:।

दक्षतर्जन्यां ॐ पीं ॐ नम:।

दक्षाङ्गुष्ठे ॐ गों ॐ नम:।

यह संहारन्यास समस्त दोषों का विनाश करने वाला है। सृष्टि एवं स्थितिन्यास शुद्ध चेतना वालों को विद्या प्रदान करने वाला होता है। गृहस्थों को कामनानुरूप सृष्टि, संहार एवं स्थिति तीनों न्यास करना चाहिये। सहज और वानप्रस्थों को सृष्टि, संहार एवं स्थितिन्यास करना चाहिये। विरक्तों एवं मुनियों को सृष्टि, स्थिति एवं संहारन्यास करना चाहिये। इस प्रकार सर्वदा तीनों न्यास करना चाहिये। अशक्तता की स्थिति में एक न्यास भी किया जा सकता है।।३३-३८।।

वर्णन्यासांस्तथा मन्त्री देहेषु परिविन्यसेत्।
हस्तमूले कूर्परके मणिबन्धेऽङ्गुलिमूलके ।।३९।।
अङ्गुल्यग्रे च विन्यसेत्पादयोरपि विन्यसेत्।
हस्तमूलादिसृष्टिः स्यान्मणिबन्धात्स्थितिः स्मृता ।।४०।।
अङ्गुल्यग्रात् संहतिः स्यात्स्थित्यन्तं त्रितयं न्यसेत्।
ततः कराङ्गयोर्न्यासः तथैव परिकीर्तितः ।।४१।।

मन्त्रवर्णन्यास—

गों नम: दक्षाङ्गुष्ठे।

पीं नम: तर्जन्याम्।

जं नम: मध्यमायाम्।

नं नम: अनामिकायाम्।

वं नम: कनिष्ठायाम्।

ल्लं नम: वामाङ्गुष्ठे।

भां नम: वामतर्जन्याम्।

यं नम: वाममध्यमायाम्।

स्वां नम: वामानामायाम्।

हां नम: वामकनिष्ठायाम्।

इसी प्रकार पैरों की अंगुलियों में भी न्यास करना चाहिये। हस्तमूल, कूर्पर, मणिबन्ध, अंगुलिमूल एवं अंगुलियों के अग्रभाग में भी सृष्टि, संहार एवं स्थितिन्यास करना चाहिये। तदनन्तर करन्यास एवं अङ्गन्यास करना चाहिये।।३९-४१।।

आचक्राय तथा स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमो वदेत्।
विचक्राय स्वाहेति तर्जनीभ्यां तथोच्चरेत्॥४२॥
सुचक्राय तथा स्वाहा मध्यमाभ्यां तथोच्चरेत्।
त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहेत्यनामिके तथा॥४३॥
असुरान्तकचक्राय स्वाहा कनिष्ठयोर्नमः।
रुक्मिणी प्रकृतिर्वामा साक्षादमृतविग्रहा॥४४॥
दक्षिणः पुरुषः प्रोक्तो ज्योतिस्तु विष्णुविग्रहः।
संयोगात् करयोरेवं परतत्त्वं प्रजायते॥४५॥
अत एव समस्तानां वस्तूनां शोधनं स्मृतम्।

करन्यास—

आचक्राय स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
विचक्राय स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः।
सुचक्राय स्वाहा मध्यमाभ्यां नमः।
त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा अनामाभ्यां नमः।
असुरान्तकचक्राय स्वाहा कनिष्ठाभ्यां नमः।

मनुष्य का बाँयाँ हाथ रुक्मिणीस्वरूप प्रकृति है, जो साक्षात् अमृतविग्रह है। दायाँ हाथ पुरुष कहा गया है, जो ज्योतिस्वरूप विष्णु कहा गया है। इस प्रकार दोनों हाथों को मिलाने से परतत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसीलिये समस्त वस्तुओं के शोधन करने का निर्देश किया गया है।।४२-४५।।

पञ्चाङ्गानि ततः कुर्यादङ्गमन्त्रेण देशिकः॥४६॥
पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रं विवर्जयेत्।
आचक्राय तथा स्वाहा हृदयाय नमो वदेत्॥४७॥
अङ्गुष्ठरहितेनैव कराग्रेण हृदयं स्पृशेत्।
विचक्राय तथा स्वाहा शिरसे स्वाहेति संवदेत्॥४८॥
शिरसि विन्यसेत्तद्वत्तथैव करशाखया।
सुचक्राय तथा स्वाहा शिखायै वषडुच्चरेत्॥४९॥
तथाऽधोऽङ्गुष्ठमुष्णा तु शिखायां परिविन्यसेत्।
त्रैलोक्यरक्षणक्राय स्वाहेति कवचाय हुम्॥५०॥
हस्ताभ्यां शिर आरभ्य पादान्तं संस्मरेद्यतिः।
असुरान्तकचक्राय स्वाहास्त्राय फट् उच्चरेत्॥५१॥
ऊर्ध्वतालत्रयं कृत्वा छोटिकाभिर्दिशो दश।
बन्धयेन्मुनिशार्दूल नित्यन्यासोऽयमीरितः॥५२॥

तदनन्तर देशिक को अङ्गमन्त्र से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये। इस पञ्चाङ्गन्यास में नेत्रन्यास नहीं किया जाता। पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—

'आचक्राय स्वाहा हृदयाय नम:' कहकर अंगुष्ठरहित कराग्र से हृदय का स्पर्श किया जाता है। 'विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा' कहकर अंगुष्ठरहित कराग्र से शिर का स्पर्श किया जाता है। 'सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्' कहकर मुट्ठी बाँधकर अंगूठे से शिखा का स्पर्श किया जाता है। 'त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं' कहकर दोनों हाथों से शिर से लेकर पैरों तक का स्पर्श किया जाता है। फिर 'असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्' कहकर शिर के ऊपर तीन ताल देकर दशो दिशाओं में चुटकी वजाकर दिग्वन्धन करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! यही नित्यन्यास कहा गया है।।४६-५२।।

पूज्यमानो हृदात्माऽयं हृदये सच्चिदात्मक: ।
क्रियते तत्परात्मा च हृन्मन्त्रेण च देशिकै: ।।५३।।
सर्वज्ञादिगुणोत्तुङ्गे सच्चिद्रूपे परात्मनि ।
क्रियते विषयाहारशिरोमन्त्रेण धीमता ।।५४।।
हृच्छिरोरूपचिद्धाममयता भावना दृढा ।
क्रियते निजदेवस्य शिखामन्त्रेण सादरम् ।।५५।।
मन्त्रात्मकस्य देवस्य मन्त्रवाच्येन तेजसा ।
सर्वतो वर्णमन्त्रेण क्रियते न्याससम्भृति: ।।५६।।
यद्ददाति परं ज्ञानं सच्चिद्रूपे परात्मनि ।
हृदयादिमयं तेज: स्यादेतन्नेत्रसंज्ञकम् ।।५७।।
आध्यात्मिकादिरूपं यत्साधकस्य विनाशयेत् ।
अविद्याजातमस्त्रं तत्परं धाम समीरितम् ।।५८।।

यह हृदयरूपी आत्मा पूजनीय है; क्योंकि देशिकों द्वारा इस हृदय में सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को हृन्मन्त्र से स्थापित किया जाता है। बुद्धिमान पुरुष द्वारा सर्वज्ञ आदि गुणों से युक्त सच्चित् स्वरूप परमात्मा में शिरोमन्त्र से विषयों को आहरित किया जाता है। हृदय एवं शिरोमन्त्र चिद्धाममय की भावना को दृढ़ करता है। शिखामन्त्र से अपने इष्ट की भावना दृढ़ होती है। मन्त्रात्मक देवता के मन्त्र का वाचन करने से उत्पन्न तेज से सर्वत्र वर्णमन्त्र से न्यास करने से सम्भूति होती है। सच्चित् रूप परमात्मा के परम ज्ञान का प्रदाता होने के कारण वह हृदयादिमय तेज नेत्र कहलाता है। यह साधक के आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिकरूप तापत्रय का विनाश करता है। अविद्या के कारण उत्पन्न अज्ञान का विनाश अस्त्रमन्त्र करता है और यही प्रभु का परम धाम कहा गया है।।५३-५८।।

गौतम उवाच

ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ! सर्वभूतहिते रत।
त्वमेव कृष्णदेवस्य अन्तर्यामी निरामयः॥५९॥
अविद्यादोषनिर्मुक्तसमस्तव्रतसंयुतः।
सर्वलोकैकगमकः सर्वलोकैकतत्त्ववित्॥६०॥
सर्वानुभवसाक्षी त्वं सर्वदेवनमस्कृत।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्त्रराजं परात्परम्॥६१॥
अष्टादशार्णमन्त्रस्य गुह्याद् गुह्यतरः स्मृतः।
तं मन्त्रं श्रोतुमिच्छामि यदि योग्योऽस्मि सत्तम॥६२॥
भवार्णवनिमग्नं मां त्वमुद्धर्तुमिहार्हसि।
इत्यादि स्तुतिभिः स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः॥६३॥
पार्श्वमासाद्य तद्वक्त्रमतिरासीत् मुनीश्वरः।

गौतम कहते हैं कि हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण! आप सभी लोगों के कल्याण में सदा लगे रहते हैं। आप कृष्ण के अन्तर्यामी एवं निरामय हैं। आप अविद्या दोष से मुक्त एवं सभी व्रतों से संयुक्त हैं। सभी लोकों में गमनागमन करने वाले आप सभी लोकों के तत्त्वों के ज्ञाता हैं। आप सभी अनुभवों के साक्षी होते हुये सभी देवताओं से नमस्कृत हैं। इस समय मैं आपसे परात्पर मन्त्रराज को सुनना चाहता हूँ। यह अष्टादशाक्षर मन्त्रराज परम गोपनीय कहा गया है। हे सत्तम! यदि मैं उस मन्त्रराज को सुनने के योग्य हूँ तो उसे सुनना चाहता हूँ। भवसागर में डूबे हुये मेरा उद्धार करने में आप समर्थ हैं। इस प्रकार से स्तुति करके बार-वार प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ गौतम नारद के समीप बैठकर उनके मुख का अवलोकन करने लगे।।५९-६३।।

नारद उवाच

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन् मयापि ब्रह्मणा श्रुतः॥६४॥
मन्त्रराजो मुनिश्रेष्ठ सर्ववेदागमानुगः।
ततः प्रभृति विप्रर्षे हरितामाप्तवानहम्॥६५॥
तव स्नेहात् प्रवक्ष्यामि यतस्त्वं पुरुषप्रियः।

नारद जी इस प्रकार बोले—हे ब्रह्मन्! आपने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है। मैंने इस मन्त्र को ब्रह्माजी से सुना है। हे मुनिश्रेष्ठ! यह मन्त्रराज समस्त वेदों एवं आगमों का अनुगामी है। हे विप्रर्षे! इसी मन्त्र की सहायता से मैंने हरि की भक्ति प्राप्त की है। आपके प्रति स्नेह से विवश होकर मैं इसे आपसे कहता हूँ; क्योंकि आप हरि के अतिशय प्रिय हैं।।६४-६५।।

क्लींकारं पूर्वमुच्चार्य कृष्णं तुर्यपदान्वितम् ॥६६॥
गोविन्दं च तथा चोक्त्वा दशार्णं च तथोच्चरेत्।
भक्त्या ते प्राणिपत्या च कथितो मन्त्रनायकः ॥६७॥
गुह्याद् गुह्यतरो ह्येष वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः।
शौनकाद्यास्तु मुनयस्तथान्ये देवमुख्यकाः ॥६८॥
मन्त्रराजपरिज्ञानात् सद्यस्तत् साम्यमागताः।
कृष्ण(ष्)शब्दश्च सत्तार्थो णश्चानन्दस्वरूपकः ॥६९॥
सुखरूपो भवेदात्मा भावानन्दमयत्वतः।
गोशब्देन ज्ञानमुक्तं तेन विन्देत तत्प्रभुम् ॥७०॥
गोशब्दाद्वेद इत्युक्तस्तेन वा लभते विभुम्।
एवं ते कथिता मन्त्रवासना मुनिसत्तम ॥७१॥
एतज्ज्ञानानुभावेन जीवन् कृष्णो न चान्यथा।
सर्वेषां मन्त्रराशीनां मुख्योऽयं वरदो मनुः ॥७२॥

मन्त्रोद्धार—पहले 'क्लीं' कहकर 'कृष्णाय' एवं 'गोविन्दाय' कहने के उपरान्त दशाक्षर मन्त्र 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' कहने से अष्टादशाक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।

आपकी भक्ति एवं प्रणति से प्रसन्न होकर मैंने इस मन्त्रराज को कहा है। यह गोपनीय से भी गोपनीय एवं समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिये चिन्तामणि के समान है। शौनक आदि मुनि और अन्य प्रमुख देवगण इस मन्त्र को जानकर तत्क्षण ही हरि की समानता प्राप्त कर लिये हैं। कृष्ण शब्द में 'ष्' वर्ण सत्ता का द्योतक है और 'ण' वर्ण आनन्द-स्वरूप है। इस प्रकार इस कृष्ण शब्द से सुखरूप भावानन्दमय आत्मा का ही बोध होता है। 'गो' वर्ण ज्ञान का द्योतक है। ज्ञान में प्रभु रहते हैं। 'गो' शब्द को वेद कहा गया है; इसीलिये इससे विभु की प्राप्ति होती है। इस प्रकार हे मुनिसत्तम! आपसे मैंने इस मन्त्र की वासना को कहा। इसके ज्ञान और अनुभव से जीवन कृष्णमय हो जाता है; यह कथन अन्यथा नहीं है। यह मन्त्र समस्त मन्त्रों में श्रेष्ठ एवं वरप्रदायक है।।६६-७२।।

पुण्यतीर्थानि सर्वाणि स्नातानि तेन धीमता।
सिद्धक्षेत्राणि सर्वाणि समं कृतानि तेन वै ॥७३॥
सकृदुच्चरणेनैव सत्यमेव न चान्यथा।
किमन्येन वहूक्तेन स्मरणाच्चास्य मन्त्रवित् ॥७४॥
जीवन्मुक्तो न सन्देहो विष्णुरेव न संशयः।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द उच्यते ॥७५॥

कृष्णः प्रकृतिरेतस्य दुर्गाधिष्ठातृदेवता ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥७६॥
नारायण इति ख्यातः पदपञ्चात्मकः परः।
अक्षरार्थस्तु कथितः पदस्यार्थ इतीरितः ॥७७॥
तस्माद्विज्ञाय वा मन्त्री पुरुषार्थचतुष्टयम् ।
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं हि गौतम ॥७८॥

इस मन्त्र के एक बार उच्चारण कर लेने मात्र से ही विद्वान् पुरुष समस्त पावन तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त कर लेता है एवं निश्चित रूप से वह समस्त सिद्धक्षेत्रों के समान फलदायी हो जाता है; यह पूर्णत: सत्य है, अन्यथा नहीं है। इसके बारे में अधिक क्या कहा जाय? इसके स्मरणमात्र से ही मन्त्रज्ञ जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। नि:सन्दिग्ध रूप से वह साक्षात् विष्णुस्वरूप हो जाता है।

इस मन्त्र के ऋषि नारद हैं एवं छन्द गायत्री है। कृष्ण इसकी प्रकृति हैं एव अधिष्ठात्री देवता दुर्गा हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं नारायण इस मन्त्र के पाँच पदस्वरूप हैं। इस प्रकार मन्त्र के अक्षरों एवं पदों के अर्थ को मैंने तुमसे कहा। हे गौतम! इन्हें जानकर मन्त्रज्ञ साधक पुरुषार्थचतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्त करता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।७३-७८।।

बीजशक्ती पुरा प्रोक्ते विनियोगश्च पूर्ववत् ।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य पदपञ्चकयोजनात् ॥७९॥
ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये जिह्वामूले तथा पुनः ।
कण्ठदेशे हृदि तथा नाभौ लिङ्गे च मूलके ॥८०॥
घ्राणद्वये चक्षुषोश्च कर्णयोर्विन्यसेदिति ।
ब्रह्मरन्ध्रे सर्वमन्त्रे व्यापकत्रयमाचरेत् ॥८१॥
मूर्ध्नि वक्त्रे हृदि नाभौ मूले च पदपञ्चकम् ।
रोहावरोहतो न्यस्य केशवाद्यानथो न्यसेत् ॥८२॥
वर्णन्यासं पुरः कृत्वा केशवाद्यानथो न्यसेत् ।
वर्णन्यासं पुरः कृत्वा केशवाद्यांस्ततो न्यसेत् ॥८३॥
भूतशुद्धिं लिपिन्यासं विना यस्तु प्रपूजयेत् ।
विपरीतं फलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ॥८४॥

इस मन्त्र का बीज एवं शक्ति पहले ही कह दिया गया है। विनियोग भी पूर्व के ही समान है। इस मन्त्र के पाँच पदों से इस प्रकार पंचांग न्यास करना चाहिये—क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः, गोविन्दाय शिरसे स्वाहा, गोपीजन शिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुं, स्वाहा अस्त्राय फट्।

मन्त्रवर्णन्यास—मस्तक पर—क्लीं नमः, ललाट पर—कृं नमः, भ्रूमध्य में—ष्णां नमः, दोनों कानों में—यं नमः-गों नमः, दोनों नेत्रों में—विं नमः-न्दां नमः, दोनों नासिकाओं में—यं नमः-गों नमः, मुख में—पीं नमः, कण्ठ में—जं नमः, हृदय में—नं नमः, नाभि में—वं नमः, कमर में—ल्लं नमः, लिङ्ग में—भां नमः, जानु में—यं नमः, दोनों पैरों में—स्वां नमः-हां नमः। इसके उपरान्त सम्पूर्ण मन्त्र से तीन बार व्यापक न्यास करना चाहिये।

पदन्यास—मूर्द्धा में—क्लीं कृष्णाय नमः, मुख में—गोविन्दाय नमः, हृदय में—गोपीजन नमः, नाभि में—वल्लभाय नमः, मूल में— स्वाहा नमः, नाभि में—वल्लभाय नमः, हृदय में—गोपीजन नमः, मुख में—गोविन्दाय नमः, मूर्द्धा में—क्लीं कृष्णाय नमः।

वर्णन्यास के बाद केशवादि न्यास करना चाहिये। भूतशुद्धि एवं मातृकान्यास के विना जो पूजन करता है, वह उसी प्रकार से विपरीत फल को प्राप्त करता है जैसे कि भक्तिरहित पूजन से विपरीत फल की प्राप्ति होती है।।७९-८४।।

मातृका द्विविधा प्रोक्ता परा वाऽप्यपरा तथा।
सुषुम्नान्तः परा तु स्यादपरा बाह्यदेशके ॥८५॥

मातृका दो प्रकार की होती है—परा एवं अपरा। परा मातृका सुषम्णा में एवं अपरा मातृका बाह्य देश में होती है।।८५।।

अथान्तर्मातृकान्यासो मूलाधारे चतुर्दले।
स्वर्णाभे व-श-ष-स-चतुर्वर्णविभूषिते ॥८६॥
षड्दले वैद्युतनिभे स्वाधिष्ठानेऽनलत्विषि।
व-भ-मैर्य-र-लैर्युक्ते वर्णैः षड्भिरलङ्कृते॥८७॥
मणिपूरे दशदले नीला जीमूतसत्विषि।
डादिफान्तदलैर्युक्ते बिन्दूद्भासितमस्तके ॥८८॥
अनाहते द्वादशारे प्रवालरुचिसन्निभे।
कादिठान्तदलैर्युक्ते योगिनां हृदयङ्गमे ॥८९॥
विशुद्धे षोडशदले धूम्राभे स्वरभूषिते।
आज्ञाचक्रे चन्द्राभे द्विदले हक्षरञ्जिते ॥९०॥
सहस्रारे महापद्मे नादबिन्दुद्वयान्विते।
अकथादि त्रिरेखात्म हलक्षत्रयकोणके ॥९१॥
तन्मध्ये परबिन्दुं च सृष्टिस्थितिलयात्मकम्।
एवं समाहितमना ध्यायेन्न्यासोऽयमान्तरः ॥९२॥

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं बिन्दुं ध्यायेच्चिदात्मकम्।
बिन्दुस्नुतसुधासारैस्तर्पयन्मातृकां न्यसेत् ॥९३॥
एकैकं वर्णमुच्चार्य मूलाधाराद् भ्रुवोऽन्तिकम्।
नमोऽन्तं इति च न्यास आन्तरः परिकीर्तितः ॥९४॥

अन्तर्मातृका न्यास—मूलाधार में स्वर्णाभ चतुर्दल में वं शं षं सं का न्यास किया जाता है। विद्युत् के समान प्रकाशित षड्दल स्वाधिष्ठान में अग्नि के समान बं भं मं यं रं लं का न्यास किया जाता है। दशदल मणिपूर में जीमूत के समान नील वर्ण वाले डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं का न्यास किया जाता है। हृदय-स्थित द्वादशदल अनाहत में मूंगे के वर्ण वाले कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं वर्णों का न्यास किया जाता है। षोडशदल विशुद्धि में धूम्राभ स्वरवर्ण अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः का न्यास किया जाता है। द्विदल आज्ञाचक्र के दोनों दलों में हं क्षं का न्यास किया जाता है। सहस्रारस्थ महापद्म में नाद-बिन्दुयुक्त अं से क्षं तक की पचास-पचास मातृकाओं का न्यास बीस चक्र में किया जाता है। इससे हजारों दलों में मातृकाओं का न्यास सम्पन्न हो जाता है। न्यास के उपरान्त अकथ त्रिकोण के ह-ळ-क्ष तीनों कोणों के मध्य में परबिन्दु में समाहित मन से सृष्टि-स्थिति-लयात्मक ध्यान करना चाहिये। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त चिदात्मक बिन्दु का ध्यान करना चाहिये। बिन्दु से चूते हुये सुधासागर से मातृकाओं का तर्पण करते हुए न्यास करना चाहिये। प्रत्येक वर्ण का उच्चारण 'नमः' लगाकर करते हुए मूलाधार से भ्रुवों तक न्यास करना चाहिये। इसे ही अन्तर्मातृका न्यास कहा जाता है।।८६-९४।।

बाह्यं वै मातृकान्यासं शृणुष्वावहितो मम।
ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः ॥९५॥
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गास्यदोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च।
पार्श्वतो पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेंऽशके ॥९६॥
ककुद्यंशे च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे तथा।
जठराननयोर्न्यस्येत् मातृकार्णान् यथाक्रमात् ॥९७॥
चतुर्द्धा मातृका प्रोक्ता केवला बिन्दुसंयुता।
सविसर्गा शोभया च रहस्यं त्वथ कथ्यते ॥९८॥
विद्याकरी केवला च शोभया भक्तिदायिका।
सविसर्गा पुत्रप्रदा सबिन्दुर्मुक्तिदायिनी ॥९९॥

बहिर्मातृका न्यास—अब बहिर्मातृका न्यास का सावधान होकर श्रवण करें। मातृकायें चार प्रकार की होती हैं—केवला अ से क्ष तक, अं से क्षं तक, अः से क्षः

तक एवं अं: से क्षं: तक। इनमें से प्रथम केवला मातृका विद्या प्रदान करने वाली होती हैं। दूसरी बिन्दुसहित मातृका मुक्ति प्रदान करने वाली होती है। तीसरी विसर्गयुक्त मातृका पुत्र प्रदान करने वाली एवं चौथी शोभया अर्थात् बिन्दु-विसर्गयुक्त मातृका भक्ति प्रदान करने वाली होती हैं। कामना के अनुसार ही न्यास करना चाहिये। यहाँ सबिन्दु मातृका न्यास दिया जा रहा है। शरीर के तत्तत् अंगों में इच्छित न्यास करना चाहिये।

अं नम: शिरसि। आं नम: मुखवृत्ते।
इं नम: नेत्रे। ईं नम: वामनेत्रे।
उं नम: दक्षकर्णे। ऊं नम: वामकर्णे।
ऋं नम: दक्षनासापुटे। ॠं नम: वामनासापुटे।
लृं नम: दक्षकपोले। ॡं नम: वामकपोले।
एं नम: ऊर्ध्वोष्ठे। ऐं नम: अधरोष्ठे।
ओं नम: ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ। औं नम: अधोदन्तपंक्तौ।
अं नम: जिह्वाग्रे। अ: नम: कण्ठे।
कं नम: दक्षबाहुमूले। खं नम: दक्षकूर्परे।
गं नम: दक्षमणिवन्धे। घं नम: दक्षकराङ्गुलिमूले।
ङं नम: दक्षकराङ्गुल्यग्रे। चं नम: वामबाहुमूले।
छं नम: वामकूर्परे। जं नम: वाममणिबन्धे।
झं नम: वामकराङ्गुलिमूले। ञं नम: वामकराङ्गुल्यग्रे।
टं नम: दक्षोरुमूले। ठं नम: दक्षजानुनि।
डं नम: दक्षगुल्फे। ढं नम: दक्षपादाङ्गुलिमूले।
णं नम: दक्षपादाङ्गुल्यग्रे। तं नम: वामोरुमूले।
थं नम: वामजानुनि। दं नम: वामगुल्फे।
धं नम: वामपादाङ्गुलिमूले। नं नम: वामपादाङ्गुल्यग्रे।
पं नम: दक्षपार्श्वे। फं नम: वामपार्श्वे।
बं नम: पृष्ठे। भं नम: नाभौ।
मं नम: जठरे। यं नम: हृदये।
रं नम: दक्षकुक्षौ। लं नम: गलपृष्ठे।
वं नम: वामकुक्षौ। शं नम: हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्।
षं नम: हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्त्रम्। सं नम: हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।
हं नम: हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्। लं नम: कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तम्।
क्षं नम: कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्।।९५-९९।।

केशवादि ततो न्यासं कुर्यात् साधकसत्तमः।
ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः ॥१००॥
अर्द्धलक्ष्मी हरिः प्रोक्तः श्रीबीजेन षडङ्गकम्।
करशुद्धिविधानं च विधाय ध्यानमाचरेत् ॥१०१॥

इसके बाद श्रेष्ठ साधक को केशवादि न्यास करना चाहिये। इसके ऋषि प्रजापति, छन्द गायत्री एवं देवता अर्द्धलक्ष्मी हरि हैं। श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः—इन वीजमन्त्रों से षडंग न्यास करने के उपरान्त विधिवत् करशुद्धि करने के बाद भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मी का ध्यान करना चाहिये॥१००-१०१॥

हस्तैर्बिभ्रत् सरसिजगदाशङ्खचक्राणि विद्यां
पद्मादर्शौ कनककलशं मेघविद्युद्विलासम्।
वामोत्तुङ्गस्तनमविरला कल्यमाश्लेषलोभात्
एकीभूतं वपुरवतु नः पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्योः ॥१०२॥

हाथों में कमल, गदा, शङ्ख, चक्र, पद्म, आदर्श, कनककलश धारण किये हुये, आकाशीय विद्युत् के सदृश शोभायमान, वाम भाग में उन्नत स्तन से सुशोभित, आलिङ्गनबद्ध एकाकार शरीर वाले भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मी हमारी रक्षा करें॥१०२॥

उद्यदादित्यसङ्काशं तप्तजाम्बूनदप्रभम्।
कमलावसुधाशोभि पार्श्वद्वन्द्वं परात्परम् ॥१०३॥
विचित्ररत्नविहितं नानालङ्कारशोभितम्।
पीतवस्त्रपरीधानं शङ्खकौमोदकीकरम् ॥१०४॥
वामतश्चक्रपद्मे च ध्यात्वैवं विन्यसेत्ततः।

ये उदीयमान सूर्य के समान देदीप्यमान, तप्त जाम्बूनद सुवर्ण के सदृश कान्ति वाले, दोनों पार्श्वों में कमला एवं वसुधा से सुशोभित परात्पर ब्रह्म हैं। ये नाना प्रकार के चित्र-विचित्र रत्नों से निर्मित अलंकार धारण किये हुये हैं। इनका उत्तरीय पीला है एवं दाहिने दोनों हाथों में चक्र एवं पद्म सुशोभित है। इस प्रकार ध्यान करके न्यास करना चाहिये॥१०३-१०४॥

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य श्रीबीजं तदनन्तरम् ॥१०५॥
मातृकार्णं ततो न्यसेद्वक्ष्यामि तत्प्रकारकम्।
केशवं विन्यसेत्कीर्त्या कान्त्या नारायणं न्यसेत् ॥१०६॥
माधवं तुष्टिसहितं गोविन्दं पुष्टिसंयुतम्।
धृत्या विष्णुं शान्तियुक्तं मधुसूदनमेव च ॥१०७॥

त्रिविक्रमं च क्रियया वामनं दयया न्यसेत्।
श्रीधरं मेधया हृषीकेशं हृष्ट्या युतं न्यसेत् ॥१०८॥
श्रद्धयाऽम्बुजनाभं च लज्जादामोदरौ ततः।
वासुदेवं ततो न्यसेत् लक्ष्म्या सङ्कर्षणं ततः ॥१०९॥
सरस्वत्या तथा प्रीत्या प्रद्युम्नं चानिरुद्धकम्।
रत्या चक्रिजये दुर्गा गदिनौ शार्ङ्गिणा प्रभा ॥११०॥
खड्गिसत्ये शङ्खिचण्डे वाण्या च हलिनं न्यसेत्।
विलासिन्या मुशलिनं शूलिनं विजयायुतम् ॥१११॥
पाशिनं विरजायुक्तं विश्वायाङ्कुशिनं न्यसेत्।
मुकुन्दं च विनदया सुनन्दानन्दजौ न्यसेत् ॥११२॥
स्मृत्या च नन्दिनं ऋद्ध्या नरं नरकजित् समृद्ध्या।
हरिशुद्धी कृष्णबुद्धी भुक्तिसत्यौ च सात्वकम् ॥११३॥
मत्या च विन्यसेत् प्राज्ञो द्वन्द्वीभूय पृथक् पृथक्।
शौरिक्षमे शूररमे तथैव माजनार्दनौ ॥११४॥
क्लेदिन्या भूधरं विश्वमूर्त्या क्लिन्नां ततो न्यसेत्।
वैकुण्ठवसुदे न्यस्येद् वसुधापुरुषोत्तमौ ॥११५॥
बली च परया युक्तो हंसश्चैव प्रभायुतः।
वालश्च सूक्ष्मया युक्तो वृषघ्नः संघया युतः ॥११६॥
वृषश्च प्रज्ञया युक्तो हंसश्चैव प्रभायुतः।
वाराहो निशया युक्तो विमलो मोघया युतः ॥११७॥
विद्युता नरसिंहेन कथिताः शिवशक्तयः।
एवमङ्गेषु विन्यस्य ध्यात्वा पूर्वं समाहितः ॥११८॥

केशवादि न्यास—इस केशवादि न्यास में सर्वप्रथम 'ॐ श्रीं' का उच्चारण करने के बाद मातृकाक्षर का उच्चारण करते हुये केशवादि नाम से न्यास करना चाहिये, जो इस प्रकार किया जाता है—

ॐ श्रीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः (ललाटे)
ॐ श्रीं आं नारायणाय कान्त्यै नमः (मुखे)
ॐ श्रीं इं माधवाय तुष्ट्यै नमः (दक्षनेत्रे)
ॐ श्रीं ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः (वामनेत्रे)
ॐ श्रीं उं विष्णवे धृत्यै नमः (दक्षकर्णे)
ॐ श्रीं ऊं मधुसूदनाय शान्त्यै नमः (वामकर्णे)
ॐ श्रीं ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः (दक्षनासापुटे)

ॐ श्रीं ॠं वामनाय दयायै नमः (वामनासापुटे)
ॐ श्रीं ऌं श्रीधराय मेधायै नमः (दक्षगण्डे)
ॐ श्रीं ॡं हृषीकेशाय हृष्ट्यै नमः (वामगण्डे)
ॐ श्रीं एं पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः (ऊर्ध्वोष्ठे)
ॐ श्रीं ऐं दामोदराय लज्जायै नमः (अधरोष्ठे)
ॐ श्रीं ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः (ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ)
ॐ श्रीं औं सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै नमः (अधोदन्तपंक्तौ)
ॐ श्रीं अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः (मस्तके)
ॐ श्रीं अः अनिरुद्धाय रत्यै नमः (मुखे)
ॐ श्रीं कं चक्रिणे जयायै नमः (दक्षकरमूले)
ॐ श्रीं खं गदिने दुर्गायै नमः (दक्षकूर्परे)
ॐ श्रीं गं शार्ङ्गिणे प्रभायै नमः (दक्षमणिबन्धे)
ॐ श्रीं घं खड्गिने सत्यायै नमः (दक्षाङ्गुलिमूले)
ॐ श्रीं ङं शङ्खिने चण्डायै नमः (दक्षाङ्गुल्यग्रे)
ॐ श्रीं चं हलिने वाण्यै नमः (वामकरमूले)
ॐ श्रीं छं मुसलिने विलासिन्यै नमः (वामकूर्परे)
ॐ श्रीं जं शूलिने विजयायै नमः (वाममणिबन्धे)
ॐ श्रीं झं वशिने विरजायै नमः (वामाङ्गुलिमूले)
ॐ श्रीं ञं अङ्कुशिने विश्वायै नमः (वामाङ्गुल्यग्रे)
ॐ श्रीं टं मुकुन्दाय विनदायै नमः (दक्षपादमूले)
ॐ श्रीं ठं नन्दजाय सुनन्दायै नमः (दक्षजानुनि)
ॐ श्रीं डं नन्दिने स्मृत्यै नमः (दक्षपादगुल्फे)
ॐ श्रीं ढं नराय ऋद्ध्यै नमः (दक्षपादाङ्गुलिमूले)
ॐ श्रीं णं नरकजिते समृद्ध्यै नमः (दक्षपादाङ्गुल्यग्रे)
ॐ श्रीं तं हरये शुद्ध्यै नमः (वामपादमूले)
ॐ श्रीं थं कृष्णाय बुद्ध्यै नमः (वामपादजानुनि)
ॐ श्रीं दं सत्याय मत्यै नमः (वामपादगुल्फे)
ॐ श्रीं धं सात्वताय मत्यै नमः (वामपादाङ्गुलिमूले)
ॐ श्रीं नं शौरये क्षमायै नमः (वामपादाङ्गुल्यग्रे)
ॐ श्रीं पं शूराय रमायै नमः (दक्षपार्श्वे)
ॐ श्रीं फं जनार्दनाय उमायै नमः (वामपार्श्वे)
ॐ श्रीं बं भूधराय क्लेदिन्यै नमः (पृष्ठे)

ॐ श्रीं भं विश्वमूर्त्तये क्लिन्नायै नम: (नाभौ)
ॐ श्रीं मं वैकुण्ठाय वसुदायै नम: (उदरे)
ॐ श्रीं यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नम: (हृदि)
ॐ श्रीं रं असृगात्मने बलिने परायै नम: (दक्षांसे)
ॐ श्रीं लं मांसात्मने बलानुजाय परायणायै नम: (ककुदि)
ॐ श्रीं वं मेदात्मने बालाय सूक्ष्मायै नम: (वामांसे)
ॐ श्रीं शं अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय सन्ध्यायै नम: (हृदयादिदक्षहस्तान्तम्)
ॐ श्रीं षं मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै नम: (हृदयादिवामहस्तान्तम्)
ॐ श्रीं सं शुक्रात्मने हंसाय प्रभायै नम: (हृदयादिदक्षपादान्तम्)
ॐ श्रीं हं प्राणात्मने वराहाय निशायै नम: (हृदयादिवामपादान्तम्)
ॐ श्रीं ळं जीवात्मने विमलाय अमोघायै नम: (हृदयाद्युदरे)
ॐ श्रीं क्षं क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नम: (हृदयादिमुखे)

इस प्रकार से अंगों में न्यास करने के उपरान्त समाहित चित्त होकर पूर्वोक्त ध्यान करना चाहिये।।१०५-११८।।

भक्त्या तु पूजयेद्देवं सोऽभीष्टफलमाप्नुयात्।
केशवादिरयं न्यासो न्यासमात्रेण देहिनाम्।।११९।।
अच्युतत्वं ददात्येव सत्यं सत्यं न संशयः।
केशवाद्या इमे श्यामाः सर्वे नारायणाः स्मृताः।।१२०।।
शङ्खचक्रगदापद्मलसद्भुजचतुष्टयाः ।
नमोऽन्तार्णं समुच्चार्य नारायणमनुवदेत्।।१२१।।
प्राणात्मानं तथोच्चार्य केशवाय इति स्मरेत्।
कीर्त्यैव मनसा युक्त इत्यादि न्यासमाचरेत्।।१२२।।
मुमुक्षवश्च यतयश्चरेयुर्न्यासमुत्तमम्।
एवं वा विन्यसेन्न्यासं लक्ष्मीबीजपुरःसरम्।।१२३।।
स्मृतिं धृतिं महालक्ष्मीं प्राप्यान्ते हरितां व्रजेत्।
वाग्भवाद्यं न्यसेद्वापि वागीशत्वमवाप्नुयात्।।१२४।।
यद्यदाद्यं न्यसेन्न्यासं तद्बीजैरङ्गकल्पनम्।
तत्त्वन्यासं ततः कुर्यात् साधकः सिद्धिहेतवे।।१२५।।
कृतेन येन श्रीदेवरूपतामेव यात्यसौ।

इस प्रकार केशवादि न्यास एवं ध्यान करने के उपरान्त भक्तिपूर्वक इष्टदेव का पूजन करने से साधक को अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। यह केशवादि न्यास करने

मात्र से ही मनुष्य को अच्युतत्त्व प्राप्त हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। ये सभी केशवादि देवगण साक्षात् नारायणस्वरूप ही हैं। ये सभी अपने चारो भुजाओं में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुये हैं।

न्यास करने के क्रम में सर्वप्रथम ॐ नम: का उच्चारण करने के बाद नारायण मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। उसके पश्चात् केशवाय कीर्त्त्यै कहकर न्यास करना चाहिये। मुमुक्षुओं एवं संन्यासियों को भी इस उत्तम न्यास को अवश्य करना चाहिये। इस प्रकार लक्ष्मीबीज से समन्वित इस उत्तम न्यास को जो साधक करता है, वह स्मृति, धृति एवं महालक्ष्मी को प्राप्त करके अन्त में हरि का सान्निध्यलाभ करता है। इसी प्रकार प्रारम्भ में वाग्भवबीज लगाकर जो न्यास करता है, उसे वागीशत्व की प्राप्ति होती है। जिस-जिस बीज का आदि में संयोजन करते हुये न्यास किया जाता है, उसी बीजमन्त्र से अङ्गन्यास भी करना चाहिये। तदनन्तर सिद्धि के आकांक्षी साधक को तत्त्वन्यास करना चाहिये; जिसके करने से वह साधक स्वयं देवस्वरूप हो जाता है।।११९-१२५।।

मादिकान्तास्तथार्णाश्च बीजान्येकैकशोच्चरेत् ।।१२६।।
नमः परायेत्युच्चार्य ततस्तत्त्वात्मने नमः ।
जीवं प्राणं द्वयं चोक्त्वा सर्वाङ्गेषु प्रविन्यसेत् ।।१२७।।
ततो हृदयमध्ये च तत्त्वत्रयं च विन्यसेत् ।
वं बीजं महीतत्त्वं च फमहङ्कार एव च ।।१२८।।
पं बीजं मनस्तत्त्वमित्येवं त्रिषु विन्यसेत् ।
लं बीजं शब्दतत्त्वं च न्यसेन्मौलौ ततः परम् ।।१२९।।
वं बीजं स्पर्शतत्त्वं च विन्यसेदानने सुधीः ।
दं बीजं रूपतत्त्वं च हृदये विन्यसेत्ततः ।।१३०।।
थं बीजं रसतत्त्वं च विन्यसेदथ गुह्यके ।
तं बीजं गन्धतत्त्वं च पादयोरथ विन्यसेत् ।।१३१।।
णं बीजं श्रोत्रतत्त्वं च श्रोत्रयोरेव विन्यसेत् ।
ढं बीजं श्रोत्रतत्त्वं च श्रोत्रयोरेव विन्यसेत् ।।१३२।।
ठं बीजं त्वक्तत्त्वं च विन्यसेत्त्वचि साधकः ।
डं बीजं नेत्रतत्त्वं च नेत्रयोरथ विन्यसेत् ।।१३३।।
ठं बीजं रसतत्त्वं च रसनायामथो न्यसेत् ।
टं बीजं घ्राणतत्त्वं च नासिकायां प्रविन्यसेत् ।।१३४।।
जं बीजं वाक्तत्त्वं च विन्यसेद्वाचि साधकः ।
फं बीजं पाणितत्त्वं च पाण्योरेव प्रविन्यसेत् ।।१३५।।

जं बीजं पादतत्त्वं च पादयोरेव विन्यसेत्।
छं बीजं पायुतत्त्वं च पायौ न्यसेत् समाहितः ॥१३६॥
चं बीजं लिङ्गतत्त्वं च विन्यसेदथ शिश्नके।
ङं बीजं तत्त्वमाकाशं पुनर्मौलौ प्रविन्यसेत् ॥१३७॥
घं बीजं वायुतत्त्वं च वदने विन्यसेत्पुनः।
गं बीजं तेजस्तत्त्वं च हृदये विन्यसेत्सुधीः ॥१३८॥
खं बीजं जलतत्त्वं च पुनः शिश्ने प्रविन्यसेत्।
कं बीजं पृथिवीतत्त्वं विन्यसेत्पादयोः पुनः ॥१३९॥
शं बीजं हृत्पुण्डरीकतत्त्वं तत्र प्रविन्यसेत्।
हं बीजं सूर्यमण्डलतत्त्वं हृदि च विन्यसेत् ॥१४०॥
सं बीजं चन्द्रमण्डलतत्त्वं तत्र प्रविन्यसेत्।
रं बीजं वह्निमण्डलतत्त्वं तत्रैव विन्यसेत् ॥१४१॥
शं बीजं परमेष्ठितत्त्वं च वासुदेवं च मूर्द्धनि।
यं बीजमथ पुंस्तत्त्वं सङ्कर्षणमथो मुखे ॥१४२॥
लं बीजं विश्वतत्त्वं च प्रद्युम्नं हृदि विन्यसेत्।
वं बीजं प्रकृतितत्त्वमनिरुद्धमुपस्थके ॥१४३॥
ळं बीजं सर्वतत्त्वं च पादयोर्नारायणं न्यसेत्।
क्षं बीजं कोपतत्त्वं च नृसिंहं सर्वगात्रके ॥१४४॥
एवं तत्त्वानि विन्यस्य प्राणायामं समारभेत्।

मकार से आरम्भ कर ककार-पर्यन्त समस्त वर्णों का एक-एक वीज से योग करके उच्चारण करते हुये नमः पराय जीवतत्त्वात्मने नमः एवं नमः पराय प्राणतत्त्वात्मने नमः कहकर सर्वाङ्ग में न्यास करना चाहिये। तदनन्तर हृदय में तत्त्वत्रय का न्यास करना चाहिये। एतदर्थ बं महीतत्त्वात्मने नमः, फं अहङ्कारतत्त्वात्मने नमः एवं पं मनस्तात्त्वात्मने नमः से हृदयमध्य में तीनों तत्त्वों का न्यास करने के पश्चात् इस प्रकार शेष न्यास करना चाहिये—

१. लं शब्दतत्त्वात्मने नमः (मस्तके)
२. वं स्पर्शतत्त्वात्मने नमः (मुखे)
३. दं रूपतत्त्वात्मने नमः (हृदये)
४. थं रसतत्त्वात्मने नमः (गुह्ये)
५. तं गन्धतत्त्वात्मने नमः (पादयोः)
६. णं श्रोत्रतत्त्वात्मने नमः (श्रोत्रयोः)
७. ढं श्रोत्रतत्त्वात्मने नमः (श्रोत्रे)

८. ठं त्वक्तत्त्वात्मने नमः (त्वचि)
९. डं नेत्रतत्त्वात्मने नमः (नेत्रयोः)
१०. ठं रसतत्त्वात्मने नमः (रसनायाम्)
११. ढं घ्राणतत्त्वात्मने नमः (नासिकायाम्)
१२. जं वाक्तत्त्वात्मने नमः (जिह्वायाम्)
१३. फं पाणितत्त्वात्मने नमः (पाण्योः)
१४. जं पादतत्त्वात्मने नमः (पादयोः)
१५. छं पायुतत्त्वात्मने नमः (पायौ)
१६. चं लिङ्गतत्त्वात्मने नमः (शिश्नके)
१७. ङं आकाशतत्त्वात्मने नमः (मस्तके)
१८. घं वायुतत्त्वात्मने नमः (मुखे)
१९. गं तेजस्तत्त्वात्मने नमः (हृदये)
२० खं जलतत्त्वात्मने नमः (शिश्ने)
२१. कं पृथ्वीतत्त्वात्मने नमः (पादयोः)
२२. शं हृत्पुण्डरीकतत्त्वात्मने नमः (हृदये)
२३. हं सूर्यमण्डलतत्त्वात्मने नमः (हृदये)
२४. सं चन्द्रमण्डलतत्त्वात्मने नमः (हृदये).
२५. रं वह्निमण्डलतत्त्वात्मने नमः (हृदये)
२६. शं परमेष्ठितत्त्वात्मने वासुदेवाय नमः (मूर्धनि)
२७. यं पुंस्तत्त्वात्मने सङ्कर्षणाय नमः (मुखे)
२८. लं विश्वतत्त्वात्मने प्रद्युम्नाय नमः (हृदये)
२९. वं प्रकृतितत्त्वात्मने अनिरुद्धाय नमः (उपस्थे)
३०. ळं सर्वतत्त्वात्मने नारायणाय नमः (पादयोः)
३१. क्षं कोपतत्त्वात्मने नृसिंहाय नमः (सर्वाङ्गे)

इस प्रकार तत्त्वन्यास करने के उपरान्त प्राणायाम करना चाहिये।।१२६-१४४।।

दशाक्षरेण चेत्तत्र अष्टाविंशतिरेचके ॥१४५॥
पूरयेद्वामया तद्वद् धारयेत्तत्प्रमाणतः ।
प्राणायामो भवेदेको रेच(क)पूरककुम्भकैः ॥१४६॥
अष्टादशार्णेन चेत्तद्वद् द्वादशैवं समाचरेत् ।
एकेन रेचयेत् कामबीजेनैव पृथक् पृथक् ॥१४७॥
पूरयेत् सप्तजप्तेन विंशत्या तेन धारयेत् ।
सर्वेषु कृष्णमन्त्रेषु बीजेनानेन वा चरेत् ॥१४८॥

अथवा सर्वमन्त्रेषु वर्णानुक्रमतो जपन्।
प्राणायामं चरेन्मन्त्री रेच(क)पूरककुम्भकैः ॥१४९॥
मन्त्रप्राणायामः प्रोक्तो यौगिकं कथयामि ते।

मन्त्रप्राणायाम—दशाक्षर मन्त्र 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' से अट्ठाईस प्राणायाम करना चाहिये। सामान्य प्राणायाम में बाँयें नासाछिद्र से पूरक करने के पश्चात् कुम्भक करके दाँयें नासाछिद्र से रेचक किया जाता है; परन्तु यहाँ पर दाँयें नासाछिद्र से पूरक करने के उपरान्त कुम्भक-रेचक करना चाहिये। साधारण प्राणायाम में मात्रा का अनुपात १.४.२ का होता है; परन्तु यहाँ पूरक, कुम्भक एवं रेचक में मात्रा बराबर रखी जाती है। इसके अनुसार एक दक्षाक्षर मन्त्र मन ही मन जपते हुए दाँयें नासाछिद्र से पूरक करना चाहिये अर्थात् श्वास खींचना चाहिये। तदनन्तर दोनों नासाछिद्रों को बन्द करके एक दक्षाक्षर मन्त्र जपते हुए कुम्भक करना चाहिये और तत्पश्चात् पुनः एक दशाक्षर मन्त्र जपते हुए बाँयें नासाछिद्र से रेचक करना चाहिये अर्थात् श्वास को वाहर निकाल देना चाहिये। इस प्रकार यह एक प्राणायाम सम्पन्न होता है। इसी प्रकार से अट्ठाईस प्राणायाम करना चाहिये। अपनी क्षमता के अनुसार दो, तीन, चार या अधिक जप से भी पूरक-कुम्भक-रेचक किया जा सकता है। अष्टादशाक्षर मन्त्र से अधिकतम वारह प्राणायाम ही किया जाता है। अष्टादशाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। एकाक्षर मन्त्र 'क्लीं' से प्राणायाम की विधि यह है कि सात कर जप करते हुए दाँयें नासाछिद्र से पूरक, वीस बार जप करते हुये कुम्भक एवं एक बार मन्त्रजप से बाँयें नासाछिद्र से रेचक करना चाहिये। सभी कृष्णमन्त्रों में बीज से इसी प्रकार प्राणायाम करना चाहिये अथवा सभी मन्त्रों में वर्णानुक्रमयोग से जप करते हुए रेचक-पूरक-कुम्भक करना चाहिये। इस प्रकार यह मन्त्रप्राणायाम कहा गया; अव यौगिक प्राणायाम कहता हूँ।।१४५-१४९।।

रेचयेद्दक्षया विद्वान् मात्रा षोडशकेन च ॥१५०॥
द्वात्रिंशन् मात्रयापूर्य चतुःषष्ट्या तु धारयेत्।
एकश्वासश्चैकमात्रा मात्रायाः नियमो मतः ॥१५१॥
वामजानुनि तद्धस्तप्रमाणं यावता भवेत्।
कालेन मात्रा सा ज्ञेया मुनिभिर्वेदपारगैः ॥१५२॥
मात्रासङ्ख्या कृता मात्रा यद्वा पर्वत्रया विधिः।
प्राणायामो द्विधा प्रोक्तः सगर्भश्च विगर्भकः ॥१५३॥
सगर्भो मन्त्रजापेन प्राणायामो मतो बुधैः।
विगर्भश्च प्राणायामो मात्रायाः सङ्ख्यया भवेत् ॥१५४॥

प्राणायामात्परं तत्त्वं प्राणायामात्परं पदम्।
प्राणायामात्परं ज्ञानं प्राणायामात्परं पदम् ॥१५५॥
प्राणायामात्परो योगः प्राणायामात्परं धनम्।
नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति कथितं तव सुव्रत! ॥१५६॥

यौगिक प्राणायाम—यौगिक प्राणायाम में बत्तीस मात्रा से पूरक, चौंसठ मात्रा से कुम्भक और सोलह मात्रा से रेचक को एक मात्रा का मानकर वाम जानु से नासिका-पर्यन्त जितने समय में हाथ जाता है, उसे एक मात्रा समझना चाहिये। ऐसा वेदों, पुराणों एवं मुनियों द्वारा कहा गया है। अथवा तीनों पर्वों पर गणना द्वारा पूरक-कुम्भक-रेचक की मात्रा जाननी चाहिये। यह प्राणायाम दो प्रकार का होता है—सगर्भ एवं विगर्भ। मन्त्रजप के साथ जो प्राणायाम किया जाता है, उसे सगर्भ प्राणायाम कहते हैं; जबकि विगर्भ प्राणायाम में मात्रा की गणना होती है। प्राणायाम के अनुष्ठान से परमतत्त्व, परमपद, परम ज्ञान एवं परमपद की प्राप्ति होती है। हे सुव्रत! मैं तुमसे कहता हूँ कि प्राणायाम में श्रेष्ठ न तो कोई योग है और न तो कोई धन ही प्राणायाम से श्रेष्ठ है। मेरा यह कथन पूर्णतः सत्य है।।१५०-१५६।।

वत्सराभ्यासयोगेन ब्रह्मसाक्षाद्भवेद् ध्रुवम्।
चैतन्यावरणं यद्यत् क्षीयते नात्र संशयः ॥१५७॥
प्राणायामं विना मुक्तिमार्गो नास्ति यमोदितः।
प्राणायामं विना यद्यत्साधनं विफलं भवेत् ॥१५८॥
प्राणायामेन मुनयः सिद्धिमापुर्न चान्यथा।
प्राणायमपरो योगी न योगी शिव एव सः ॥१५९॥

एक वर्ष-पर्यन्त निरन्तर प्राणायाम के अभ्यास से अभ्यासी को निश्चित रूप से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और उसके चित्त के समस्त आवरण छिन्न हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है। प्राणायाम के अतिरिक्त मुक्ति प्राप्त करने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। प्राणायाम के अनुष्ठान न करने से मुक्ति के जो-जो साधन शास्त्रों में कहे गये हैं, वे सभी विफल हो जाते हैं। प्राणायाम से ही मुनियों ने सिद्धियाँ हस्तगत की हैं; अन्य किसी साधन से नहीं। प्राणायाम-परायण योगी सामान्य योगी न होकर साक्षात् शिवस्वरूप होता है।।१५७-१५९।।

गमनागमनं वायोः प्राणस्य धारणं तथा।
प्राणायाम इति प्रोक्तो योगशास्त्रविशारदैः॥१६०॥
प्राणो वायुरिति ख्यात आयामस्तन्निरोधनम्।
आद्यन्तयोर्विधीयन्ते नासिकापुटचारिणः ॥१६१॥

रेचयेद्दक्षया नासा पूरयेद्वामयोस्ततः ।
द्वात्रिंशदभ्यसन् मन्त्रं प्राणायामः स उच्यते ॥१६२॥
ब्रह्महत्यासुरापानमगम्यागमनं तथा ।
सर्वमाशु दहत्येव प्राणायामेन वै द्विजः ॥१६३॥
भ्रूणहत्यादिपापानि नाशयेत् मासमात्रतः ।
प्रातः सायं चरेन्नित्यं षोडशप्राणसंयमम् ॥१६४॥
नाशयेत् सर्वपापानि तूलराशिमिवानलः ।
सर्वेषामेव पापानां प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥१६५॥
स्वदेहस्थं यथा सर्पश्चर्म्मोत्सृज्य निरामयः ।
प्राणायामात्तथाध्यक्ष्यदविद्यां कामकर्मजाम् ॥१६६॥
अथवा किं बहूक्तेन शृणु गौतम तत्त्वतः ।
प्राणायामान्न हि परो योगिनां मुक्तिसिद्धये ॥१६७॥

योगशास्त्र के ज्ञाताओं ने श्वास-नि:श्वास में वायु का गमनागमन और प्राणधारण अर्थात् गमनागमन के निरोध को ही प्राणायाम शब्द से अभिहित किया है। वायु ही प्राण के रूप में प्रसिद्ध है और प्राण के आयाम अर्थात् निरोध को ही प्राणायाम कहा जाता है। आदि और अन्त में नासिकापुटों में गमनागमन से इसका विधान किया जाता है। दाँयें नासाछिद्र से श्वास को बाहर निकालकर रेचन एवं बाँयें नासाछिद्र से श्वास को भीतर खींचकर पूरण—इस प्रकार वत्तीस मन्त्रजप द्वारा एक प्राणायाम सम्पन्न होता है। हे द्विज! ब्रह्महत्या, सुरापान, अगम्यागमन—इन सभी पापों का यह प्राणायाम शीघ्र ही नाश कर देता है। मात्र एक मास तक प्राणायाम के अनुष्ठान से भ्रूणहत्यादि पापों का विनाश हो जाता है। सुबह-शाम प्रतिदिन सोलह प्राणायाम संयम से करना चाहिये, इससे सभी पापों का नाश वैसे ही हो जाता है, जैसे रूई की ढेरी को अग्नि जला देती है। यह प्राणायाम सभी पापों का प्रायश्चित्तस्वरूप कहा गया है। अपने शरीर पर स्थित केंचुल का त्याग करके जिस प्रकार सर्प रोगरहित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार प्राणायाम के कारण कामकर्मज अविद्या से प्राणायामाभ्यासी रहित हो जाता है। अथवा हे गौतम! अधिक क्या कहा जाय; मैं तत्त्वत: कहता हूँ कि योगियों को मुक्ति की सिद्धि के लिये प्राणायाम से श्रेष्ठ कोई अन्य उपाय नहीं है।।१६०-१६७।।

प्राणायामं विधायेत्थं देहे पीठानि विन्यसेत् ।
आधारशक्तिं प्रकृतिं कूर्मशेषं तथैव च ॥१६८॥
पृथिवीं क्षीरसिन्धुं च श्वेतद्वीपं च मध्यतः ।
तन्मध्ये रत्नगेहं च सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥१६९॥

गेहमध्ये कल्पवृक्षं सर्वरत्नमहोज्ज्वलम्।
दक्षिणांशे दक्षिणकटौ तथा वामद्वये पुनः ॥१७०॥
धर्मज्ञानं च वैराग्यं विन्यसेदैश्वरं तथा।
मुखपार्श्वे नाभिपार्श्वे नमः पूर्वं तु विन्यसेत् ॥१७१॥
विन्यस्यैवं पुनर्हृदि पद्मं विश्वमयं न्यसेत्।
प्रकृत्यष्टलसत् पत्रं विकारमयकेसरम् ॥१७२॥
तन्मध्ये विन्यसेन्मन्त्री पञ्चाशद्वर्णकर्णिकाम्।
प्रणवस्य त्रिभिर्वर्णैर्विन्यसेन्मण्डलत्रयम् ॥१७३॥
कलाभिः सहितं तद्वद्दशद्वादशषोडशैः।
अकारोकारमकाराः प्रणवांशोद्भवाऽक्षराः ॥१७४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्याः समष्टिव्यष्टिरूपकाः।
समष्ट्या केवलं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥१७५॥
स्वबीजपूर्वकांस्तत्र सत्त्वादीन्यथ विन्यसेत्।
तदंशेनैव मतिमान् न्यसेदात्मचतुष्टयम् ॥१७६॥

इस प्रकार प्राणायाम का अनुष्ठान करने के उपरान्त अपने शरीर में पीठन्यास करना चाहिये। शरीर में आधारशक्ति, प्रकृति, कूर्म, शेष, पृथ्वी, क्षीरसिन्धु एवं मध्य में श्वेतद्वीप नामक पीठ हैं, जिनके मध्य में समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाला रत्नगृह विद्यमान है। उस रत्नगृह के मध्य में समस्त महान् रत्नों से देदीप्यमान कल्पवृक्ष अवस्थित है। इनका न्यास दाँयें कंधे, दाँयीं कटि, बाँयाँ कन्धा, बाँयीं कटि में करना चाहिये। धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य का न्यास मुख के दोनों पार्श्वों और नाभि के दोनों पार्श्वों में करना चाहिये। हृदय-कमल में विश्वमय पद्म का न्यास करना चाहिये। प्रकृति के अष्टपत्र और विकारमय केसर में पचास वर्णों का न्यास करना चाहिये। ॐकार के तीन वर्ण 'अ उ म' का न्यास मण्डलत्रय में करना चाहिये। अकार की दश, उकार की बारह और मकार की सोलह कलाओं का न्यास उनके साथ ही करना चाहिये। ब्रह्मा-विष्णु-महेश समष्टि-व्यष्टिरूप हैं। सच्चिदानन्द लक्षण वाला ब्रह्म केवल समष्टि है। वहाँ पर स्वबीजपूर्वक सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण का न्यास करना चाहिये और अंश से ही विज्ञ साधक को आत्मचतुष्टय का न्यास करना चाहिये।।१६८-१७६।।

आत्मान्तरात्मापरमात्माज्ञानात्मानश्च ते मताः।
आत्मानौ जागरेच्छूलो विश्वात्मा विश्वरूपकः ॥१७७॥
नामाद्यबीजसहितं हृन्मध्ये च व्यवस्थितम्।
अत एव हृदि न्यसेद्वाग्वृत्तिर्हृदये स्थितः ॥१७८॥

अन्तरङ्गतया चायमन्तरात्मा हृदन्तरे।
मनोमयस्तेजसाख्योऽन्तरिन्द्रियवृत्तिधृक् ॥१७९॥
अत एव मुने चायमन्तरात्मेति गीयते।
अं बीजं चास्य गदितं तत्पूर्वं विन्यसेत् सुधीः ॥१८०॥
परमात्मा सुषुम्नाख्यो मनोव्यावृत्तिहारकः।
विलये चेन्द्रिये तत्र सुसुखः केवलः स्थितः ॥१८१॥
पं बीजात्परमात्मानं यजेत्सर्वार्थसिद्धये।
सङ्कर्षणश्चानिरुद्धः प्रद्युम्नश्चेति तत्त्रयम् ॥१८२॥
ज्ञानात्मासौ वासुदेवः स्वयम्भूः प्राज्ञरूपकः।
वृत्तित्रये विलीने तु केवलं सुखचिन्मयः ॥१८३॥
सुखात्मा वासुदेवोऽसौ चित्कलाप्रकृतिः परा।
बीजं तस्य प्रवक्ष्यामि केवलं सुखचिन्मयम् ॥१८४॥

आत्मचतुष्टय से आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा का ग्रहण होता है; अतः इनका न्यास करना चाहिये। यह आत्मा ही जागृत, स्थूल, विश्वात्मा एवं विश्वरूप है और यह नाम के आद्य बीज 'अ' के सहित हृदय के मध्य में व्यवस्थित है। अतः हृदयस्थ वाग्वृत्ति का न्यास हृदय में करना चाहिये। यह अन्तरात्मा हृदय के अन्दर अन्तरंग के रूप में स्थित है और मनोमय तेज नाम से अन्तरिन्द्रियवृत्ति को धारण करता है, अतएव इसे अन्तरात्मा कहते हैं। इसका वीज 'अं' है; इसलिये अन्तरात्मा के पहले 'अं' बीज लगाने का विधान है। परमात्मा सुषुम्णा मनोवृत्ति व्यावृत्तिहारी है। उसमें इन्द्रियाँ विलीन हैं; केवल सुमुख स्थित है। पं बीज से परमात्मा का पूजन सर्वार्थसिद्धि के लिए करना चाहिये। वह संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध— तीन रूपों में रहता है। ज्ञानात्मास्वरूप वासुदेव स्वयंभू प्राज्ञरूप हैं। ये वृत्तित्रय के विलय होने से केवल चिन्मय सुखुरूप में स्थित हैं। इन चित्स्वरूप सुखात्मा वासुदेव की कलारूपा पराप्रकृति है; अब इन पराप्रकृति के सुखचिन्मयरूप बीज को कहता हूँ।।१७७-१८४।।

व्योमाक्षरं वह्निबीजं तुर्य्यस्वरसमन्वितम्।
नादबिन्दुं कलायुक्तं बीजं तत्सुखचिन्मयम् ॥१८५॥
वेदत्रयोद्धृतं सारं सर्वकारणकारणम्।
केसरेष्वष्टशक्तीश्चाष्टप्रकृतिरूपिणी ॥१८६॥
मध्यशक्तिः पराख्या च चिदानन्दस्वरूपिणी।
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा च शक्तयः ॥१८७॥

प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहा नवमी स्मृता।
नवशक्ती प्रविन्यस्य न्यसेत्तत्र महामनुम् ॥१८८॥
नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने पदम्।
वासुदेवपदं ङेऽन्तं वदेत्तत्र समाहितः ॥१८८॥
सर्वात्मसंयोगसंयुताय योगपीठात्मने नमः।
अयं पीठमनुः प्रोक्तः सर्वभूतात्मकः परः।
श्यामलं कोमलं धाम तत्रोपरि च चिन्तयेत् ॥१९०॥

इति गौतमीये महातन्त्रे द्वितीयोऽध्यायः

●

व्योमाक्षर (ह), वह्निबीज (रं) तुर्यस्वर (ई) नाद-बिन्दु (ँ) कलायुक्त चिन्मय सुखस्वरूप 'ह्रीं' इन पराप्रकृति का बीज है। यह बीज तीनों वेदों से निःसृत सारस्वरूप एवं समस्त कारणों का कारण है। केसर में स्थित आठ शक्तियाँ प्रकृति के आठ रूप हैं। मध्य शक्ति पराख्या चिदानन्दरूपिणी है। विमलोत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा—ये नव इनकी शक्तियाँ हैं। इन नव शक्तियों का न्यास करने के उपरान्त महामन्त्र का न्यास करना चाहिये। वह महामन्त्र है—नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय।

इसके बाद सर्वभूतात्मक श्रेष्ठ पीठमन्त्र 'सर्वात्मसंयोगसंयुताय योगपीठात्मने नमः' का न्यास करने के पश्चात् इस पीठ के ऊपर श्यामल कोमल धाम का चिन्तन करना चाहिये।।१८५-१९०।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के द्वितीय अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

तृतीयोऽध्यायः

[न्यासजाल-कथन, पञ्चाशद् वर्णकर्णिका न्यास, प्रणवांशाक्षरों के विविध अर्थों का कथन, विविध शक्तियों का परिचय, महामनुन्यासादि कथन।]

अथाखिलं न्यासजालं शृणुष्वावहितोऽनघ।
नित्यन्यासाः पुराः प्रोक्ता यैर्विना विफला भवेत्॥१॥
मन्त्रयन्त्रार्चनाः सर्वाः प्रकारेणाप्यनुष्ठिताः।
फलाधिक्येच्छया न्यासान् समस्तपुरुषार्थदान्॥२॥
शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र येन विष्णुमयो भवेत्।
स्वरषट्कं यथापूर्वं पश्चात् यं स्वरषट्ककम्॥३॥
मूर्तिद्वादशकं तद्वद्वासुदेवेन संयुतम्।
कपाले विन्यसेद्धात्रा केशवं सुसमाहितः॥४॥
नारायणं च जठरे अर्यम्णा सह संयुतम्।
हृदि माधवनामानं मित्रेण सह संयुतम्॥५॥
गोविन्दं कण्ठकूपे च वरुणेन प्रविन्यसेत्।
विष्णुं च दक्षिणे पार्श्वे चांशुना सह विन्यसेत्॥६॥
भुजान्ते दक्षिणे न्यसेद् भगेन मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं दक्षगले न्यसेद्विवस्वता युतम्॥७॥
दामोदरमथेन्द्रेण वामपार्श्वे न्यसेत् सुधीः।
भुजान्ते वासुदेवं च पूष्णा सह प्रविन्यसेत्॥८॥
वामगले सङ्कर्षणं पर्जन्येन च विन्यसेत्।
प्रद्युम्नं पृष्ठदेशे च त्वष्ट्रा सह प्रविन्यसेत्॥९॥
ककुद्देशेऽनिरुद्धं तं विष्णुना सह विन्यसेत्।
द्वादशाक्षरमन्त्रवरं विन्यसेद् ब्रह्मरन्ध्रके॥१०॥
वासुदेवो भवेत्साक्षाद् व्यापितस्तस्य तेजसा।

हे अनघ! अब मैं समस्त न्यासों को कहता हूँ; उसे तुम सावधान होकर श्रवण करो। सम्पूर्ण विधि-विधान के साथ अनुष्ठित किये जाने पर भी जिस एक के कारण मन्त्र अथवा यन्त्र का अर्चन निष्फल हो जाता है, उन नित्यन्यासों को पहले ही कह दिया गया है। हे विप्रश्रेष्ठ! अब अधिक फल की कामना से किये जाने वाले एवं

समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले उन न्यासों को सुनो, जिनके करने से साधक विष्णुमय हो जाता है। यह न्यास वासुदेव के बारह रूप-नामों के पहले और बाद में स्वरषट्क लगाकर इस प्रकार किया जाता है—

अं केशवाय धात्रे नमः आं (कपोले)
इं नारायणाय अर्यम्णाय नमः ईं (जठरे)
उं माधवाय मित्राय नमः ऊं (हृदि)
एं गोविन्दाय वरुणाय नमः ऐं (कण्ठकूपे)
ओं विष्णवे अंशवे नमः औं (दक्षिणपार्श्वे)
अं मधुसूदनाय भगाय नमः अः (दक्षिणभुजान्ते)
अं त्रिविक्रमाय विवस्वताय नमः आं (दक्षगले)
इं दामोदराय इन्द्राय नमः ईं (वामपार्श्वे)
उं वासुदेवाय पूष्णे नमः ऊं (वामभुजान्ते)
एं सङ्कर्षणाय पर्जन्याय नमः ऐं (वामगले)
ओं प्रद्युम्नाय त्वष्ट्रे नमः औं (पृष्ठे)
अं विष्णवे अनिरुद्धाय नमः अः (ककुदि)

इन उपर्युक्त बारह न्यासों को करने के उपरान्त 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र से ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करना चाहिये। इन न्यासों को करने से साधक वासुदेव के तेज से व्याप्त होकर साक्षात् वासुदेवस्वरूप हो जाता है।।१-१०।।

त्रिमात्रिकं समुद्धृत्य नमो भगवते लिखेत् ॥११॥
वासुदेवं चतुर्थ्यन्तं मन्त्रोऽयं सुरपादपः ।
अस्य विज्ञानमात्रेण वासुदेवः प्रजायते ॥१२॥
मनुसम्पुटितान्न्यसेत् मातृकां विश्वमातरम् ।
तेनैव मन्त्रसिद्धिः स्याद्दोषसङ्घातनाशनात् ॥१३॥

'श्रीं ह्रीं क्लीं नमो भगवते वासुदेवाय' यह मन्त्र कल्पवृक्ष के समान है। इसको जान लेने मात्र से साधक साक्षात् वासुदेव ही हो जाता है। इस मन्त्र से सम्पुटित विश्व-मातास्वरूपा मातृकाओं का न्यास करने से समस्त दोषों का विनाश हो जाने के फल-स्वरूप मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है।।११-१३।।

दशार्णं गोलकं न्यासं वक्ष्ये सम्भूतिदायकम् ।
मन्त्रदशावृत्तिमयं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१४॥
आधारे ध्वजनाभौ च हृदये गलमुखांसके ।
ऊरूद्वये कन्धरायां नाभ्यां कुक्षिस्तनद्वये ॥१५॥

पार्श्वद्वये तथा श्रोण्योर्मस्तकास्ये च नेत्रयोः ।
कर्णनासिकयोस्तद्वत् कपोलकरसन्धिषु ॥१६॥
तदग्रे पादयोः सन्धौ तदग्रेष्वपि चादरात् ।
मस्तके तत्प्राच्यादिदिशास्तु व्यापकं न्यसेत् ॥१७॥
दोष्णोस्तथोरूद्वये मन्त्रवर्णांस्ततो न्यसेत् ।
अक्षि हृत्तुदिकन्धान्धु जानु प्रपप्सुपविन्यसेत् ॥१८॥
श्रोत्रगण्डान्तयोर्न्यसेत् स्तनयोः पार्श्वयोस्तथा ।
स्फिचोरूर्वोस्तथा न्यसेत् मन्त्रवर्णान्यथाक्रमम् ॥१९॥
जानुजङ्घांघ्रियुगले इत्थं वर्णान् प्रविन्यसेत् ।

गोलक न्यास—अब सम्पत्ति-प्रदायक दशाक्षर मन्त्र के गोलक न्यास को कहता हूँ। इसमें मन्त्र की दश आवृत्ति की जाती है। यत्नपूर्वक गोपनीय रखने योग्य यह गोलकन्यास इस प्रकार किया जाता है—

१

आधारे गों नमः लिङ्गे पीं नमः
नाभेर्दक्षभागे जं नमः नाभेर्वामभागे नं नमः
हृदि पूर्वे वं नमः हृदि दक्षिणे ल्लं नमः
हृदि पश्चिमे भां नमः हृदि उत्तरे यं नमः
गलदक्षे स्वां नमः गलवामे हां नमः।

२

मुखदक्षे गों नमः मुखवामे पीं नमः
दक्षास्ये जं नमः वामास्ये नं नमः
दक्षांसे वं नमः वामांसे ल्लं नमः
दक्षोरौ भं नमः वामोरौ यं नमः
दक्षकन्धरे स्वां नमः वामकन्धरे हां नमः।

३

दक्षनाभौ गों नमः वामनाभौ पीं नमः
दक्षकुक्षौ जं नमः वामकुक्षौ नं नमः
दक्षस्तने वं नमः वामस्तने ल्लं नमः
दक्षपार्श्वे भां नमः वामपार्श्वे यं नमः
दक्षस्फिचि स्वां नमः वामस्फिचि हां नमः।

४

मस्तकात्पूर्वे गों नमः
मस्तकाद्दक्षिणे पीं नमः
मस्तकात्पश्चिमे जं नमः
मस्तकादुत्तरे नं नमः
दक्षास्ये वं नमः
वामास्ये ल्लं नमः
दक्षनेत्रे भां नमः
वामनेत्रे यं नमः
दक्षकर्णे स्वां नमः
वामकर्णे हां नमः

५

दक्षनासापुटे गों नमः
वामनासापुटे पीं नमः
दक्षकपोले जं नमः
वामकपोले नं नमः
दक्षहस्ते वं नमः
वामहस्ते ल्लं नमः
दक्षकूर्परे भां नमः
वामकूर्परे यं नमः
दक्षकराग्रे स्वां नमः
वामकराग्रे हां नमः

६

दक्षपादे गों नमः
वामपादे पीं नमः
दक्षजानुनि जं नमः
दक्षगुल्फे नं नमः
वामजानुनि वं नमः
वामजानुनि ल्लं नमः
मस्तकात्पूर्वे भां नमः
मस्तकाद्दक्षिणे यं नमः
मस्तकात्पश्चिमे स्वां नमः
मस्तकादुत्तरे हां नमः

७

शिरसि गों नमः
नेत्रयोः पीं नमः
कर्णयोः जं नमः
घ्राणे नं नमः
मुखे वं नमः
हृदि ल्लं नमः
नाभौ भां नमः
लिङ्गे यं नमः
जान्वोः स्वां नमः
पादयोः हां नमः

८

दक्षदोष्णि गों नमः
वामदोष्णि पीं नमः
दक्षोरौ जं नमः
वामोरौ नं नमः
दक्षनेत्रे वं नमः
वामनेत्रे ल्लं नमः
हृदि भां नमः
जठरे यं नमः
दक्षांसे स्वां नमः
वामांसे हां नमः

९

दक्षजानुनि गों नम: वामजानुनि पीं नम:
दक्षश्रोत्रे जं नम: वामश्रोत्रे नं नम:
दक्षगण्डे वं नम: वामगण्डे ल्लं नम:
दक्षस्तने भां नम: वामस्तने यं नम:
दक्षपार्श्वे स्वां नम: वामपार्श्वे हां नम:

१०

दक्षस्फिचि गों नम: वामस्फिचि पीं नम:
दक्षोरौ जं नम: वामोरौ नं नम:
दक्षजानुनि वं नम: वामजानुनि ल्लं नम:
दक्षजघने भां नम: वामजघने यं नम:
दक्षपादे स्वां नम: वामपादे हां नम:

विभूतिपञ्जरन्यास: सर्वभूतप्रवर्तक:।।२०।।

विभूतिपञ्जर न्यास—इस न्यास के करने से भूति अर्थात् ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। यह न्यास इस प्रकार किया जाता है—

आधारे गों नम:। लिगे पीं नम:।
नाभौ जं नम:। हृदि नं नम:।
गले वं नम:। मुखे ल्लं नम:।
अंसयो: भां नम:-यं नम:। ऊर्वो: स्वां नम:-हां नम:।
कन्धरायां गों नम:। नाभौ पीं नम:।
कुक्षौ जं नम: हृदि नं नम:।
स्तनयो: वं नम:-ल्लं नम:। पार्श्वयो: भां नम:-यं नम:।
श्रोण्यो: स्वां नम:-हां नम:।
शिरसि गों नम: मुखे पीं नम:
नेत्रयो: जं नम:-नं नम: कर्णयो: वं नम:-ल्लं नम:
नासापुटयो: भां नम:-यं नम: कपोलयो: स्वां नम:-हां नम:।
दक्षहस्तमूले गों नम:। मध्यसन्धौ पीं नम:।
मणिबन्धे जं नम:। अंगुलिमूले नं नम:।
अंगुल्यग्रे वं नम:। अंगुष्ठे ल्लं नम:।
तर्जन्यां भां नम:। मध्यमाया यं नम:।
अनामायां स्वां नम:। कनिष्ठायां हां नम:।

वामहस्तमूले गों नमः। मध्यसन्धौ पीं नमः।
मणिबन्धे जं नमः। अंगुलिमूले नं नमः।
अंगुल्यग्रे वं नमः। अंगुष्ठे ल्लं नमः।
तर्जन्यां भां नमः। मध्यमाया यं नमः।
अनामायां स्वां नमः। कनिष्ठायां हां नमः।
दक्षपादमूले गों नमः। मध्यसन्धौ जानुनि पीं नमः।
गुल्फे जं नमः। अंगुलिमूले नं नमः।
अगुल्यग्रे वं नमः। अंगुष्ठे ल्लं नमः।
तर्जन्यां भां नमः। मध्यमायां यं नमः।
अनामायां स्वां नमः। कनिष्ठायां हां नमः।
वामपादमूले गों नमः। जानुनि पीं नमः।
गुल्फे जं नमः। अंगुलिमूले नं नमः।
अगुल्यग्रे वं नमः। अंगुष्ठे ल्लं नमः।
तर्जन्यां भां नमः। मध्यमायां यं नमः।
अनामायां स्वां नमः। कनिष्ठायां हां नमः।

इसके बाद—मूर्ध्नि गों नमः। तत्पूर्वे पीं नमः। तद्दक्षिणे जं नमः। तत्पश्चिमे नं नमः। तदुत्तरे वं नमः। मूर्ध्नि ल्लं नमः। दक्षभुजे भां नमः। वामभुजे यं नमः। दक्षोरौ स्वां नमः। वामोरौ हां नमः। शिरसि गों नमः। नेत्रयोः पीं नमः। मुखे जं नमः। हृदि वं नमः। जठरे ल्लं नमः। मूलाधारे भां नमः। लिङ्गे यं नमः। जानुनि स्वां नमः। पादयोः हां नमः। श्रोत्रयोः गों नमः। गण्डयोः पीं नमः। अंसयोः जं नमः। स्तनयोः नं नमः। पार्श्वयोः वं नमः। लिंगे ल्लं नमः। ऊर्वोः भां नमः। जानुनि यं नमः। अंघ्र्योः स्वां नमः। पादयोः हां नमः।।२०।।

दशतत्त्वं ततो न्यसेत्तद्दशार्णसिद्धये।
पृथिव्यप्तेजोमरुद्वियदिति पञ्चतत्त्वकम्॥२१॥
अहङ्कारो महत्तत्त्वं तथा प्रकृतिपूरुषौ।
परमेमानि तत्त्वानि यथावदवधारय॥२२॥
पदान्धु हृदये वक्त्रे मूर्ध्नि पञ्च न्यसेत्ततः।
हृदि द्वयं त्रयं व्याप्त्या सर्वाङ्गे विन्यसेत् सुधीः॥२३॥
मस्तकादि ततो न्यसेद्यावत्पादावसानकम्।
अयं न्यासो गुप्ततमो मन्त्राणां शीघ्रसिद्धिदः॥२४॥
कार्योऽन्येष्वपि गोपाल मन्त्रेष्वपि विशारदैः।
दशाक्षरस्य वर्णाश्च संहारक्रमतो न्यसेत्॥२५॥

सृष्टिन्यासे मनोरस्य वर्णान् विपरितान्यसेत्।
एकैकाक्षरमुच्चार्य नमोऽन्तन्तु ततः पठेत्॥२६॥
परारातिं च तत्त्वानि तदन्तेन तमसा सह।
मनसा वा न्यसेन्न्यासान् पुष्पेणैव तथा मुने॥२७॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च अन्यथा विफलं भवेत्।
धर्मविद्दक्षिणं हस्तमधो नाभेर्न योजयेत्॥२८॥

इति गौतमीये महातन्त्रे तृतीयोऽध्यायः

●

दक्षाक्षर मन्त्र की सिद्धि के लिये दश तत्त्वों का न्यास करना चाहिये। पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—ये पाँच तथा अहंकार, महत्, प्रकृति, पुरुष और परमेश्वर—ये पाँच, दोनों मिलाकर दश तत्त्व होते हैं। इनका न्यास पादद्वय, लिंग, हृदय, मुख और मूर्द्धा में करना चाहिये। हृदय में दो वर्ण का और समस्त शरीर में तीन वर्ण का न्यास करना चाहिये। इसके बाद मस्तक से लेकर पैरों तक न्यास करना चाहिये। सर्वथा गुप्त यह न्यास मन्त्रों की शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाला है। विज्ञजनों द्वारा कहा गया है कि गोपालमन्त्र के दश अक्षरों का न्यास पहले संहारक्रम से करना चाहिये; तदुपरान्त सृष्टिन्यास में मन्त्रवर्णों का न्यास विपरीतक्रम से करना चाहिये। प्रत्येक अक्षर के बाद नमः एवं पराय जोड़कर तत्त्वों का न्यास मन में ही करना चाहिये अथवा पुष्पों से भी यह न्यास किया जा सकता है। इस न्यास को अंगूठे और अनामिका के योग से सम्पन्न करना चाहिये; अन्यथा करने से यह फलदायी नहीं होता। इस न्यास को करते समय धर्मज्ञ साधक को अपने दाहिने हाथ से शरीर की नाभि के नीचे के भाग का स्पर्श नहीं करना चाहिये। संहारन्यास इस प्रकार किया जाता है—

पादयोः गों नमः पराय पृथ्वीतत्त्वात्मने नमः।
लिङ्गे पीं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः।
हृदि जं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने नमः।
मुखे नं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः।
शिरसि वं नमः पराय आकाशतत्त्वात्मने नमः।
हृदि ल्लं नमः पराय अहंकारतत्त्वात्मने नमः।
हृदि भां नमः पराय महत्तत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे यं नमः पराय प्रकृतितत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे स्वां नमः पराय पुरुषतत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे हां नमः पराय परतत्त्वात्मने नमः।

सृष्टि न्यास इस प्रकार किया जाता है—

सर्वगात्रे हां नमः पराय परतत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे स्वां नमः पराय पुरुषतत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे यं नमः पराय प्रकृतितत्त्वात्मने नमः।
हृदि भां नमः पराय महत्तत्त्वात्मने नमः।
हृदि ल्लं नमः पराय अहंकारतत्त्वात्मने नमः।
शिरसि वं नमः पराय आकाशतत्त्वात्मने नमः।
मुखे नं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः।
हृदि जं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने नमः।
लिङ्गे पीं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः।
पादयोः गों नमः पराय पृथ्वीतत्त्वात्मने नमः।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के तृतीय अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

चतुर्थोऽध्यायः

[वृन्दावन-दर्शन एवं भगवत्स्वरूप का चिन्तन।]

अथ वृन्दावनं ध्यायेत् सर्वदेवनमस्कृतम्।
सर्वर्तुकुसुमोपेतं पतत्त्रिगणनादितम् ॥१॥
भ्रमद्भ्रमरझङ्कारमुखरीकृतदिङ्मुखम्।
कालिन्दीजलकल्लोलशीतमारुतसेवितम् ॥२॥
नानापुष्पलताबद्धवृक्षखण्डैश्च मण्डितम्।
समानोदितचन्द्रार्कतेजोदीपेन दीपितम् ॥३॥
कमलोत्पलकल्हारधूलिधूसरितान्तरम्।
शाखामृगगणाकीर्णं नानामृगनिषेवितम् ॥४॥
द्वात्रिंशद्वनसंवीतं वैकुण्ठादतिसौख्यदम्।
पुरन्दरमुखैर्देवैः सर्वतः समवेष्टितम् ॥५॥
तन्मध्ये रत्नभूमिं च सूर्यायुतसमप्रभम्।
तत्र कल्पतरूद्यानं नियतं रत्नवर्षणम् ॥६॥
माणिक्यशिखरोल्लासि तन्मध्ये मणिमण्डपम्।
नानारत्नगणैश्चित्रं सर्वतेजोविराजितम् ॥७॥
फलवल्गुलसच्चित्रवितानैरुपशोभितम्।
रत्नतोरणगोपूरमाणिक्यवेदिकान्वितम् ॥८॥
दिव्यैर्मुकुरैः लसन्मुक्ताफलविराजितम्।
कोटिसूर्यसमाभासं निर्मुक्तं षट्तरङ्गकैः ॥९॥
बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनसस्तथा।
शोकमोहौ शरीरस्य जरामृत्यू षडूर्मयः ॥१०॥

वृन्दावन ध्यान-वर्णन—समस्त देवताओं द्वारा नमस्कृत वृन्दावन का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये। सम्पूर्ण वृन्दावन सभी ऋतुओं में पुष्पित होने वाले पुष्पों से युक्त है, पक्षियों के कलरव से निनादित है, वहाँ पर सभी दिशायें भ्रमणशील भ्रमरों के झंकार से मुखरित हैं, यमुना के शीतल जल से अठखेलियाँ करती हुई शीतल वायु प्रवहमान है। भाँति-भाँति के पुष्प-लताओं से युक्त अनेक प्रकार के वृक्षों से वहाँ की भूमि मण्डित है। समान रूप से उदित चन्द्र एवं सूर्य के तेज से दीप्यमान है।

कमल, कल्हार, उत्पल के रज:चूर्ण सम्पूर्ण वृन्दावन के भीतर बिखरे हुये हैं। शाखामृग अर्थात् बन्दर इधर-उधर उछल-कूद करते रहते हैं। अनेक प्रकार के हिरणों से सेवित है। बत्तीस वनों से युक्त वह वृन्दावन वैकुण्ठ से भी अधिक सुखदायक है। चारो ओर से वह वृन्दावन इन्द्रादि प्रमुख देवों से वेष्टित है। उसके मध्य में स्थित रत्नभूमि हजारो सूर्यों के समान प्रकाशमान है और वहाँ पर स्थित कल्पवृक्ष का उद्यान नित्य ही रत्नों की वर्षा करता रहता है। उसके मध्य में मणियों से निर्मित मण्डप है, जिसके शिखर पर माणिक्य सुशोभित है। यह मण्डप नाना प्रकार के रत्नों से चित्रित एवं सभी प्रकार के तेजों से उद्दीप्त है। फल, वल्गु से युक्त वहुरंगे वितानों से वह उपशोभित है एवं उसमें रत्नों के तोरण और गोपुर तथा माणिक्य की वेदी वनी हुई है। उसमें स्थान-स्थान पर शीशे लगे हुए हैं एवं सुन्दर मोतियों से सुशोभित है। करोड़ सूर्य के समान प्रकाशित यह वृन्दावन छ: तरंगों से निर्मुक्त है। ये छ: तरंगें हैं—भूख, प्यास, प्राण एवं मन के शोक, मोह, जरा और मृत्यु।।१-१०।।

चतुर्द्वारसमायुक्तं कपाटाष्टकशोभितम्।
रत्नप्रदीपावलीभिरन्तरेणोपशोभितम् ॥११॥
दिव्यघण्टासमायुक्तं मुक्तादामविराजितम्।
तत्र कल्पतरूं ध्यायेत् स्थविष्ठं रत्नवर्षिणम्॥१२॥
सेवितं ऋतुभि: सर्वै: सुधाशीकरवर्षिणम्।
गारुत्मतलसत्पत्रं प्रवालरत्नपल्लवम्॥१३॥
मुक्तारत्नप्रसवितं पद्मरागफलोज्ज्वलम्।
संसारतापविच्छेदि कुशलच्छायमद्भुतम्॥१४॥
तन्मूले चिन्तयेन्मन्त्री रत्नसिंहासनं शुभम्।
तत्र सूर्यसमाभासं पङ्कजं चाष्टपत्रकम्॥१५॥
सर्वतत्त्वमयं तत्र चिन्तयेज्जगदीश्वरम्।
संसारसागरोत्तीर्त्त्यै धर्मकामार्थसिद्धये॥१६॥
इन्द्रनीलमणिमेघनवेन्दीवरसुन्दरम्।
पीताम्बरधरं कृष्णं पुण्डरीकनिभेक्षणम्॥१७॥
रक्तनेत्राधरं रक्तपाणिपादतलं शुभम्।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं नानारत्नविभूषितम्॥१८॥
उद्दामविलसन्मुक्तारत्नहारोपशोभितम्।
रत्नैर्नानाविधैर्युक्तं कटिसूत्राङ्गुलीयकम्॥१९॥
गोरोचनकुङ्कुमेन ललाटतिलकान्वितम्।
नानारत्नप्रभोद्भासिमुकुटं दीप्ततेजसम्॥२०॥

वह मण्डप चार द्वारों एवं आठ किवाड़ों से शोभित हैं। मण्डप के अन्दर रत्न-प्रदीपों की पंक्तियाँ शोभायमान हैं। वह मण्डप अलौकिक घण्टा एवं मुक्ताओं की माला से युक्त है। उस मण्डप में स्थित रत्नों की वर्षा करते हुये कल्पवृक्ष का ध्यान करना चाहिये। वह कल्पवृक्ष सभी ऋतुओं में अमृतबूँदों की वर्षा करता रहता है। उसके पत्ते प्रवाल रत्न के सदृश रक्त वर्ण के हैं। यह मोतियों की वर्षा करने वाला है एवं पद्मरागरूपी फलों से समन्वित है। इस कल्पवृक्ष की अद्भुत छाया संसार के तापों को विच्छिन्न करने वाली है। मन्त्रज्ञ को उस कल्पवृक्ष के मूल में कल्याणकारक रत्न-सिंहासन का चिन्तन करना चाहिये। उसी सिंहासन पर सूर्य के समान प्रकाशित अष्टदल कमल है। उस अष्टदल कमल पर संसारसागर से पार होने-हेतु एवं धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि के लिये सर्वतत्त्वमय जगदीश्वर का चिन्तन करना चाहिये। जगदीश्वर कृष्ण इन्द्रनीलमणि मेघ एवं कमल के समान सुन्दर हैं। वे भगवान् श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किये हुए हैं एवं उनकी आँखें कमल के समान हैं। उनकी आँखें, अधर, करतल एवं पादतल रक्त वर्ण के हैं। उनके वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि देदीप्यमान है एवं अनेक रत्नों से विभूषित होने के साथ-साथ उद्दाम मोतियों की माला से भी सुशोभित है। विविध प्रकार के रत्नों से युक्त कमरबन्द और अंगूठियाँ हैं। ललाट में गोरोचन और कुमकुम का तिलक विद्यमान है। नाना प्रकार के रत्नों की कान्ति से प्रस्फुटित तेज से दीप्त मुकुट शोभायमान है।।११-२०।।

हारकेयूरकटककुण्डलैश्च सुशोभितम्।
अलकाशोभिसद्वक्त्रं पीताम्बरयुगावृतम्।।२१।।
बिम्बाधरपुटोद्भासि वंश्यामृतरसान्वितम्।
बर्हिपत्रकृतापीडं वन्यपुष्पैरलङ्कृतम्।।२२।।
कदम्बकुसुमोन्नद्धचारुमालाविराजितम्।
कोटिकन्दर्पलावण्यविलसद्बन्धुरोदरम्।।२३।।
वेणुं गृहीत्वा हस्ताभ्यां मुखे संयोज्य वादिनम्।
गायन्तं दिव्यतानैश्च वृन्दावनगतं हरिम्।।२४।।
स्वर्गादिव परिभ्रष्टं कन्यकाशतमण्डितम्।
गोगोवत्सगणाकीर्णवृषषण्डैश्च मण्डितम्।।२५।।

वे भगवान् श्रीकृष्ण हार, केयूर, कटक एवं कुण्डल से सुशोभित हैं। उनके मुख पर अलकें शोभायमान हैं एवं वे दो पीताम्बर वस्त्रों से आवृत हैं। उनके बिम्बाफल के समान लाल अधर वंशी के अमृतरस का पान कर रहे हैं। मोरपंखों से युक्त वस्त्रों से उनका मस्तक बंधा है एवं से जंगली फूलों से अलंकृत हैं। उनके गले में कदम्ब के फूलों की सुन्दर माला सुशोभित है। करोड़ों कामदेव के लावण्य से युक्त उनका.

उदर है। हाथों में मुरली लेकर उसे मुख से लगाकर वे बजा रहे हैं। वृन्दावन में जाकर कृष्ण दिव्य तान से गायन कर रहे हैं। स्वर्ग से परिभ्रष्ट सैकड़ों कन्याओं से वे परिवेष्टित हैं। साथ ही गायों, बछड़ों, बैलों एवं साँड़ों के झुण्ड से घिरे हुये हैं।।२१-२५।।

गोपकन्यासहस्रैस्तु पद्मपत्रायतेक्षणैः ।
अर्च्चितं देवकुसुमैस्त्रैलोक्यैकगुरुं परम् ॥२६॥
तुम्बुरुर्नारदश्चैव हाहा हूहूस्तथैव च ।
किन्नरीमिथुनं चापि श्रुत्वा गीतं तथा हरेः ॥२७॥
वीणादिसाधनं त्यक्त्वा विस्मयाविष्टचेतसः ।
ते स्तुवन्ति महात्मानं गायन्तो वियति स्थिताः॥२८॥
सिद्धगन्धर्वयक्षैश्च अप्सरोभिर्विहङ्गमैः ।
स्थावरैः पन्नगैश्चापि सिद्धैर्विद्याधरैस्तथा ॥२९॥
शाखामृगैर्मनुष्यैश्च वीक्ष्यमाणैः सुविस्मितैः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नं सौन्दर्येणाभिशोभितम् ॥३०॥

वे त्रैलोक्य के अधिष्ठाता हजारों कमलनयनी गोपकन्याओं द्वारा देवकुसुमों से पूजित हैं। तुम्बरु, नारद, हाहा, हूहू एवं किन्नरों के जोड़े भी श्रीकृष्ण के गान को सुनकर अपने-अपने वीणा आदि साधनों का त्याग करके अत्यन्त विस्मित हो गये हैं। आकाश में अवस्थित वे सभी महात्मागण, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, अप्सरायें, पक्षियाँ, स्थावर, सर्प, पन्नग, सिद्धविद्याधर, बन्दर, मनुष्य सभी सर्वलक्षण-सम्पन्न तथा सौन्दर्य से शोभायमान उन श्रीकृष्ण को देख-देखकर अतिशय विस्मित हो रहे हैं।।२६-३०।।

मोहनं सर्वगोपीनां लोकानां पतिमव्ययम् ।
नारदेन च सिद्धेन विश्वामित्रेण धीमता ॥३१॥
पराशरेण व्यासेन भृगुणाङ्गिरसेन च ।
दक्षेण सनकाद्यैश्च सिद्धेन कपिलेन च ॥३२॥
वास्तुवागीशहारीतयाज्ञवल्क्योशनःक्रतुः ।
मार्कण्डेयभरद्वाजपुलस्त्यपुलहादिभिः ॥३३॥
वसिष्ठाद्यैर्मुनीन्द्रैश्च स्तूयमानं सुरासुरैः ।
ब्रह्मलोकगतैः सिद्धैर्नानालोकगतैरपि ॥३४॥
अन्यैरपि सुरश्रेष्ठैः स्तूयमानं स्मरेद्धरिम् ।
एवं सञ्चिन्तयेन्मन्त्री चेतसा कृष्णमव्ययम् ।
संसारसागरं घोरमपि वत्सपदायते ॥३५॥

इति गौतमीयमहातन्त्रे वृन्दावनध्यानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः

●

वे अव्यय श्रीकृष्ण समस्त गोपियों को मोहित करने वाले एवं समस्त लोकों के अधिपति हैं। नारद, सिद्ध, विश्वामित्र, पराशर, व्यास, भृगु, अंगिरा, दक्ष, सनकादि सिद्ध, कपिल, वास्तुवागीश, हारीत, याज्ञवल्क्य, पुलह, वसिष्ठादि श्रेष्ठ मुनियों एवं देवताओं तथा दैत्यों से वे सदा स्तूयमान हैं। ब्रह्मलोक में निवास करने वाले सिद्धों के साथ-साथ अनेक लोकों में निवास करने वाले अन्य श्रेष्ठ देवों द्वारा स्तुति किये जाते हुये हरि का स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार से साधक को अपने चित्त में अव्यय श्रीकृष्ण का चिन्तन करना चाहिये। इस घोर संसार सागर में वे श्रीकृष्ण सभी का वत्सवत् पालन करते हैं।।३१-३५।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के चतुर्थ अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

पञ्चमोऽध्यायः

[भगवन्मन्त्रों में अधिकारिता-वर्णन, गुरु-शिष्य के लक्षण, ब्राह्मणादि वर्ण के शिष्यों की योग्यता का परीक्षण-काल, चैत्रादि मासों में मन्त्रारम्भ का फल, दीक्षा में काल-विशेष, भूमि के भेद, वास्तुमण्डल-विधान, भूमिशुद्धि, देवपूजन, दिक्पाल-पूजन, ईशानादि में वलि-विधान आदि का कथन।]

गौतम उवाच

यद्यदुक्तं त्वया ब्रह्मन् तत्तत्सर्वं श्रुतं मया।
इदानीं परिपृच्छामि केनात्र चाधिकारिता ॥१॥

महर्षि गौतम बोले कि हे व्रह्मन्! आपने जो-जो कहा, वह सव मैंने सुना। अव इस समय मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि इस मन्त्र की उपासना का अधिकार किस प्रकार प्राप्त होता है।।१।।

नारद उवाच

दीक्षितोऽत्राधिकारित्वमाप्नोति गुरुसेवकः।
द्विजानामनुपेतानां श्वधर्माध्ययनादिषु ॥२॥
यथाधिकारो नास्तीह सन्ध्योपासनकर्मसु।
तथा ह्यदीक्षितानां तु मन्त्रतन्त्रार्चनादिषु ॥३॥
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम्।
अत एव हि दीक्षार्थं सर्वज्ञं गुरुमाश्रयेत् ॥४॥

नारद ने कहा कि गुरु की सेवा करने वाले दीक्षित को ही इसकी उपासना का अधिकार होता है। जिस प्रकार उपनयन संस्कार से रहित द्विजों का स्वधर्म, अध्ययन, सन्ध्योपासन आदि कर्मों को करने का अधिकार नहीं होता, वैसे ही मन्त्र-तन्त्र-अर्चन आदि में अदीक्षितों का अधिकार नहीं होता। इसलिये अधिकारिता-प्राप्ति के लिये सर्वप्रथम आत्मा को शिवसंस्कृत करना चाहिये और उसके पश्चात् दीक्षा-हेतु सर्वज्ञ गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।।२-४।।

सुन्दरः सुमुखः स्वच्छः सुलभो बहुतन्त्रवित्।
असंशयः संशयच्छिन्निरपेक्षो गुरुर्मतः ॥५॥
वेदवेदान्तसिद्धान्तज्ञानविज्ञानपारगः ।
वाङ्मनःकायचित्तैश्च विष्णोः सुश्रूषणे रतः ॥६॥

विष्णुमन्त्रानुसन्धार्य विष्णुविज्ञानवेदकः ।
विष्णौ समर्पकः सम्यक् त्रिविधोत्पातकर्मणः ॥७॥
सन्मनः सत्सुदान्तश्च मन्त्रार्थज्ञानपारगः ।
षट्चक्रभेदकुशलः षडध्वज्ञानपारगः ॥८॥
पिण्डे पदे तथा रूपे रूपातीते विवेचकः ।
सन्ध्यात्रयविशेषज्ञो ह्यध्वषट्कविशोधकः ॥९॥
मन्त्रचैतन्यविज्ञाता गुरुरुक्तः स्वयम्भुवा ।
नमोऽस्तु गुरवे तस्मै प्रत्यक्षाय यदाज्ञया ॥१०॥
मृद्भस्मदारुदृषदः फलन्त्यविकलं फलम् ।
पञ्चाम्नायविशेषज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः॥११॥
शिष्यस्य संशयच्छेत्ता गुरुर्भवति नापरः ।
वैष्णवाम्नायसिद्धान्तचिन्तामणिरिवापरः ॥१२॥
आश्रमी ज्ञानकुशलो गुरुर्भवति नापरः ।
मन्त्रतन्त्रार्थचैतन्यकुण्डलीगतिवेदकः ॥१३॥
मन्त्रसिद्धान्तविधिविद् गुरुर्भवति नापरः ।
सुदूरमपि गन्तव्यं यत्राम्नायविदो जनाः ॥१४॥
तेऽपि स्तुत्या नमस्याश्च सेव्याश्चाभीष्टमिच्छता ।
एवंविधो गुरुर्ज्ञेयस्त्वन्यथा शिष्यदुःखदः ॥१५॥

गुरु के लक्षण—गुरु को सुन्दर, मधुरभाषी, स्वच्छ, सर्वदा सुलभ एवं अनेक तन्त्रों का ज्ञाता, संशयरहित, सन्देह का निवारण करने वाला एवं निरपेक्ष होना चाहिये। उसे वेद-वेदान्त-सिद्धान्त-ज्ञान-विज्ञान को पूर्णरूपेण जानने वाला होने के साथ-साथ वाणी, मन, शरीर एवं चित्त से भी विष्णु की भक्ति में संलग्न होना चाहिये। विष्णुमन्त्र को धारण करने वाला, विष्णु से सम्बद्ध विशिष्ट ज्ञान को जानने वाला, त्रिविध उत्पातकर्मों को सम्यक् रूप से विष्णु को समर्पित करने वाला, सच्चे मन वाला, इन्द्रियजय करने वाला, मन्त्र के अर्थ का ज्ञानी, पिण्ड-पद-रूप और रूपातीत का विवेचक, तीनों सन्ध्याओं का विशेषज्ञ, षडध्वों का शोधन करने वाला एवं मन्त्रचैतन्य का ज्ञाता ही भगवान् स्वयंभू द्वारा गुरु कहा गया है। उस गुरु को नमस्कार है, जो प्रत्यक्ष रहता है एवं जिसकी आज्ञा से मिट्टी, भस्म, काष्ठ एवं प्रस्तर भी अविकल रूप से फल प्रदान करते हैं। पाँचों आम्नायों का विशेषज्ञ, निग्रह-अनुग्रह करने में समर्थ, शिष्य के संशय को समाप्त करने वाला ही गुरु हो सकता है; दूसरा कोई गुरु नहीं हो सकता। जो वैष्णवाम्नाय एवं सिद्धान्त-हेतु चिन्तामणि के समान हो, आश्रमी हो एवं ज्ञानकुशल हो, वही गुरु हो सकता है; दूसरा कोई गुरु नहीं हो

सकता। मन्त्र-तन्त्र के अर्थ का ज्ञाता, चैतन्य कुण्डलिनी की गति को जानने वाला एवं मन्त्र तथा सिद्धान्त की प्रक्रिया को जानने वाला ही गुरु होता है; दूसरा कोई नहीं। जहाँ पर आम्नाय को जानने वाले रहते हों, ऐसे अत्यन्त दूर देश में भी जाना चाहिये; क्योंकि अभीष्टसिद्धि चाहने वालों के लिये वे भी स्तवन करने योग्य, प्रणाम करने योग्य एवं सेवा करने योग्य होते है। इन गुणों से युक्त ज्ञानी को ही गुरु बनाना चाहिये; इनसे अन्यथा गुरु शिष्य के लिये दुःख प्रदान करने वाले ही होते हैं।।५-१५।।

शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थपरायणः ।
अधीतवेदः कुशलः पितृमातृहिते रतः ।।१६।।
धर्मविद्धर्मकर्त्ता च गुरुशुश्रूषणे रतः ।
सदा शान्तात्मतत्त्वज्ञो दृढदेहो दृढाश्रयः ।।१७।।
हितैषी प्राणिनां नित्यं परलोकार्थकर्मकृत् ।
वाङ्मनःकायवपुभिर्गुरुशुश्रूषणे रतः ।।१८।।
अनित्यकर्मणस्त्यागी नित्यानुष्ठानकर्मकृत् ।
जितेन्द्रियो जितालस्यो जितमोहो विमत्सरः ।।१९।।
गुरुवद्गुरुपुत्रेषु कलत्रादिषु भक्तिमान् ।
एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वितरो गुरुदुःखदः ।।२०।।

शिष्य के लक्षण—शिष्य को कुलीन, शुद्धात्मा, पुरुषार्थ-परायण, वेदाध्ययन में निपुण एवं माता-पिता का सेवक होना चाहिये। उसे धर्म को जानने वाला, धर्माचरण करने वाला, गुरु की सेवा में रत रहने वाला, सदा शान्त रहने वाला, आत्मा के तत्त्वों का ज्ञाता, सुदृढ़ शरीर वाला, दृढ़ निश्चय वाला, प्राणियों का सदा हितैषी, परलोक के लिये नित्यकर्म करने वाला, वाणी-मन एवं शरीर से गुरु की सेवा में लगा हुआ, अनित्य कर्मों का त्याग करने वाला, नित्य अनुष्ठान कर्म करने वाला, जितेन्द्रिय, आलस्यरहित, मोहरहित, ईर्ष्यारहित तथा गुरु के समान ही गुरुपुत्रों एवं गुरुपत्नी में भी भक्ति रखने वाला होना चाहिये। अच्छे शिष्य को इसी प्रकार का होना चाहिये; इससे अन्य प्रकार के शिष्य तो गुरु के लिये मात्र दुःखदायी ही होते हैं।।१६-२०।।

वर्षैकेण भवेद्योग्यो विप्रः सर्वगुणान्वितः ।
वर्षद्वयेन राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः ।।२१।।
चतुर्भिर्वत्सरैः शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यताः ।
यदा शिष्यो भवेद्योग्यः सद्गुरुस्तदा ।।२२।।
कृपया परया सम्यग् दीक्षाया विधिमाचरेत् ।

शिष्य-परीक्षण का समय—ब्राह्मण एक वर्ष में समस्त गुणों से युक्त हो

जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय दो वर्ष में, वैश्य तीन वर्ष में और शूद्र चार वर्ष में शिष्य बनने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। जब शिष्य योग्य हो जाता है तब सद्गुरु को अत्यन्त कृपापूर्वक उसे दीक्षा देकर दीक्षित करना चाहिये।।२१-२२।।

मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात् समस्तपुरुषार्थद: ।।२३।।
वैशाखे रत्नलाभ: स्याज्ज्येष्ठे तु मरणं ध्रुवम्।
आषाढे बन्धुनाश: स्यात्पूर्णायु: श्रावणे भवेत्।।२४।।
प्रजानाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चय:।
कार्तिके मन्त्रसिद्धि: स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत्।।२५।।
पौषे तु शत्रुपीडा स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम्।
फाल्गुने सर्वकामा: स्युर्मलमासं विवर्जयेत्।।२६।।
पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे स्वोदये चन्द्रसूर्ययो:।
गुरुशुक्रोदये चैव शस्यते मन्त्रसंस्क्रिया ।।२७।।
रवौ गुरौ सिते सोमे कर्त्तव्यं बुधशुक्रयो:।
शुक्लपक्षे शुभा दीक्षा कृष्णे स्यात्पञ्चमावधि ।।२८।।

दीक्षा-काल—चैत्र मास में मन्त्रारम्भ सभी पुरुषार्थों को देने वाला होता है। वैशाख में दीक्षा से रत्नलाभ होता है और ज्येष्ठ में दीक्षा निश्चित रूप से मरणदायिनी होती है। आषाढ़ में मन्त्रारम्भ से बन्धुनाश होता है एवं श्रावण में मन्त्रारम्भ करने से पूर्णायु प्राप्त होती है। भाद्रपद की दीक्षा प्रजानाश करने वाली एवं आश्विन की दीक्षा रत्नसंचय कराने वाली होती है। कार्तिक एवं मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन की दीक्षा मन्त्र-सिद्धि देने वाली होती है। पौष मास की दीक्षा शत्रु को पीड़ा देने वाली एवं माघ मास की दीक्षा मेधा की वृद्धि करने वाली होती है। फाल्गुन मास की दीक्षा सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है; लेकिन मलमास में दीक्षा का निषेध है। पंचांग के अनुसार जब शुद्ध दिन हो, चन्द्र-सूर्य अपनी राशि में हों एवं गुरु-शुक्र उदित हों, तभी मन्त्रसंस्कार करना प्रशस्त होता है। शुक्लपक्ष में रविवार, गुरुवार, शनिवार, सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार में तथा कृष्णपक्ष में आरम्भ से पंचमी तिथि तक में दी गई अथवा ग्रहण की गई दीक्षा शुभ होती है।।२३-२८।।

द्वादश्यां सर्वथा कार्या चामलायां शुभेऽहनि।
पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा।।२९।।
कृष्णप्रिया द्वादशी स्यात् कृष्णदीक्षाप्रवर्तिनी।
उत्तरात्रयरोहिण्यां रेवतीपुष्यवासरे ।।३०।।
धनिष्ठा वायुमित्राश्विपित्र्यं त्वाष्ट्रं च नैर्ऋतम्।
ऐन्द्रवैष्णवहस्ताश्च दीक्षायां तु शुभावहा: ।।३१।।

अश्विनी-रोहिणी-स्वाती-विशाखा-हस्तभेषु च।
पुष्योत्तरात्रये त्वेनं कुर्यात् मन्त्राभिषेचनम् ॥३२॥
शुभयोगेषु सर्वेषु दीक्षा सर्वशुभप्रदा।
शुभानि करणान्याहुर्दीक्षायां तु विशेषतः ॥३३॥
शकुन्यादीनि विष्टिं च विशेषेण विवर्जयेत्।
चराः सर्वेः विवर्ज्याः स्यात्स्थिरराशिषु सौख्यदा ॥३४॥
त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः।
दीक्षायां तु शुभाः सर्वे रन्ध्रस्थाः सर्वनाशकाः ॥३५॥

शुक्लपक्ष की द्वादशी, पूर्णिमा, पंचमी, द्वितीया एवं सप्तमी में शुभ दिन में हर प्रकार से दीक्षा करनी चाहिये। इनमें से द्वादशी तिथि कृष्ण को अत्यन्त प्रिय होने के कारण कृष्णदीक्षा की प्रवर्तिनी है। तीनों उत्तरा, रोहिणी, रेवती, पुष्य, धनिष्ठा, वायु, मित्र, अश्वि, पित्र्य, त्वाष्ट्र, नैर्ऋत, ऐन्द्र, वैष्णव एवं हस्त नक्षत्र दीक्षा के लिये शुभावह कहे गये हैं। इसी प्रकार अश्विनी, रोहिणी, स्वाती, विशाखा, हस्त, पुष्य एवं तीनों उत्तरा नक्षत्रों में मन्त्राभिषेक करना चाहिये। सभी शुभ योगों में दीक्षा समस्त प्रकार के शुभ फलों को देने वाली होती हैं। दीक्षा में शुभ करणों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। शकुनि, विष्टि आदि करण में दीक्षा नहीं करनी चाहिये। दीक्षा में सभी चर राशियों का त्याग करना चाहिये एवं स्थिर राशि का ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि स्थिर राशि में की गई दीक्षा सुखदायिनी होती है। त्रिषडायगत पापग्रह तथा केन्द्रत्रिकोणगत शुभग्रह—ये सभी दीक्षा में शुभदायक होते हैं। रन्ध्रस्थ सभी ग्रह दीक्षा में पूर्णरूपेण नाश करने वाले होते हैं।।२९-३५।।

शिष्यस्य जन्मसंक्रान्तौ विषुवे अयने द्वये।
अन्येषु पुण्ययोगेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥३६॥
शिष्यानुकूलकाले वा दीक्षा सर्वशुभावहा।
सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत् ॥३७॥
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्।
विनायासेन मन्त्रस्य सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥३८॥
भूमेः परिग्रहं कुर्याद्यावदायतनं भवेत्।
शुक्लमृत्स्ना च या भूमिर्ब्राह्मी सा परिकीर्तिता ॥३९॥
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना स्याद्धरिद्वैश्या प्रकीर्तिता।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्द्धा परिकीर्तिता ॥४०॥
ब्राह्मी सर्वार्थसिद्धिः स्यात्क्षत्रिया राजदा मता।
धनधान्यकरी वैश्या शूद्रा तु निन्दिता मुने ॥४१॥

शिष्य की जन्मसंक्रान्ति, विषुवसंक्रान्ति, अयनसंक्रान्ति, अन्य पुण्ययोग, चन्द्र एवं सूर्यग्रहण अथवा शिष्य के लिये अनुकूल समय में दीक्षा सभी प्रकार से शुभ करने वाली होती है। सूर्यग्रहण की स्थिति में अन्य कुछ भी शुभाशुभ का अन्वेषण नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस समय में किया गया कर्म अनन्त फल प्रदान करने वाला होता है। इस काल में अनुष्ठान करने से अनायास ही मन्त्रसिद्धि हो जाती है, यह अन्यथा नहीं है। दीक्षा के लिये आयताकार भूमि का ग्रहण करना चाहिये। उसमें भी जिस स्थान की मिट्टी शुक्ल वर्ण की हो, वह भूमि ब्राह्मी, रक्त वर्ण की मिट्टी वाली भूमि क्षत्रिया, हरित् वर्ण की मिट्टी वाली भूमि वैश्या एवं कृष्ण वर्ण की मिट्टी वाली भूमि शूद्रा—इस प्रकार भूमि के चार प्रकार कहे गये हैं। ये भूमियाँ क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के लिये दीक्षाकार्य में प्रशस्त कही गई हैं। मुनियों द्वारा ब्राह्मी भूमि सर्वार्थसिद्धि प्रदान करने वाली, क्षत्रिया राज्य प्रदान कराने वाली, वैश्या धन-धान्य की वृद्धि कराने वाली एवं शूद्रा भूमि निन्दित कही गई है।।३६-४१।।

ततो भूमिं परीक्षेत वास्तुज्ञानविशारदः।
शल्यादिशोधनं कुर्यात्तुषाङ्गारादिशोधयेत्।।४२।।
एतदकरणे मन्त्री न किञ्चित्फलमाप्नुयात्।
विप्राशिवा वेदघोषैर्मङ्गलाचारपूर्वकम्।।४३।।
वास्तोर्मण्डलकं कुर्याद्यथाशोभां यथाविधि।
पूर्वापरायतं सूत्रं विन्यसेद्धस्तमानतः।।४४।।
तन्मध्ये किञ्चिदानम्य मत्स्यौ द्वौ परितो लिखेत्।
तयोर्मध्यस्थितं सूत्रं विन्यसेद्दक्षिणोत्तरम्।।४५।।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तथाग्राभ्यां कोणेषु मकरांल्लिखेत्।
मत्स्यमध्यस्थिताग्राणि तत्र सूत्राणि पातयेत्।।४६।।
चतुरस्रं भवेत्तत्र चतुःकोष्ठसमन्वितम्।
ईशानाद्राक्षसं यावद्यावदग्नेः प्रभञ्जनम्।।४७।।
एवं सूत्रद्वयं दद्यात् कर्णसूत्रसमाहितः।
तत्पुनर्विभजेन्मन्त्री चतुःषष्टिपदं यथा।।४८।।
ब्राह्मणं पूजयेदादौ मध्यकोष्ठे चतुष्टये।
दिक्चतुःष्वेषु पूर्वादौ यजेदार्षमनन्तरम्।।४९।।
विवस्वन्तं ततो मित्रं महीधरमनन्तरम्।
कोणार्द्धकोष्ठद्वन्द्वेषु वह्न्यादि परितः पुनः।।५०।।
सावित्रं सवितारं च शक्रमिन्द्रं जयं पुनः।
रुद्रं रुद्रजयं विद्वानापञ्चाप्यायुवत्सकम्।।५१।।

तत् कर्णसूत्रोभयतः कोष्ठद्वन्द्वेषु देशिकः ।
शर्वं गुहं चार्यमणं जम्भकं पिलिपिच्छिकम् ।।५२।।
वरकीं च विदारीं च पूतनामर्चयेत् क्रमात् ।
अर्चयेद्दिक्षु पूर्वादौ सार्द्धाद्यष्टपदेष्विमान् ।।५३।।
अष्टावष्टविभागेन देवतादेशिकोत्तमः ।
क्रमादीशानपर्ज्जन्यौ जयन्तः शक्रभास्करौ ।।५४।।
सत्यो वृषान्तरिक्षौ च दिशि प्राच्यां व्यवस्थिताः ।
अग्निः पूषा च वितथो यमश्च गृहरक्षकः ।।५५।।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगो दक्षिणदिग्गजाः ।
निर्ऋतिर्वा वारिकश्च सुग्रीववरुणौ ततः ।।५६।।
पुष्पदन्तासुरौ शेषरोगौ प्रत्यग्दिशि स्थिताः ।
वायुर्नागश्च मुख्यश्च सोमो भल्लाट एव च ।।५७।।
अकुलाख्यो दित्यदिती कुबेरस्य दिशि स्थिताः ।
उक्तानामिति देवानां पदान्यापूर्वपञ्चभिः ।।५८।।

तदनन्तर वास्तुज्ञान में दक्ष व्यक्ति को भूमि की परीक्षा करके उस स्थान पर स्थित शल्य (कील-काँटे), तुष (भूसा), अङ्गार आदि का शोधन कर उन्हें वहाँ से हटा देना चाहिये। ऐसा न करने से मन्त्रज्ञ साधक को लेशमात्र भी फल प्राप्त नहीं होता। भूमिशोधन के उपरान्त उस स्थान पर ब्राह्मणों के आशीर्वाद, वेदध्वनि एवं मंगलाचारपूर्वक यथाविधि सुशोभित वास्तुमण्डल का निर्माण करना चाहिये। एतदर्थ एक हाथ लम्बे धागे से पूर्व से पश्चिम तक मापन करके उस स्थान को चिह्नित कर उसके मध्य को कुछ झुकाकर बगल में दो मत्स्य का निर्माण करना चाहिये। अब उसके मध्य में दक्षिण से उत्तर की ओर भी उसी धागे से चिह्नित करने के उपरान्त उस आयताकार भूमि के चारो कोणों पर दो-दो मत्स्याकृति का निर्माण करना चाहिये। मत्स्यमध्य-स्थित अग्र में सूत्रपातन करने से एक चतुष्कोण बन जाता है, जिसमें चार कोष्ठ होते हैं। ईशान से नैर्ऋत्य तक और अग्नि से वायुकोण तक दो सूत्र ताने, जिसमें कर्णसूत्र हों। उसे पुनः चौंसठ भागों में विभक्त करे, जिससे चौंसठ कोष्ठ बन जाते हैं। उन चौंसठ कोष्ठों में से मध्य के चार कोष्ठों में सर्वप्रथम ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये। चारो पूर्वादि दिशाओं में अर्यमा, विवस्वान, मित्र एवं महीधर की पूजा करनी चाहिये। दोनों कोणार्द्ध कोष्ठों में आग्नेयादि के सामने सावित्र, सविता, इन्द्र, जय, रुद्र, रुद्रजय और सनत्कुमारादि की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर कर्णसूत्र के दोनों तरफ के कोष्ठकद्वन्द्वों में देशिक को शर्व, गुह, अर्यमा, जम्भक, पिलिपिच्छक, वरकी, विदारी एवं पूतना का क्रमानुसार पूजन करना चाहिये। पूर्वादि आठ दिशाओं में देशिक को क्रम से

ईशान-पर्यन्त जयन्त, इन्द्र, भास्कर, पूषा, वितथ, यम, गृहरक्षक, गन्धर्व, भृंगराज, मृग, निर्ऋति, दौवारिक, सुग्रीव, वरुण एवं पुष्पदन्त का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पश्चिम दिशा में वायु, मुख्य नाग, सोम एवं भल्लाट की तथा उत्तर दिशा में स्थित अकुल, दिति एवं अदिति का आवाहन-पूजन करना चाहिये। इन सभी देवताओं की पूजा पूर्व के पाँच कोष्ठों में करनी चाहिये।।४२-५८।।

रजोभिस्तेष्वथो तेभ्यः पायसान्नैर्बलिं हरेत्।
पायसैर्मधुरैः सर्वाः संयजेन्मधुरान्वितैः ।।५९।।
तत्तद्द्रव्यैर्वा मतिमान् पूजयेद्दोषशान्तये।
पायसौदनलाजैश्च युक्तं धूपप्रसूनकैः ।।६०।।
अन्नादितिलसंयुक्तं माषभक्तादिमण्डितम्।
गृहाणेमां बलिं ब्रह्मन् वास्तुदोषं प्रणाशय ।।६१।।
गन्धादिशर्करापूपपायसोपरि संयुतम्।
आर्यकाख्य गृहाणेमं सर्वदोषं प्रणाशय ।।६२।।
चन्दनाभ्यर्चितं नाथ कर्पूरागुरुमण्डितम्।
विवस्वन् वै गृहाणेमं सर्वदोषं प्रणाशय ।।६३।।
सगुडं पायसं नाथ पुष्पदीपसमन्वितम्।
गृहाणेमं बलिं हृद्यं मित्रशान्तिं प्रयच्छ मे ।।६४।।
माषौदनं समांसं च गन्धादिक्षीरसंयुतम्।
गृहाणेमं महाभक्ष्यं सर्वदोषं प्रणाशय ।।६५।।
एवं मध्ये तु सम्पूज्य ईशानादि समुद्धरेत्।

इन पूर्वोक्त पाँचों देवताओं को मधुरान्वित पायसान्न की बलि प्रदान करनी चाहिये। सबों की पूजा पायस-मधु से अथवा उनके-लिये विहित द्रव्यों से उनकी पूजा दोषशान्ति के लिये करनी चाहिये। पायस-भात-लावा के साथ धूप, फूल, अन्नादि, तिल, उड़द के भात से मूलोक्त मन्त्रोच्चारण-पूर्वक बलि वास्तुदोष की शान्ति के लिये ब्रह्मा को प्रदान करनी चाहिये। एवमेव अर्यमा, विवस्वान, मित्रशान्ति आदि को मूलोक्त तत्तत् मन्त्रों से विहित बलि देनी चाहिये। मूल में श्लोकांक ६१ से ६५ तक बलिमन्त्र अंकित हैं, जिनका योग तत्तत् देवताओं को बलि प्रदान करते समय करना चाहिये। इस प्रकार मध्य में पूजन सम्पन्न करने के उपरान्त ईशानादि दिशाओं में अग्रलिखित क्रमानुसार पूजन करते हुये तत्तत् देवताओं को तत्तत् मन्त्रों से बलि प्रदान करनी चाहिये।।५९-६५।।

क्षीरं खण्डसमायुक्तं पुष्पादिभिरलङ्कृतम् ।।६६।।
गृहाणेमं बलिं हृद्यं वास्तुशान्तिं प्रयच्छ मे।
दधीदं गुडसम्मिश्रं गन्धादिवस्तुसंयुतम् ।।६७।।

गृहाणेमं बलिं वत्स विघ्नमत्र प्रणाशय।
पुष्पादिकुशपानीयं शर्करागुरूवासितम् ॥६८॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं शक्रदेव नमोऽस्तु ते।
पिष्टकं सगुडं नाथ रक्तगन्धादिशोभितम् ॥६९॥
गृहाणेमं बलिं सूर्य विघ्नमत्र प्रणाशय।
ओदनं घृतसंयुक्तं वस्त्रगन्धादिमण्डितम् ॥७०॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यमिन्द्रजय नमोऽस्तु ते।
पक्वापक्वमिदं मांसं वस्त्रपुष्पादिसंयुतम् ॥७१॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं रुद्रदेव नमोऽस्तु ते।
समांसं घृतसम्पक्वं गन्धपुष्पादिसंयुतम् ॥७२॥
गृहाणेमं रुद्रजय वास्तुस्वस्तिं प्रयच्छ मे।
रक्तपुष्पसमांसं वै रक्तवस्त्रादिसंयुतम् ॥७३॥
विदारिन् वै गृहाणेमं रक्षोविघ्नं विनाशय।
पीतरक्तादिसंयुक्तं रक्तगन्धादिसंयुतम् ॥७४॥
गृहाणेमं पूतने त्वं रक्षोविघ्नं विनाशय।
सघृतं मांसभक्तं च वस्त्रगन्धाद्यलङ्कृतम् ॥७५॥
बलिं गृहाण सर्वेश रक्षोविघ्नं प्रणाशय।
मांसं पुष्पादिसंयुक्तं मांसभक्तोपरि स्थितम् ॥७६॥
गृहाणेमं बलिं स्कन्द रक्षोविघ्नं विनाशय।
समांसपिष्टकैर्युक्तं पक्वमांसोदकान्वितम् ॥७७॥
अर्यमन् वै गृहाणेमं रक्षोविघ्नं विनाशय।
रक्तमांसौदनं मत्स्यं गन्धधूपसमन्वितम् ॥७८॥
जम्भक त्वं गृहाणेमं रक्षोविघ्नं प्रणाशय।
छागकर्णान्वितं मांसं वस्त्रगन्धादिसंयुतम् ॥७९॥
पिलिपिच्छ गृहाणेमं रक्षोविघ्नं विनाशय।
घृतेन साधितं मांसं रक्तगन्धादिसंयुतम् ॥८०॥
चरकि त्वं गृहाणेनं रक्षोविघ्नं विनाशय।
सघृतं चाक्षतामत्र वस्त्रगन्धाद्यलङ्कृतम् ॥८१॥
गृहाणेमं बलिं त्वीग वास्तुदोषापहारकम्।
उत्पलं पायसैर्युक्तं वस्त्रादिकसमन्वितम् ॥८२॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं वास्तुदोषं प्रणाशय।
पञ्चहस्तं सुपीतं च ध्वजं भक्तादिमण्डितम् ॥८३॥

गृहाणेमं बलिं हृद्यं विष्णुसुत नमोऽस्तु ते।
रक्तपुष्पयुतं भक्तं रक्तगन्धादिभिर्युतम् ॥८४॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं भास्कराय नमोऽस्तु ते।
ओदनं घृतसम्पूर्णं पञ्चरत्नादिमण्डितम् ॥८५॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं देवराज नमोऽस्तु ते।
वितानं धूम्रवर्णाभं गन्धादिकसुशोभितम् ॥८६॥
रक्तयुक्तं गृहाणेमं बलिं सत्य नमोऽस्तु ते।
इदं तु मांसभक्तं वै वस्त्रगन्धादिपूजितम् ॥८७॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं वास्तुदोषं प्रणाशय।
इदं तु शाड्वलं मांसं नैवेद्यादिकसंयुतम् ॥८८॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं व्योमशान्तिं प्रयच्छ मे।
सुवर्णं पिष्टकं चापि वस्त्रगन्धादिभिर्युतम् ॥८९॥
घृतान्वितं गृहाणेमं सप्तजिह्व नमोऽस्तु ते।
क्षीरलाजामांसयुक्तं रक्तपुष्पादिसंयुतम् ॥९०॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं पूषदेव नमोऽस्तु ते।
दधिगन्धादिभिर्युक्तं पीतपुष्पसमन्वितम् ॥९१॥
बलिं प्रगृह्यतां सोम सर्वदोषं प्रणाशय।
ओदनं घृतसम्मिश्रं गन्धपुष्पसमन्वितम् ॥९२॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं भल्लाटक नमोऽस्तु ते।
मांसान्नं घृतसंयुक्तं गन्धपुष्पादिसंयुतम् ॥९३॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यमकुलाख्य नमोऽस्तु ते।
पूतिकामधुसम्मिश्रं वस्त्रगन्धादिसंयुतम् ॥९४॥
गृहाणेमं बलिं हृद्यं देवमातर्नमोऽस्तु ते।
क्षीरखण्डसमायुक्तं नानापुष्पोपशोभितम् ॥९५॥
दैत्यमातर्गृहाणेदं सर्वदोषं प्रणाशय।
स्वर्गपातलमर्त्ये च ये देवा वास्तुदेवताः ॥९६॥
गृह्णन्त्विमं बलिं हृद्यं तुष्टा यान्तु स्वमन्दिरम्।
मातरो भूतवेताला ये चान्ये बलिकाङ्क्षिणः ॥९७॥
विष्णोः पारिषदा ये च तेऽपि गृह्णन्त्विमं बलिम्।
पितृभ्यः क्षेत्रपालेभ्यो बलिं दत्वा प्रकामतः ॥९८॥
अभावायुक्तद्रव्यस्य कुशपुष्पादिभिर्यजेत् ॥९९॥

इति गौतमीये महातन्त्रे पञ्चमोऽध्यायः

●

श्लोकसंख्या ६६ से लेकर श्लोकांक ९८ के पूर्वार्द्ध-पर्यन्त क्रमशः वास्तु, वत्स, शक्र, सूर्य, इन्द्रजय, रुद्रदेव, रुद्रजय, विदारी, पूतना, सर्वेश, स्कन्द, अर्यमा, जम्भक, पिलिपिच्छ, चरकी, ईग, विष्णुसुत, भास्कर, देवराज, सत्य, सप्तजिह्व, पूषा, सोम, भल्लाटक, अकुल, देवमाता, दैत्यमाता, स्वर्ग-पाताल-मर्त्य लोक में स्थित वास्तुदेवता, बलि के आकांक्षी मातृगण एवं भूत-वेताल तथा अन्यान्य विष्णुपार्षदों एवं पितरों को बलि प्रदान करने-हेतु मन्त्र उल्लिखित हैं; जिनका उच्चारण करते हुये तत्तत् देवताओं को बलि समर्पित करनी चाहिये। बलि-हेतु निर्दिष्ट द्रव्यों के अभाव की स्थिति में कुश-पुष्पादि से ही यजन करना चाहिये।।६६-९९।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के पञ्चम अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

षष्ठोऽध्यायः

[यागमण्ड़पादि की रचना, कुण्ड़ादि की रचना, भूतवलि का उत्सर्ग, वीजरोपण आदि का कथन।]

भूतशुद्धिं विधायेत्थं रचयेद्यागमण्डपम्।
नवहस्तं पञ्चहस्तं वा सप्तहस्तं यथामति ॥१॥
कर्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमाङ्गुलिपर्वणः।
मध्यस्य दैर्घ्यमानेन मानाङ्गुलमुदीरितम् ॥२॥
गृहादिकुण्डकरणं मण्डलं वैदिकं तथा।
मानाङ्गुलेन कर्तव्यं नान्यैरपि कदाचन ॥३॥
प्रतिमाकरणे चैव मानाङ्गुलमुदीरितम्।
वापीकूपतडागादिदीर्घीकासेतुमेव च ॥४॥
मुष्ट्यङ्गुलेन प्रतिमां कारयेत् फलहेतवे।
रथादिगोलिका चैव पोतं शकटमेव च ॥५॥
लम्बाङ्गुलेन कर्त्तव्यं नान्येन तु कदाचन।
नुष्ट्यङ्गुलप्रमाणानि यत्किञ्चित् कथितानि च ॥६॥
यजमानस्य कर्त्तव्यं नान्यस्यापि कदाचन।
मसृणं रचयेद्गेहं षोडशस्तम्भसंयुतम् ॥७॥
मध्ये चतुष्टयं तत्र निरूप्येद् द्वादशाभितः।
चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुष्कोणसमन्वितम् ॥८॥

इस प्रकार भूतशुद्धि करने के उपरान्त इच्छानुसार नव, पाँच अथवा सात हाथ लम्बे-चौड़े यज्ञमण्डप का निर्माण करना चाहिये। यज्ञकर्ता के दाहिने हाथ की मध्यमा अंगुलि के मध्य पर्व तक एक हाथ का मान होता है। गृहादि कुण्ड और वैदिक मण्डल बनाने में अंगुल का मान ही व्यवहृत होता है। दूसरे मान से कदापि इनका निर्माण नहीं करना चाहिये। प्रतिमा-निर्माण में भी अंगुलमान ही प्रशस्त कहा गया है। वापी, कूप, तड़ाग, सेतु आदि के निर्माण-हेतु मुट्ठी अंगुल का मान ग्राह्य कहा गया है। फल की प्राप्ति के लिये मुट्ठी अंगुलमान से ही प्रतिमा का भी निर्माण करना चाहिये। रथ आदि, गोलिका, जहाज, पोत एवं गाड़ी का निर्माण लम्ब अंगुलमान से ही करना चाहिये; दूसरे किसी मान से नहीं। यहाँ जो भी मुष्ट्यंगुलादि मान कहे गये हैं, उन मानों

के लिये यजमान का हस्तप्रमाण ही ग्राह्य होता हैं; अन्य किसी का नहीं। सोलह स्तम्भों से युक्त सुन्दर मण्डप का निर्माण करना चाहिये। चार स्तम्भ वाले मण्डप के मध्य में स्थापित करना चाहियें और शेष बारह स्तम्भों को उनके चारो ओर स्थापित करना चाहिये। यह मण्डप चार द्वारों से युक्त चतुष्कोण होना चाहिये।।१-८।।

विश्वकर्मानुष्ठितेन यथाशोभं निवेशयेत्।
अष्टदिक्षु ध्वजानष्टौ तत्तद्दिक्पातवर्णिनः ।।९।।
पुष्पमालावितानाद्यं सर्वाश्चर्यमनोहरम्।
तस्याग्रे चोत्तरे वाऽपि रचयेद्यागमण्डपम् ।।१०।।
तत्तत्स्थले चैकगेहे कुण्डमेकं विनिर्मयेत्।
मध्यपूजावेदिकां कुर्याद्दर्पणोदरसन्निभाम् ।।११।।
मण्डपान्तस्त्रिभागस्य चैकभागेन निर्मिताम्।
मुष्टिमात्रोन्नतां सर्वलक्षणैर्लक्षणान्विताम् ।।१२।।
ततः कुण्डं च रचयेल्लक्षणं तस्य मे शृणु।
पूर्वापरायतं सूत्रं पातयेद्दक्षिणोत्तरम् ।।१३।।
तस्याग्रयोर्मत्स्ययुग्मं कुर्यात्स्पष्टं यथा भवेत्।
द्विभागौ कृत्य तत्सूत्रं पातयेद्दक्षिणोत्तरम् ।।१४।।
तदग्रे मत्स्ययुग्मं च कुर्यात्स्पष्टं यथा भवेत्।
चतुर्दिक्षु चतुःसूत्रं पातयेत्तत्प्रमाणतः ।।१५।।
चतुरस्रं चतुःकोष्ठं भवेदतिमनोहरम्।
कोणसूत्रं द्वयं दद्यात्प्रमाणं तेन लक्ष्यते ।।१६।।
चतुरस्रं भवेत् कुण्डं सर्वलक्षणलक्षितम्।

उस मण्डप में विश्वकर्मा द्वारा विरचित विविध मनोहर शोभा का भी निवेश करना चाहिये। मण्डप की आठो दिशाओं में आठ ध्वज आठो दिक्पालों के वर्ण के अनुरूप स्थापित करना चाहिये। पुष्पों की माला एवं वितानादि से उसे सजाकर उसके आगे अथवा उत्तर दिशा में सबको आश्चर्यचकित करने वाला अत्यन्त ही रमणीय यज्ञमण्डप बनाना चाहिये। तत्तत् स्थानों पर तत्तत् कोष्ठों में एक-एक कुण्ड वनाकर मण्डप के तीन भागों में से एक भाग के मध्य में मुट्ठी के बराबर ऊँची समस्त शुभ लक्षणों से युक्त, दर्पण के समान स्वच्छ पूजनवेदी का निर्माण करना चाहिये।

तदनन्तर कुण्ड की रचना करनी चाहिये; जिसकी निर्माणविधि को मुझसे श्रवण करो। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर सूत्रपात करके उसके अग्रभाग में स्पष्ट आकृति वाले मत्स्ययुग्म का निर्माण करना चाहिये। फिर उस सूत्र के दो भाग करके दक्षिण-उत्तर तक उसका पातन करके उसी के प्रमाण से चारो दिशाओं में चार

सूत्रपातन करने से चार कोष्ठों से समन्वित एक मनोहर चतुरस्र बन जाता हैं। उसी के प्रमाण से दो कोणसूत्र तानने से समस्त शुभ लक्षणों से युक्त चतुरस्र कुण्ड निर्मित हो जाता हैं।।९-१६।।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः कुर्यात् स्वयमनुष्ठितम्।।१७।।
सर्वकर्मकरं प्रोक्तं शान्त्यादिषट्ककर्मसु।
अनेन जनयेत् सर्वकुण्डानि मुनिसत्तमः।।१८।।
ततः कुण्डं खनेन्मन्त्री यथाशास्त्रविधानवित्।
त्यक्त्वा सर्पस्य गात्रं च शिरोदेशं प्रयत्नतः।।१९।।
शिरोघाताद् भवेन्मृत्युः पिण्डेषु पिण्डघातनम्।
पुच्छे तु दुःखसम्भूतिः क्रोडे सर्वार्थसाधनम्।।२०।।
यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं यावदीरितम्।
कण्ठमेकाङ्गुलं त्यक्त्वा मेखलास्तिस्र एव हि।।२१।।
कुण्डस्य फलमानेन वेदाग्निनयनाङ्गुलाः।
चतुरस्रे भवेयुस्ताश्चतुरस्राः सुशोभनाः।।२२।।
होतुरग्रे योनिवासां कुञ्जराधरसन्निभाम्।
षट्चतुर्द्व्यङ्गुलयोर्विस्तारोन्नतशालिनी।।२३।।
षडङ्गुला भवेद्दीर्घा चतुरङ्गुलविस्तृताः।
द्व्यङ्गुला चोन्नता योनिरेषा लक्षणलक्षिता।।२४।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को कुण्ड का निर्माण स्वयं करना चाहिये। यह कुण्ड समस्त काम्य कर्मों एवं शान्ति आदि षट्कर्म के सम्पादन में ग्राह्य कहा गया है। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार सभी कुण्डों को निर्मित करना चाहिये। इसके बाद शास्त्रीय विधि के ज्ञाता मन्त्रज्ञ को वास्तुसर्प के शरीर एवं शिरोदेश को बचाते हुये कुण्ड की खुदाई करनी चाहिये; क्योंकि वास्तुसर्प के शिर पर आघात करने से मृत्यु होती है और शरीर पर घात करने से शरीरघात होता है; साथ ही पुच्छ पर आघात होने से बड़ा भारी दुःख उपस्थित होता है। वास्तुसर्प के क्रोड़ अर्थात् मध्य में आघात करने से सभी प्रकार की कामनाओं का साधन होता है। कुण्ड का जितना विस्तार होता है, उतना ही खनन करना चाहिये। एक अंगुल कण्ठ को छोड़कर तीन मेखला बनानी चाहिये। मेखला चार, तीन या दो अंगुल के अन्तर से बनानी चाहिये। चतुरस्र कुण्ड में मेखला भी चौकोर ही सुन्दर होती है। होता के आगे वाली कुण्ड की परिधि में हाथी के होठ के समान योनि बनती है। इस योनि का विस्तार छः, चार या दो अंगुल और ऊँचाई दो अंगुल होती है। छः अंगुल दीर्घ, चार अंगुल विस्तृत एवं दो अंगुल ऊँची योनि मृग के आकृति वाली कही गई हैं।।१७-२४।।

स्थलादारभ्य नालं स्यात् सरन्ध्रे योनिमध्यतः ।
सूक्ष्माग्रस्थूलमूलं च सरन्ध्रं नालमिष्यते ॥२५॥
योन्या मध्ये विलं कुर्यात्तदाज्यग्राहिसंज्ञकाम् ।
कुण्डमध्ये भवेन्नाभिः फलं वा चतुरस्त्रकम् ॥२६॥
द्व्यङ्गुलं चोन्नतं तत्तु चतुरङ्गुलविस्तृतम् ।
अर्द्धाङ्गुलं तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधोमुखम् ॥२७॥
यवद्वयप्रमाणेन कुण्डेष्वन्येपु वर्द्धयेत् ।
कण्ठं तु द्व्यङ्गुलं तत्र वर्द्धयेत् कुण्डमानतः ॥२८॥
कर्णसूत्रप्रमाणेन द्विहस्तं कुण्डमुद्धरेत् ।
सर्वकुण्डेषु सर्वत्र वर्द्धयेद्विधिनामुना ॥२९॥
कुण्डं तु प्रकृतिः सूक्ष्मा सर्वलक्षणलक्षिता ।
उभौ पादौ करौ तस्य भवेत् कोणचतुष्टयम् ॥३०॥
उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः कारणरूपिणी ।
तेन तत्रैव हव्यानां विधानं तन्मयत्वतः ॥३१॥
फलं वितनुते सम्यगन्यथा विफलायते ।

कुण्ड के निचले स्थल से प्रारम्भ होकर रन्ध्र-सहित योनिमध्य तक अग्रभाग में पतला और मूल भाग मोटा सरन्ध्र नाल बनाना चाहिये। योनि के मध्य में आज्यग्राही छिद्र निर्मित करना चाहिये। कुण्ड के मध्य में नाभि होती है, जो फल के समान या चौकोर होती है। दो अंगुल उच्च एवं चार अंगुल विस्तृत नाल योनि के आगे आधा अंगुल अधोमुख होता है। अन्य कुण्डों में इसे दो यव के प्रमण से बढ़ाना चाहिये। कण्ठ का मान दो अंगुल होता है। इसे भी कुण्ड के मान के अनुसार बढ़ाया जाता है। कर्णसूत्र के प्रमाण से दो हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये। सभी कुण्डों में सर्वत्र इसी मान से वृद्धि करनी चाहिये। सभी लक्षणों से लक्षित कुण्ड प्रकृति का रूप होता है एवं चारो कोण उसके दो पैर एवं दो हाथ होते हैं। कुण्ड उदरस्वरूप होता है और योनि उसमें कारण-स्वरूप होती है। इसलिये उसमें उसके अनुरूप ही हव्य का विधान किया गया है। इस प्रकार विधिपूर्वक निर्मित कुण्ड ही फलदायी होता है।२५-३१।।

सात्त्विकी मेखला पूर्वा द्वितीया राजसी स्मृता ॥३२॥
तृतीया तामसी ज्ञेया इत्युक्तं कुण्डलक्षणम् ।
मण्डपस्योत्तरे भागे मेखलां पूर्वापरोन्नताम् ॥३३॥
गूढां कुर्याद्यथाशोभां यथासृष्टिमनोहराम् ।
पूर्वापरायतं तत्र पञ्चसूत्रनिपातनात् ॥३४॥
दक्षिणोत्तरसूत्राणि तद्वदेकादशार्च्चयेत् ।
पदानि तत्र जायन्ते चत्वारिंशत् प्रमार्जयेत् ॥३५॥

मध्ये मध्ये विलुप्येत तथा द्वादशकोष्ठकम्।
पञ्चवर्णरजोभिस्तु पदानि तानि पूरयेत्॥३६॥
पालिकाः पञ्चमुख्यश्च शरावाणि च यातयेत्।
द्विषड्द्व्यष्टचतुर्विंशदुच्छ्रितानि यथाक्रमम्॥३७॥
तावन्मात्रमुखान्यूर्ध्वपदानि परिकल्पयेत्।
तत्त्रिभागाङ्गुलिमुखैर्विस्तृतानि प्रकल्पयेत्॥३८॥
नारायणमहेशानब्रह्मरूपाणि तान्यपि।
पालका पञ्चमुख्याश्च शरावाणि ततः परम्॥३९॥
प्रक्षालितानि मन्त्रेण पुण्यानि तानि चैव हि।
संवेष्टितानि परितस्त्रिगुणैः शुभतन्तुभिः॥४०॥
मृद्वालुकाकरीषैश्च पूरितानि समन्ततः।
समर्चितस्वदेवानि पश्चिमादिक्रमेण च॥४१॥
विन्यस्य शालिश्यामानि प्रियङ्गुतिलसर्षपान्।
मुद्गमाषौ तथा शिम्बिकुलत्थं चाढकीं तथा॥४२॥
प्रक्षालितानि शुद्धेन जलेन तदनन्तरम्।
अभ्यर्चितस्वदेवानि मूलमन्त्रार्चितानि वै॥४३॥

कुण्ड की तीन मेखलाओं में से पहली मेखला सात्विकी, दूसरी राजसी एवं तीसरी तामसी कही गई है। इस प्रकार यह कुण्ड का लक्षण कहा गया। मण्डप के उत्तर, पूर्व एवं पश्चिम भाग में अत्यन्त मनोहर तथा शोभा-सम्पन्न मेखला बनानी चाहिये। वहीं पर पूर्व से पश्चिम की ओर पाँच सूत्र और दक्षिण से उत्तर की ओर ग्यारह सूत्र तानने से चालीस कोष्ठक वनते हैं। इनमें दो-दो कोष्ठों के बीच-बीच से एक-एक कोष्ठ मिटा देने से कुल वारह कोष्ठ मिट जाते हैं। पाँच रंग के चूर्णों में उन्हें पूरित करना चाहिये। पाँच मुख्य पालिकाओं को मिट्टी के प्याले से दवा देना चाहिये। फिर यथाक्रम दो, छः, दो, आठ, चौवीस को उच्छ्रित करके उनके मुखों के ऊपर पद की कल्पना करनी चाहिये। तीन अंगुल विस्तृत मुख कल्पित करना चाहिये। उन विष्णु-महेश-ब्रह्मा तथा पाँच मुख्य पालक प्यालों को मन्त्र से प्रक्षालित करना चाहिये। उनमें तीन-तीन बार धागा लपेटना चाहिये। उन्हें मिट्टी-वालू एवं गोवर से भर देना चाहिये। उनमें पश्चिम से प्रारम्भ करके देवों का अर्चन करना चाहिये। उन पर शालि, साँवाँ, प्रियंगु, तिल, सरसो, मूँग, उड़द, शिम्बि, कुल्थी एवं आढकी को प्रक्षालित करके रखना चाहिये। तत्पश्चात् उसी पर मूल मन्त्र से अपने देवता की पूजा करनी चाहिये।।३२-४३।।

विप्राशिषा पञ्चघोषैः सह निःसार्यतास्वथ।
निषिच्य तु हरिद्भिश्च नमस्यं च पुनः पुनः॥४४॥

वसनेन समाच्छाद्य नवीनेन ततः परम्।
शुद्धाद्भिरभिषिच्याथ सायं प्रातर्मुहुर्मुहुः ॥४५॥
इत्येवं सप्तरात्रं वा नवरात्रमथापि वा।
स्थापयेद्वापयेच्चैव रात्रिशेषे बलिं निशि ॥४६॥
लाजातिलहरिद्रा च सक्तुचूर्णं तथा दधि।
एतैः प्रथमरात्रौ च भूतेभ्यः बलिमुत्सृजेत् ॥४७॥
द्वितीयायां क्षिपेद्रात्रौ पितृभ्यस्तिलतण्डुलैः।
तृतीयायां च यक्षेभ्यः सुलाजादधिसक्तुभिः ॥४८॥
नारिकेलोदकैर्मिश्रं सक्तुचूर्णं मनोहरम्।
चतुर्थ्यां चैव नागेभ्यो बलिं दद्याद्यथाविधि ॥४९॥
पद्माक्षतं ब्रह्मणे च पञ्चम्यामुत्सृजेद्बलिम्।
अपूपमन्नं शर्वाय षष्ठ्यामथ समाहरेत् ॥५०॥
गुडौदनं विष्णवे च सप्तम्यां वितरेद्बलिम्।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं स्वनाम च नमोऽन्तकम् ॥५१॥
बलिमन्त्रस्तथैव स्यादावाहनविसर्जनम्।

तदनन्तर विप्रों के आशीर्वाद एवं पञ्चघोष के साथ उन्हें निस्सारित करते हुये हल्दी से सिंचित कर बार-बार प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद नवीन वस्त्र से उन्हें ढक देना चाहिये। शुद्ध जल से प्रातः-सायं उनका सिंचन करना चाहिये। इस प्रकार सात या नव रात्रियों तक करना चाहिये एवं रात्रिशेष में बलि देनी चाहिये। प्रथम रात्रि में लाजा, तिल, हल्दी, सक्तुचूर्ण एवं दधि से भूतों के लिये बलि देनी चाहिये। दूसरी रात्रि में तिल एवं तण्डुल (चावल) से पितरों को बलि प्रदान करनी चाहिये। तीसरी रात्रि में लावा, दही और सत्तू से यक्षों को बलि देनी चाहिये। चौथी रात्रि में नारियलजल-मिश्रित सत्तू से नागों को बलि देनी चाहिये। पाँचवीं रात्रि में कमलफूल और अक्षत की बलि ब्रह्मा को प्रदान करनी चाहिये। छठी रात्रि में पूआ और अन्न से महेश्वर को बलि प्रदान करनी चाहिये। सातवीं रात्रि में गुड़ और भात की बलि विष्णु को समर्पित करनी चाहिये।

इनको बलि प्रदान करने के समय चतुर्थ्यन्त नाम (विष्णवे, ब्रह्मणे, शर्वाय आदि) के पहले ॐ और बाद में नमः लगाने के पश्चात् बलिमन्त्र का उच्चारण करते हुये बलि प्रदान करना चाहिये। इसी प्रकार आवाहन एवं विसर्जन मन्त्रों का भी अनुसन्धान करना चाहिये।।४४-५१।।

त्रिविधानां च पात्राणां परतो बहिरेव च ॥५२॥
अष्टदिक्षु च सन्दद्याल्लोकपालेषु यत्नतः।
प्रोक्तेषु तेषु पात्रेषु ब्रह्मविष्णुहरान् यजेत् ॥५३॥

मुद्गप्रियङ्गुनिष्पावे वायुरग्निःकुलत्थके ।
आढक्यां रक्षसां देहो वृद्धौ वैवस्वतस्तिले ।।५४।।
इन्द्रः श्यामे राजमाषे वरुणश्च तथा मुने ।
वस्त्रखण्डे दृढं बद्ध्वा किञ्चिज्जलं क्षिपेत्ततः ।।५५।।
उद्धृत्य यामत्रितये समतीते च वापयेत् ।
बीजानां दैवतं सोमः स रात्रौ कान्तिमान्यतः ।।५६।।
तस्मादाहृत्य बीजानि निशायामेव वापयेत् ।
प्ररूढान्यङ्कुरान्ये च नो वीक्षेत कदाचन ।।५७।।
आचार्य एव प्रविशेत्तच्छिष्यो वा तदाज्ञया ।
प्ररूढैरङ्कुरैः कर्त्तुर्निर्दिशेच्च शुभाशुभम् ।।५८।।
श्यामैः कृष्णैरङ्कुरैरर्थहानिश्च दुःखभाक् ।
कुब्जैर्दुखैर्विप्ररूढैर्मृतिं कुर्यान्न संशयः ।।५९।।
आचार्यः कारयेन्नैव प्रलयं वीक्ष्य यत्नतः ।
शान्तिकं सर्वथा कुर्यात् कर्त्तुरीप्सितसिद्धये ।।६०।।

इति गौतमीये महातन्त्रे षष्ठोऽध्यायः

●

वाहरी भाग में तीन पात्रों पर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का पूजन करना चाहिये। आठों दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों को क्रमशः मूँग, प्रियंगु एवं निष्पाव से वायु को, कुल्थी से अग्नि को, आढकी से निर्ऋति को, तिल से ईशान एवं वैवस्वत को, साँवाँ से इन्द्र को तथा उड़द से वरुण को बलि प्रदान करनी चाहिये। इन लोकपालों की बलि को वस्त्र के टुकड़ों में मजबूती के साथ बाँधकर उसके ऊपर जल छिड़ककर उन्हें लेकर रात्रि के तीसरे प्रहर में उनका वपन कर देना चाहिये; क्योंकि बीजों के देवता सोम हैं और वे रात्रि में ही कान्तिमान होते हैं। इसीलिये वीजों का वपन रात्रि में ही करना चाहिये। प्ररूढ अन्य बीजांकुरों को कभी भी नहीं देखना चाहिये। उस स्थान पर स्वयं आचार्य अथवा उसकी आज्ञा से शिष्य को ही प्रवेश करना चाहिये। प्ररूढ अंकुरों को देखकर आचार्य को शिष्य से शुभ-अशुभ का निर्देश करना चाहिये। साँवले अथवा काले अंकुर से धन की हानि एवं दुःख की प्राप्ति होती है। अंकुर अगर टेढ़ा हो तो दुःख होता है एवं पुष्ट न हो तो निःसन्दिग्ध रूप से मृत्यु होती है। इस प्रकार उपर्युक्त फलों को देखकर आचार्य को यत्नपूर्वक उनकी शान्ति करनी चाहिये; जिससे कि कर्त्ता का अभीप्सित सिद्ध हो सके।।५२-६०।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के षष्ठ अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

सप्तमोऽध्यायः

[दीक्षा-निरुक्ति, आचार्य-वरण, वरण के पूर्वकृत्य, गुरुध्यान, कुण्डलिनी-ध्यान, स्वयं एवं कृष्ण में अभेद-चिन्तन, नित्य कृत्य, पूजा के पाँच भेद, स्नान के दो प्रकार, स्नान-विधान, तर्पण, गायत्री-जप, शंख-चक्र के अंकन का माहात्म्य, भगवान् के द्वादश भेद आदि का कथन।]

अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रवर्त्तिकाम्।
यां विना नैव सिद्धः स्यान्मन्त्रो वर्षशतैरपि ॥१॥
तदङ्गं कथितं पूर्वमिदानीं कथ्यते शृणु।
ददाति दिव्यभावं च क्षिणुयात् पापसंहतिम् ॥२॥
तेन दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्रपारगैः।
शिष्यः स्नातः सुवेशश्च सर्वद्रव्यसमन्वितः ॥३॥
आचार्यं वृणुयाद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
कुर्यान्नान्दीमुखं श्राद्धं ब्राह्मणान् परितोषयेत् ॥४॥
गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैस्तोषयेद् गुरुमात्मनः।
यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदो मनुम् ॥५॥
इदानीं पूर्वकृत्यं च प्रसङ्गात् कथयामि ते।
यत्कृत्वाधिकारितां याति मन्त्रयन्त्रार्चनादिषु ॥६॥
येन विना न सिद्धिः स्यान्नरकं च प्रपद्यते।

अब समस्त प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली दीक्षा को कहता हूँ; जिसके विना सौ वर्षों में भी मन्त्र की सिद्धि प्राप्त नहीं होती। दीक्षा के अंगों को इससे पूर्व ही कह दिया गया है; अब आगे कहता हूँ, श्रवण करो। 'दीक्षा' शब्द का 'दी' अक्षर दिव्य भाव प्रदान करता है एवं 'क्षा' अक्षर समस्त पापों का नाश करता है; इसी कारण तन्त्रज्ञ मुनियों द्वारा इसे दीक्षा अभिधान से अभिहित किया गया है। दीक्षा-प्राप्त करने के इच्छुक शिष्य को स्नान करके सुन्दर वेष बनाकर सभी आवश्यक सामग्रियों को एकत्र करके वस्त्र, अलंकार एवं आभूषण द्वारा भक्तिपूर्वक आचार्य का वरण करना चाहिये। तदनन्तर नान्दीमुख श्राद्ध सम्पन्न कर ब्राह्मणों को सम्यक् रूप से सन्तुष्ट करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने गुरु को गाय, भूमि, सोना, वस्त्र आदि प्रदान कर सन्तुष्ट करना चाहिये; क्योंकि सन्तुष्ट एवं प्रसन्न गुरु ही वरद मन्त्र प्रदान करता है।

प्रसङ्गवशात् इस समय उन पूर्वकृत्यों को भी कहता हूँ, जिनके करने से मन्त्र-यन्त्र-अर्चनादि में अधिकारिता प्राप्त होती है। इन कृत्यों के विना कथमपि सिद्धि प्राप्त नहीं होती; अपितु नरकगामी होना पड़ता है।।१-६।।

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद् गुरुदैवतम् ।।७।।
स्वमूर्द्धनि सहस्रारे कृष्णाख्ये परबिन्दुके ।
शशाङ्कायुतसङ्काशं वराभयलसत्करम् ।।८।।
शुक्लाम्बरधरं श्रीमत् शुक्लमाल्यानुलेपनम् ।
वासौ रौद्राक्तशक्त्या च युतं कृष्णाख्यमव्ययम् ।।९।।
शिवेनैक्यं समुन्नीय ध्यायेत् परगुरुं धिया ।
मानसैरुपचारैश्च सन्तर्प्य मनसा सुधीः ।।१०।।
स्तोत्रैः स्तुत्वा नमस्कुर्यान्मन्त्रदेवेशमर्चयेत् ।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।।११।।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।।१२।।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।

ब्राह्म मुहूर्त में उठकर गुरु एवं देवता का चिन्तन अपनी मूर्द्धा में स्थित सहस्रदल कमल के कृष्णरूप परबिन्दु में करना चाहिये। गुरुदेव हजार चन्द्रमा की ज्योति से युक्त हैं। उनके एक हाथ में वरमुद्रा और दूसरे हाथ में अभयमुद्रा है। उनके वस्त्र श्वेत हैं। श्री से समन्वित वे शुक्ल माला एवं अनुलेप धारण किये हुये हैं। उनके वस्त्र रक्त वर्ण के हैं एवं शक्ति से युक्त वे अव्यय कृष्ण नाम से युक्त हैं। गुरु और शिव को एक मानकर बुद्धि से परगुरु का ध्यान करना चाहिये। विद्वान् साधक को मानसिक उपचारों से उनका पूजन एवं तर्पण करके मन ही मन स्तोत्र से स्तुति करते हुये उन्हें प्रणाम करना चाहिये तथा मन्त्रदेव का अर्चन करना चाहिये। गुरु को नमस्कार करने का मन्त्र इस प्रकार है—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।७-१२।।

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये कोटिसूर्यसमत्विषि ।।१३।।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं नित्यां कामबीजोपरिस्थिताम् ।
श्यामां सूक्ष्मां च विश्वस्य सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम् ।।१४।।

विश्वात्मिकां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्ववाहिनीम् ।
चक्रषट्कं विनिर्भिद्य प्रापयित्वा परे शिवे ॥१५॥
तदभेदसमापन्नामनाकुलमनाः स्मरेत् ।
प्रापयित्वा सुधापूर्णां लावयेच्छक्तिमण्डलम् ॥१६॥
तेनैव चक्रभेदेन मूलाधारं समानयेत् ।
अनेन ध्यानयोगेन मन्त्राः सिद्ध्यन्ति नान्यथा ॥१७॥
वैरिपक्षे स्थिता ये च वृद्धा यौवनगर्विताः ।
ये चान्ये दोषदुष्टाश्च सिध्यन्त्येवं न चान्यथा ॥१८॥
परेण च स्वमात्मानं कृष्णाख्येन विभावयेत् ।
अहं कृष्णो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥१९॥
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ।
त्वमेवाहमहं त्वं च सच्चिन्मात्रवपुर्भवान् ॥२०॥
आवयोरन्तरा कृष्ण नश्यत्वाज्ञाबलात्तव ।
अहं तीर्णो भवं घोरं कृत्यं किञ्चिन्न मेऽस्ति हि ॥२१॥
तथापि देहि मे नाथ आज्ञां तव निषेवने ।
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-
र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥२२॥

मूलाधार के त्रिकोण में करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान कुण्डलिनी नित्या का ध्यान कामबीज (क्लीं) पर स्थित रूप में करना चाहिये। यह श्यामा, सूक्ष्मा, विश्व की सृष्टि-स्थिति एवं लय करने वाली, विश्वात्मिका, ज्ञानरूपा एवं ऊर्ध्वगामिनी है। छः चक्रों का भेदन करके वह परमशिव को प्राप्त करती है। उन छः चक्रों के नाम हैं— मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा। ऐसा स्मरण करना चाहिये कि वह कुण्डलिनी शिव से मिलकर एकाकार हो गयी है। पूर्ण अमृतमयी वह शक्तिमण्डल से युक्त हो गयी है। तदनन्तर उस कुण्डलिनी को क्रमशः सहस्रार से आज्ञा, विशुद्धि, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान का भेदन कराते हुए मूलाधार में ले आना चाहिये। इस प्रकार के ध्यानयोग से ही मन्त्र सिद्ध होते हैं; अन्य किसी प्रकार से नहीं होते। जो वैरीपक्ष में स्थित हैं, वृद्ध हैं, यौवन के मद से गर्वित हैं; साथ ही और भी जो विविध दोषों से दूषित हैं; उनकी सिद्धि कदापि नहीं मिलती। यह कथन अन्यथा नहीं है। दूसरों के साथ-साथ अपनी आत्मा को भी कृष्ण के ही समान मानना चाहिये और इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—मैं कृष्ण ही हूँ, दूसरा नहीं हूँ। मैं ही

ब्रह्म हूँ, शोकभागी सामान्य पुरुष नहीं हूँ। मैं ही सत् चित् आनन्दरूप नित्य मुक्त स्वभाव वाला हूँ। तुम्हीं मैं हूँ और मैं ही तुम हो। आप सत्-चित् शरीरमात्र हैं। हे कृष्ण! हम दोनों में जो अन्तर है, वह आपकी आज्ञा के बल से नष्ट हो जाय। मैं घोर संसार में डूब रहा हूँ, सहायता-हेतु मेरे पास कुछ भी नहीं है; फिर भी हे नाथ! आप मुझे अपनी सेवा करने की आज्ञा प्रदान करें। यद्यपि मुझे धर्म का ज्ञान है, लेकिन उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती; साथ ही अधर्म को भी मैं जानता हूँ; लेकिन उससे निवृत्त भी नहीं हो पाता। अत: हृदय में अवस्थित किसी देव द्वारा जिस प्रकार के कार्य में नियुक्त किया जाता हूँ, उसी प्रकार का कार्य करता हूँ।।१३-२२।।

एवं सम्प्रार्थ्य मनसा कुर्यात्पौर्वाह्निकीं क्रियाम्।
दीक्षितस्य विधानेन तथा च ब्रह्मचारिणाम्।।२३।।
वानप्रस्थस्थितानां च शौचादि द्विगुणा क्रिया।
संन्यासिनां विशेषेण कृत्यं चतुर्गुणं भवेत्।।२४।।
आचम्य विधिवन्मन्त्री शुद्धौ देशे च संविशेत्।
तथा प्रातस्तनीं सन्ध्यां कुर्याद् गुरुनिवेषकः।।२५।।
जले संवाह्य तीर्थानि त्रिवारं मूलमन्त्रतः।
क्षिप्त्वा भूमौ कुशाग्रेण सप्तधा मूर्ध्नि सेचयेत्।।२६।।
वामे जलं समादाय मन्त्रयेद्दक्षिणेन तु।
पुनर्वामेन संक्षिप्त्वा मूर्ध्नि सिञ्चेत्त्रिवारकम्।।२७।।
उपदेशेन गुरुणा मुद्रया दिव्यसंज्ञया।
इडयाकृष्य तत्तोयं क्षालितान्तर्मलं पुनः।।२८।।
दीक्षयाऽत्र स्थिता वज्रशिलायां पोथयेत्ततः।
अश्वमन्त्रेण विधिवत् पुनराचमनं चरेत्।।२९।।
अघमर्षणमेतद्धि सर्वपापनिकृन्तनम्।

इस प्रकार से प्रार्थना करने के उपरान्त ब्रह्मचारियों को दीक्षित के विधान से प्रात:कालीन कृत्यों का मानसिक रूप से सम्पादन करना चाहिये। वानप्रस्थियों के लिये शौचादि क्रिया दुगुनी एवं संन्यासियों के लिये विशेषतया चौगुनी कही गई है। गुरुशुश्रूषा में निरत मन्त्रज्ञ को विधिवत् आचमन करके शुद्ध देश में बैठकर प्रातस्तनी सन्ध्या करनी चाहिये। जल में तीर्थों का आवाहन करके मूल मन्त्र से पृथ्वी पर तीन बार कुश के अग्रभाग से उस जल का निक्षेप करके पुन: सात बार अपने मस्तक पर निक्षेप करना चाहिये। फिर बाँयें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से उसे अभिमन्त्रित करके उस जल से तीन बार मूर्द्धा का सिंचन करना चाहिये। फिर गुरु के उपदेशानुसार दिव्य मुद्रा द्वारा इड़ा नाड़ी से उस जल को भीतर खींचकर उससे पुन: भीतर के मल

का प्रक्षालन करना चाहिये। तदनन्तर दाँयें नासाछिद्र से उस जल को बाहर निकालकर उसे काल्पनिक वज्रशिला पर पटक देना चाहिये। पुन: अश्वमन्त्र से विधिवत् आचमन करना चाहिये। यह अघमर्षण समस्त पापों का विनाशक कहा गया है।।२३-२९।।

तोयाञ्जलिं पुनः क्षिप्त्वा सूर्यमण्डलमध्यगाम् ॥३०॥
गायत्रीं भावयेद्देवीं सूर्यासनकृताश्रयाम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशां पुस्तकाक्षकरां स्मरेत् ॥३१॥
कृष्णाजिनाम्बरां ब्राह्मीं ध्यायेद्भावाङ्कितेऽवरे ।
उत्थाय कृष्णगायत्रीं तदभेदशतं जपेत् ॥३२॥
कृष्णाय विद्महेत्युक्त्वा दामोदराय धीमहि ।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् गायत्र्येषा प्रकीर्तिता ॥३३॥
सर्ववेदमयी सर्वपावनी वरदायिनी ।
प्रणवाद्या मुक्तिकरी श्रीबीजाद्या च भोगदा ॥३४॥
हृल्लेखाद्या महासिद्धिकरी सर्ववशङ्करी ।
वाग्भवाद्या च वैदुष्या कामाद्या जनरञ्जनी ॥३५॥
एवं ते कथितो मन्त्रः सन्ध्यामन्त्रफलाप्तये ।
न कुर्याद्यदि मोहेन न दीक्षाफलमाप्नुयात् ॥३६॥

इस अघर्मषण के पश्चात् एक अंजलि जल लेकर उसे सूर्यमण्डल के मध्य उछाल देना चाहिये। फिर ऐसी भावना करनी चाहिये कि देवी गायत्री सूर्य के आसन पर आसीन हैं। उदीयमान सूर्य के समान उनकी आभा है। उनके एक हाथ में पुस्तक और दूसरे में अक्षमाला है। ब्राह्मी गायत्री की भावना कृष्ण मृगचर्म धारण की हुई रूप में करनी चाहिये। तत्पश्चात् श्रेष्ठ भाव से खड़े होकर कृष्णगायत्री का अनवच्छिन्न रूप से सौ बार जप करना चाहिये। 'कृष्णाय विद्महे दामोदराय धीमहि तन्नो विष्णु: प्रचोदयात्' यह कृष्णगायत्री कही गई है। सर्ववेदमयी, सर्वपावनी एवं वरदायिनी यह कृष्णगायत्री आदि में 'ॐ' लगाकर जप करने से मोक्ष देने वाली; श्रीबीज अर्थात् 'श्रीं' लगाकर जप करने से भोग देने वाली; 'ह्रीं' बीज लगाकर जप करने से महान् सिद्धि प्रदान करने वाली तथा सबों को वश में करने वाली; वाग्भवबीज 'ऐं' लगाकर जप करने से वैदुष्य प्रदान करने वाली एवं कामबीज 'क्लीं' लगाकर जप करने से लोकरञ्जन करने वाली हो जाती है। इस प्रकार सन्ध्याफल की प्राप्ति के लिये मन्त्र को मैंने तुमसे कहा। मोहवश इसे जो नहीं करता है, उसे दीक्षा का फल प्राप्त नहीं होता।।३०-३६।।

संक्षेपसन्ध्यामथवा कुर्यान्मन्त्री ह्यशक्तितः ।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने कृष्णं ध्यात्वा मनुं जपेत् ॥३७॥

इति सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं कर्मणां सिद्धिदायकम्।
सन्ध्यायां पतितायां वा गायत्रीं दशधा जपेत् ॥३८॥
यथाप्राणं यथाज्ञानं तथा कुर्यादतन्द्रितः।
यद्यत्कृत्यं मङ्गलार्थं तत्तत्कुर्यात्तथा तथा ॥३९॥
आदर्शदर्शनं कुर्याद्घृतस्पर्शं च कज्जलम्।
सत्पोष्यपोषणार्थं यत्क्षेमं योगं च चिन्तयेत् ॥४०॥
स्नायाच्च कृष्णपूजार्थं नद्यादौ विमले जले।

अथवा अशक्तता की स्थिति में मन्त्रज्ञ साधक को अपने सामर्थ्य के अनुसार संक्षिप्त सन्ध्या करनी चाहिये। सायंकाल, प्रात:काल एवं दोपहर में कृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का जप करना चाहिये। यह तीनों सन्ध्यायें कर्म में सिद्धिदायक कही गई हैं। सन्ध्या से पतित होने पर अर्थात् सन्ध्या नहीं कर पाने पर दश बार गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये। अपनी शक्ति एवं ज्ञान के अनुार निरालस्य होकर मंगल के लिये जो-जो कृत्य कहे गये हैं, उन्हें करना चाहिये। दर्पण देखना चाहिये, घी का स्पर्श करना चाहिये, काजल लगाना चाहिये तथा पोष्य के पोषण के लिये योगक्षेम का चिन्तन करना चाहिये। कृष्ण की पूजा के लिये नदी, तालाब आदि के निर्मल जल में स्नान करना चाहिये।।३७-४०।।

पूजा च पञ्चधा प्रोक्ता तासां भेदान् शृणुष्व मे ॥४१॥
अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च।
इज्या पञ्चप्रकारार्चा क्रमेण कथयामि ते ॥४२॥
तत्राभिगमनं नाम देवतास्थानमार्जनम्।
उपलेपनं निर्माल्यदूरीकरणमेव च ॥४३॥
उपादानं नाम गन्धपुष्पादिचयनं तथा।
इज्या नाम चेष्टदेवपूजनं च यथार्थतः ॥४४॥
स्वाध्यायो नाम नामानुसन्धानपूर्वको जपः।
सूक्तस्तोत्रादिपाठश्च हरेः सङ्कीर्त्तनं तथा ॥४५॥
तत्त्वादिशास्त्राभ्यासश्च स्वाध्यायश्च प्रकीर्तितः।
योगो नाम स्वदेवस्य स्वात्मत्वेनैव भावना ॥४६॥
इति पञ्चप्रकारार्चा कथिता तव सुव्रत!।
सामीप्यसारूप्यसादृश्यसायुज्यफलदा क्रमात् ॥४७॥

पूजा पाँच प्रकार की कही गई है; अत: अब उसके भेदों को मुझसे सुनो। अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या—यह पाँच प्रकार की पूजा होती है। अब मैं क्रम से इनका विवेचन करता हूँ—

१. **अभिगमन**—इसमें देवता के स्थान का मार्जन, उसका उपलेपन एवं निर्माल्य-दूरीकरण आदि कार्य किये जाते हैं।

२. **उपादान**—इसमें गन्ध-पुष्पादि चयन के कार्य आते हैं।

३. **इज्या**—इसमें यथार्थ रूप से देवता का पूजन किया जाता है।

४. **स्वाध्याय**—इसमें मन्त्र के अर्थ का अनुसन्धान करते हुये उसका जप, सूक्त-स्तोत्र आदि का पाठ, हरिकीर्तन एवं तत्त्वादि शास्त्रों का अभ्यास किया जाता है।

५. **योग**—इसमें अपने देवता की स्वयं के रूप में अर्थात् अपने एवं देव में ऐक्य की भावना की जाती है।

इस प्रकार हे सुव्रत! इस पाँच प्रकार की अर्चा का तुमसे कथन किया गया। इससे क्रमशः सामीप्य, सारूप्य, सादृश्य और सायुज्य फल की प्राप्ति होती है।।४१-४७।।

प्रातःकाले मध्याह्ने वा स्नानार्थं तीर्थमाश्रयेत्।
स्नानं तु द्विविधं प्रोक्तमन्तर्बाह्यविभेदतः ।।४८।।
भ्रुविस्थं पुण्डरीकाक्षं मन्त्रमूर्तिं प्रभुं स्मरेत्।
अनन्तादित्यसङ्काशं वासुदेवं चतुर्भुजम् ।।४९।।
शङ्खचक्रगदापद्ममुकुरं वनमालिनम्।
तत्पादोदकजां धारां निपतन्तीं स्वमूर्द्धनि ।।५०।।
चिन्तयेद् ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशन्तीं स्वकां तनुम्।
तया संक्षालयेत् सर्वमन्तर्देहगतं मलम् ।।५१।।
तत्क्षणाद्विरजो मन्त्री जायते स्फटिकोपमः।
इदं स्नानवरं ब्राह्मतीर्थस्नानाधिकं स्मृतम् ।।५२।।
योगिनां स्नानमेतद्धि कथितं परमाद्भुतम्।
बाह्यस्नानं ततः कुर्याद्यथाशास्त्रं विधानवित् ।।५३।।

प्रातः अथवा मध्याह्न स्नान के लिये तीर्थ का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। अन्तः एवं बाह्य के भेद से स्नान दो प्रकार का कहा गया है। भ्रुवों में स्थित पुण्डरीकाक्ष प्रभु का स्मरण मन्त्रमूर्ति के रूप में करना चाहिये। ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि वे चतुर्भुज प्रभु वासुदेव अनन्त सूर्य के समान प्रकाशमान हैं। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म और दर्पण है। गले में वनमाला है। उनके चरणकमल से जलधारा निकलकर मेरे मूर्द्धा पर गिर रही है और वह धारा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करके सारे शरीर में प्रविष्ट होकर शरीर के भीतर स्थित मलों को प्रक्षालित कर रही है। इस प्रकार से चिन्तन करता हुआ वह मन्त्रज्ञ तत्काल ही कलुषरहित होकर स्फटिक के समान निर्मल हो जाता है। इस प्रकार का यह श्रेष्ठ स्नान ब्राह्मतीर्थ में किये गये स्नान से भी श्रेष्ठ कहा

गया है। इस प्रकार यह योगियों द्वारा किया जाने वाला अत्यन्त अद्भुत स्नान कहा गया। इसके पश्चात् शास्त्रों के विधान को जानने वाले को बाह्य स्नान करना चाहिये।।४८-५३।।

मलप्रक्षालनं स्नानं स्वशाखोक्तं समाचरेत्।
मन्त्रस्नानं ततः कुर्यात् कर्मणां सिद्धिहेतवे ।।५४।।
अस्त्रेणालोड्य मृत्स्नां वै त्रिभागां तां तु कारयेत्।
जलेनैकं द्वादशधा निक्षिपेदस्त्रमुच्चरन् ।।५५।।
एकं मूर्द्धादिनाभ्यन्तं तथैव परिलेपयेत्।
शेषं पादादिनाभ्यन्तं तथैव परिलेपयेत् ।।५६।।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।५७।।
आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि!।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ।।५८।।
एवमावाह्य विधिवन्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।
आमन्त्र्याम्भसि संयोज्य सोमसूर्याग्निमण्डलम् ।।५९।।
विचिन्त्य मन्त्री तन्मध्ये निमज्जेन्मूलमुच्चरन्।
उत्थायाचम्य तत्पश्चात् षडङ्गन्याससंयुतम् ।।६०।।
आत्मानं दशधा सिञ्चन्मुद्रया कलशाख्यया।
सप्तकृत्वोऽभिषिञ्चेद्वा मनुना मन्त्रितैर्जलैः ।।६१।।

अपनी शाखोक्त विधि के अनुसार ही मलप्रक्षालन स्नान करना चाहिये। उसके बाद कर्मों की सिद्धि के लिये मन्त्रस्नान करना चाहिये। मिट्टी को अस्त्रमन्त्र 'फट्' से आलोड़ित करने के उपरान्त उसके तीन भाग करके एक भाग को अस्त्रमन्त्र 'फट्' का बारह बार उच्चारण करके जल में फेंक देना चाहिये। उसी प्रकार दूसरे भाग से अपने शरीर में मूर्द्धा से नाभि-पर्यन्त लेप लगाना चाहिये एवं शेष तीसरे भाग का उसी प्रकार पैरों से नाभि-पर्यन्त लेप लगाना चाहिये। तत्पश्चात् जल में निम्न मन्त्र से तीर्थों का आवाहन करना चाहिये—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।
आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि!।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते।।

इस प्रकार से समस्त तीर्थों का आवाहन करके मन्त्रज्ञ स्नानार्थी को मूल मन्त्र से उस जल को विधिवत् अभिमन्त्रित करके उसमें सोम, सूर्य एवं अग्निमण्डल को

योजित कर उस मण्डल के मध्य में मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये डुबकी लगाना चाहिये। तत्पश्चात् जल से बाहर निकलकर आचमन करके षडंग न्यास करके कलशमुद्रा से स्वयं को दश बार सिंचित करना चाहिये अथवा अभिमन्त्रित जल से सात बार अपना अभिसिंचन करना चाहिये।।५४-६१।।

वामे हस्तकृता मुष्टिर्दक्षहस्तेन वेष्टयेत्।
कलशाख्या भवेन्मुद्रा सर्वपापहरा शुभा ॥६२॥
शालिग्रामशिलातोयं तुलसीदलमिश्रितम्।
कृत्वा शङ्खे भ्रामयँस्त्रिर्निक्षिपेन्निजमूर्द्धनि ॥६३॥
शालिग्रामशिलातोयमपीत्वा यस्तु मस्तके।
प्रक्षेपणं प्रकुरुते ब्रह्महा स निगद्यते ॥६४॥

बाँयें हाथ में मुट्ठी बाँधकर दाँयें हाथ से उसे वेष्टित करने से समस्त पापों का हरण करने वाली कल्याणकारिणी कलश मुद्रा बनती है। तुलसीपत्र-मिश्रित जल से शालिग्राम शिला को प्रक्षालित कर उस जल को शंख में डाल कर शंख को तीन बार घुमा-कर उस शंखजल को अपनी मूर्द्धा पर निक्षिप्त करना चाहिये। यदि कोई शालिग्राम शिला के जल का पान न करके अपने मस्तक पर प्रक्षेप करता है तो वह ब्रह्मघाती होता है।।६२-६४।।

विष्णुपादोदकात् पूर्वं विप्रपादोदकं पिबेत्।
विरुद्धमाचरन् मोहादात्महा स निगद्यते ॥६५॥

विष्णुचरणामृत का पान करने के पूर्व जो विप्रपादोदक का पान करता है, वह मोहवश विरुद्ध आचरण करता है और आत्मघाती होता है।।६५।।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे।
ससागराणि तीर्थानि पदे विप्रस्य दक्षिणे ॥६६॥

पृथ्वी में जितने तीर्थ हैं, उतने ही तीर्थ समुद्र में भी हैं। सागरसहित वे सभी तीर्थ विप्र के दाहिने पैर में रहते हैं।।६६।।

ततः संक्षेपतो देवान् मनुष्यांस्तर्पयेत् पितॄन्।
पीडयित्वा पदं चोरू प्रक्षाल्याचम्य वाग्यतः ॥६७॥
धारयेद्वाससी शुद्धे परिधानोत्तरीयके।
अछिन्ने सदृशे शुक्ले आचामेत् पीठसंस्थितः ॥६८॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं चन्दनेन कृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्।
पूर्वं तु कथिता सन्ध्या ध्यायेद्देवीं समाहितः ॥६९॥

श्यामवर्णं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रलसत्कराम्।
गदापद्मधरां देवीं सूर्यासनकृताश्रयाम्॥७०॥
ध्यात्वा जलाञ्जलीन् क्षिप्त्वा तर्पयेत्कृष्णमव्ययम्।
गुरुपंक्तिं पुरा तर्प्य तर्पयेदिष्टदेवताः॥७१॥
नारदं पर्वतं विष्णुं निशठोद्धवदारुकान्।
विष्वक्सेनं च शैनेयं गुरुं च तर्पयेत्त्रिशः॥७२॥
पञ्चविंशतिसङ्ख्या वा दशधा वा त्रिधापि वा।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य श्रीकृष्णं तर्पयाम्यहम्॥७३॥
नमोऽन्तोऽयं मनुः प्रोक्तस्तर्पणे विधितत्परैः।
सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः॥७४॥
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम्।
त्रिनेत्रां वरदां देवीं शूलं च नृकरोटिकाम्॥७५॥
सूर्यमण्डलमध्यस्थां ध्यायन् गायत्रीमभ्यसेत्।

तदनन्तर संक्षेप में देवता, मनुष्य एवं पितरों का तर्पण करना चाहिये। घुटनों और जाँघों को झुकाकर आचमन करना चाहिये। श्वेत और छिद्ररहित वस्त्र धारण करना चाहिये। तत्पश्चात् पीठ पर बैठकर आचमन करके माथे पर चन्दन का ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाकर पूर्वोक्त सन्ध्या करके समाहित चित्त से श्याम वर्ण वाली, चतुर्भुजा, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म से सुशोभित हाथों वाली सूर्य के आसन पर आसीन देवी का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके जलांजलि देकर अव्यय कृष्ण का तर्पण करना चाहिये। सर्वप्रथम गुरुपंक्ति का तर्पण करके फिर इष्टदेवता का तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर नारद, पर्वत, विष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, शैनेय और गुरु का तीन-तीन वार तर्पण करना चाहिये। पच्चीस, दश अथवा तीन बार मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'श्रीकृष्णं तर्पयाम्यहं नमः' कहकर तर्पण करना चाहिये। फिर यति को सायंकाल शुक्ल वर्णा, शुक्ल वस्त्रधारिणी, वृषासनासीना, त्रिनेत्रा, शूल एवं नृमुण्डधारिणी तथा सूर्यमण्डल के मध्य में स्थित वरदा देवी गायत्री का ध्यान करते हुये उसका अभ्यास अर्थात् जप करना चाहिये।।६७-७५।।

ललाटे च गदा कार्या मूर्ध्नि चापं शरस्तथा॥७६॥
नन्दकं चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं भुजद्वये।
शङ्खचक्राङ्कितो विप्रः श्मशाने म्रियते यदि॥७७॥
प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य गौतम।
पूजार्थं जलमादाय सूर्ये तीर्थानि योजयेत्॥७८॥

स्मृत्वा ज्योतिर्मयं विष्णुं गायत्रीं मनसा स्मरेत्।
शतावृत्त्या जपेत्तां तु धर्मकामार्थसिद्धये ॥७९॥
सर्वपापक्षयं याति ज्ञानमुत्पद्यतेऽचिरात्।

ललाट में गदा, मूर्द्धा पर धनुष-बाण, हृदय में नन्दक, दोनों भुजाओं में शंख-चक्र अंकित करना चाहिये। हे गौतम! शंख एवं चक्र अंकित किया हुआ विप्र यदि श्मशान में भी मरण को प्राप्त होता है तो भी उसे वही गति प्राप्त होती है, जो प्रयाग में मरने वाले की होती है। पूजा के लिये जल लेकर उसमें सूर्य से तीर्थों को लाकर योजित करना चाहिये। ज्योतिर्मय विष्णु का स्मरण करके गायत्री का मन ही मन स्मरण करना चाहिये। धर्म, काम एवं अर्थ की सिद्धि के लिये सौ बार गायत्री का जप करना चाहिये; ऐसा करने से सभी पापों का नाश होता है एवं शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है।।७६-७९।।

मूलमन्त्रं हृदि स्मृत्वा यायाद्वै यागमण्डपम् ॥८०॥
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य आचम्य वाग्यतः शुचिः।
सूर्यपूजां ततः कुर्याद्विशेषेण तु दीक्षितः ॥८१॥
पुनर्हस्तौ च पादौ च प्रक्षाल्य विधिना यतिः।
आचमनं ततः कुर्याद्विशेषाद्वैष्णवान्वये ॥८२॥
केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ।
द्वाभ्यामष्टौ च सम्मृज्य द्वाभ्यां मृज्यान्मुखं ततः ॥८३॥
एकेन हस्तं प्रक्षाल्य पादावपि तथैकतः।
सम्प्रोक्ष्यैकेन मूर्द्धानं ततः सङ्कर्षणादिभिः ॥८४॥
आस्यनासाक्षिकर्णाश्च हृन्नाभ्युदरकं भुजौ।
स्पृशेदेवं भवेदेवाचमनं वैष्णवान्वये ॥८५॥
एवमाचमनं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत्।
केशवाद्याः पुरा प्रोक्ता वक्ष्ये सङ्कर्षणादिकान् ॥८६॥
सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः।
पुरुषोत्तमाधोक्षजनृसिंहाश्च तथाऽच्युतः।
जनार्दनोपेन्द्रहरिर्विष्णवो द्वादशेरिताः ॥८७॥

इति गौतमीये महातन्त्रे सप्तमोऽध्यायः

●

हृदय में मूल मन्त्र का स्मरण करके यागमण्डप में प्रवेश करके हाथ-पैरों को धोकर आचमन करके मौन धारण कर पवित्रतापूर्वक दीक्षित को विशेष रूप से सूर्यपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पुनः विधिपूर्वक हाथ-पैरों को धोकर; विशेषतया वैष्णवों को आचमन करते हुये 'ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः'

मन्त्र से तीन बार जल का पान करके दो बार हाथों का प्रक्षालन करना चाहिये। हाथों का आठ बार एवं मुख का दो बार मार्जन करना चाहिये। एक से हाथ धोकर एक से पैरों को भी धोना चाहियें। एक से मूर्द्धा का प्रोक्षण करना चाहिये। तदनन्तर संकर्षण आदि से आस्य, नाक, आंख, कान, हृदय, नाभि, उदर, भुजा का स्पर्श करना चाहिये। इस प्रकार वैष्णवों का आचमन सम्पन्न होता है। इस प्रकार का आचमन करने वाला साक्षात् नारायणस्वरूप हो जाता है। केशव आदि पूर्व में ही कह दिये गये हैं। संकर्षणादि से संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि और विष्णु—इन बारह का ग्रहण किया जाता है।।८०-८७।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के सप्तम अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

अष्टमोऽध्यायः

[वैष्णवों की द्वादश शुद्धि, वृन्दावन आदि का ध्यान, द्वार आदि में नन्द आदि का आवाहन एवं पूजन, भूतोत्सारण, आसनों के फलभेद, पूजाप्रकार, आचार्य-वरण, पूजन, सूत्रन्यास, राशिचक्र, मण्ड़ल-निर्माण, रज के भेद आदि का कथन।]

अथ द्वादशशुद्धिश्च वैष्णवानामिहोच्यते।
गृहोपसर्पणञ्चैव तथानुगमनं हरेः ॥१॥
भक्त्या प्रदक्षिणं चैव पादयोः शोधनं पुनः।
पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः ॥२॥
करयोः पर्वशुद्धीनामियं शुद्धिर्विशिष्यते।
तन्नामकीर्तनं चैव गुणानामपि कीर्त्तनम् ॥३॥
भक्त्या श्रीकृष्णदेवस्य वचसः शुद्धिरिष्यते।
तत्कथाश्रवणं चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम् ॥४॥
श्रोत्रयोर्नेत्रयोर्वापि शुद्धिः सम्यगिहोच्यते।
पादोदकस्य निर्माल्यं माल्यानामपि धारणम् ॥५॥
उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुनः।
आघ्राणं गन्धपुष्पादेर्निर्माल्यस्य तपोधन! ॥६॥
विशुद्धिः स्यादनन्तस्य घ्राणस्यापि विधीयते।
पत्रपुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगार्चितम् ॥७॥
तदेकं पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत्।

अब वैष्णवों के लिये बारह प्रकार की शुद्धि का निरूपण किया जा रहा है। गृहोपसर्पण, अनुगमन, भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा, पादप्रक्षालन, हरिपूजा-हेतु भक्तिपूर्वक पत्र-पुष्प का आनयन, सभी शुद्धियों में विशिष्टस्वरूप दोनों हाथों के पर्वों की शुद्धि, भक्तिपूर्वक कृष्ण के नाम एवं गुणों के कीर्तन से वाक्-शुद्धि, कृष्ण के कथाश्रवण से कर्णशुद्धि तथा उनके उत्सव के अवलोकन से सम्यक् रूप से नेत्रशुद्धि कही गई है। कृष्ण के पादोदक, निमाल्य एवं माला को धारण करने से तथा सम्यक् रूप से नत होकर उन्हें प्रणाम करने से शिर की शुद्धि कही गई है। हे तपोधन! उस भगवान अनन्त के गन्ध-पुष्पादि निर्माल्य को सूँघने से नासिका की शुद्धि कही गई है। इस

लोक में भगवान् कृष्ण के पादयुगल की अर्चना में प्रयुक्त पत्र-पुष्पादि ही एकमात्र पवित्र कहे गये हैं और उनके द्वारा समस्त पदार्थों की शुद्धि करनी चाहिये।।१-७।।

वृन्दावनं ततो ध्यायेत् पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।।८।।
तन्मध्ये स्वर्णभूमिं च ध्यायेन्नवगृहं ततः।
पूर्वद्वारि ततो गत्वा सामान्यार्घं विशोधयेत् ।।९।।
अस्त्रेण शङ्खं प्रक्षाल्य हृन्मन्त्रेण प्रपूरयेत्।
मन्त्रयेत् प्रणवेनैव सामान्यार्घमिदं स्मृतम् ।।१०।।

इस प्रकार से शुद्धि करने के उपरान्त पूर्वोक्त रीति से ही वृन्दावन का ध्यान करना चाहिये। उस वृन्दावन के मध्य में स्वर्णमयी भूमि एवं नूतन गृह का ध्यान करना चाहिये। उसके वाद उस गृह के पूर्व द्वार पर जाकर सामान्य अर्घ्य का शोधन करना चाहिये। अस्त्रमन्त्र (फट्) से शंख को धोकर 'ह्रीं' मन्त्र द्वारा उसे जल से पूर्ण करने के उपरान्त प्रणव (ॐ) के द्वारा उसे अभिमन्त्रित करना चाहिये। इसे ही सामान्य अर्घ्य कहा गया है।।८-१०।।

द्वार्यावाह्य यजेत्तत्र सर्वविघ्नोपशान्तये ।
नन्दः सुनन्दश्चण्डश्च प्रचण्डो बल एव च ।।११।।
प्रबलो भद्रनामा च भूभद्रो विघ्नवैष्णवाः ।
द्वौ द्वौ विष्णोः प्रतिद्वारि पुरतो विनतासुतः ।।१२।।
प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण शोधयेत् ।
ततोऽक्षतान् समादाय दिक्षु नाराचमुद्रया ।।१३।।
प्रक्षिपेदस्त्रमन्त्रेण गृहान्तर्विघ्नशान्तये ।
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।।१४।।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।
भूतसङ्घान् समुत्सार्य दक्षपादपुरःसरम् ।।१५।।
ध्यायन् विष्णुं गृहाभ्यन्तः प्रविशेन्नतकन्धरः ।
यजेत्तत्रैव ब्रह्माणं वास्तुदोषप्रशान्तये ।।१६।।
प्राङ्मुखः संयतात्मा च संविशेद्विहितासने ।
तथा मृद्वासने मन्त्री पटाजिनकुशोत्तरे ।।१७।।
काष्ठासने भवेद्रोगो वंशे वंशक्षयो भवेत् ।
शैलासने च वाग्रोधः पल्लवे मतिविभ्रमः ।।१८।।
धरण्यां दुःखसम्भूतिः पीडनं राजतो भवेत् ।

तदनन्तर समस्त प्रकार के विघ्नों की शान्ति के लिये प्रत्येक द्वार पर नन्द-सुनन्द,

चण्ड-प्रचण्ड, बल-प्रबल, भद्र-भूभद्र—इन युगल वैष्णवविघ्नों को तथा सामने विनतासुत गरुड़ को आवाहित करके आदि में प्रणव एवं अन्त में नमः लगाकर उन सभी के नाममन्त्रों से उनका पूजन करना चाहिये। पूजन-हेतु प्रयोज्य मन्त्र इस प्रकार बनते हैं—ॐ नन्दाय नमः-ॐ सुनन्दाय नमः; ॐ चण्डाय नमः-ॐ प्रचण्डाय नमः; ॐ बलाय नमः-ॐ प्रबलाय नमः; ॐ भद्राय नमः-ॐ भूभद्राय नमः; ॐ गरुडाय नमः। इन्हीं मन्त्रों से उनका शोधन करना चाहिये।

इसके बाद गृह के भीतर स्थित विघ्नों की शान्ति-हेतु अक्षत लेकर नाराचमुद्रा प्रदर्शित करते हुये अस्त्रमन्त्र से दशो दिशाओं में उन अक्षतों को विकीर्ण कर देना चाहिये। इसके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़ते हुये उस स्थान पर अवस्थित भूतों का उत्सारण करना चाहिये—

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिता।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।

इस प्रकार भूतोत्सारण करने के उपरान्त दाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर विष्णु का ध्यान करते हुए कन्धों को झुकाकर गृह में प्रवेश करना चाहिये। वास्तुदोष की शान्ति के लिये वहीं पर ब्रह्मा का पूजन करने के उपरान्त संयतचित्त होकर पूर्व की ओर मुख करके अपने लिये विहित आसन पर अवस्थित होना चाहिये। मन्त्रज्ञ को कुशासन के ऊपर मुलायम कपड़े अथवा कम्बल से बने आसन को स्थापित कर उस पर बैठना चाहिये। लकड़ी के आसन पर बैठने से रोग होता है, बाँस के आसन पर बैठने से वंश का नाश होता है, पत्थर के आसन पर बैठने से वाणी अवरुद्ध होती है एवं पल्लव के आसन पर बैठने से मतिविभ्रम होता है। इसी प्रकार जमीन पर बैठने से अनेक प्रकार के दुःख, पीड़ा एवं राजा से भय उपस्थित होता है।।११-१८।।

**विष्णुः किल पश्चिमास्यः स्वयं पूर्वमुखो भवेत्।।१९।।
गन्धपुष्पादि पत्रादि स्वदक्षे च निवेशयेत्।
दीपावलीं यथैवेच्छा नैवेद्यं पुरतो न्यसेत्।।२०।।
सुवासिताम्बुसम्पूर्णं वामे कुम्भं सुशोभनम्।
पृष्ठदेशे पात्रमेकं करक्षालाय सन्न्यसेत्।।२१।।
पद्मासनं स्वस्तिकं वा आचार्यो विधिना विशेत्।
उर्व्वोपरि विन्यस्येत्प्राज्ञः सम्यक् पादतले उभे।।२२।।
पद्मासनमिदं प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम्।
जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक् पादतले उभे।।२३।।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते।
मङ्गलाङ्कुरपत्राणि चतुर्दिक्षु निवेशयेत्।।२४।।**

आशीर्वाग्भिर्द्विजातीनां वैष्णवं यागमारभेत्।
शिष्यश्च वृणुयाद्भक्त्या आचार्यं भक्तितत्परः ॥२५॥
वासोऽलङ्कारविभवैर्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
ऋत्विजं वृणुयात्तत्र दश पञ्च द्वयं तथा ॥२६॥
पुण्याहं वाचयित्वा च पञ्चघोषपुरःसरम्।
भूतशुद्धिं ततः कुर्यात् सर्वात्मत्वविशुद्धये ॥२७॥
कृताञ्जलिपरो भूत्वा वामे गुरुचयं यजेत्।
गुरुं च परमादिं च परापरगुरुं तथा ॥२८॥
दक्षपार्श्वे गणेशं च मूर्ध्नि देवं विभावयेत्।

पूजन में विष्णु की मूर्ति को पश्चिमाभिमुख रखकर स्वयं पूर्वाभिमुख होकर बैठना चाहिये। गन्ध-पुष्प-पत्रादि को अपने दाहिनी ओर तथा नैवेद्य को सामने रखना चाहिये। दीपों को इच्छानुसार कहीं भी रखा जा सकता है। सुवासित जल से पूरित सुन्दर कलश को बाँयीं ओर स्थापित करना चाहिये एवं पृष्ठदेश में अर्थात् अपने पीछे करप्रक्षालन के लिये एक पात्र स्थापित करना चाहिये। आचार्य को पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन पर विधिपूर्वक आसीन होना चाहिये। दोनों पादतलों को जाँघों के ऊपर रखकर बैठना पद्मासन कहलाता है; यह योगियों के लिये आनन्ददायी कहा गया है। शरीर को सीधा रखते हुये दोनों पादतलों को जाँघों के नीचे रखकर बैठना स्वस्तिकासन कहलाता है। चारो दिशाओं में मंगलांकुर पात्रों को स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणों द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करते हुये वैष्णवयाग का प्रारम्भ करना चाहिये। शिष्य को वित्तशाठ्य का परित्याग करके वस्त्र, आभूषण एवं धन प्रदान करते हुये भक्तिपूर्वक आचार्य का वरण करना चाहिये। इस प्रकार आचार्य-वरण के पश्चात् दश, पाँच या दो ऋत्विजों का भी वरण करना चाहिये। तदनन्तर आचार्य एवं ऋत्विजों द्वारा पुण्याहवाचन एवं पञ्चघोष करते हुये सर्वात्मत्व-विशुद्धि के लिए भूतशुद्धि करनी चाहिये। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर अपने बाँयीं ओर गुरुपंक्ति (गुरु-परमगुरु-परापरगुरु) का यजन करना चाहिये; साथ ही अपने दाहिनी ओर गणेश का पूजन करना चाहिये एवं शीर्ष पर इष्टदेव का विभावन करना चाहिये।।१९-२८।।

ततो मण्डपमध्ये तु स्थण्डिलं गोमयाम्बुना ॥२९॥
उपलिप्य यथान्यायं तस्य मध्ये निधापयेत्।
सूत्रं प्राक् प्रत्यगग्रञ्च विप्राशीर्वचनैः सह ॥३०॥
गुणितेनाभितो मत्स्यो मध्यारभ्य प्रविन्यसेत्।
तन्मध्ये स्थितं याम्यादग्रं सूत्रं निधापयेत् ॥३१॥

ततो मध्ये न्यसेद्धस्तमानमात्रं दिशं प्रति ।
सूत्रेषु मकरान्न्यस्येत्स्पष्टानन्यतमः पुमान् ॥३२॥
सूत्राग्रमकरेभ्यश्च न्यसेत् कोणेषु मत्स्यकान् ।
कोणमत्स्यस्थिताग्राणि दिक्षु सूत्राणि पातयेत् ॥३३॥
ततो भवेच्चतुःकोष्ठं चतुरस्त्रं तु मण्डलम् ।
तत्राग्नि मारुतं सूत्रं नैर्ऋते पञ्च पातयेत् ॥३४॥
प्राग्याम्यवरुणोदीच्यसूत्राग्रमकरेषु च ।
निहिताग्रलग्नं सूत्रं चतुष्कं प्रतिपादयेत् ॥३५॥

तदनन्तर मण्डप के मध्य में स्थित स्थण्डिल को गोबर-पानी से लीपकर ब्राह्मणों के आशीर्वाद के साथ उसमें यथावश्यक पूर्व से पश्चिम तक धागा तानकर सामने गुणित करके मध्य से आरम्भ करके मत्स्य का न्यास करना चाहिये। उसके बीच से दक्षिण तरफ सूत्र तानकर उसके मध्य से प्रत्येक दिशा में हाथ भर लम्बा धागा तानना चाहिये। सूत्रों में मत्स्य का न्यास स्पष्ट रूप में करना चाहिये। सूत्राग्र पर मकरों का एवं कोणों पर मत्स्य का न्यास करना चाहिये। कोणस्थ मकरों के आगे से दिशाओं में सूत्रपात करने से चार कोष्ठों वाला चतुरस्त्र मण्डल बन जाता है। वहाँ अग्नि, वायव्य, नैर्ऋत्य में पाँच सूत्रों का पातन कर पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर के सूत्राग्रों के आगे मकरों से लगाकर चार सूत्रों का पातन करना चाहिये।।२९-३५।।

षट्पञ्चाशत्पदानि स्युरधिकानि शतद्वयात् ।
पदातदोर्योर्त्रिभजेत् पदाग्निक्रमशः सुधीः ॥३६॥
पदः षोडशकैर्मध्ये पद्मं वृत्तं त्रयान्वितम् ।
तैरष्टचत्वारिंशद्भि राशिः स्याद्वीथिशोभिभिः ॥३७॥
सद्वादशैः पदशतैः शोभाख्याः स्युश्चतुष्पदाः ।
चतुष्पदाश्च शोभाः स्युः षट्पदं कोणकं भवेत् ॥३८॥
वृत्तवीथ्यो वा रचयेन्मध्ये सूत्रचतुष्टयम् ।
प्राग्याम्यवरुणोदीच्यं तद्भवेद्राशिमण्डलम् ॥३९॥
कर्णिकायाः केसराणां दलसन्धेर्दलस्य च ।
दलाग्रवृत्तिराशीनां वीथ्या शोभोपशोभयोः ॥४०॥
वृत्तानि चतुरस्त्राणि व्यक्तस्थानानि कल्पयेत् ।
भवेन्मण्डलमूर्द्धोद्ध्र्वे कर्णिका चतुरङ्गुला ॥४१॥
द्व्यङ्गुलाः केसराणि स्युः सन्धिश्च चतुरङ्गुलम् ।
तथा दलानां मानात्स्यादग्रं द्व्यङ्गुलकं भवेत् ॥४२॥

अन्तराले पृथक् वृत्तत्रये द्व्यङ्गुलमुच्यते ।
ततश्च राशिचक्रं स्यात् स्वस्ववर्णविभूषितम् ।।४३।।
राशिमण्डलकैः कुर्यात्षड्भिरष्टभिरेव वा ।
द्वात्रिंशदङ्गुलं ह्येतत् परत्वात्तावदिष्यते ।।४४।।
वृत्तं चक्रं वदन्त्येके चतुरस्रं तु तद्विदः ।
यदि वा वर्तुलमेव स्याच्चक्रं द्वादशराशयः ।।४५।।
ते स्युः पिपीलिकामध्या मातुलुङ्गनिभा अपि ।
चक्रं तु चतुरस्रं चेदस्माद् द्वादशराशयः ।।४६।।
भवेयुः पङ्कजदलनिभा वा कथिता बुधैः ।
तद्बहि रुचिरान् कुर्याच्चतुरः कल्पशाखिनः ।।४७।।
जलजैः स्थलजैश्चापि सुमनोभिः समन्वितान् ।
हंससारसकारण्डशुकभ्रमरकोकिलैः ।।४८।।
मयूरचक्रवाकाद्यैरारूढविटपान्वितान् ।
सर्वर्तुनिर्वृतिकरान् विलोचनमनोहरान् ।।४९।।

इस प्रकार कुल दो सौ छप्पन कोष्ठ बन जाते हैं। कोष्ठ को तीन भाग करके सोलह पदों के मध्य में तीन वृतों से युक्त कमल का निर्माण करने से शोभन वीथियों से युक्त अड़तालीस राशियाँ निर्मित करनी चाहिये। एक सौ बारह पदों से चार शोभा निर्मित करना चाहिये। वह शोभा चतुष्पद होता है एवं कोण षट्पद होता है। वृत्तवीथियों में चार सूत्र पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर तानने से राशिमण्डल बनते हैं। कर्णिका, केसर, दलों की सन्धियों एवं दलों के आगे वृत्तिराशि-वीथियों में शोभा-उपशोभा बनाना चाहिये। वृत्तचतुरस्र के व्यक्त स्थान को कल्पित करने से कर्णिका के ऊपर-नीचे चार अंगुल का मण्डप बन जाता है। दो अंगुल का केसर और चार अंगुल की सन्धि होती है। दलों के मान से दो अंगुल का अग्र होता है। तीनों वृत्तों में अन्तराल दो अंगुल का होता है। उसमें अपने-अपने वर्ण से विभूषित राशिचक्र बनते हैं। छः अथवा आठ राशिमण्डल बनाना चाहिये। इससे अधिक होने से बत्तीस अंगुल अवशिष्ट रह जाता है। वृत्त एवं चक्र को एक ही चतुरस्र मानना चाहिये। यदि यह चक्र वर्तुल होता है तब बारह राशियाँ पिपीलिका अथवा मातुलुंग के समान होती हैं। चतुरस्र चक्र में बारह राशियाँ कमलदल के समान होती हैं। उनके बाहर चार रुचिकर कल्पशाखी वनाकर उन्हें जलज और स्थलज पुष्पों से समन्वित करना चाहिये। उन कल्पशाखियों को हंस, सारस, कारण्डव, शुक, भ्रमर. कोकिल, मोर, चक्रवाक आदि से सेवित सभी ऋतुओं को व्यक्त करने वाले तथा देखने में मनोहर वृक्षों से समन्वित बनाना चाहिये।।३६-४९।।

तद्बहिः पार्थिवं कुर्यान्मण्डलं कृष्णकोणकम्।
मण्डलानि तु तद्देशे राशींस्तानेव कारयेत्॥५०॥
राशावन्यत्र रचयेत् प्रमाणादन्यमण्डलम्।
आवाह्य मण्डलादन्यानर्चयन्त्वन्यदेवताः॥५१॥
उभाभ्यां लभते शापं मन्त्री तरलदुर्मतिः।
कालात्मकस्य देवस्य राशिव्याप्तिमजानता॥५२॥
कृतं समस्तं व्यर्थं स्यादज्ञेन ज्ञानमानिना।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेनन राशीन् साधिपतीन् क्रमात्॥५३॥
अवगम्यानुरूपाणि मण्डलानि च नान्यधीः।
उपचक्रे चार्चयितुं होतुं वा सर्वदेवताम्॥५४॥

उसके बाहर कृष्णकोणक पार्थिव मण्डल का निर्माण करना चाहिये। उस मण्डल के समीप ही अन्य मण्डल एवं राशियाँ बनानी चाहिये। अन्य मण्डलों में अन्य देवों का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये। जो अज्ञ अपने को ज्ञानी समझता हुआ कालात्मक देव की राशिव्याप्ति को नहीं जानता हैं, उसके द्वारा किया गया समस्त कर्म व्यर्थ हो जाता है; अतः प्रयत्नपूर्वक अधिपति-सहित राशियों के स्वरूप को जानने के पश्चात् मण्डल बनाकर ही समस्त देवताओं का उसी मण्डल में अर्चन अथवा हवन करना चाहिये।।५०-५४।।

रजांसि पञ्चवर्णानि पञ्चद्रव्यात्मकानि च।
पीतशुक्लारुणकृष्णश्यामान्येतानि भूतले॥५५॥
हारिद्रं स्यात्तथा पीतं ताण्डुलं च सितं भवेत्।
तथा दोषारजःक्षारसंयुक्तं रक्तमुच्यते॥५६॥
कृष्णं दग्धपुलाकोत्थं श्यामं बिल्वफलादिकम्।
सितेन रजसा कार्या सीमारेखा विपश्चिताः॥५७॥
अङ्गुलोत्सेधविस्तारा प्रशस्ता सर्वकर्मसु।
पीता स्यात्कर्णिका शुक्लपीतरक्ताश्च केसरा॥५८॥
दलान्यब्जस्यान्तरालं श्यामचूर्णेन पूरयेत्।
सितरक्तासितैर्वर्णैर्वृत्तत्रयमुदीरितम्॥५९॥
नानावर्णाः विचित्रा स्युश्चित्राकारश्च वीथयः।
द्वारशोभोपशोभाः स्युः सितरक्तनिशासिताः॥६०॥
राशिचक्रावशिष्टानि कोणान्यन्यानि यानि वै।
पीठपादानि तानि स्युरसितान्यरुणानि वा॥६१॥

अथ वारुणानि च दलानि तथा सन्धिरप्यसितारुणा भवति।
असितारुणाश्च रजसा हि विहितान्यपि बहुलानि कथयन्त्यपरे ।।६२।।

इति गौतमीये महातन्त्रेऽष्टमोऽध्यायः

●

पाँच द्रव्यों से बने पीले, श्वेत, लाल, काले एवं श्याम—इन पाँच रंगों वाले चूर्ण से भूतल पर बने कोष्ठों को पूरित करना चाहिये। पाँच रंगों वाले द्रव्य इस प्रकार होते हैं—हल्दी पीली होती है, चावल श्वेत होता है, क्षारसंयुक्त दोषारज लाल होता है, दग्ध पुलाक का चूर्ण काला होता है एवं विल्वफल आदि का चूर्ण श्याम वर्ण का होता है। श्वेत चूर्ण से सीमारेखा बनानी चाहिये। एक अंगुल ऊंची और एक अंगुल मोटी रेखा सभी कर्मों में प्रशस्त होती है। कर्णिका को पीले चूर्ण से बनाना चाहिये। केसर को श्वेत, पीत एवं रक्त चूर्ण से बनाना चाहिये। कमलदलों के मध्यभाग को श्याम चूर्ण से पूरित करना चाहिये। सफेद, लाल एवं काले चूर्ण से तीनों वृत्तों को बनाना चाहिये। नाना रंगों से विचित्र चित्राकार वीथियों को बनाना चाहिये। द्वारशोभा-उपशोभा को श्वेत, रक्त, पीत एवं कृष्ण चूर्ण से बनाना चाहिये। राशिचक्र से अवशिष्ट अन्य कोण, पीठ, पाद आदि को श्वेत अथवा रक्त चूर्ण से बनाना चाहिये। वारुण दल एवं सन्धि को श्वेत एवं रक्त चूर्ण से बनाना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य-अन्य प्रकार से बनाने की विधियाँ भी अन्य स्थानों पर निर्दिष्ट हैं।।५५-६२।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के अष्टम अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

नवमोऽध्यायः

[पञ्चगव्य से शरीर एवं मण्ड़ल आदि का शोधन, पञ्चगव्य-प्रमाण एवं उसका शोधन, भूतशुद्धि, षट्चक्र-चिन्तन, पच्चीस तत्त्वों का पुष्पों से योजन, प्राणायाम-विधान और उसके माहात्म्य आदि का कथन।]

पञ्चगव्येन तद्देहं मण्डलं च विशोधयेत्।
पलमात्रं दुग्धभागं गोमूत्रं तावदिष्यते ॥१॥
घृतं च पलमात्रं स्याद्गोमयं तोलकद्वयम्।
दधि प्रसृतिमात्रं स्यात्पञ्चगव्यमिति स्मृतम् ॥२॥
अथवा पञ्चगव्यानां समानो भाग इष्यते।
मूलमन्त्रेण सम्मन्त्र्य कुशाग्रेणैव शोधयेत् ॥३॥
तेन सर्वविशुद्धिः स्यात्सर्वपापनिकृन्तनम्।
महान्ति पातकान्येव कृत्वा गव्यं पिबेद्यदि ॥४॥
नाशयेत् पानमात्रेण इत्यूचुर्वेदवादिनः।

आचार्य को पंचगव्य से शिष्य के शरीर एवं मण्डल का शोधन करना चाहिये। पञ्चगव्य को एक पल अर्थात् ६० ग्राम दूध, ६० ग्राम गोमूत्र, ६० ग्राम घी, गोबर २५ ग्राम एवं एक प्रसृति अर्थात् हथेली भर दही मिलाकर बनाना चाहिये अथवा उक्त सभी को बराबर-बराबर भाग में मिलाकर भी पञ्चगव्य बनाया जा सकता है। इसे मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके कुश के अग्रभाग से शोधित करना चाहिये। इस पञ्चगव्य से समस्त प्रकार की शुद्धि होने के साथ-साथ समस्त पापों का विनाश भी होता है। वेदज्ञों का कथन है कि घोर पाप करने के उपरान्त भी यदि कोई पंचगव्य का पान कर लेता है तो उस पञ्चगव्य के पान करने मात्र से ही उसके द्वारा किये गये घोर पाप भी विनष्ट हो जाते हैं।।१-४।।

भूतशुद्धिं ततः कुर्याद्येन पूर्णं फलं लभेत् ॥५॥
ॐ नमः सुदर्शनायेत्युक्त्वास्त्रेण देशिकः।
तालत्रयं संविदध्यादूर्ध्वोर्ध्वं च समाहितः ॥६॥
दिग्बन्धं छोटिकाभिश्च दशभिः कारयेत्सुधीः।
ततस्तेनैव ज्वलितं तेजो रक्षत्विति स्मरेत् ॥७॥

विनिधाय करौ स्वाङ्के उत्तानोपरि चिन्तयेत्।
हूंकारेण समुत्थाय शक्तिं स्वाधारसंस्थिताम् ॥८॥
मूलाधारमथ स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्।
अनाहतं विशुद्धं च आज्ञाचक्रं विचिन्तयेत् ॥९॥
गुदे च ध्वजमूले च नाभौ हृदय एव च।
कण्ठे तथा भ्रुवोर्मध्ये यथाक्रममनुस्मरेत् ॥१०॥
चिन्तयेत् पुनराधारं कनकाब्जं चतुर्द्दलम्।
तन्मध्ये चिन्तयेद्योनिं चन्द्रार्काग्निं समद्युतिम् ॥११॥
तन्मध्ये चिन्तयेन्मन्त्री जीवात्मानं समाहित:।
जवाबन्धूकसदृशं तडित्कोटिसमप्रभम् ॥१२॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
प्रदीपकलिकाकारं कुण्डलिन्या समं तथा ॥१३॥
सुषुम्नावर्त्मना सोऽहमिति मन्त्रेण योजयेत्।
सहस्रारे शिवे स्थाने परमात्मनि देशिक: ॥१४॥

तदनन्तर पूर्ण फल की प्राप्ति के लिये भूतशुद्धि करनी चाहिये। एतदर्थ 'ॐ नम: सुदर्शनाय फट्' मन्त्र से सावधानी-पूर्वक देशिक का प्रोक्षण करके ऊपर-नीचे की ओर तीन ताली बजाते हुये छोटिका मुद्रा में दशो दिशाओं में दिग्बन्धन करना चाहिये। तदनन्तर ज्वलित तेज हमारी रक्षा करे—ऐसा ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने जाँघों पर हाथों को उत्तान रखकर चिन्तन करना चाहिये कि अपने आधार पर स्थित कुण्डलिनी को 'हुं' के उच्चारण से उठाकर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत एवं विशुद्धिचक्र को पार कराते हुए आज्ञाचक्र में ला रहा है। तदनन्तर क्रमश: गुदा, लिंगमूल, नाभि, हृदय, कण्ठ तथा भ्रुवों के मध्य में शक्ति का स्मरण करना चाहिये। इसके बाद पुन: चतुर्दल स्वर्णकमल वाले मूलाधार चक्र के मध्य में चन्द्र-सूर्य-अग्नि के समान ज्योतिर्मय त्रिकोण का चिन्तन करते हुये उस त्रिकोण के मध्य में समाहित चित्त से जीवात्मा का चिन्तन करना चाहिये। वह जीवात्मा अड़हुल एवं बन्धूक के पुष्प के समान वर्ण वाला है। उसकी प्रभा करोड़ों बिजली के समान दीप्तिमान हैं, करोड़ों सूर्यों के समान वह प्रकाशित है, करोड़ों चन्द्रकिरणों के समान शीतल है एवं प्रदीप्त कलिकाकृति वाली कुण्डलिनी के समान है। उस जीवात्मा को 'सोऽहं' का उच्चारण करते हुए सुषुम्णा मार्ग से ले जाकर शिवस्थानस्वरूप सहस्रार में परमात्मा के साथ योजित कर देना चाहिये।।५-१४।।

तत्रैव पञ्चभूतानि संहारक्रमतस्तथा।
वाक्पाणिपादपायूपस्थं वचनादानमेव च ॥१५॥

गतिर्विसर्गानन्दश्रोत्रत्वक्चक्षुरसनाः पुनः ।
नाशा शब्दस्तथा स्पर्शं रूपं च रसगन्धकौ ॥१६॥
तत्त्वानेतानि पञ्चविंशत्पुरुषेण च योजयेत् ।
अहङ्कारं मनोबुद्धिं चित्तं तत्रैव योजयेत् ॥१७॥
बीजभावेन लीनानि सर्वाणि परिचिन्तयेत् ।
धूम्रवर्णं ततो वायुबीजं षड्बिन्दुलाञ्छितम् ॥१८॥
पूरयेदीडया वायुं सुधीः षोडशमात्रया ।
मात्रया च चतुष्षष्ट्या कुम्भयेतं सुषुम्नया ॥१९॥
द्वात्रिंशन्मात्रया मन्त्री रेचयेत् पिङ्गलाख्यया ।
पूरयेदनया चैव सञ्चित्यालीनमारुतम् ॥२०॥
रक्तवर्णं वह्निबीजं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् ।
तेन पूरकयोगेन मात्रया षोडशाख्यया ॥२१॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च निर्दहेत्कुम्भकेन च ।
वामपार्श्वस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम् ॥२२॥
ब्रह्महत्याशिरःस्कन्धं स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् ॥२३॥
तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।
उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम् ॥२४॥
खड्गचर्मधरं क्रूरं क्रुद्धं कुक्षौ विचिन्तयेत् ।
मूलाधारोत्थितेनैव वह्निना निर्दहेच्च तम् ॥२५॥
एवं सन्दह्य परितो द्वात्रिंशन्मात्रया ततः ।
भस्मना सह तं मन्त्री रेचयेत्पिङ्गलाध्वना ॥२६॥
वामनाड्या चन्द्रबीजं कुन्देन्दुयुतसप्रभम् ।
भालेन्दुबीजे संयोज्य ततः षोडशमात्रया ॥२७॥
सुषुम्णाया चतुःषष्टिमात्रया बीजमैन्दवम् ।
ध्यात्वामृतमयीं वृष्टिं पञ्चाशद्वर्णरूपिणीम् ॥२८॥
तया देहं विचिन्त्यैवं मनसा पिङ्गलाध्वना ।
द्वात्रिंशन्मात्रया मन्त्री लंबीजेन दृढं नयेत् ॥२९॥
स्वस्थाने हंसमन्त्रेण पुनस्तेनैव वर्त्मना ।
जीवं तत्त्वानि चानीय स्वस्थाने स्थापयेत्ततः ॥३०॥
इति कृत्वा भूतशुद्धिं मातृकान्यासमाचरेत् ।

वहीं पर संहारक्रम से पञ्चभूतों (पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश), वाक्-पाणि-

पाद-पायु-उपस्थ-वचन-आदान-गति-विसर्ग-आनन्द-श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसना-घ्राण-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धतत्त्वों को पुरुष के साथ संयुक्त कर देना चाहिये; साथ ही वहीं पर अहंकार, मन, बुद्धि एवं चित्त को भी योजित करके ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि वीजरूप में सभी वहीं पर लीन हो गये हैं। तदनन्तर मन्त्रज्ञ को षड्बिन्दु-लांछित धूम्रवर्ण वायुबीज 'यं' से इडा नाडी से सोलह मात्रा से पूरक, सुषुम्णा नाड़ी से चौंसठ मात्रा से कुम्भक एवं पिङ्गला नाड़ी से बत्तीस मात्रा से रेचन करना चाहिये। तदनन्तर दाँयें से पूरक करके ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि वायु वहीं पर लीन हो गया। लाल रंग के त्रिकोण स्वस्तिकान्वित अग्निबीज 'रं' के योग से सोलह मात्रा से पूरक करके चौंसठ मात्रा से कुम्भक करते हुये वाम पार्श्व में स्थित कज्जलवर्ण वाले उस पापपुरुष को, जिसके शिर ब्रह्महत्या, दोनों भुजायें स्वर्णचोरी, हृदय सुरापान एवं कमर गुरुशय्या पर शयनयुक्त हैं तथा उसके दोनों पैर एवं अंग-प्रत्यंग पातकों से, रोम उपपातकों से भरे पड़े हैं, उसकी दाढ़ी और आँखें लाल हैं, वह ढाल एवं तलवार धारण किये हुये है, ऐसे क्रूर एवं क्रुद्ध उस पापपुरुष के मूलाधार से उत्थित अग्नि द्वारा भस्मीभूत होने का चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार उस पापपुरुष को दग्ध करके वत्तीस मात्रा से पिङ्गला नाड़ी से रेचक करना चाहिये। तदनन्तर वाम नाड़ी द्वारा सोलह मात्रा से कुन्द एवं इन्दु-सदृश प्रभावान चन्द्रबीज को भाल से संयुक्त करके सुषुम्णा द्वारा चौंसठ मात्रा से चन्द्रबीज का ध्यान करके पचास वर्णरूपिणी अमृतमयी वृष्टि द्वारा अपने शरीर को आप्लावित होता जानकर मन ही मन पिंगला मार्ग से बत्तीस मात्रा से लं बीज द्वारा दृढ़ करना चाहिये। पुन: हंस मन्त्र से उसी मार्ग से जीवतत्त्वों को लाकर अपने स्थान में स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार भूतशुद्धि करने के उपरान्त मातृकान्यास करना चाहिये।।१५-३०।।

गौतम उवाच

भूतशुद्ध्या वद ब्रह्मन् कस्य शुद्धिः प्रजायते ॥३१॥
नात्मनः सर्वशुद्धीनां करणं स तु कथ्यते ।
न जीवस्य ब्रह्मणा च सदैक्यं तस्य तत्त्वतः ॥३२॥
न देहस्य ह्यनित्यस्य पूतता कस्य कथ्यते ।
मनसो नापि बुद्धेश्च कस्य स्याच्छुद्धिवीक्षणैः ॥३३॥
इत्यादि संशयं छिन्धि त्वं हि ब्रह्मसमः स्वतः ।

गौतम कहते हैं कि हे ब्रह्मन्! यह बतलायें कि भूतशुद्धि द्वारा किसकी शुद्धि होती है। वह न तो आत्मा की समस्त शुद्धियों का असाधारण कारण कहा गया है, न तो उस भूतशुद्धि से जीव एवं ब्रह्म में तत्त्वत: ऐक्य होना कहा गया है, न ही इस अनित्य

शरीर की शुद्धि कही गई है, न तो मन की और न ही बुद्धि की शुद्धि कही गई है। यत: आप स्वयं ब्रह्मा के समान हैं; अत: आप मेरे इस संशय को दूर करने की कृपा करें।।३१-३३।।

नारद उवाच

शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम् ।।३४।।
अव्ययं ब्रह्म संयोगाद्भूतशुद्धिरियं मता ।
अन्तःकरणमध्ये तु ज्योतिरात्मा प्रवर्त्तते ।।३५।।
लिङ्गदेहं तु तं प्राहुर्योगिनस्तत्त्ववेदिनः ।
तस्य शोधनमात्रेण सर्वशुद्धिः प्रजायते ।।३६।।
तदेव विश्वजनकं कारणं जन्मकर्मणाम् ।
तद्वियोगे भवेन्मुक्तिर्नान्यथा जन्मकोटिभिः ।।३७।।
इत्येतत्कथितं सर्वं पुरुषार्थस्य निर्गमे ।
योगाभ्यासयोगेन मन्त्राभ्यासेन नाशयेत् ।।३८।।
भूतशुद्धिं विधायेत्थं योग्यस्तु देशिको मतः ।
न्यासं देहस्य सन्नाहं विदध्यादनुपूर्वशः ।।३९।।
ततः शुद्धिर्मातृकया केशवाद्यानथाचरेत् ।
विष्णुपञ्जरनामानमित्युक्तं क्रमसंग्रहम् ।।४०।।

शरीराकारस्वरूप भूतों का जो शोधन होता है, वही अव्यय ब्रह्म के संयोग से भूतशुद्धि कही गई है। अन्त:करण के मध्य में ज्योति:स्वरूप आत्मा रहता है, उसी को तत्त्वज्ञ योगियों ने लिंगशरीर के नाम से अभिहित किया है। उस लिङ्गशरीर के शोधन करने से सबों की शुद्धि हो जाती है। वह लिङ्गशरीर ही विश्व का जनक और जन्म-कर्म का कारण है, उससे विमुक्त होने पर ही मुक्ति प्राप्त होती है; अन्यथा करोड़ों जन्मों में भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। पुरुषार्थ के निर्गम के लिए यह सब कहा गया है। योगाभ्यास एवं मन्त्राभ्यास से इसका नाश करना चाहिये। इस प्रकार भूतशुद्धि करके देशिक न्यास करने के योग्य हो जाता है। न्यास से देह की रक्षा होती है; अत: उसे आनुपूर्वी क्रम से करना चाहिये। इसके बाद मातृकाशुद्धि, केशवादि न्यास, विष्णुपंजर न्यास आदि करना चाहिये; ऐसा क्रमसंग्रह में कहा गया है।।३४-४०।।

अथार्घ्यस्थापनं कुर्याद्यथावदनुपूर्वशः ।
स्वस्याग्रे चतुरस्रं च मंण्डलं परिचिन्तयेत् ।।४१।।
पुष्पैरभ्यर्च्च्य तं मन्त्री तत्राधारं प्रतिष्ठयेत् ।
मं वह्निमण्डलाय नमो मन्त्रोऽयं तस्य चेष्यते ।।४२।।

वृत्ताकारेण तत्रैव वह्नेर्दशकला यजेत्।
धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ॥४३॥
सुश्रीः स्वरूपा कपिला हव्यकव्यवहाऽपि च।
वह्नेर्दश कलाः प्रोक्ता धर्ममूला हि तत्प्रदाः ॥४४॥

इसके बाद आनुपूर्वी क्रम से अर्घ्यस्थापन करना चाहिये। अपने आगे चतुरस्र मण्डल की कल्पना करके उस स्थान पर फूलों से पूजन करके आधार को स्थापित कर 'मं वह्निमण्डलाय नम:' मन्त्र से उसकी पूजा कर उसी स्थान पर वृत्ताकार रूप में दश वह्निकलाओं का अर्चन करना चाहिये। धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहिनी एवं कव्यवाहिनी—ये दश अग्नि की कलायें कही गईं हैं। ये सभी धर्ममूला एवं धर्मप्रदा होती हैं।।४१-४४।।

शङ्खमस्त्राम्भसा प्रोक्ष्य स्थापयेत्तत्र मन्त्रवित्।
अं अर्कमण्डलाय नमः पूजयेत्सुसमाहितः ॥४५॥
वृत्ताकारेण तत्रैव कला द्वादश पूजयेत्।
कं भं तपिन्यै इत्युक्त्वा खं वं तापनिकां तथा ॥४६॥
गं फमुच्चार्य मेधावी धूम्रां च परिपूजयेत्।
घं पं मरीचिमभ्यर्च्य ङं नं च ज्वलिनीं तथा ॥४७॥
चं धं रुचिं समभ्यर्च्य सुषुम्नां पूजयेद् गुरुः।
जं थं च भोगदां मन्त्री पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥४८॥
झं तं विश्वां समभ्यर्च्य यं णं च बोधिनीं न्यसेत्।
टं ठं धारिणीं तद्वत् च चं डं क्षमां प्रपूजयेत् ॥४९॥
नमोऽन्तेनैव मन्त्रेण चतुर्थी प्रत्ययान्विता।
एवं शङ्खं समभ्यर्च्य कलां सौरीं धनप्रदाम् ॥५०॥

मन्त्रज्ञ को अस्त्रमन्त्र द्वारा जल से शंख को प्रक्षालित करके उस आधार पर स्थापित करके समाहित चित्त होकर 'अं अर्कमण्डलाय नम:' मन्त्र से उसका पूजन करना चाहिये; साथ ही वहीं पर वृत्ताकार में सूर्य की बारह कलाओं की भी इस प्रकार पूजा करनी चाहिये—

कं भं तपिन्यै नम: खं बं तापिन्यै नम:
गं फं धूम्रायै नम: घं पं मरीच्यै नम:
ङं नं ज्वलिन्यै नम: चं धं रुच्यै नम:
छं दं सुषुम्नायै नम: जं थं भोगदायै नम:
झं तं विश्वायै नम: ञं णं वोधिन्यै नम:
टं ढं धारिण्यै नम: चं डं क्षमायै नम:

इस प्रकार शंख में पूजन करने से ये सूर्यकलायें धन प्रदान करने वाली हो जाती हैं।।४५-५०।।

विलोममातृकां जप्त्वा स्वेष्टमन्त्रं तथा सुधीः।
अतीर्थेन जलेनैव पूरयेद्विमलेन च ।।५१।।
ॐकारेणैव मन्त्रेण चन्द्रं तत्र प्रपूजयेत्।
अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः ।।५२।।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा।
पूर्णापूर्णामृता चेति कलाः षोडश कामदाः ।।५३।।
षोडशस्वरयोगेन नमोऽन्तेन प्रपूजयेत्।
तत्राक्षतादिपुष्पाणि सदूर्वाणि विनिक्षिपेत् ।।५४।।
वामेनाच्छाद्य हस्तेन षडङ्गं दक्षहस्ततः।
दशकृत्वो जपेन्मूलं गालिनीं शिखया न्यसेत् ।।५५।।
करौ प्रसार्य चान्योन्यं सम्पुटक्रमयोगतः।
प्रयोज्य दक्षिणाङ्गुष्ठं तथा वामकनिष्ठया ।।५६।।
वामया दक्षिणाङ्गुष्ठं मुद्रेयं गालिनी मता।
अर्घ्यस्य फलदा प्रोक्ता शङ्खस्योपरि चालिता ।।५७।।

विलोममातृका से अपने इष्ट मन्त्र का जप करके अतीर्थ विमल जल से शंख को भरकर उसमें ॐकार मन्त्र से चन्द्रमा की पूजा करने के उपरान्त सोलह चन्द्रकलाओं का पूजन उनके नाममन्त्रों से इस प्रकार करना चाहिये—

अं अमृतायै नमः		आं मानदायै नमः
इं पूषायै नमः		ईं तुष्ट्यै नमः
उं पुष्ट्यै नमः		ऊं रत्यै नमः
ऋं धृत्यै नमः		ॠं शशिन्यै नमः
लृं चन्द्रिकायै नमः		ॡं कान्त्यै नमः
एं ज्योत्स्नायै नमः		ऐं श्रियै नमः
ओं प्रीत्यै नमः		औं अङ्गदायै नमः
अं पूर्णायै नमः		अः पूर्णामृतायै नमः।

ये षोडश कलायें कामदायिनी कही गई हैं। पूजन के पश्चात् वहाँ पर अक्षत, फूल और दूब चढ़ाना चाहिये। बाँयें हाथ से दाहिने हाथ को ढककर दश बार मूल मन्त्र का जप करके गालिनी मुद्रा से शिखा में न्यास करना चाहिये। हथेलियों को फैलाकर एक-दूसरे से मिलाकर दाहिने अँगूठे को बाँयीं कनिष्ठा से मिलाकर तर्जनी एवं मध्यमा का

संयोग करने से शंखोदकादि को शुद्ध करने वाली गालिनी मुद्रा वन जाती हैं। इस मुद्रा को शंख के ऊपर दिखाने से अर्घ्य फलप्रद हो जाता है।।५१-५७।।

गन्धादिभिः समभ्यर्च्य कृष्णाख्यं धाम योजयेत्।
अस्त्रादिभिः सुसंरक्ष्य धेनुयोनिं प्रदर्शयेत्।।५८।।
तद्दक्षिणे तु शङ्खं वा ताम्रवामार्त्तिकं तथा।
पात्रमेकं निधायाथ तथा तोयेन पूरयेत्।।५९।।
ताम्रपात्रं तु विप्रर्षे विष्णोरतिप्रियं मतम्।
तथैव सर्वपात्राणां मुख्यं शङ्खं प्रकीर्तितम्।।६०।।
मृत्पात्रं च तथा प्रोक्तं स्वर्णं वा रजतं तथा।
पञ्चपात्रं हरेः शुद्धं नान्यत्तत्र नियोजयेत्।।६१।।
मुख्यपात्रोद्धृतं तत्र किञ्चिदेव नियोजयेत्।
तेनामृतेन सर्वत्र द्रव्यं मन्त्रमयं भवेत्।।६२।।
ततो धर्मादिभिर्मन्त्री गात्रे पीठानि विन्यसेत्।
गन्धाक्षतैः कुसुमकैः पवित्रैर्जलयोजितैः।।६३।।

गन्धादि से विधिवत् पूजन करके उसे कृष्णधाम में योजित कर देना चाहिये। अस्त्रमन्त्र फट् से रक्षण करके धेनु और योनिमुद्रा दिखलानी चाहिये। उसके दाहिने भाग में शंख, ताम्बा अथवा मिट्टी का पात्र रखकर उसमें जल भरना चाहिये। हे विप्रर्षे! ताम्रपात्र विष्णु को अतिप्रिय है। इसी प्रकार समस्त पात्रों में शंखपात्र को श्रेष्ठ कहा गया है। एवमेव मिट्टी, सुवर्ण और चाँदी के पात्र भी विष्णु की पूजा में शुद्ध कहे गये हैं। इन पाँच पात्रों के अतिरिक्त अन्य किसी पात्र का विष्णुपूजन में उपयोग नहीं करना चाहिये। वहाँ सर्वप्रथम मुख्य पात्र को रखने के उपरान्त ही किसी अन्य पात्र को रखना चाहिये। मुख्य पात्र के अमृतमय जल से सभी द्रव्य मन्त्रमय हो जाते हैं।।५८-६३।।

इति पीठं समभ्यर्च्य ध्यायेन्मन्त्रात्मदेवताम्।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं बिसतन्तुस्वरूपिणीम्।।६४।।
कुण्डलीं त्रिविधां तत्र तथा बीजाक्षरं त्रिधा।
तुरीयां कुण्डलीं मूर्ध्नि वासुदेवं तुरीयकम्।।६५।।
लकारं मूलदेशे च द्रवत्स्वर्णनिभं स्मरेत्।
मूलादिहृदयं यावद्वह्निकुण्डलिनीं तथा।।६६।।
हृदये कामवीजं च सूर्यायुतसमप्रभम्।
सूर्यकुण्डलिनीं तत्र सूर्यकोटिसमप्रभाम्।।६७।।
हृदयाद्दलपर्यन्तं ध्यायेदनाकुलः सुधीः।
भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं मायामिन्दुयुतप्रभाम्।।६८।।

चन्द्रकुण्डलिनीं तद्वत्स्रवदमृतविग्रहाम् ।
बिन्दुनादमयं वासुदेवं बिन्दौ तुरीयकम् ॥६९॥
देशकालाद्यवच्छिन्नं सर्वतेजोमयं स्मरेत् ।
तूर्यकुण्डलिनीं तद्वत्केवलज्ञानविग्रहाम् ॥७०॥
एवं ध्यात्वा पुनर्बीजं सम्पूर्णं मनसा स्मरेत् ।
चिदानन्दमयं स्वच्छमेकात्मकतया गुरुः ॥७१॥
सुधावृष्टिं निपात्याथ तर्पयेत् परदेवताम् ।
ध्यात्वा ध्यात्वा पुनर्ध्यात्वा सहजानन्दविग्रहम् ॥७२॥
बिन्दुस्रुतसुधाभिस्तु तर्पयेच्च पुनः पुनः ।
अन्तर्याग इति प्रोक्तो जीवतो मुक्तिदायकः ॥७३॥
मुनीनां च मुमुक्षूणामधिकारोऽत्र केवलम् ।

इसके वाद मन्त्रज्ञ को पीठ पर धर्मादि का विन्यास कर गन्ध-अक्षत-पुष्प-जल चढ़ाकर पीठ की पूजा करके मन्त्र और आत्मदेवता का ध्यान करना चाहिये। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त विसतन्तु-स्वरूपिणी कुण्डलिनी तीन प्रकार की होती है और बीजाक्षर भी तीन होते हैं। चौथी कुण्डलिनी मूर्द्धा मे रहती है एवं वासुदेव भी तुरीय हैं। मूलाधार में पिघलते हुये सोने के समान चमकदार 'लं' का स्मरण करना चाहिये। मूलाधार से हृदय-पर्यन्त अनाहत तक वह्निकुण्डलिनी रहती है। अनाहत में कामवीज 'क्लीं' हजार सूर्यों की प्रभा से युक्त है। वहाँ पर सूर्यकुण्डलिनी एक करोड़ सूर्यों की प्रभा से युक्त है। हृदय से गला तक स्थित विशुद्धि चक्र में अनाकुल का ध्यान करना चाहिये। भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक 'ह्रीं' हजार चन्द्रों के समान प्रकाश से युक्त है। इसे ही चन्द्रकुण्डलिनी कहते हैं। यह अमृत की वर्षा करती रहती है। वासुदेव बिन्दु-नादमय हैं। बिन्दु तुरीय है। देश-कालादि से रहित केवल ज्ञानविग्रहस्वरूपा सर्वतेजोमय तुर्यकुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके सम्पूर्ण बीज का मन में स्मरण करना चाहिये। गुरु को चिदानन्दमय स्वच्छ एकात्मक परदेवता का ध्यान करके अमृतवर्षा करके तर्पण करना चाहिये। सहजानन्दविग्रह वासुदेव का बार-बार ध्यान करते हुये विन्दु के रूप में चूते हुये अमृत से बार-वार तर्पण करना चाहिये। यह अन्तर्याग जीवितावस्था में ही मुक्ति प्रदान करने वाला होता है। केवल मुनियों और मुमुक्षुओं को ही ऐसा अन्तर्याग करने का अधिकार होता है।।६३-७३।।

अथवा मानसैर्द्रव्यैः प्रकटैश्चापि संयजेत् ॥७४॥
ध्यात्वा हृत्पद्ममध्ये तु वासुदेवं यथोदितम् ।
स्वागताद्यैरुपचरेत् पाद्याद्यैः स्नानभूषणैः ॥७५॥

गन्धपुष्पधूपदीपैर्नैवेद्यविधिना विना ।
पुष्पाञ्जलिं ततो दद्याद् बहुमानान्निवेदयेत् ॥७६॥
अथावाह्य च सम्भूतैः प्रकटैरर्चयेद्विभुम् ।
स्वागताद्यैरुपचारैरात्माभेदेन पूजयेत् ॥७७॥
चन्दनागुरुनिःस्यन्दचर्चिताङ्गः स्वयं गुरुः ।
विष्णुपञ्जरमन्त्रेण तत्तत्स्थानविधानवित् ॥७८॥
रचयेत्तिलकं भक्त्यां प्रदीपकलिकानिभम् ।
पुष्पाञ्जलिं ततः कृत्वा विधिवत्तनुयाद्गुरुः ॥७९॥
तुलसीयुगलं पादद्वये दक्षिणवामके ।
हयारियुगलं पादद्वये गन्धद्वयान्वितम् ॥८०॥
पद्मयुग्मं मूर्ध्नि देशे मूलेन दक्षवामके ।
षड्भिः सर्वतनौ न्यस्येत्पुनः सर्वैश्च सर्वतः ॥८१॥
एवं पञ्चाञ्जलिः प्रोक्तो हरिसान्निध्यकारकः ।

अथवा मानसिक और प्रकट उपचारों से भी पूजन करना चाहिये। हृदयमध्य में स्थित कमल पर पूर्वोक्त रूप में वासुदेव का ध्यान, स्वागत, पाद्य, स्नान, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारों के समर्पण के पश्चात् पुष्पांजलि देकर बहुत मान निवेदित करना चाहिये। तदनन्तर आवाहन करके प्रकट उपचारों से विभु का अर्चन करना चाहिये। स्वागतादि उपचारों को निवेदित करके आत्मा से अभिन्न मानकर पूजा करनी चाहिये। चन्दन एवं अगुरु के लेप से उपलिप्त अंग वाले एवं विष्णुपंजर मन्त्र के विधानों को जानने वाले गुरु को स्वयं निश्चित स्थानों पर भक्तिपूर्वक प्रदीपकलिकाकार तिलक लगाकर पाँच बार विधिवत् पुष्पांजलि प्रदान करते हुये चन्दन एवं अगर से समन्वित दो तुलसीपत्र देव के दक्षिण और वाम पैरों में अर्पित करना चाहिये। दोनों पार्श्वों में दो गन्धद्रय से समन्वित दो हयारिपुष्प एवं मूर्द्धा के दाँयें-बाँयें दो कमलपुष्प मूल मन्त्र बोलकर अर्पित करना चाहिये। छः कमलपुष्पों को षडंगों में अर्पित करके पुनः सर्वाङ्ग में पुष्पार्पण करना चाहिये। यह पाँच पुष्पाञ्जलि हरि का सान्निध्य प्रदान करने वाली कही गई है।।७४-८१।।

श्रीखण्डं दक्षिणे दद्यात्सितपुष्पेण संयुतम् ॥८२॥
वामे तु चन्दनं दद्यात्तथा रक्तेन संयुतम् ।
सर्वपुष्पाञ्जलिं दद्यात् सर्वगन्धमनन्यधीः ॥८३॥
दक्षिणे वासुदेवाख्यं स्वच्छं चैतन्यमव्ययम् ।
वामे च रुक्मिणी नित्या रक्ता रजोगुणान्विता ॥८४॥

तेन सत्त्वरजोरूपं स्वात्मानं चिन्तयेद्गुरुः ।
मूलमन्त्रं जपेद्बुद्ध्या सुषुम्णामूलदेशके ॥८५॥
मन्त्रार्थं तस्य चैतन्यबीजं ध्यात्वा पुनः पुनः ।
उदयादिलयान्तं च मन्त्रमेव समभ्यसेत् ॥८६॥
उदयः शब्दरूपश्च लयश्चार्थः प्रकीर्तितः ।
ज्ञातृज्ञानविभागेन तन्मयो भव गौतम! ॥८७॥
मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् ।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः ॥८८॥
एवं ते कथितं सम्यक् त्रिविधं यजनक्रमम् ।
यान् कृत्वा सम्प्रदानेन मन्त्री वाञ्छितमश्नुते ॥८९॥

श्वेत पुष्प से युक्त श्रीखण्ड चन्दन हरि के दाँयीं ओर अर्पित करना चाहिये एवं बाँयीं ओर रक्त पुष्पों से युक्त रक्त चन्दन समर्पित करना चाहिये। तदनन्तर अनन्य मन से समस्त गन्धों से समन्वित पुष्पांजलि प्रदान करनी चाहिये। दक्षिण भाग में स्वच्छ चैतन्य वाले अव्यय वासुदेव रहते हैं एवं वाम भाग में नित्य रक्तवर्णा रजोगुणमयी रुक्मिणी रहती हैं। इसलिये गुरु को सत्त्व-रजोरूप में स्वयं का चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तार बुद्धि से मूल मन्त्र का जप मूलाधार के सुषुम्ण में करना चाहिये। जपकाल में मन्त्र के अर्थ एवं उसके चैतन्य बीजों का ध्यान बार-बार करते रहना चाहिये। इस प्रकार उदय से लय-पर्यन्त मन्त्र का अभ्यास करना चाहिये। यहाँ उदय शब्दरूप है और लय का तात्पर्य अर्थ से है। अत: हे गौतम! ज्ञातृ-ज्ञानविभाग द्वारा तन्मय हो जाना चाहिये। मन का संहरण, शौच, मौन, मन्त्रार्थ का चिन्तन, अव्यग्रता एवं अनिर्वेदता— ये सभी जपरूप सम्पत्ति के कारण कहे गये हैं। इस प्रकार त्रिविध यजनक्रम को मैंने सम्यक् रूप से तुमसे कहा; जिन्हें हरि के लिये करके मन्त्रज्ञ वाञ्छित फल को प्राप्त करता है।।८२-८९।।

अथ मण्डलमध्ये तु पूजनं बाह्यगोचरम् ।
आरभेत् प्रकटैर्द्रव्यैर्नानारससुविस्तरैः ॥९०॥
पाद्यार्घ्याचमनीयानि पात्राणि च स्वदक्षिणे ।
संस्थाप्य च तद्द्रव्यैः पूरितानि च देशिकः ॥९१॥
अर्घ्यस्य त्रीणि पात्राणि पाद्यस्यापि त्रयं भवेत् ।
तथैवाचमनीयानि पात्राणि च विभागशः ॥९२॥
तथाकरणदौर्बल्यादेकमेकं प्रशस्यते ।
पूरयेद्विधिना मन्त्री मण्डलं शुभ्रतण्डुलैः ॥९३॥

शुद्धैरेवाक्षतैः सम्यग्यावत्पङ्कजमण्डलम् ।
कुशान् विस्तार्य तत्रैव पङ्कजं विष्टरान्वितम् ॥९४॥
पुष्पाणि च विकीर्याथ कुम्भस्थापनमाचरेत् ।
हैमं रौप्यं ताम्रमयं मार्त्तिकं वा स्वशक्तितः ॥९५॥
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कृतेऽनिष्टमवाप्नुयात् ।
द्वात्रिंशदङ्गुलं कुम्भं विस्तारोन्नतिशालिनम् ॥९६॥

अव इसके वाद वाह्य रूप से दृगोचर होने वाले पूजन का मण्डल के मध्य भाग में आरम्भ करना चाहिये। यह पूजन नाना प्रकार के प्रकट उपचारों से विस्तारपूर्वक करना चाहिये। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय पात्रों को अपने दाँयें भाग में स्थापित करके तत्तत् द्रव्यों से पूरित करना चाहिये। अर्घ्य एवं पाद्य दोनों के तीन-तीन पात्र होने चाहिये। इसी प्रकार आचमनीय पात्रों को भी विभागशः रखना चाहिये। ऐसा करने में असमर्थ होने पर एक ही पात्र से सभी कर्म भी किये जा सकते हैं। मन्त्रज्ञ को विधिपूर्वक शुभ्र तण्डुल के शुद्ध अक्षतों से सम्यक् रूप से मण्डल को पूरित करना चाहिये। वहीं पर कुशों को बिछाकर फूलों को बिखेर कर अपनी शक्ति के अनुरूप सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा मिट्टी से निर्मित कुम्भ का स्थापन करना चाहिये। इसमें वित्तशाठ्य नहीं करना चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से अनिष्ट होता है। कुम्भ का विस्तार और उसकी ऊँचाई बत्तीस अंगुल होनी चाहिये।।९०-९६।।

षोडशद्वादशाङ्गुलमतो न्यूनं न कारयेत् ।
पुण्यस्त्रीनिर्मितैः सूत्रैर्विधिवत्त्रिगुणीकृतैः ॥९७॥
तेन संवेष्ट्य परितो यथा न क्षरते क्वचित् ।
भग्ने मृत्युः साधकस्य क्षरणे चापदां पदम् ॥९८॥
तस्माद्दोषं परिज्ञाय कुर्यात् सर्वमतन्द्रितः ।
प्रक्षाल्यान्तरमन्त्रेण गन्धैः परिमलान्वितम् ॥९९॥
वेदविद्भिर्द्विजैः सार्द्धं स्थापयेत्तारमुच्चरन् ।
दुग्धवृक्षत्वचां तोयैरथ चाप्यक्षरौषधैः ॥१००॥
विष्णुं गन्धाक्षतैर्वाथ तीर्थादिवाथ पूजयेत् ।
चन्दनागुरुह्रीबेरकुष्ठकुङ्कुमरोचनाः ॥१०१॥
जटामांसीत्युशीरञ्च विष्णोर्गन्धाष्टकं स्मृतम् ।
गन्धाष्टकमिदं हृद्यं विष्णोः सान्निध्यकारकम् ॥१०२॥

सोलह अथवा वारह अंगुल से कम विस्तृत कुम्भ स्थापित नहीं करना चाहिये। धार्मिक स्त्री द्वारा निर्मित धागे को त्रिगुणित करके उससे कुम्भ को इस प्रकार वेष्टित करना चाहिये कि धागे खुलें नहीं; क्योंकि धागे के टूटने पर साधक की मृत्यु होती

हैं और खुल जाने पर आपदायें आती हैं। इसलिये दोषों को जानकर तन्द्रारहित होकर कार्य करना चाहिये। मन्त्र से कुम्भ के आन्तरिक भाग को सुगन्धित जल से धोकर वेदवेत्ता ब्राह्मणों के साथ 'ॐ' का उच्चारण करते हुए कुम्भ को स्थापित करना चाहिये। दुग्ध-वृक्ष की छाल या वर्णौषधि के जल से या गन्धाक्षतपूर्ण तीर्थजल से विष्णु का पूजन करना चाहिये। चन्दन, अगर, ह्रीबेर, कूठ, कुमकुम, गोरोचन, जटामांसी और उशीर—इनको विष्णुगन्धाष्टक कहा गया है। विष्णु का प्रिय यह गन्धाष्टक विष्णु का सान्निध्य प्रदान करने वाला होता है।।९७-१०२।।

वह्निरूपमथाधारं कलाभिः सह पूजयेत्।
तथा सूर्यमयं कुम्भं तत्कलाभिः प्रपूजयेत्।।१०३।।
जलं सोममयं तद्वत्कलाभिश्च समर्चयेत्।
तेजस्त्रयमिदं प्रोक्तं जलं चात्र तदात्मकम्।।१०४।।
विलोममातृकावर्णैः सर्वत्र पूरणं स्मृतम्।
तथा मूलं समुच्चार्य पूरयेद्विगतामयः।।१०५।।
तीर्थमन्त्रेण तीर्थानि योजयेत्सूर्यमण्डलात्।
बृहच्छङ्खं समुत्थाप्य स्वपुरोभागमग्रतः।।१०६।।
तत्राधारं प्रतिष्ठाप्य पूजयेद्वह्निमण्डलम्।
ततः शङ्खं प्रतिष्ठाप्य सूर्यात्मकमथार्चयेत्।।१०७।।
प्रदक्षिणक्रमेणैव कलाः सर्वत्र पूजयेत्।
विलोममातृकां जप्त्वा तथा मन्त्रं प्रपूरयेत्।।१०८।।
क्वाथोदकैर्वा दुग्धैर्वा पूर्वोक्तैर्वा प्रपूजयेत्।
तेजस्त्रयकलाः पूज्याः प्राणस्थापनपूर्वकम्।।१०९।।

जिस पर पात्र रखा जाता है, वह आधार अग्निरूप होता है; इसलिये आधार की पूजा अग्नि की दश कलाओं के द्वारा की जाती है। कुम्भ सूर्यस्वरूप होता है; अतः उसकी अर्चना सूर्य की बारह कलाओं के द्वारा होती है। इसी प्रकार चन्द्रस्वरूप जल की पूजा सोलह चन्द्रकलाओं द्वारा की जाती है। अग्नि-सूर्य-चन्द्र को तेजःस्वरूप कहा जाता है; अतः उक्त कुम्भ-स्थित जल भी तीनों के तेजःस्वरूप हो जाता है। क्षः से अं तक विलोम मातृकावर्णों से कुम्भ में जल भरा जाता है। मूल मन्त्र बोलकर विगतस्मय होकर कुम्भ में जल भरना चाहिये। सूर्यमण्डल से तीर्थों को तीर्थमन्त्र से आवाहित करके उसमें योजित करना चाहिये। बड़े शंख को उठाकर अपने सामने आगे रखकर वहीं पर आधार को प्रतिष्ठापित कर उसे वह्निमण्डल से पूरित करके उस शंख को उस आधार पर प्रतिष्ठापित करके सूर्यकलाओं से उसकी पूजा करनी चाहिये। प्रदक्षिणक्रम से ही सर्वत्र कलाओं की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर विलोममातृका का

जप करके मूल मन्त्र से पूजन करके क्वाथ जल से या दूध से या पूर्वोक्त द्रव्यों से पूजन करना चाहिये। प्राण-प्रतिष्ठा करके तेजस्त्रय की कलाओं से अर्चना करनी चाहिये।।१०३-१०९।।

आवाहनादिकं कृत्वा कला एकैकशः क्रमात्।
सम्पूज्य विधिवद्विद्वान् देवसान्निध्यहेतवे ।।११०।।
प्रणवांशोद्भवा सम्यक् कलास्तत्र प्रपूजयेत्।
स्थापनान्तेषु संयोज्य गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ।।१११।।
एकैकमृक्पठन् याजी तज्जलं तत्र निक्षिपेत्।
पाथस्तेजोमयं तत्र योजयेद् गुरुसत्तमः ।।११२।।
प्रथमं प्रकृतेर्हंसः प्रतद्विष्णुरनन्तरम्।
त्र्यंबकं च तृतीये स्यात्तद्विप्रायश्चतुर्थकम् ।।११३।।
विष्णुर्योनिः कल्पयतु पञ्चमं परिकीर्तितम्।
ऋक्पञ्चकमिदं प्रोक्तं प्रणवार्णस्वरूपकम् ।।११४।।
स्वरस्य पञ्चभेदेभ्यः पञ्चाशद्वर्णकाः कलाः।
सृष्टी ऋद्धिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः स्थिरा ।।११५।।
स्थितिः सिद्धिरिति प्रोक्ता कचवर्गगताः क्रमात्।
अकाराद् ब्रह्मणोत्पन्नास्तप्तचामीकरप्रभाः ।।११६।।
एताः करधृताक्षस्रक्पङ्कजद्वयकुण्डिकाः।
जरा कपालिनी शान्तिरीश्वरी रतिकामिके ।।११७।।
वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा स्युष्टुतवर्गगाः।
उकाराद्विष्णुनोत्पन्नास्तमालदलसन्निभाः ।।११८।।
अभीतिदरचक्रेष्टबाहवः परिकीर्तिताः।
तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्री क्षुत्क्रोधिनी क्रिया ।।११९।।
उत्कारी मृत्युरेताः स्युः कथिताः पयवर्गजाः।
रुद्रेण मार्णादुत्पन्नाः शरच्चन्द्रनिभाः प्रभाः ।।१२०।।
उद्वहन्त्योभयं शूलं कपालं बाहुभिर्वरम्।
ईश्वरेणोदिता बिन्दोः पीता श्वेतारुणा सिता ।।१२१।।
अनन्ता च षवर्गस्था जवाकुसुमसन्निभाः।
अभयं हरिणं टङ्कं दधाना बाहुभिर्वरम् ।।१२२।।
निवृत्तिः सप्रतिष्ठा स्याद्विद्या शान्तिरनन्तरम्।
इन्धिका दीपिका चैव रेचिका मोचिका परा ।।१२३।।
सूक्ष्माऽमृता तथा ज्ञानामृता वाप्यायनी तथा।
व्यापिनी व्योमरूपाः स्युरनन्ताः स्वरशक्तयः ।।१२४।।

सदाशिवेन संज्ञाता नादादेताः सितत्विषः ।
अक्षस्त्रक्पुष्पगुणककपालवरतर्जनी ॥१२५॥

विद्वान् को देवता का सान्निध्य प्राप्त करने के लिये क्रमशः एक-एक कला का आवाहन करके उनका विधिवत् पूजन करना चाहिये। फिर वहीं पर प्रणव के अंश से उद्भूत कलाओं का भी सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये। स्थापना के बाद मातृकाओं के साथ गन्धाक्षत-पुष्प से पूजा कर एक-एक ऋङ् मन्त्र का पाठ करके याजी को जल का निक्षेप करना चाहिये एवं गुरु को उसमें तेजोमय पाथ को योजित करना चाहिये। प्रकृतेर्हंसः, प्रतद्विष्णुं, त्र्यम्बकं, तद्विप्राय एवं विष्णुर्योनिं—इन पाँच मन्त्रों को ऋक्पञ्चक कहा जाता है और ये प्रणवस्वरूप होते हैं। स्वर के पाँच भेदों से कला पचास वर्णमयी होती हैं। कवर्ग-चवर्ग के वर्ण क्रमशः सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिर, स्थिति एवं सिद्धिरूप कहे जाते है। तप्त स्वर्णसदृश आभा वाले अकाररूप ब्रह्मा से उत्पन्न इन सबके हाथों में अक्षमाला, दो कमल और कुण्डिका रहती है। टवर्ग और तवर्ग के वर्णो की शक्तियों के नाम जरा, कपालिनी, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति एवं दीर्घा हैं। उकारस्वरूप विष्णु से उत्पन्न इनका वर्ण तमालपत्र के समान होता है और इनके हाथों में अभय, शंख, चक्र एवं इष्ट रहते हैं। पवर्ग और यवर्ग के वर्णों की शक्तियों के नाम तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्री, क्षुत्, क्रोधिनी, क्रिया, उत्कारी और मृत्यु हैं। मकारस्वरूप रुद्र से उत्पन्न ये शक्तियाँ शरत्कालीन चन्द्र की आभा वाली हैं और इनके हाथों में अभय, शूल, कपाल एवं वर होता है। बिन्दु-स्वरूप ईश्वर से उत्पन्न षवर्ग की शक्तियाँ पीता, श्वेता, अरुणा, सिता एवं अनन्ता हैं। इनका वर्ण अड़हुल के फूल के समान है और इनके हाथों में अभय, हरिण, टंक एवं वर विद्यमान रहते हैं। निवृत्ति, सप्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, अमृता, ज्ञानामृता, आप्यायनी, व्यापिनी, व्योमरूपा आदि स्वर की अनन्त शक्तियाँ हैं। नादरूप सदाशिव से उत्पन्न ये सभी श्वेत वर्ण वाली हैं और इनके हाथों में अक्षमाला, पुष्प, गुणक, कपाल, वर एवं तर्जनी रहती है।।११०-१२५।।

तत्तत्कलाः समावाह्य कृत्वा प्राणस्य संयमम् ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैस्तस्यान्ते जलमर्पयेत् ॥१२६॥
कुम्भे तेजस्त्रय कला अष्टत्रिंशज्जपस्ततः ।
जपेत् कालाश्च पञ्चाशत्प्रणवांशसमुद्भवाः ॥१२७॥
पुनः पञ्च ऋग्जप्त्वा मूलमन्त्रं जपेत्ततः ।
चतुर्णवतिमन्त्रोऽयं देवसान्निध्यकारकः ॥१२८॥

नवरत्नं तद्वदेव निक्षिपेन्मातृकां जपन् ।
नववर्गमयी चाधो नवरत्नं तदात्मकम् ॥१२९॥
वज्रमौक्तिकपुष्पाह्वविद्रुमं पद्मरागकम् ।
नीलो मरकतं चैव माणिक्यं स्वर्णमेव च ॥१३०॥
नवरत्नमिति प्रोक्तं सर्वदेवाश्रयं महत् ।
स्थापयेत्तन्मुखे मन्त्री चषकं फलसंयुतम् ॥१३१॥
विष्टरं तन्मुखे दत्त्वा दत्त्वा च पञ्चपल्लवम् ।
शुद्धेन क्षौमयुग्मेन निर्मलेनांशुकेन वा ॥१३२॥
वेष्टयेद्विधिना मन्त्री सर्वाश्चर्यं यथा भवेत् ।
बहुमालां ततो दद्याद्गन्धं च सुमनोहरम् ॥१३३॥
हरिमावाहयेत्तत्र छायायां कल्पशाखिनः ॥१३४॥

इति श्रीगौतमीये महातन्त्रे नवमोऽध्यायः

●

वर्णों की तत्तत् कलाओं का आवाहन एवं प्राणप्रतिष्ठा करके गन्ध-अक्षत-पुष्प आदि से उनका पूजन करके अन्त में जल समर्पित करना चाहिये। तदनन्तर कुम्भ में तेजस्त्रय की अड़तीस कलाओं का जप करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रणवांश से उत्पन्न पचास कलाओं का जप करके पुन: पाँच ऋचाओं का जप करने के बाद मूल मन्त्र का जप करना चाहिये। ये चौरानबे मन्त्र देवता का सान्निध्य प्रदान करने वाले होते हैं। उसी प्रकार कुम्भ में मातृकाजप से नवरत्न प्रक्षिप्त करना चाहिये। कुम्भ के अधोभाग के नव वर्गमय होने के कारण उन्हीं का स्वरूप नवरत्न होता है। नव रत्नों में हीरा-मोती-पुखराज-मूँगा-पद्मराग-नीलम-मरकत-माणिक्य और स्वर्ण आते हैं। ये सभी समस्त देवताओं के आश्रयस्वरूप होते हैं। तदनन्तर उस कुम्भ के मुख पर फलयुक्त चषक रखकर उसके मुख पर कुश डालकर पञ्चपल्लव डालने के उपरान्त दो शुद्ध रेशमी या निर्मल वस्त्र से उस कुम्भ को इस प्रकार वेष्टित करना चाहिये कि वह आश्चर्यजनक प्रतीत हो। तत्पश्चात् बहुत प्रकार की मालाओं और गन्ध से उसे मनोहर बनाना चाहिये। तदुपरान्त कल्पशाखी को छाया में विष्णुस्वरूप कृष्ण का आवाहन करना चाहिये।।१२६-१३४।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के नवम अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

दशमोऽध्यायः

[तेज एवं कुण्ड़लिनी का मेलन, कुण्ड़-मध्य में आवाहन कर भगवान् का पूजन, शालग्राम की प्रशंसा, कृष्णप्रतिमा का निर्माण, प्रतिमा के भेद, वैष्णव-पुष्प, श्रीकृष्ण की आठो पटरानियों के वेश-भूषादि, बलभद्र-सुभद्रा का पूजन, आठो निधियों में इन्द्रादि का पूजन, श्रीकृष्ण का ध्यान, मुद्रा-निरुक्ति, मुद्राभेद आदि का कथन।]

अथ पुष्पाञ्जलिकरः समादाय नभस्वतः।
हृत्पद्मसंस्थितं तेजः कुण्डल्या सह मेलयेत्॥१॥
चिदानन्दमयं शुद्धं सर्वतेजोमयं स्मरन्।
षट्चक्रभेदनेनैव उन्मन्या सह योजयेत्॥२॥
जीवानन्दमयं तत्तु प्राप्तमैश्वर्यमद्भुतम्।
आराध्य मानसैर्द्रव्यैर्वहन्नासापुटक्रमात्॥३॥
करस्थमातृकाम्भोजे चैतन्यं योजयेत्ततः।
कुम्भमध्ये मन्त्रमूर्तिमावाह्य परिपूजयेत्॥४॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सर्वसत्त्वहृदि स्थितः।
सर्वत्र सर्वग ब्रह्मन् कृपया सन्निधो भव॥५॥
मन्त्रेणानेन संस्थाप्य तत्तन्मुद्राः प्रदर्शयेत्।

हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर आकाश के समान हृदयकमल में संस्थित तेज का कुण्डलिनी के साथ मेलन कर देना चाहिये। चिदानन्दमय शुद्ध समस्त तेज:स्वरूप का स्मरण करते हुये षट्चक्रों का भेदन कराते हुए उन्मनी के साथ उसे जोड़ देना चाहिये। ऐसा करने से वह जीवानन्दमय होकर अद्भुत ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है। तदनन्तर उसकी मानसिक पूजा करके प्रवहमान नासापुट से उस चैतन्य को बाहर लाकर करस्थ मातृकापद्म के साथ संयुक्त कर देना चाहिये। कुम्भमध्य में मन्त्रमूर्ति का आवाहन करके पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् 'कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सर्वसत्त्वहर्दि स्थित:। सर्वत्र सर्वग ब्रह्मन् कृपया सन्निधो भव॥' मन्त्र से देवता का स्थापन करके आवाहनी आदि तत्तत् मुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिये॥१-५॥

ऊर्ध्वाञ्जलिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत्॥६॥

सेयं तु विपरीता स्यान्मुद्रा स्थापनकर्मणि।
बाह्वङ्गुष्ठद्वये मुष्टी मुद्रा स्यात् सन्निधापनी ॥७॥
अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव मुद्रा स्यात् सन्निरोधिनी।
अन्योन्यतर्जनीयुग्मभ्रमणादवगुण्ठनी ॥८॥
आवाह्य पञ्चमुद्राभिः प्राणस्थापनमाचरेत्।
पाशाङ्कुशपुटाशक्तिस्ततो हंसमनुं वदेत् ॥९॥
कृष्णस्य प्राणा इह प्राणाः कृष्णस्य जीव इह स्थितः।
तस्य सर्वेन्द्रियाणि च वाङ्मनश्चक्षुरित्यथ ॥१०॥
इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहया युतः।
अयं प्राणमनुः प्रोक्तः सर्वजीवप्रदायकः ॥११॥
अनेन तु विहीना ये निर्जीवा मानवो मताः।
रहस्यं चास्य गुरुतस्तन्त्रतो ज्ञानवैभवात् ॥१२॥
किं न सिद्ध्यन्ति विप्रर्षे देशिकस्य न चान्यथा।
मातृकां केशवाख्यां च तत्त्वसन्न्यसनेन वै ॥१३॥
कराङ्गदशतत्त्वानां न्यसनात्सन्निधिर्भवेत्।
सर्वात्मा सर्वगो देवो मण्डलादधितिष्ठितः ॥१४॥
शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च।
नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवलभूतले ॥१५॥

ऊर्ध्वाञ्जलि को ऊपर-नीचे करने से **आवाहनी** मुद्रा बनती है और इसी को उलट देने से **स्थापनी** मुद्रा बन जाती है। मुट्ठियों को सटाकर उन पर अंगूठों को रखने से **सन्निधापनी** मुद्रा बनती है एवं मुट्ठियों को सटाकर अंगूठों को उसके अन्दर करने से **सन्निरोधनी** मुद्रा बन जाती है। बाँयें हाथ की तर्जनी को उलटा और दाँयें हाथ की तर्जनी को सीधा रखकर अधोमुख घुमाने से **अवगुण्ठनी** मुद्रा होती है। इन पाँच मुद्राओं से आवाहन करके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्राण-प्रतिष्ठा का मन्त्र इस प्रकार है—'आं ह्रीं क्रों हंसः श्रीकृष्णस्य प्राणा इह प्राणाः कृष्णस्य जीव इह स्थितः। तस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुरिहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।' यह प्राणमन्त्र सबमें जीवत्व प्रदान करने वाला होता है। प्राणविहीन मानव निर्जीव होते हैं। इस रहस्य को गुरु से जानकर तन्त्रों में स्थित ज्ञानरूप सम्पत्ति से देशिक क्या सिद्ध नहीं कर सकता? अर्थात् सबकुछ सिद्ध कर सकता है। यह कथन अन्यथा नहीं है। केशव-मातृकान्यास, तत्त्वन्यास, करन्यास, अंगन्यास, दश तत्त्वन्यास करने से उस देवता का सान्निध्य प्राप्त होता है और सर्वात्मा सर्वग देव मण्डल में अधिष्ठित हो जाते हैं। देवता की पूजा केवल भूमि पर नहीं करनी चाहिये; अपितु शालग्राम शिला में, यन्त्र में, मण्डल में अथवा मूर्त्ति में ही हरि की नित्य पूजा करनी चाहिये।।६-१५।।

गण्डक्याश्चैव देशे च शालग्रामस्थलं महत्।
पाषाणं तद्भवं यत्तत् शालग्राममिति स्मृतम्॥१६॥
शालग्रामशिलास्पर्शात् कोटिजन्माघनाशनम्।
किं पुनर्यजनं तत्र हरिसान्निध्यकारकम्॥१७॥
शालग्रामैकयजनाच्छतलिङ्गफलं लभेत्।
बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि कृष्णशिलां लभेत्॥१८॥
गोष्पदेन च चिह्नेन जनुस्तेन समाप्यते।
कामक्रोधादिदोषोत्थसर्वदुःखनियन्त्रणात् ॥१९॥
चक्रमित्याहुरेतस्मिन्देवः प्रीणाति पूजितः।
पद्ममष्टपलाशं च चतुरस्रं सुलक्षणम्॥२०॥
चतुर्द्वारसमायुक्तं कामगर्भितकर्णिकम्।
सामान्यमन्त्रमुद्दिष्टमष्टादशाक्षरं शृणु॥२१॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारं पद्ममष्टदलान्वितम्।
षट्कोणमध्ये कामाख्यं सप्तदशार्णवेष्टितम्॥२२॥
षडक्षरं मनुवरं षट्कोणे विलिखेत्ततः।
एतद्यन्त्रं महाभाग कृपया कथितं तव॥२३॥
अस्य विज्ञानमात्रेण कृष्णात्मा साधको भवेत्।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं विश्वं विजृम्भते॥२४॥
सर्ववेदमयं येन तेन मण्डलमुच्यते।

गण्डकी नदी के क्षेत्र में शालग्राम का महान् स्थल है। उसमें पाये जाने वाले पत्थरों को शालग्रामशिला कहा जाता है। शालग्राम शिला के स्पर्शमात्र से ही करोड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है; फिर उसकी अर्चना का तो कहना ही क्या है; क्योंकि यजन करने से यह हरि का सान्निध्य प्रदान करता है। एक शालग्राम के पूजन से सौ लिंग के पूजन का फल प्राप्त होता है। बहुत जन्मों के पुण्य से यदि गौ के पैर के चिह्न से समन्वित काला शालग्राम प्राप्त हो जाय तो उससे मनुष्य का जन्म सफल हो जाता है। काम-क्रोध आदि दोषों से उत्पन्न सभी दु:खों का विनाश करने वाला होने के कारण उसे चक्र कहा जाता है और उसके पूजन से देवता प्रसन्न हो जाते हैं। चौकोर सुन्दर सुलक्षण शालग्राम पर अष्टदल कमल के वाहर चार द्वारों से युक्त चतुरस्र बनाकर कर्णिका में कामबीज 'क्लीं' लिखकर सामान्य मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। अब अट्ठारह अक्षरों के मन्त्र की पूजाविधि का श्रवण करो। चार द्वारों से युक्त चतुरस्र के अन्दर अष्टदल कमल और कमल के अन्दर षट्कोण बनाकर मध्य में 'क्लीं' लिख करके शेष सत्रह अक्षरों से 'कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा'

से उसे वेष्टित कर देना चाहिये। षट्कोण के कोणों में षडक्षर मन्त्र 'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' के अक्षरों को लिखना चाहिये। हे महाभाग! इस यन्त्र को जानने-मात्र से ही साधक कृष्णात्मा हो जाता है। अखण्ड मण्डलाकृति को व्याप्त करके जिससे समस्त विश्व विजृम्भमाण होता है और जो सर्ववेदमय है, इसी कारण इसे मण्डल कहा जाता है।।१६-२४।।

प्रतिमां कृष्णदेवस्य यत्नतः कारयेत् सुधीः ॥२५॥
शिल्पिना कृष्णभक्तेन विश्वकर्मोक्तजानता।
दशपञ्चाङ्गुला मुख्या मध्यमा द्वादशाङ्गुला ॥२६॥
अष्टाङ्गुलाधमा सा तु न्यूनाधिक्यं न कारयेत्।
अज्ञानेनापि मोहेन यदि कुर्यान्नराधमः ॥२७॥
प्रतिष्ठा विफला तस्य पूजनान्न फलं लभेत्।
मानाङ्गुलविहीना या प्रतिमा यत्र तिष्ठति ॥२८॥
राजानं पीडयत्येव गृहस्थो नरकं व्रजेत्।
मानाङ्गुलेन सा कार्या नान्यथा मुनिसत्तम ॥२९॥

विद्वान् को कृष्णभक्त शिल्पज्ञ से यत्नपूर्वक कृष्णदेव की प्रतिमा बनवानी चाहिये। दश एवं पाँच अर्थात् पन्द्रह अंगुल ऊँची प्रतिमा श्रेष्ठ, बारह अंगुल की प्रतिमा मध्यम एवं आठ अंगुल की प्रतिमा अधम होती है; अत: इससे कम या अधिक अर्थात् आठ अंगुल से छोटी और पन्द्रह अंगुल से बड़ी प्रतिमा नहीं बनवानी चाहिये। अज्ञानवश अथवा मोहवश कोई अधम व्यक्ति यदि ऐसा करता है तो उसके द्वारा की गई उस मूर्त्ति की प्रतिष्ठा फलहीन होती है और उसकी पूजा से कोई फल प्राप्त नहीं होता। अंगुल-परिमाण से विहीन प्रतिमा जहाँ रहती है, वहाँ के राजा को पीड़ा होती है और गृहस्थजन नरक-गमन करते हैं; अत: हे मुनिसत्तम! अंगुल-परिमाण के अनुसार ही मूर्त्ति का निर्माण करवाना चाहिये।।२५-२९।।

काश्मरी ज्ञानदा प्रोक्ता स्वर्णदापि च मुक्तिदा।
सम्पत्तिदा शिलाजा तु रत्नजा बहुमुक्तिदा ॥३०॥
तेजोदा दारुजा या च रैतिकी शत्रुनाशिनी।
ताम्री धर्मविवृद्धिञ्च करोति वसुसौख्यदा ॥३१॥
सदैव मृन्मयी प्रोक्ता प्रतिमा शुभलक्षणा।
भोगदा मोक्षदा सा तु प्रतिमा कथिता तव ॥३२॥
लेप्या लेख्या द्विधा चापि प्रतिमा परिकीर्तिता।
पर्वताग्रे नदीतीरे चत्वरे गोष्ठभूमिषु ॥३३॥

समुद्रकूलेऽरण्ये वा मानहीनान्न दूषणम्।
कृष्णप्रतिकृतिं कुर्याद्दिव्यां वंशसुचिह्निताम्॥३४॥
तां तु संस्थापयेन्मन्त्री गृहे वा गोष्ठमध्यतः।
समाहितस्ततो मन्त्री पूजयेदुपचारकैः॥३५॥
षोडशोपचारमन्त्रेण यजनाख्येन सिद्धये।

कहा गया है कि काश्मरी मूर्त्ति ज्ञान प्रदान करने वाली, स्वर्णमूर्त्ति मोक्ष प्रदान करने वाली, शिला से बनी प्रतिमा सम्पत्ति प्रदान करने वाली, चाँदी से निर्मित मूर्त्ति अतिशय मुक्ति प्रदान करने वाली, काष्ठ से बनी मूर्त्ति तेज प्रदान करने वाली, रेत से वनी मूर्त्ति शत्रु का विनाश करने वाली, ताम्र-निर्मित मूर्ति धर्म, धन तथा सुख प्रदान करने वाली होती है। समस्त शुभ लक्षणों से युक्त मिट्टी से वनी मूर्त्ति भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली होती है। लेप द्वारा निर्मित एवं अंकन करके निर्मित—यह दो प्रकार की और भी मूर्त्ति कही गई है।

पर्वतशिखर पर, नदीतट पर, चौराहे पर, गोशाला में, समुद्रतट पर अथवा जंगल में मानानुसार मूर्त्ति का बना न होना किसी प्रकार का दोष नहीं होता। वंशी से चिह्नित कृष्ण की दिव्य मूर्त्ति बनवाकर उसे गृह अथवा गोष्ठमध्य में स्थापित करके सिद्धि के लिये समाहित चित्त होकर षोडशोपचार मन्त्र से तत्तत् उपचारों द्वारा पूजन करना चाहिये।।३०-३५।।

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा ब्रह्मशिवादयः॥३६॥
कृपया देवदेवेश मदग्रे सन्निधो भव।
तस्य ते परमेशान! स्वागतं स्वागतं भवेत्॥३७॥
कृतार्थोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं तु मे।
यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाव्यय॥३८॥
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात्साधनस्य च।
यदपूर्णं भवेत्कृत्यं कृपयाऽप्यभिमुखो भव॥३९॥

ब्रह्मा-शिव आदि देवता भी जिसके दर्शन की इच्छा करते हैं, वे हे देवदेवेश! आप हमारे समक्ष स्थित हों, हे परमेशान! आपका स्वागत है। हे चिदानन्दमय अव्यय देवेश! क्योंकि आप आ गये हैं; इसलिये मैं कृतार्थ हूँ एवं आपका अनुगृहीत हूँ और मेरा जीवन सफल हो गया। अज्ञान, प्रमाद अथवा साधनों की विकलता के फलस्वरूप कृत्यों में यद्यपि अपूर्णता रह गई है; फिर भी आप कृपा करके मेरे सम्मुख उपस्थित रहें।।३६-३९।।

पाद्यं श्यामार्कदूर्वाब्जविष्णुकान्ताभिरिष्यते।

तस्य ते परमेशान पाद्यं शुद्धं प्रकल्प्यते।
जातीलवङ्गकङ्कोलैर्दद्यादाचमनीयकम् ॥४१॥

श्यामाक, दूर्वा, कमल एवं विष्णुकान्ता से पूजा-हेतु पाद्य का निर्माण करना चाहिये। इस पाद्य को 'त्वद्भक्ति.....शुद्धं प्रकल्प्यते' मन्त्र का उच्चारण करते हुये समर्पित करना चाहिये। इसके पश्चात् जाती, लवंग, कक्कोल-मिश्रित जल से आचमनीय प्रदान करना चाहिये।।४०-४१।।

स्वधामन्त्रेण मतिमान् स्मृत्वा त्वद्दक्षिणं करम्।
वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने ॥४२॥
अर्चायां कल्पयामीश स्वधायाः शुद्धिहेतवे।
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपान् ॥४३॥
दूर्वाभिर्देव शिरसि शिरोमन्त्रेण चार्पयेत्।
एतदर्घ्यमिदं प्रोक्तं तुष्टये शार्ङ्गधन्वनः ॥४४॥
तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥४५॥

तदनन्तर बुद्धिमान् साधक को स्वधामन्त्र से देवता के दाहिने हाथ का स्मरण करके वेदों के भी वेदस्वरूप एवं देवताओं में सर्वश्रेष्ठ ईश्वर के स्वधा की शुद्धि के लिये अर्चन की कल्पना करते हुये गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश का अग्रभाग, तिल, सरसो एवं दूर्वा को शिरोमन्त्र से देवता के शिर पर अर्पित करना चाहिये। भगवान् शार्ङ्गधन्वा की सन्तुष्टि के लिये यह अर्घ्य कहा गया है। यह अर्घ्य तीनों तापों का हरण करने वाला, दिव्य एवं परमानन्दस्वरूप होता है। यह अर्घ्य 'तापत्रयहरं................ कल्पयाम्यहम्' मन्त्र से देवता को समर्पित करना चाहिये।।४२-४५।।

घृत-मधु-दधिभिस्ते मधुपर्कं सुधाम्बुना।
सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुधात्मकम् ॥४६॥
मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे।
मुखे चाचमनं दद्यात् केवलेन जलेन च ॥४७॥
उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनं त्विदम् ॥४८॥
चन्द्रचन्दनकाश्मीरजलैः स्नानं विधीयते।
परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्त्तये ॥४९॥
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते।
पीताम्बरयुगं दद्याद्यथाशक्त्या परिष्कृतम् ॥५०॥

मायाविन् तेन यज्जन्मनिगूढनिजतेजसे ।
निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥५१॥
उत्तरीयं ततो दद्याद्वासोर्ध्वनियमान्वितम् ।
यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहनी सदा ॥५२॥
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ।
यज्ञसूत्रं ततो दद्यादथवा स्वर्णनिर्मितम् ॥५३॥
यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोक्तमखिलं जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पयेत् ॥५४॥
हाराद्याभरणं दद्यात् सुवर्णाश्मसमन्वितम् ।
स्वभावसुन्दराङ्गाय सत्यसत्याश्रयाय ते ॥५५॥
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चितम् ।
अर्घोत्थितं जलं दद्यादुपचारान्तराङ्गके ॥५६॥
समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ।
अखण्डानन्दसम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम् ॥५७॥
चन्दनागुरुकर्पूरमिश्रो गन्ध इहोच्यते ।
सर्वाङ्गं लेपयेत्तेन तापत्रयोपशान्तये ॥५८॥
परमानन्दसौभाग्यपूरापूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥५९॥

घृत, मधु, दधि एवं अमृतमय जल से मधुपर्क का निर्माण किया जाता है। समस्त कालुष्य से रहित देवता की प्रसन्नता-हेतु 'सर्वकालुष्य..........प्रसीद मे' मन्त्र से मधुपर्क प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर केवल जल से मुख में आचमन प्रदान करना चाहिये। इसके बाद 'उच्छिष्टो........त्विदम्' मन्त्र से पुनः आचमन प्रदान करना चाहिये। इसके पश्चात् 'चन्द्रचन्दन..........हमीश ते' मन्त्र से स्नान, 'पीताम्बर....... कल्पयाम्यहम्' मन्त्र से वस्त्र, 'यमाश्रित्य.......त्तरीयकम्' से उत्तरीय प्रदान करना चाहिये।

इसके बाद 'यस्य.......प्रकल्पयेत्' से सूत्र अथवा स्वर्णनिर्मित यज्ञोपवीत समर्पित करना चाहिये। तदनन्तर 'स्वभाव.......मरार्चितम्' मन्त्र का उच्चारण करते हुये सुवर्ण एवं प्रस्तरों से समन्वित हार आदि आभूषण समर्पित करना चाहिये। तत्पश्चात् 'समस्त.........जलमुत्तमम्' मन्त्र का उच्चारण करते हुये आचमनीय के लिये अर्घ्यपात्र से जल समर्पित करना चाहिये।

तदनन्तर 'परमानन्द......परमेश्वर' मन्त्र का उच्चारण करते हुये चन्दन, अगुरु एवं

कपूर के मिश्रण से निर्मित गन्ध का तापत्रय की शान्ति के लिये देवता के अङ्ग में लेप करना चाहिये।।४६-५९।।

पञ्च पुष्पाञ्जलीन्दद्यात् पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना।
अन्यान्यपि च योग्यानि पुष्पाणि वैष्णवे मनौ।।६०।।
कमले करवीरे द्वे तुलस्यौ जातीकेतकी।
कह्लारचम्पकोत्पलकुन्दमन्दारनागकेसरसेवती ।।६१।।
नन्द्यावर्तं मल्लिका यूथी सौगन्धिं चकोरकम्।
कोरण्टाशोकसर्जबिल्वार्जुनमुनिपत्रकम् ।।६२।।
पत्रं चामलकं शुद्धं कर्णिकारं नवमालिका।
पलाशादियथालाभं गोविन्दाय समर्पयेत्।।६३।।

तदनन्तर पूर्वोक्त मार्ग से पाँच पुष्पांजलि प्रदान करनी चाहिये। साथ ही वैष्णव मन्त्र के योग्य अन्य फूल भी गोविन्द के लिये अर्पित करना चाहिये; जैसे—कमल, करवीर, तुलसी, जाती, केवड़ा, कल्हार, चम्पा, उत्पल, कुन्द, मन्दार, नागकेशर, सेवती, नन्द्यावर्त्त, मल्लिका, यूथी, सौगन्धि, चकोरक, कोरण्ट, अशोक, सर्ज, विल्व, अर्जुन, सप्तपत्रक, शुद्ध आमलकीपत्र, कर्णिकार, नवमालिका, पलाशपुष्प आदि।।६०-६३।।

मलिनं भूमिसंस्पृष्टं कृमिकेशादिदूषितम्।
पर्युषितानि पुष्पाणि वर्जयेद्देवतार्चने।।६४।।
तिष्ठेद्दिनत्रयं शुद्धं पद्ममामलकं तथा।
तुलसी सर्वदा शुद्धा तथा बिल्वदलानि च।।६५।।
दिनैकं करवीराणि योग्यानि च तपोधन।
तुरीयं गुणसम्पन्नं नानागुणमनोहरम्।।६६।।
आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम्।
मन्त्रसम्पुटितान्यस्येन्मातृकां देवकर्मणि।।६७।।
तत्त्वन्यासस्थले तांस्तान् गन्धपुष्पाक्षतैर्यजेत्।

मलिन, भूमि पर गिरे हुये, कीट-केश आदि से दूषित एवं वासी पुष्पों से देवता का अर्चन नहीं करना चाहिये। हे तपोधन! कमल एवं आमलकीपत्र तीन दिनों तक शुद्ध रहता है। तुलसी एवं बिल्वपत्र सदा-सर्वदा शुद्ध रहता है तथा करवीरपुष्प एक दिन तक शुद्ध रहता है अर्थात् पूजा के योग्य रहता है। हरि के लिये गुणों से समन्वित, बहुविध गुणों से मनोहर एवं आनन्ददायी सौरभयुक्त पुष्प का ग्रहण करना चाहिये। देवकर्म में मन्त्रसम्पुटित मातृकावर्णों से तत्त्वन्यासस्थल में उन-उन वर्णों का न्यास करके गन्ध, पुष्प एवं अक्षत से यजन करना चाहिये।।६४-६७।।

पञ्चात्मिकायां दीक्षायां गणेशादिक्रमाद्यजेत् ॥६८॥
यदा मध्ये तु गोविन्दं नैर्ऋत्यां हंसमर्चयेत्।
आग्नेय्यां गणमभ्यर्च्य ऐशान्यां शिवमर्चयेत् ॥६९॥
वायव्यामर्चयेद्देवीं भोगमोक्षफलाप्तये।
गन्धादिभिरथाभ्यर्च्य षडङ्गं स्यादनन्तरम् ॥७०॥
शक्तौ सतेऽस्मिन् सर्वमन्यथा केवलं यजेत्।
विंशत्कृत्वो जपेन्मन्त्रं नमस्कृत्य क्षमापयेत् ॥७१॥
तत्तदङ्गे षडङ्गानि वक्ष्यमाणेन वा यजेत्।
आग्नेय्यां शिवकोणे च राक्षसे वायुकोणके ॥७२॥
मध्ये दिक्षु च पूर्वादि अङ्गषट्कं समर्चयेत्।
हारस्फटिककलायाञ्जनमुक्तावह्निरोचिषोज्ज्वलाः ॥७३॥
अभयवरोद्यतहस्ताः प्रधानतयाङ्गदेवताः कथिताः।
एवमभ्यर्च्य मतिमान्देहेन भेदतो यजेत् ॥७४॥
मुखस्थं वेणुसंज्ञं यत् पूजयेत् सुसमाहितः।
वेणवे नम इत्यस्य मन्त्रोऽयं समुदीरितः ॥७५॥
कौस्तुभं हृदये रत्नं सूर्यायुतसमप्रभम्।
कौस्तुभाय नम इत्येवं तस्य मन्त्रमुदीरितः ॥७६॥

पंचात्मिका दीक्षा में गणेशादि का क्रम से पूजन करना चाहिये। जब गोविन्द मध्य में हों तब नैर्ऋत्य कोण में हंस की, आग्नेय कोण में गणेश की, ईशान कोण में शिव की एवं वायव्य कोण में देवी का अर्चन करने से से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। गन्धादि से इन सबका अर्चन करना चाहिये। इसमें अशक्त होने पर केवल कृष्ण का यजन करना चाहिये। तदनन्तर बीस बार मन्त्र का जप करने के बाद नमस्कार करके क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये। तत्पश्चात् वक्ष्यमाण क्रम से तत्तत् अंगों में षडंग पूजन करना चाहिये। आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, मध्य और दिशाओं में षडंग पूजन करना चाहिये। स्फटिक के हार, कलायाञ्जन, मुक्ता मणि एवं अग्नि के समान दीप्त अंग वाले प्रधान देवताओं के हाथों में वर और अभय मुद्रा रहती है। इस प्रकार के अर्चन के बाद मतिमान साधक को देहभेद से पूजा करनी चाहिये। हरि के मुख-स्थित मुरली की पूजा एकाग्रता से 'वेणवे नमः' इस मन्त्र से करनी चाहिये। हृदय में हजार सूर्यों के समान प्रकाशमान कौस्तुभ की पूजा 'कौस्तुभाय नमः' मन्त्र से करनी चाहिये।।६८-७६।।

तदधो वनमालां च चन्द्रायुतसमप्रभाम्।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वनमालायै नमो वदेत् ॥७७॥

वनमालामनुः प्रोक्तः सर्वपापौघनाशनः ।
कौस्तुभोर्ध्वे श्रीवत्साख्यं चन्द्रायुतसमप्रभम् ॥७८॥
श्रीवत्साय नम इत्युक्तो मनुस्तस्य महर्षिभिः ।
सहस्रसूर्यसङ्काशो यजेन्मकरकुण्डले ॥७९॥
मकरकुण्डलाभ्यां नम इत्यस्य मनुरीरितः ।
किरीटं मस्तके द्युतिमत्सूर्यायुतसमप्रभम् ॥८०॥
सूर्यायुतसमाभाय किरीटाय नमो वदेत् ।
प्रणवादिरयं प्रोक्तः किरीटस्य महर्षिभिः ॥८१॥
पूर्वादिदिक् समारभ्य प्रदक्षिणक्रमाद्यजेत् ।
दामसुदामवसुदामकिङ्किणीगन्धपुष्पकैः ॥८२॥
अन्तःकरणरूपास्ते कृष्णस्य परिकीर्तिताः ।
आत्माभेदेन ते पूज्या यथाकृष्णस्तथैव च ॥८३॥
प्रणवादिनमोऽन्तैश्च मन्त्रैस्तान् परिपूजयेत् ।
लयाङ्गमुक्तं देवस्य भोगाङ्गं शृणु गौतम ॥८४॥
अष्टौ महिष्यो देवस्य पूर्वादिषु प्रपूजयेत् ।
प्रदक्षिणक्रमेणैव रुक्मिण्याद्यास्तु नामतः ॥८५॥
रुक्मिणी सत्यभामा च सुशीला च सुलक्षणा ।
कालिन्दी ऋक्षजा नाग्नजित्याख्या च सुनन्दका ॥८६॥
द्रुतहेमसमप्रख्या रुक्मिणी रूढयौवना ।
सितवस्त्रपरीधाना सर्वाभरणभूषिता ॥८७॥
देवस्य वदनाम्भोजमिलिताक्षिमधुव्रता ।
वराभयकरोपेता भुक्तये मुक्तये सताम् ॥८८॥
इयं लक्ष्मीः पराशक्तिर्विश्वानुग्रहरूपिणी ।

कौस्तुभ के नीचे हजार चन्द्रमा के समान प्रकाशमान वनमाला का पूजन 'ॐ वनमालायै नमः' मन्त्र से करना चाहिये। यह वनमाला मन्त्र समस्त पापों का विनाश करने वाला कहा गया है। कौस्तुभ के ऊपर श्रीवत्स का पूजन 'ॐ श्रीवत्साय नमः' मन्त्र का उच्चारण करते हुये करना चाहिये। हजार सूर्यों के समान दीप्तिमान मकरकुण्डल की पूजा 'ॐ मकरकुण्डलाभ्यां नमः' कहकर करना चाहिये। मस्तक पर हजार सूर्यों के समान प्रकाशित किरीट की पूजा 'ॐ किरीटाय नमः' मन्त्र से करनी चाहिये। पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से यह पूजा करनी चाहिये। दाम, सुदाम, वसुदाम एवं किंकिणी की पूजा गन्ध-पुष्प से करनी चाहिये। ये सभी कृष्ण के अन्तःकरणरूप कहे गये हैं। अतः आत्माभेद से वे भी कृष्ण के समान ही पूज्य

हैं। इनकी पूजा का मन्त्र है—ॐ दामाय नमः, ॐ सुदामाय नमः, ॐ वसुदामाय नमः एवं ॐ किंकिण्यै नमः। इसके बाद प्रदक्षिणक्रम से रुक्मिणी आदि की पूजा उनके नाममन्त्रों से इस प्रकार करनी चाहिये—ॐ रुक्मिण्यै नमः, ॐ सत्यभामायै नमः, ॐ सुशीलायै नमः, ॐ सुलक्षणायै नमः, ॐ कालिन्द्यै नमः, ॐ जाम्बवत्यै नमः, ॐ नाग्नजित्यै नमः, ॐ सुनन्दायै नमः। तप्त सोने के समान वर्ण वाली रुक्मिणी रूढ़यौवना हैं। उनके परिधान श्वेत वस्त्र हैं। वे सभी आभूषणों से सुशोभित हैं। वे अपनी मधुमती आँखों से श्रीकृष्ण के मुखकमल को निहार रही हैं। उनके वर एवं अभय मुद्रायुक्त हाथ सज्जनों को भोग एवं मोक्ष देने वाले हैं। पराशक्तिस्वरूपा यह लक्ष्मी विश्व पर अनुग्रह करने वाली हैं।।७७-८८।।

कलायकुसुमश्यामा सर्वाभरणभूषिता ।।८९।।
पीताम्बरा बृहच्छ्रोणिः सत्याख्या धरणिः स्मृता ।
रत्नपूरकरा वामे दक्षिणे च वरप्रदा ।।९०।।

कलायकुसुम के समान श्याम वर्ण वाली वे सभी आभरणों से भूषित, पीत वस्त्र धारण करने वाली एवं बृहत् नितम्ब वाली हैं। वे सत्या एवं धरणी कही गई हैं। उनके बाँयें हाथों में रत्नपूरित घड़ा एवं दाहिने हाथ में वरमुद्रा है।।८९-९०।।

अन्याश्च गौरश्यामाभाः क्रमेण परिकीर्त्तिताः ।
वराभयकरोद्युक्ता चित्राभरणशोभना ।।९१।।
सितवस्त्रयुगाढ्या च सर्वेप्सितफलप्रदा ।

अन्य सभी क्रमशः गौर एवं श्याम वर्ण वाली कही गई हैं। इनके हाथों में वर एवं अभय मुद्रा वर्त्तमान है। ये सभी रंग-बिरंगे वस्त्र एवं आभूषणों से सुशोभित हैं। दो श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित ये समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाली हैं।।९१।।

यशोदा हेमसङ्काशा सितवस्त्रयुगान्विता ।।९२।।
सर्वाभरणसन्दीप्ता कुण्डलोद्भासितानना ।

स्वर्ण वर्ण वाली यशोदा दो श्वेत वस्त्रों को धारण की हुई हैं। वे सभी आभरणों से सम्यक् रूप से दीप्त हैं एवं कर्णकुण्डलों से उनका मुखमण्डल उद्भासित है।।९२।।

रोहिणीं च यजेत्तथा नन्दं गौरं समर्चयेत् ।।९३।।
वरदाभयसंयुक्तं समस्तपुरुषार्थदम् ।
बलदेवं चापि तथा पूजयेत् कुन्दसन्निभम् ।।९४।।
हेलालोलकुण्डलिनं हेलावन्तं स्मरेत्तथा ।

यशोदा के समान ही रोहिणी की भी पूजा करनी चाहिये। साथ ही वर एवं अभय

से समन्वित और समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले गौर वर्ण के नन्द की पूजा करनी चाहिये। साथ ही कुन्दपुष्प के सदृश वर्ण वाले, दोलायमान कुण्डल धारण करने वाले तथा क्रीडारत बलदेव का स्मरण एवं पूजन करना चाहिये।।९३-९४।।

ततो यजेत्सुभद्रां च श्यामलां रूढयौवनाम् ।।९५।।
तद्बहिर्वृष्णयः सर्वे गोपानपि समर्च्चयेत् ।
इन्द्रनीलमुकुन्दाद्यांस्तद्बहिः परिपूजयेत् ।।९६।।
इन्द्रनीलं मुकुन्दं च तथा चानन्दकच्छपौ ।
पुष्करं शङ्खपद्मौ च निधयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।।९७।।
तद्बहिः कल्पवृक्षांश्च इन्द्रादींस्तद्बहिर्यजेत् ।
इन्द्रमैरावतारूढं श्यामं वज्रधरं तथा ।।९८।।
साधिपं सपरीवारं तद्दिशि परिपूजयेत् ।
अग्निं हेमसमाभासं शक्तितोमरधारिणम् ।।९९।।
मेषारूढं शक्तियुक्तं तेजसाम्पतिमर्चयेत् ।

तदनन्तर श्याम वर्ण वाली रूढ़यौवना सुभद्रा की पूजा करने के उपरान्त उसके बाहर सभी वृष्णियों एवं सभी गोपों की भी पूजा करनी चाहिये। इन्द्रनील, मुकुन्द आदि की पूजा उसके बाहर करनी चाहिये। इन्द्रनील, मुकुन्द, आनन्द, कच्छप, पुष्कर, शंख, पद्म—ये आठ निधि कहे गये हैं। उसके बाहर कल्पवृक्ष की पूजा करने के बाद। उसके बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिये। ऐरावत पर सवार श्याम वर्ण वाले इन्द्र वज्र धारण करने वाले हैं। परिवार-सहित उनकी पूजा पूर्व दिशा में करनी चाहिये। स्वर्ण के समान आभायुक्त, शक्ति और तोमर धारण करने वाले, भेड़ पर सवार, तेज के अधिपति अग्नि की पूजा अग्निकोण में करनी चाहिये।।९५-९९।।

दक्षिणे पितृदेवं च महिषोपरि संस्थितम् ।।१००।।
यजेद्दण्डधरं चैव यमं पित्राधिदैवतम् ।
राक्षसाधिपतिं तद्वन्नैर्ऋत्यां खड्गधारिणम् ।।१०१।।
तुरगावस्थितं देवं परिवारैः समर्च्चयेत् ।
पश्चिमे वरुणं शुक्लं मकरारूढमुज्ज्वलम् ।।१०२।।
अपाम्पतिं पाशधरं परिवारैः सहार्च्चयेत् ।
वायव्यां वासुदेवं च प्राणाधिपसमाह्वयम् ।।१०३।।
दक्षहस्ताङ्कुशमेणवाहनं परिपूजयेत् ।
शरदिन्दुसमाभासं कृपया शशलाञ्छनम् ।।१०४।।
सोमं सौम्यदिगाधीशं नरारूढं समर्च्चयेत् ।
ईशानं वृषभारूढं चन्द्रायुतसमप्रभम् ।।१०५।।

रुद्राधिपं शूलहस्तं गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत्।
इन्द्रेशानमध्यदेशे ब्रह्माणं हंसवाहनम् ।।१०६।।
हेमगौरं चतुर्वक्त्रं पद्महस्तं प्रपूजयेत्।
रक्षोवरुणयोर्मध्ये विष्णुं चक्रधरं यजेत् ।।१०७।।
नागाधिपं सुपर्णस्थं विष्णोः पारिषदान्यजेत्।

दक्षिण में पितृदेव और भैंसे पर सवार पितरों के अधिदेवता यमराज की एवं। नैर्ऋत्य में खड्गधारी अश्वारूढ़ राक्षसाधिपति निर्ऋति की पूजा परिवार-सहित करनी चाहिये। पश्चिम में उज्ज्वल घड़ियाल पर सवार, शुक्ल वर्ण वाले, पाश धारण करने वाले वरुण की तथा वायव्य कोण में प्राणों के अधिपति, दाँयें हाथ में अंकुश धारण करने वाले, मृग पर आरूढ़ वायुदेव की पूजा उनके परिवार-सहित करनी चाहिये। उत्तर में शरत्कालीन चन्द्रमा के सदृश आभा वाले, शशलाञ्छन, मनुष्य पर सवार, उत्तर दिशा के अधिपति चन्द्रमा की एवं ईशान कोण में वृषभ पर सवार, हजारों चन्द्रमा की प्रभा से युक्त, हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले रुद्राधीश्वर की पूजा गन्ध-पुष्पों से करनी चाहिये। ईशान और पूर्व के मध्य में हंस पर आरूढ़, स्वर्ण वर्ण वाले, चार मुखों वाले, हाथ में कमल धारण करने वाले ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये। नैर्ऋत्य और पश्चिम के बीच में चक्रधारी विष्णु का पूजन करे। साथ ही शेषनाग, गरुड आदि विष्णु के पार्षदों की भी पूजा करनी चाहिये।।१००-१०७।।

वज्रादीनायुधान् भद्रान् तेषां च बहिरर्चयेत् ।।१०८।।
यथा सिन्धुसमुद्भूतांस्तरङ्गान् भिन्नतां ययुः।
तथा कृष्णसमुद्भूता एते तस्यात्मतां ययुः ।।१०९।।
तद्ध्यानेन च ते ध्येयाः साधकेन शुभंयुना।
एवं सप्तावृत्तिमयं देशिकः कृष्णमर्च्चयेत् ।।११०।।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च करे तस्य सुनिश्चिताः।
अथवा दिक्पतिभिस्तत्तदस्त्रैरपि चार्चयेत् ।।१११।।

दिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पूजा उन दिक्पालों के बगल में करनी चाहिये। जिस प्रकार समुद्र से उत्पन्न तरंगें भिन्न-भिन्न होती हुईं भी तत्स्वरूप ही होती हैं, उसी प्रकार कृष्ण से उत्पन्न उनके उपर्युक्त पार्षद भी अलग-अलग होने पर भी तत्स्वरूप ही होते हैं; अतः साधक के द्वारा उन कृष्ण का ध्यान करने से उन सबका भी ध्यान हो जाता है। इस प्रकार साधक को सात आवरणों के सहित कृष्ण की पूजा करनी चाहिये। इससे उसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है।

पूजन यन्त्र (अष्टादशाक्षर मन्त्र)

सात आवरणों में पूजन का क्रम इस प्रकार है। विष्णुमन्त्रोक्त पीठपूजा के वाद ध्यान-आवाहनादि करके पंच पुष्पांजलि प्रदान कर षोडशोपचार पूजन करने के उपरान्त 'संविन्मय परंदेव परामृत रुचिप्रिय। अनुज्ञां देहि श्रीकृष्ण परिवारार्चनाय मे' मन्त्र का उच्चारण करके आज्ञा ग्रहण कर गन्ध-अक्षत-पुष्प से आवरण पूजा इस प्रकार करनी चाहिये—

प्रथम आवरण विन्दु में—

ॐ किरीटाय नमः।
ॐ कुण्डलाय नमः।
ॐ शंखाय नमः।
ॐ चक्राय नमः।
ॐ गदायै नमः।
ॐ पद्माय नमः।
ॐ वनमालायै नमः।
ॐ श्रीवत्साय नमः।
ॐ कौस्तुभाय नमः।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

मन्त्र बोलकर पुष्पांजलि प्रदान करे।

द्वितीय आवरण षट्कोण में—

ह्रीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः।
ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय शिरसे स्वाहा।
ह्रीं श्रीं क्लीं गोविन्दाय शिखायै वषट्।
ह्रीं श्रीं क्लीं गोपीजन कवचाय हुं।
ह्री श्रीं क्लीं वल्लभाय नेत्रत्रयाय वौषट्।
ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा अस्त्राय फट्।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या सर्मपये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

मन्त्र बोलकर पुष्पांजलि प्रदान करे।

तृतीय आवरण अष्टदल के पूर्वादि दिशाओं के पत्रमूल में—

ॐ वासुदेवाय नमः (पूर्व पत्र में)
ॐ संकर्षणाय नमः (दक्षिण पत्र में)
ॐ शान्त्यै नमः (आग्नेय पत्र में)
ॐ श्रियै नमः (नैर्ऋत्य पत्र में)
ॐ प्रद्युम्नाय नमः (पश्चिम-पत्र में)
ॐ अनिरुद्धाय नमः (उत्तर पत्र में)
ॐ सरस्वत्यै नमः (वायव्य पत्र में)
ॐ रत्यै नमः (ईशान पत्र में)

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

मन्त्र बोलकर पुष्पांजलि प्रदान करे।

चतुर्थ आवरण पत्रों के मध्य में—

ॐ रुक्मिण्यै नमः
ॐ सत्यभामायै नमः
ॐ सुशीलायै नमः
ॐ सुलक्षणायै नमः
ॐ कालिन्द्यै नमः
ॐ जाम्बवत्यै नमः
ॐ नाग्नजित्यै नमः
ॐ सुनन्दायै नमः

अष्टदल के अग्र भाग में—ॐ षोडशसहस्रमहिषीभ्यो नमः।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।।

मन्त्र बोलकर पुष्पांजलि प्रदान करे।

पंचम आवरण दलों के बाहरी भाग में अष्टनिधि की पूजा—

ॐ इन्द्रनिधये नमः
ॐ आनन्दनिधये नमः

ॐ नीलनिधये नमः ॐ कच्छपनिधये नमः
ॐ मुकुन्दनिधये नमः ॐ पद्मनिधये नमः
ॐ मकरनिधये नमः ॐ शंखनिधये नमः

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।।

मन्त्र बोलकर पुष्पांजलि प्रदान करे।

षष्ठ आवरण भूपुर की दशो दिशाओं में लोकपालों की पूजा—

ॐ इन्द्राय नमः (पूर्व में) ॐ वायवे नमः (वायव्य में)
ॐ अग्नये नमः (आग्नेय में) ॐ कुबेराय नमः (उत्तर में)
ॐ यमाय नमः (दक्षिण में) ॐ ईशानाय नमः (ईशान में)
ॐ निर्ऋतये नमः (नैर्ऋत्य में) ॐ ब्रह्मणे नमः (ईशान-पूर्वमध्य में)
ॐ वरुणाय नमः (पश्चिम में) ॐ अनन्ताय नमः (नैर्ऋत्य-पश्चिम मध्य में)

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्।।

मन्त्र बोलकर पुष्पांजलि प्रदान करे।

सप्तम आवरण दिक्पालों के निकट वज्रादि आयुधों की पूजा—

ॐ वज्राय नमः ॐ अङ्कुशिने नमः
ॐ शक्तये नमः ॐ गदायै नमः
ॐ दण्डाय नमः ॐ त्रिशूलाय नमः
ॐ खड्गाय नमः ॐ पद्माय नमः
ॐ पाशाय नमः ॐ चापाय नमः

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।।

मन्त्र बोलकर पुष्पांजलि प्रदान करनी चाहिये। इसके पश्चात् धूप-दीप-नैवेद्य आदि से पूजन करके आवरण पूजा का समापन करना चाहिये। अथवा दिक्पालों एवं उनके अस्त्रों की भी पूजा करनी चाहिये।।१०८-१११।।

एवञ्चाप्यर्चयन् कृष्णं काममुक्त्योः स भाजनम्।
य एतद्यजनाशक्तः कृष्णाष्टकेन पूजयेत्।।११२।।
श्रीकृष्णो वासुदेवश्च नारायणसमाह्वयः।
देवकीनन्दनो यदुश्रेष्ठो वार्ष्णेयस्तदनन्तरम्।।११३।।

असुरान्तको भारहारी धर्मसंस्थापकः स्मृतः।
एवं वा पूजयेत् कृष्णं यथाशक्त्यनुसारतः ॥११४॥
इह भुक्त्वा वरान्भोगान्भोगान्ते हरितां व्रजेत्।

इस प्रकार से श्रीकृष्ण की आराधना करने वाला साधक काम एवं मुक्ति प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। यदि कोई साधक इस प्रकार से पूजन करने में अशक्त हो तो उसे कृष्णाष्टक अर्थात् श्रीकृष्ण के आठ नामों से पूजा करनी चाहिये। श्रीकृष्ण के धर्म की स्थापना करने वाले वे आठ नाम इस प्रकार कहे गये हैं—श्रीकृष्ण, वासुदेव, नारायण, देवकीनन्दन, यदुश्रेष्ठ, वार्ष्णेय, असुरान्तक एवं भारहारी। अथवा साधक को अपनी शक्ति के अनुरूप श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिये। ऐसा करने से साधक इस लोक में श्रेष्ठ भोगों को भोग कर अन्त में श्रीहरि के स्वरूप को प्राप्त करता है।।११२-११४।।

अगरूशीरगुग्गुलसिताज्यमधुचन्दनैः ॥११५॥
साराङ्गारे विनिक्षिप्तैर्वासोऽर्थे धूपमर्चयेत्।
वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ॥११६॥
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।
वर्त्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा ॥११७॥
संस्थाप्य स्वर्णपात्रादौ सुदीप्तशिखया युतः।
अर्घोदकेन संस्कृत्य नन्दजाय निवेदयेत् ॥११८॥
उत्तार्य दृष्टिपर्यन्तं घण्टां वामदिशि स्थिताम्।
वादयेत् वामहस्तेन दक्षहस्तेन चार्पयेत् ॥११९॥
सुप्रकाशो महातेजाः सर्वत्र तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१२०॥
स्वर्णे वा ताम्रपात्रे वा रौप्ये वा पङ्कजे दले।
सितोदकं सशाल्यन्नं सगुडं मधुना युतम् ॥१२१॥
दधिदुग्धघृतोपेतं कदल्यादिफलान्वितम्।
आनीय देवपुरतो यंबीजेन विनिक्षिपेत् ॥१२२॥
अस्त्रमन्त्रेण विधिवद्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्।
चन्द्रबीजं वायुसंस्थं चतुर्दशस्वरान्वितम् ॥१२३॥
नादबिन्दुसमायुक्तं बीजं नन्दमृतात्मकम्।
परायेति च सम्प्रोक्ष्यानिरुद्धाय वदेत् पुनः ॥१२४॥
नैवेद्यं च तथेत्युक्त्वा कल्पयामि नमो वदेत्।
प्रोक्तो नैवेद्यमन्त्रोऽयमनेन च निवेदयेत् ॥१२५॥

अमृतोपस्तरणमसि स्वाहेति जलमर्पयेत्।
अन्वाहार्याय प्राणाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः ॥१२६॥
अङ्गुष्ठानामिका मध्या प्राणाख्या मुद्रिका मता।

श्रीकृष्ण के पूजन के क्रम में अगर, खस, गुग्गुलू, कपूर, गोघृत, मधु एवं चन्दन से निर्मित धूप को धूम-रहित अंगार पर जलाकर सुगन्धित धूप से अर्चन करना चाहिये। धूप देने का मन्त्र इस प्रकार है—

वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।

धूप-निवेदन के पश्चात् कर्पूर-गर्भित रूई से निर्मित बत्ती गोघृत अथवा तिल-तैल के साथ स्वर्ण आदि से निर्मित पात्र में रखकर उसे प्रज्ज्वलित करने के पश्चात् उसे अर्घ्य जल से संस्कृत करके श्रीकृष्ण को निवेदित करना चाहिये। इस क्रम में दीपक को आँखों तक दिखाते हुये वाँयीं दिशा में स्थित घण्टा को बाँयें हाथ से बजाते हुए दाँयें हाथ से निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुये दीप अर्पित करना चाहिये—

सुप्रकाशी महातेजाः सर्वत्र तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।

तदनन्तर सोने, चाँदी, ताम्बे से निर्मित पात्रों अथवा कमलपत्र पर शालि चावल का भात, गुड़, मधु, दधि, दूध, घी, केले आदि फल के साथ शीतल जल रखकर 'यं' बीज का उच्चारण करते हुये देवता के आगे रखकर अस्त्रमन्त्र (फट्) से रक्षण करके विधिवत् धेनुमुद्रा दिखानी चाहिये। तदनन्तर 'स्यौं' कहकर अमृतीकरण करके 'पराय' से प्रोक्षण करके 'अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि नमः' इस नैवेद्य मन्त्र का उच्चारण करते हुये देवता को उपर्युक्त वस्तुओं को निवेदित करना चाहिये। पुनः 'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' कहकर निवेदित करते हुये 'ॐ अन्वाहार्य प्राणाय स्वाहा' कहकर प्रथम ग्रास अर्पित करते हुये अंगूठा, अनामिका एवं मध्यमा के योग से प्राणनामक मुद्रा दिखानी चाहिये।।११५-१२६।।

आहवनीयायापानाय स्वाहेति द्वितीयकाः ॥१२७॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठनाम्नी च मुद्रा तत्परिकीर्तिताः।
गार्हपत्याय व्यानाय स्वाहेति तृतीयाहुतिः ॥१२८॥
तर्ज्जन्यङ्गुष्ठमध्यमाभिस्तन्मुद्रा परिकीर्तिताः।
सत्यायोदानाय स्वाहेति च चतुर्थिका ॥१२९॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठा चतुर्थी च कनिष्ठिका।
आवसथ्याय समानाय स्वाहेति पञ्चमी मता ॥१३०॥

सर्वाभिरङ्गुलीभिस्तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता।
प्रणवाद्यैरेभिर्देव देववक्त्रे हुनेद्गुरुः ॥१३१॥
ॐ निवेदयामि भगवते जुषातेदं हविर्हरे।
नैवेद्यार्पणमन्त्रोऽयं सपर्यासु प्रकीर्त्तितः ॥१३२॥

इसी प्रकार 'ॐ आहवनीयायापानाय स्वाहा' कहकर द्वितीय ग्रास प्रदान करते हुये कनिष्ठा-अंगुष्ठ के योग से अपान मुद्रा, 'ॐ गार्हपत्याय व्यानाय स्वाहा' कहकर तृतीय ग्रास प्रदान करते हुये अनामिका-मध्यमा-अंगूठे को जोड़कर व्यान मुद्रा, 'ॐ सत्यायोदानाय स्वाहा' कहकर चौथा ग्रास प्रदान करते हुये मध्यमा-अनामिका-अंगुष्ठ एवं कनिष्ठा के योग से उदान मुद्रा तथा 'ॐ आवसथ्याय समानाय स्वाहा' कहकर पाँचवाँ ग्रास अर्पित करते हुये कुछ मुड़ी हुई परस्पर मिली पाँचों अंगुलियों से समान मुद्रा दिखानी चाहिये। अर्चनक्रम में नैवेद्य अर्पित करने का मन्त्र है—'ॐ निवेदयामि भगवते जुषातेदं हविर्हरे:'।।१२७-१३२।।

क्षणं विलम्ब्य मतिमान् दद्याद्गण्डूषकं ततः।
अमृतापिधानमसि स्वाहेत्यमुनाम्बुना ॥१३३॥
विष्वक्सेनाय वै दद्याच्छेषं नैवेद्यमुत्तमम्।
उच्छिष्टभोजिनोऽप्येते एतेषामवधारय ॥१३४॥
शिवे चण्डेश्वराय विष्णवे विष्वक्सेनाय च।
शक्त्युच्छिष्टं शेषिकायै दद्यादर्चनसिद्धये ॥१३५॥
अन्यथा नैव सिद्धिः स्यादर्चको नरकं व्रजेत्।

पञ्चग्रास-निवेदन के कुछ क्षण बाद बुद्धिमान अर्चक को 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' कहकर भगवान् को गण्डूषार्थ जल प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर शेष नैवेद्य को निश्चित रूप से उच्छिष्टभोजी विष्वक्सेन को प्रदान करना चाहिये; क्योंकि शिव के चण्डेश्वर एवं विष्णु के लिये विष्वक्सेन उच्छिष्टभोजी कहे गये हैं। इसी प्रकार पूजा की सिद्धि के लिये देवी का उच्छिष्ट शेषिका को प्रदान करना चाहिये। ऐसा न करने से अर्चक को सिद्धि की प्राप्ति तो नहीं ही होती है; उल्टे वह नरकगामी होता है।।१३३-१३५।।

नैवेद्यजातमुद्धृत्य स्थानशुद्धिं विधाय च ॥१३६॥
आचमनीयं जलं दद्याद्दन्तशोधनमेव च।
हस्ते लेपं ततो दत्वा पुनः पानीयमर्पयेत् ॥१३७॥
सूक्ष्मवस्त्रद्वयं दत्त्वा दद्याच्च स्वर्णपादुके।
पूजास्थानं समानीय बहुमाल्यां तथार्पयेत् ॥१३८॥
दिव्यगन्धं ततो दद्यात्ताम्बूलं शशिसंयुतम्।
स्तोत्रैः स्तुत्वा च विधिवत् कुर्याच्चैव प्रदक्षिणाम् ॥१३९॥

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ।
वचसा मनसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥१४०॥
भूमौ निपत्य यः कुर्यात् कृष्णेऽष्टाङ्गनतिं सुधीः ।
सहस्रजन्मजं पापं त्यक्त्वा वैकुण्ठमाप्नुयात् ॥१४१॥

तदनन्तर नैवेद्य को उठाकर स्थान की शुद्धि करने के उपरान्त आचमनीय-हेतु जल और दाँत साफ करने के लिये खरिका प्रदान करना चाहिये। इसके बाद हस्तलेप प्रदान कर पुन: जल देना चाहिये। तत्पश्चात् दो शुद्ध वस्त्र और सोने के खड़ाऊँ अर्पित करके पूजास्थान पर लाकर वहुत प्रकार की मालाओं को अर्पित करके इत्रादि सुगन्धित द्रव्य देकर कर्पूरयुक्त ताम्बूल प्रदान करना चाहिये। इसके बाद स्तोत्रों से विधिवत् स्तुति करके प्रदक्षिणा करने के उपरान्त पैरों, हाथों, घुटनों, हृदय, शिर, वचन तथा मन से भूमि पर गिरकर अष्टांग प्रणाम करना चाहिये। जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण को इस प्रकार भूमि पर लेटकर अष्टांग प्रणाम करता है, वह हजारो जन्मों के पापों का त्याग करके वैंकुण्ठ को प्राप्त करता है।।१३६-१४१।।

नवीननीरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
वल्लवीनन्दनं वन्दे कृष्णं गोपालरूपिणम् ॥१४२॥
स्फुरद्बर्हदलोद्बद्धनीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ।
कदम्बकुसुमोद्भासि वनमालाविभूषितम् ॥१४३॥
गण्डमण्डलसंसर्गि चलत्काञ्चनकुण्डलम् ।
स्थूलमुक्ताफलोदारहारोद्द्योतितवक्षसम् ॥१४४॥
हेमाङ्गदतुलाकोटिकिरीटोज्ज्वलविग्रहम् ।
मन्दमारुतसंक्षोभिवलिताम्बरसञ्चयम् ॥१४५॥
रुचिरौष्ठपुटन्यस्तवंशीमधुरनिःस्वनैः ।
लसद्गोपालिकाचेतो मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ॥१४६॥
वल्लवीवदनाम्भोजमधुपानमधुव्रतम् ।
क्षोभयन्तं मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षणैः ॥१४७॥
यौवनोद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः परस्परम् ।
विचित्राम्बरभूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ॥१४८॥
प्रभिन्नाञ्जनकालिन्दीजलकेलिकलोत्सुकम् ।
बोधयन्तं क्वचिद्गोपान् व्याहरन्तं गवां गणम् ॥१४९॥
कालिन्दीजलसंसर्गि शीतलानिलकम्पिते ।
कदम्बपादपच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥१५०॥

रत्नभूधरसंलग्नरत्नासनपरिग्रहम् ।
कल्पपादपमध्यस्थं हेममण्डपिकागतम् ॥१५१॥
वसन्तकुसुमामोदसुरभीकृतदिङ्मुखम् ।
गोवर्द्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥१५२॥
सव्यहस्ततलन्यस्तगिरिवर्यातपत्रकम् ।
खण्डिताखण्डलोन्मुक्तमुक्तासारघनाघनम् ॥१५३॥
वेणुवाद्यमहोल्लासैः कृतझङ्कारनिःस्वनैः ।
सवत्सैरुन्मुखैः शश्वद्गोपालैरभिवीक्षितम् ॥१५४॥
कृष्णमेवानुगायद्भिस्तच्चेष्टावशवर्त्तिभिः ।
दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरुपशोभितम् ॥१५५॥
नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।
प्रीतिसुस्निग्धया वाचा स्तूयमानं परात्परम् ॥१५६॥

नूतन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, नीलकमल के समान नेत्रों वाले गोपालरूपी वल्लवीनन्दन कृष्ण को नमस्कार है। उनके कपोलों पर स्वर्णकुण्डल दोलायमान है, उनका वक्ष:स्थल बड़े-बड़े मुक्ताफलों के हार से विभूषित है। स्वर्ण-निर्मित किरीट से उनका शरीर दीप्तिमान है, मन्द-मन्द बहते पवन से उनके वस्त्र दोलायमान हैं। होठों पर रखे वंशी की रुचिकर मधुर ध्वनि से वे गोपियों के हृदय को बार-बार मोहित कर रहे हैं। राधा के मुखकमल का पान करते हुये वे अपनी तिरछे नेत्रों से देखते हुये उन गोपियों के मन को क्षुभित कर रहे हैं। प्रस्फुटित यौवन से शोभायमान एवं चित्र-विचित्र वस्त्रों तथा आभूषणों से भूषित गोपियों से आवृत्त होकर वे यमुनाजल में क्रीड़ा में निमग्न हैं। कभी-कभी गोपालकों को गौओं को एकत्र करने का परामर्श दे रहे हैं। यमुनाजल के संसर्ग से बहती हुई शीतल हवा से कम्पायमान कदम्बवृक्षों की छायातले बैठे हैं तो कभी वृन्दावन में कल्पवृक्षों के मध्य स्वर्णमण्डप में रत्नों के आसन पर आसीन होकर वासन्ती पुष्पों के सुगन्ध से सुरभित दिशाओं वाले गोवर्द्धन पर्वत पर रासलीला करने को उत्सुक हैं। बाँयें हाथ पर गोवर्द्धन को धारण किये हैं, वेणुवादन करते हुये उनको बछड़ों के साथ-साथ ग्वालबाल भी एकटक निहार रहे हैं। उन भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे गान करते हुये एवं उनकी चेष्टाओं के वशीभूत ग्वालबालों से सुशोभित तथा वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता नारदादि श्रेष्ठ मुनियों द्वारा स्तुति किये जाते हुये परात्पर ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिये।।१४२-१५६।।

य एनं चिन्तयेद्देवं भक्त्या संस्तौति मानवः ।
त्रिसन्ध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥१५७॥

राजवल्लभतामेति भवेत् सर्वजनप्रियः।
अचलां भूमिमाप्नोति स वाग्मी जायते ध्रुवम्॥१५८॥

जो व्यक्ति उपर्युक्त प्रकार से भक्तिपूर्वक चिन्तन करते हुये तीनों सन्ध्याओं में भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करता है, उससे सन्तुष्ट होकर श्रीकृष्ण उसे इच्छित वर प्रदान करते हैं। वह समस्त लोगों का प्रिय होने के साथ-साथ राजाओं का भी प्रिय हो जाता है। वह अचल भूमि को प्राप्त करता है और निश्चित ही विद्वान् हो जाता है।।१५७-१५८।।

ततो मुद्राः प्रदर्श्याथ ह्यग्निसंस्कारमाचरेत्।
मोदनात् सर्वदेवानां द्रावणात् पापसन्ततेः॥१५९॥
मुद्रास्ताः कथिताः सद्भिर्देवसान्निध्यदायिकाः।

तदनन्तर मुद्रा दिखाकर अग्निसंस्कार करना चाहिये। समत देवताओं को मुदित करने एवं सभी पापों का समूल नाश करने के फलस्वरूप ही इसे मुद्रा कहा जाता है। ये मुद्रायें सदाचारियों को इष्ट का सान्निध्य प्रदान करने वाली होती हैं।।१५९।।

गौतम उवाच

भगवन् मे त्वया मुद्राः सूचिता न प्रकाशिताः॥१६०॥
कथं विरचनं तासां तान्यथा ब्रूहि मे गुरो।

गौतम बोले—हे भगवन्! आपने मुद्राओं के सम्वन्ध में वताया तो; लेकिन उन्हें प्रकाशित नहीं किया; अतः हे विद्वन्! उन मुद्राओं को बनाया कैसे जाता है, इसे मुझसे यथावत् कहिये।।१६०।।

नारद उवाच

कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सक्तौ करयोरितरेतरौ॥१६१॥
तर्जनीमध्यमानामासंहता भुग्नवर्जिता।
मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शस्ता गोपालपूजने॥१६२॥
वनमालाभिनयवत् कराभ्यामागलादधः।
जानुपर्यन्तमित्येषा मुद्रा स्याद्वनमालिका॥१६३॥
ओष्ठे वामकराङ्गुष्ठो लग्नस्तस्य कनिष्ठिका।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंयुक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता॥१६४॥
तर्जनीमध्यमाऽनामाः किञ्चित्सङ्कुच्य चालिताः।
वेणुमुद्रेह कथिता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः॥१६५॥
अङ्गुलीः संहताः कृत्वा करयोर्वामदक्षयोः।
वामानामासमायुक्ता दक्षपाणिकनिष्ठिका॥१६६॥

दक्षस्य मध्यमाक्रान्ता वामहस्तस्य तर्जनी ।
वाममध्यमयाक्रान्ता दक्षहस्तस्य तर्जनी ।।१६७।।
संहतौ कारयेद्विद्वानङ्गुष्ठावुभयोरपि ।
धेनुमुद्रा निगदिता गोपिता साधकोत्तमैः ।।१६८।।
करौ सम्पुष्टितौ कृत्वा वामपाणिकनिष्ठया ।
निपीड्य दक्षपाणिस्थं दक्षिणाङ्गुलिभिर्दृढम् ।।१६९।।
तथा वामाङ्गुलिभवैरतिगाढं निपीडयेत् ।
इतीयं बिल्वमुद्रा स्यात्प्रशस्ता कृष्णपूजने ।।१७०।।
कायेन मनसा वाचा बुद्ध्या बुद्ध्या च यत्कृतम् ।
इह जन्मनि पूर्वस्मिन्नथवा पापसञ्चयम् ।।१७१।।
इमां जानन्नजानन्तो मुञ्चत्याशु न संशयः ।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति प्रणमन्ति तथा जनाः ।।१७२।।
काममुच्चार्य विधिवन्निक्षिपेद्धृदयोपरि ।

नारद बोले—दाहिने हाथ की कनिष्ठा अंगुलि को बाँयें हाथ के अंगूठे से और बाँयें हाथ के अंगूठे को दाहिने हाथ की कनिष्ठा से मिलाकर तर्जनी-मध्यमा-अनामिका का सहयोग करने से **गालिनी मुद्रा** बनती है। गोपाल-पूजन में इसे प्रशस्त माना जाता है।

दोनों हाथों की तर्जनी और अंगूठे से गले से लेकर पैरों के घुटनों तक वनमाला के समान दोनों ओर स्पर्श करने से **वनमाला मुद्रा** बनती है।

जिस प्रकार बाँसुरी बजाते है, उसी प्रकार बाँयें हाथ के अंगूठे को होठों पर लगाकर वहीं पर कनिष्ठा को भी रखकर दाहिने हाथ की तर्जनी-मध्यमा-अनामा को ऊपर नीचे चलाते रहने से श्रीहरि की अत्यन्त प्रिय एवं सर्वथा गुप्त **वेणुमुद्रा** बनती है।

दोनों हथेलियों को मिलाकर दाहिनी अनामा को बाँयीं कनिष्ठा से एवं बाँयीं अनामा को दाहिनी कनिष्ठा से तथा दाहिनी मध्यमा को बाँयीं तर्जनी से और बाँयीं मध्यमा को दाहिनी तर्जनी से आक्रांत करने अर्थात् उक्त अंगुलियों को उल्टा-सीधा मिलाने से साधकों के लिये श्रेष्ठ एवं गुप्त **धेनुमुद्रा** बनती है।

बाँयें अंगूठे के अग्रभाग को दाहिने अंगूठे से आवद्ध करके शेष अंगुलियो को बाँयें हाथ की अंगुलियों से पूर्णतया संश्लिष्ट करने से **विल्व मुद्रा** बनती है। यह कृष्ण-पूजन में प्रशस्त होती है। तन-मन-वचन-वुद्धि-अवुद्धि से जो भी कृत्य किया जाता है अथवा वर्त्तमान जन्म या पूर्वजन्म में जो भी पापों का संचय होता है, उन सभी का नाश जाने-अनजाने में इसके प्रभाव से हो जाता है। सभी देवता और मनुष्य इसके साधक को प्रणाम करते हैं। 'क्लीं' कहकर इस मुद्रा को हृदय पर स्थापित करना चाहिये।।१६१-१७२।।

कृत्वेतरं करं वामे कृत्वा सम्यक् समाङ्गुलीन् ॥१७३॥
अन्योन्यपृष्ठकरयोर्मध्यमानामिकाङ्गुलिः ।
अङ्गुष्ठेन च बध्नीत कनिष्ठामूलसंस्थिते ॥१७४॥
तर्ज्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिता ।
अनामापृष्ठसंलग्ना दक्षस्य च कनिष्ठिका ॥१७५॥
कनिष्ठिकान्यवबध्नीयादनामादक्षतर्जनी ।
गृहीत्वा दक्षिणाङ्गुष्ठं मध्यमानामिकाद्वयम् ॥१७६॥
ग्रथयित्वा तथा वामे तर्ज्जनीमध्यमे न्यसेत् ।
दक्षिणे मणिबन्धे च वामाङ्गुष्ठे तु योजयेत् ॥१७७॥
मुद्रेयं कौस्तुभस्योक्ता दर्शनीया प्रयत्नतः ।
कृत्वेतरं करं वामे कृत्वा सम्यक् समाङ्गुलीः ॥१७८॥
तर्जन्युपरि तथा सम्यङ्न्यसेत्करतलं ततः ।
अङ्गुष्ठौ चालनीयौ च मत्स्यमुद्रेयमीरिता ॥१७९॥
करौ सम्पुटितौ कृत्वा मणिबन्धौ सुयोजितौ ।
अङ्गुष्ठे च कनिष्ठे च प्रविधाय सुयोजिते ॥१८०॥
शेषा अङ्गुलयः सर्वा उभयोरपि भङ्गुराः ।
परस्परमसंलग्नाः शून्यमध्ये च कारयेत् ॥१८१॥
उक्ता कलशमुद्रेयं सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
अकुञ्चितं ततः कृत्वा वामाङ्गुलिचतुष्टयम् ॥१८२॥
प्रसार्य च तदङ्गुष्ठं दक्षहस्तेन वेष्टयेत् ।
प्रसार्य तर्जनीं दक्षान्तदङ्गुष्ठं च मन्त्रवित् ॥१८३॥
शङ्खमुद्रेयमुदिता दर्शनात् पापनाशिनी ॥१८४॥

इति श्रीगौतमीये महातन्त्रे दशमोऽध्यायः

●

औंधे बाँयें हाथ पर सीधा दाहिना हाथ रखकर बाँयें हाथ की कनिष्ठा, दाहिने हाथ की तर्जनी से और दाँयीं कनिष्ठा को बाँयीं तर्जनी से पकड़कर दोनों की अनामिका एवं मध्यमा को दोनों अंगूठो से पकड़ने पर **श्रीवत्स मुद्रा** बनती है।

दाहिनी कनिष्ठा को दाहिनी अनामिका की पीठ पर लगाकर बाँयीं कनिष्ठा से तर्जनी और अनामा को आबद्ध करके दाहिने अंगूठे के मूल में बाँयाँ अनामा एवं बाँयें अंगूठे से शेष अंगुलियों को सीधा लगाने से **कौस्तुभ मुद्रा** बनती है। इसे यत्नपूर्वक भगवान् को दिखाना चाहिये।

बाँयीं हथेली को सीधा फैलाकर अधोमुखी करके उस पर दाँयीं हथेली रखकर

अंगुलियों पर अंगुलियाँ को सटाकर दोनों अंगूठों को हिलाने से **मत्स्य मुद्रा** बनती है।

दाहिने अंगूठे को बाँयें में लगाकर शेष अंगुलियों को मुट्ठी के समान नीचे-ऊपर लगाकर मुट्ठी को पोली रखने से **कलश मुद्रा** बनती है।

बाँयें हाथ के अंगूठे को दाहिने हाथ की मुट्ठी में लेकर बाँयें हाथ की चारो अंगुलियों को सीधी करके दाहिने हाथ की मुट्ठी को दबाते हुये दाहिने हाथ के अंगूठे का अग्रभाग बाँयें की तर्जनी के अग्रभाग से लगाने से देखने मात्र से ही पापों का नाश करने वाली **शंखमुद्रा** बन जाती है।।१७३-१८४।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के दशम अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

एकादशोऽध्यायः

[हवन-विधान, अग्नि के संस्कार-ध्यान आदि, अग्निवास-विधानादि का कथन।]

अथाग्निजपनं कुर्यात् कृष्णमन्त्रानुसारतः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यत्कृत्वा फलमश्नुते ॥१॥
गोमयाम्भः समालिप्य कुण्डं सर्वत्र मन्त्रवित्।
सामान्यार्घ्यं प्रकल्प्याथ पञ्चगव्येन सेचयेत् ॥२॥
त्रिकोणं तद्बहिः षट्कोणं पद्मं प्रकल्पयेत्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं वा वह्निमण्डलम् ॥३॥
कुण्डस्योत्तरभागे च त्रिरेखां हस्तमात्रिकाम्।
दक्षिणोत्तरतस्तद्वत् कुर्याल्लेखात्रयः शुभाः ॥४॥
अर्घ्याद्भिः प्रोक्ष्य सर्वं हि पञ्चशुद्धिं समाचरेत्।
वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण प्रोक्षणं स्मृतम् ॥५॥
ताडनं हेति मन्त्रेण कवचेनाथ लेपयेत्।
अस्त्रेण रक्षितं कृत्वा वह्नेः संस्कारमाचरेत् ॥६॥
पाषाणभुवमग्निं च अथवाऽरणिसम्भवम्।
श्रोत्रियाणां ग्रहोत्थं वा वनस्थमथवा हरेत् ॥७॥
यदिच्छालाभसम्प्राप्तो योग्यो यागप्रकर्मणि।
निरग्नि ब्राह्मणाल्लब्धो ह्यर्द्धलाभकरो भवेत् ॥८॥
क्षत्रबन्धोश्चतुर्थांशफलं दद्याद् हुताशनः।
वैश्याच्छूद्राच्च विफलं जायते होमकर्मणि ॥९॥

कृष्णमन्त्र के अनुसार अग्निजप अर्थात् हवन करना चाहिये, जिसके करने से धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप फल की प्राप्ति होती हैं। एतदर्थ मन्त्रज्ञ साधक को कहीं पर भी गोबर एवं पानी से भूमि को लीपकर कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर सामान्य अर्घ्य को स्थापित करके पञ्चगव्य से उसका सेचन करने के उपरान्त त्रिकोण बनाकर उसके बाहर षट्कोण, कमल और चार द्वारों से युक्त चतुरस्र बनाकर अग्निमण्डल बनाना चाहिये। कुण्ड के उत्तर तरफ एक-एक हाथ लम्बी तीन रेखा दक्षिणोत्तर में बनानी चाहिये। फिर अर्घ्यजल से सबका प्रोक्षण करके पंचशुद्धि करनी चाहिये। एतदर्थ मूल मन्त्र से वीक्षण, फट् से प्रोक्षण एवं ताड़न, 'हुं' से लेपन तथा

फट् से रक्षण करते हुये अग्नि का पाँच संस्कार करना चाहिये। यागकर्म के लिये पत्थर से उत्पन्न अग्नि या अरणिमन्थन से उत्पन्न अग्नि या श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर की अग्नि या वनस्थित अग्नि में से किसी को भी अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त करना चाहिये। अग्निहोत्र से रहित ब्राह्मण के घर से प्राप्त अग्नि से याग का आधा फल ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार क्षत्रियों के घर से प्राप्त अग्नि में किये गये याग का चतुर्थांश फल प्राप्त होता है तथा वैश्य एवं शूद्र के घर से प्राप्त अग्नि में किया गया याग अर्थात् होम विफल होता है।।१-९।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वह्निमुक्तं समाचरेत्।
आनीय ताम्रपात्रस्थं क्रव्यादांशं परिक्षिपेत्।।१०।।
क्रव्यादेभ्यो नमः प्रोक्तः प्रणवाद्यो मनुर्भवेत्।
पूर्वाग्राणां स्मृता देवा मुकुन्देन्दुपुरन्दराः।।११।।
रेखाणामुत्तराग्राणां ब्रह्मवैवस्वतेन्दवः।
ततो वह्नेर्योगपीठमर्चयेत् कर्णिकोपरि।।१२।।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यमादितो यजेत्।
पूर्वादिदिक्षून् पूर्वान् तथाधर्मादिकान् यजेत्।।१३।।

इसलिये यत्नपूर्वक उक्त अग्नि को लाकर उस अग्नि को ताम्बे के पात्र में रखकर उसमें से क्रव्यादांश को 'ॐ क्रव्यादेभ्यो नमः' मन्त्र से निकाल कर बाहर फेंक देना चाहिये। पूर्वोक्त तीन रेखाओं में से पूर्वाग्र रेखाओं के देवता मुकुन्द, चन्द्र और इन्द्र होते हैं। उत्तराग्र रेखाओं के देवता ब्रह्मा, वैवस्वत और चन्द्र होते हैं। तदनन्तर कर्णिका के ऊपर अग्नि के योगपीठ का पूजन करना चाहिये। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की पूजा करनी चाहिये। अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं ईशान कोण में क्रमशः अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य की पूजा करनी चाहिये।।१०-१३।।

मध्ये पूजयेद्वह्नेर्नव शक्तिर्विधानवित्।
पीता श्वेतारुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा स्फुलिङ्गिनी।।१४।।
रुचिरा ज्वालिनी प्रोक्ता कृशानोर्नव शक्तयः।
अं अर्कमण्डलं पूज्य उं सोममण्डलं यजेत्।।१५।।
मं वह्निमण्डलं तद्वदर्चयेद् गन्धपुष्पकैः।
वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरसन्निभाम्।।१६।।
वागीश्वरेण सहितामुपचारैः समर्चयेत्।
शक्तिप्रणवबीजाभ्यां तयोरर्चनमीरितम्।।१७।।

वागीश्वरीमृतुमतीं पुरुषाधिष्ठितां स्मरेत्।
वह्निं संस्कृत्य पात्रस्थं रं बीजेन तु मन्त्रयेत् ॥१८॥
चैतन्यं प्रणवेनैव योजयन्तं प्रयोजयेत्।
आत्मनोभिमुखं वह्निं जानुस्पृष्टमहीतलः ॥१९॥
शिवबीजधिया देव्या योनावेनं विनिक्षिपेत्।
ततो देवाय देव्यै च दद्यादाचमनीयकम् ॥२०॥
गर्भनाड्याधृतं ध्यायेद्वह्निरूपं हरिं गुरुः।
पश्चाद् गर्भस्य रक्षार्थं प्रदद्याद्गर्भकङ्कणम् ॥२१॥

इसके पश्चात् विधिज्ञ को मध्य में अग्नि के नव शक्तियों की पूजा करनी चाहिये। पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिंगिनी, रुचिरा और ज्वालिनी—ये अग्नि की नव शक्तियाँ कही गई हैं। 'अं अर्कमण्डलाय नमः' से सूर्य की, 'उं सोममण्डलाय नमः' से चन्द्र की और 'मं वह्निमण्डलाय नमः' से अग्नि की गन्ध-पुष्प से अर्चना करनी चाहिये। नीलकमल के समान ऋतुमती वागीश्वरी का वागीश्वर के सहित अर्चन शक्तिवीज (ह्रीं) एवं प्रणवबीज (ॐ) से करना चाहिये। ऋतुस्नाता वागीश्वरी का वागीश्वर के साथ अवस्थित रूप में स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर पात्रस्थ अग्नि का संस्कार करके उसे रं वीज से मन्त्रित कर ॐ से चैतन्य करके प्रयोग में लाना चाहिये। तदनन्तर घुटनों के बल भूमि पर बैठकर उस अग्नि को अपने अभिमुख करके शिवबीजबुद्धि से देवी की योनि में निक्षिप्त करने के उपरान्त देव-देवी के लिये आचमन प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर गर्भनाड़ी में अग्निरूप हरि का ध्यान करने के वाद गर्भ की रक्षा के लिये गर्भकंकण प्रदान करना चाहिये।।१४-२१।।

भूषाभिर्भूषयेद्देवीं त्रैलोक्योत्पत्तिमातृकाम्।
रेफवायुषट्स्वरैश्च नादबिन्दुविभूषिता ॥२२॥
गादिसान्तांश्च जिह्वानां मनवः परिकीर्तिताः।
पायौ लिङ्गे तथा नाभौ हृदये कण्ठमूलतः ॥२३॥
लम्बिकायां भ्रुवोर्मध्ये जिह्वाज्वालावचोन्यसेत्।
हिरण्या गगना रक्ता कृष्णाऽन्या सप्रभागता ॥२४॥
बहुरूपाऽतिरिक्ता च जिह्वाः कृपीटयोनिनः।
सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्णः उत्तिष्ठ पुरुषस्तथा ॥२५॥
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इतीरितः।
षडङ्गमन्त्रा वह्नेश्च प्रणवाद्या नमोऽन्तिका ॥२६॥
हृदयादि क्रमेणैव न्यस्तव्या अङ्गदेवताः।

तदनन्तर त्रैलोक्य की उत्पत्ति करने वाली मातृका को आभूषणों से भूषित करना

चाहिये। अग्नि की सात जिह्वाओं के रेफ, वायु, षष्ठ स्वर, नाद एवं विन्दु से विभूषित मादि सान्त मन्त्र हैं। इन मन्त्रों से अपने शरीर में न्यास करना चाहिये; जैसे—

१ लिंगे सरयूं हिरण्यायै नमः
२ पायौ षरयूं गगनायै नमः
३ मूर्ध्नि शरयूं रक्तायै नम
४ वक्त्रे वरयूं कृष्णायै नमः
५ घ्राणो लरयूं सुप्रभायै नमः
६ नेत्रे ररयूं बहुरूपायै नमः
७ सर्वगात्रे यरयूं अतिरक्तायै नमः

हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरक्ता—ये सात अग्नि की जिह्वायें होती हैं। इसके अनन्तर हृदयादि षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१ ॐ सहस्रार्चिषे नमः हृदयाय नमः।
२ ॐ स्वस्तिपूर्णाय नमः शिरसे स्वाहा।
३ ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय नमः शिखायै वषट्।
४ ॐ धूम्रव्यापिने नमः कवचाय हुं।
५ ॐ सप्तजिह्वाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्।
६ ॐ धनुर्धराय नमः अस्त्राय फट्।।२२-२६।।

मूर्ध्नि स्कन्धवामपार्श्वकयन्धुकटिपार्श्वके ।।२७।।
स्कन्धे मूर्ध्नि च विन्यसेत् प्रदक्षिणक्रमेण तु।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः ।।२८।।
अश्वोदरसंज्ञश्च पुनर्वैश्वानराह्वयः।
कौमारतेजा विश्वमुखोऽन्ते देवमुखस्तथा ।।२९।।
एवं विन्यस्तदेहः सन् ज्वालयेन्मनुनामुना।
हनद्वयं समुच्चार्य दहद्वयं तथा पठेत् ।।३०।।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोऽयं समुदाहृतः।
अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदो हुताशनम् ।।३१।।
सुवर्णवर्णममलं संसिद्धं सर्वतोमुखम्।
संसिद्धेन च मन्त्रेण त्रिभिर्मन्त्रैर्हुताशनम् ।।३२।।
ज्वालयेन्मतिमान्मन्त्री अन्यथा विफलं भवेत्।

तदनन्तर इस प्रकार मूर्तिन्यास करना चाहिये—
(मूर्धा) ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। (दक्षांस) ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः।

(दक्ष पार्श्व) ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः। (दक्ष कटि) ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः। (लिंग) ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः। (वाम कटि) ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः। (वाम पार्श्व) ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः। (वामांस) ॐ अग्नये देवमुखाय नमः।

इस प्रकार से देहन्यास करने के बाद 'हन हन दह दह सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण करते हुये अग्नि प्रज्वलित करने के पश्चात् निम्नांकित मन्त्र से अग्नि की प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्।।

इस उपर्युक्त मन्त्र को तीन बार बोलकर अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये; अन्यथा अग्निप्रज्वलन विफल होता है।।२७-३२।।

दर्भैरगर्भैः शुद्धैश्च मूलमध्याग्रछादितैः ॥३३॥
संस्तरेद्विधिवन् मन्त्री प्रदक्षिणवशादथ।
एवं संस्तरणं कुर्याद्वर्जयित्वाऽत्मनोदिशम् ॥३४॥
यज्ञवृक्षोद्भवैस्तद्वत् काष्ठैश्च परिधित्रयम्।
मध्यस्थमेखलायां तु संस्तरेत्तन्त्रवित्तमः ॥३५॥
अथवा स्थण्डिले मन्त्री भूमौ सर्वं परिस्तरेत्।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वह्निदेवं विभावयेत् ॥३६॥
त्रिनयनमरुणाभं बद्धमौलिं सुशुक्लां-
शुकमरुणायतनयनं कल्पमम्भोजसंस्थम्।
अभिमतवरशक्तिं स्वस्तिकाभीतिहस्तं
नमत कमलमालालङ्कृतं तं कृशानुम् ॥३७॥
सुवर्णवर्णममलं लसत्स्वर्णोपवीतकम्।
चतुर्भुजं स्वर्णमालालंकृतांसं समुज्ज्वलम् ॥३८॥
शब्दब्रह्ममयं , स्तोत्रशब्दायमानमुत्तमम्।
एवं वा मनसा ध्यायेच्छान्तिकादौ गुरूत्तमः ॥३९॥
कृष्णं कृष्णगते वर्णं ध्यायेन्मारणकर्मणि।
मूर्त्तीरष्टौ समभ्यर्च्य षट्कोणे तु षडङ्गकम् ॥४०॥
मध्ये जिह्वां यजेद्वह्नेर्वह्निं तन्मधुना यजेत्।
वैश्वानरपदं पूर्वं जातवेदमनन्तरम् ॥४१॥
लोहिताक्षस्ततश्चोक्त्वा इहावह ततः परम्।
सर्वकर्माणि देहि मे स्वाहामनुः सर्वसिद्धिदः ॥४२॥

मध्यस्थ मेखला के कुछ गर्भशून्य कुश लेकर उनके अग्रभाग से कुश के मूल देश को आच्छादित करके अपनी ओर छोड़कर शेष दिशाओं में प्रदक्षिणक्रम से तीन-तीन बार परिस्तरण करना चाहिये। मध्य मेखला में यज्ञकाष्ठ को तीन परिधि में रखना चाहिये अथवा स्थण्डिल में सभी ओर काष्ठ रखना चाहिये। तदनन्तर गन्धादि से अर्चन करने के बाद तीन नेत्रों वाले, अरुण आभा वाले, जटाजूट बाँधे हुये, श्वेत वस्त्र एवं लाल नेत्रों वाले, कमल पर विराजमान, हाथों में वर-शक्ति-स्वस्तिक-अभय धारण करने वाले, कन्धों पर खिले हुये कमलों की माला धारण करने वाले, सुवर्ण के समान निर्मल, सुवर्ण का यज्ञोपवीत धारण करने वाले, चार भुजाओं वाले, सुवर्ण की माला से अलंकृत एवं समुज्ज्वल अग्निदेवता का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर श्रेष्ठ शब्दब्रह्ममय स्तोत्र का उच्चारण करना चाहिये। शान्तिकादि कर्मों में इस प्रकार मानसिक ध्यान करना चाहिये। मारण कर्म में कृष्ण वर्ण की अग्नि का ध्यान करना चाहिये।

अग्निदेव के आठ रूपों की पूजा के बाद षट्कोण में अग्नि के षडंगों की और मध्य में अग्नि के जिह्वाओं की पूजा करने के उपरान्त अग्नि की पूजा करनी चाहिये। 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि देहि मे स्वाहा' यह अग्नि का सर्वसिद्धिदायक मन्त्र है।।३३-४२।।

आज्यस्थालीं समानीय क्षालयेदस्त्रमन्त्रतः।
कुण्डेऽङ्गारान्समुत्तोल्य सेतुना त्वस्त्रमन्त्रतः ।।४३।।
तस्यामाज्यं विनिक्षिप्य जानीयात्तापनं हि तत्।
प्रज्वाल्य कुशमाच्छाद्य आज्यं विश्वानले क्षिपेत् ।।४४।।
अभिद्योतनमित्युक्तं सर्वत्र सर्वकर्मसु।
पुनः कुशान्समुज्ज्वाल्य निक्षिपेदाज्यमध्यतः ।।४५।।
मूलमन्त्रेण मतिमानाज्यसंस्कार ईरितः।
अभिमन्त्र्य च मूलेन रक्षयेदस्त्रमुच्चरन् ।।४६।।
प्रदर्श्य धेनुयोनी च आज्यं तदमृतात्मकम्।
स्रुक्स्रुचौ तु समादाय विधिना निर्मितो गुरुः ।।४७।।
त्रिशः प्रतापयेद्वह्नौ पुनः प्रक्षाल्य वारिणा।
पुनः प्रताप्य तौ मन्त्री स्थापयेत्तौ स्वदक्षिणे ।।४८।।
कुशास्तरे च विधिना कुशेनाच्छादयेत्ततः।
स्रुवमादाय मतिमान् धारयंस्तत्त्रिभागतः ।।४९।।
दक्षादाज्यं समादाय अग्नये तदनन्तरम्।
स्वाहेति जुहुयान्मन्त्री अग्नेर्दक्षिणलोचने ।।५०।।

वामतस्तद्वदादाय सोमाय स्वाहया ततः ।
मन्त्रेणानेन जुहुयादग्नेर्वामविलोचने ॥५१॥
मध्यात्तद्वत्समादाय अग्नेर्भालस्थलोचने ।
जुहुयादग्निसोमाभ्यां स्वाहेति मनुनामुना ॥५२॥
इत्यग्नेर्नेत्रवक्त्राणां कुर्यादुद्घाटनं गुरुः ।
संस्कारार्थं ततो वह्नौ हुतेन्नव नवाहुतीः ॥५३॥
प्रणवाद्येन मतिमान् स्वाहान्तेन तदुच्चरन् ।
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ॥५४॥
जातकर्म तथा नाम उपनिष्क्रमणं तथा ।
चूडोपनयने भूयो वेदाध्ययनमेव च ॥५५॥
गोदानं च विवाहं च संस्काराः शुभकर्मणि ।
अशुभे मरणान्तास्ते प्रयुक्तास्तन्त्रवेदिभिः ॥५६॥

तत्पश्चात् आज्यस्थाली को लाकर अस्त्र-मन्त्र से उसे प्रक्षालित करके कुण्ड से एक अंगार लेकर सेतुमन्त्र से आज्य में डालकर उसके तापन हो जाने की भावना करनी चाहिये। फिर अग्नि को प्रज्वलित करके कुश से आच्छादित करके घी को अग्नि में डालना चाहिये! इसे सभी धर्मों में अभिद्योतन कहा गया है। पुनः कुशों को जलाकर आज्य के मध्य में डाल देना चाहिये। मूल मन्त्र से आज्य का संस्कार करके मूल मन्त्र से ही उसे अभिमन्त्रित, अस्त्रमन्त्र से उसका रक्षण करते हुये धेनु एवं योनिमुद्रा दिखाकर आज्य का अमृतीकरण करने के पश्चात् गुरु को विधिपूर्वक निर्मित स्रुक्, स्रुचि को लेकर उन्हें तीन-तीन वार अग्नि में तपाना चाहिये। फिर उन्हें जल से धोकर पुनः तपाकर अपने दाँयें भाग में रख देना चाहिये। कुशास्तरण पर विधिवत् कुश बिछाकर स्रुव को लेकर उसके तीसरे भाग को ग्रहण करके दाहिने तरफ से आज्य लेकर 'ॐ अग्नये स्वाहा' मन्त्र से अग्नि के दाँयें नेत्र में हवन करना चाहिये। इसी प्रकार पुनः वाँयें भाग मे आज्य लेकर 'ॐ सोमाय स्वाहा' मन्त्र से अग्नि के बाँयें नेत्र में आहुति डालनी चाहिये। इसी प्रकार मध्यभाग से आज्य लेकर अग्नि के भालस्थ लोचन में 'अग्निसोमाभ्यां स्वाहा' मन्त्र से आहुति डालनी चाहिये। इस प्रकार अग्नि के नेत्र एवं मुख का गुरु द्वारा उद्घाटन करने के उपरान्त अग्नि के संस्कार-हेतु नव आहुति डालनी चाहिये। जैसे—

१. ॐ अग्नेर्गर्भाधानसंस्कारं करोमि स्वाहा।
२. ॐ अग्नेर्पुंसवनसंस्कारं करोमि स्वाहा।
३. ॐ अग्नेः सीमन्तोन्नयनसंस्कारं करोमि स्वाहा।
४. ॐ अग्नेः जातकर्मसंस्कारं करोमि स्वाहा।

५. ॐ अग्नेर्नामकरणसंस्कारं करोमि स्वाहा।

६. ॐ अग्नेर्निष्क्रमणसंस्कारं करोमि स्वाहा।

७. ॐ अग्नेरन्नप्राशनसंस्कारं करोमि स्वाहा।

८. ॐ अग्नेश्चूडाकरणसंस्कारं करोमि स्वाहा।

९. ॐ अग्नेरुपनयनसंस्कारं करोमि स्वाहा।

विद्वान् को गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, चूड़ाकरण, उपनयन, वेदाध्ययन, गोदान एवं विवाह आदि शुभ कर्मों में इन उपर्युक्त संस्कारों को करना चाहिये। तन्त्रज्ञों द्वारा मरणान्त अशुभ कर्मों में भी ये संस्कार किये जाते हैं।।४३-५६।।

नतश्च पितरौ वह्नेः संयुज्य हृदयं नयेत्।
वह्निमन्त्रेण विधिवद्दद्यादाहुतिपञ्चकम्।।५७।।
समिधः पञ्च जुहुयान् मूलाग्रघृतसम्प्लुताः।
गुरुर्हृदयमन्त्रेण विधिवत् स्वाहयान्विताः।।५८।।
महागणेशमन्त्रेण हुनेदेकादशाहुतीः।
सामान्यं सर्वदेवानामेतदग्निमुखं स्मृतम्।।५९।।

फिर अग्नि के साथ पितरों को हृदय में लाकर अग्निमन्त्र से विधिवत् पाँच आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। एतदर्थ गुरु को पाँच समिधाओं को लेकर उनके मूल और अग्रभाग को घृत में डूबोकर करके हृदयमन्त्र में स्वाहा लगाकर हवन करना चाहिये। तदनन्तर महागणेश मन्त्र से ग्यारह आहुतियाँ डालनी चाहिये। सामान्यतया इसे ही सभी देवों का अग्निमुख कहते हैं; जैसे—

१. ॐ स्वाहा।

२. ॐ श्रीं स्वाहा।

३. ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा।

४. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा।

५. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा।

६. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा।

७. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा।

८. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौ गं गणपतये वरवरद स्वाहा।

९. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौ गं गणपतये वरवरद सर्वजनं स्वाहा।

१०. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

११. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

बहुरूपञ्च जिह्वायामावाह्य परमेश्वरम्।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य जुहुयात् षोडशाहुतीः ॥६०॥
मूलमन्त्रेण विधिना वक्त्रैकीकरणं त्विदम्।
पुनस्तेनैव जुहुयाद्धाहुतीः पञ्चविंशतिः ॥६१॥
नाड़ीसन्धानमुद्दिष्टं वह्निदैवतयोरपि।
अङ्गादि परिवाराणामेकैकामाहुतिं हुनेत् ॥६२॥
पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा होमं कुर्याद्यथाविधिः।

तदनन्तर बहुरूपा ज़िह्वा में परमेश्वर का आवाहन करके गन्धादि से उनकी पूजा करके सोलह आहुतियाँ डालनी चाहिये। आहुति डालने का मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ बहुरूपाय अग्निजिह्वाय परमेश्वराय स्वाहा'। दशाक्षर कृष्णमन्त्र 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' में 'अग्निमुखाय स्वाहा' जोड़कर आहुति डालनी चाहिये। यही अग्निमुखों का एकीकरण कहलाता है। पुन: उसी मन्त्र से पच्चीस आहुतियाँ डालनी चाहिये; क्योंकि नाड़ीसन्धान वह्नि एवं देवता दोनों का कहा गया है। तदनन्तर वह्निदेवता के अंगादि परिवार के लिये भी एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिये; जैसे—

ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा।
ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा।
ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्।
ॐ धूम्रव्यापिने कवचाय हुं।
ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट्।

पुन: व्याहृतियों से यथाविधि हवन करना चाहिये; जैसे—

१. ॐ भूरग्नये पृथिव्यै महते च स्वाहा।
२. ॐ भुवो वायवे अन्तरीक्षाय च दिवे महते च स्वाहा।
३. ॐ स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा।
४. ॐ भूर्भुव: स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा।।६०-६२।।

अनुक्ते तु हविर्द्रव्ये तिलाज्यं हविरुच्यते ॥६३॥
जुहुयाद्रक्तपद्मं वा मधुरत्रयसंयुतम्।
पायसं मधुरोपेतं जुहुयाद्वा यथामति ॥६४॥
अस्यान्तर्जुहुयाद्वह्नेः पण्डितः सर्वकर्मसु।
बधिरत्वं कर्णहोमे नेत्रे त्वन्धत्वमाप्नुयात् ॥६५॥
नासिकायां मनःपीडा शिरे होमो हि मृत्युदः।
यतः काष्ठं ततः श्रोत्रं यतो धूमोऽथ नासिका ॥६६॥

यतोऽल्पज्वलनं नेत्रं यतो भस्मस्ततः शिरः ।
यतः प्रज्वलितो वह्निस्तन्मुखं जातवेदसः ॥६७॥

जहाँ हवनीय द्रव्य का कथन न किया गया हो, वहाँ हविर्द्रव्य में तिल एवं आज्य का ग्रहण करना चाहिये अथवा त्रिमधुराक्त लाल कमल से हवन करना चाहिये अथवा यथामति मधुरयुक्त पायस से हवन करना चाहिये।

विद्वान् को समस्त कर्मों में प्रज्वलित अग्नि के मध्य में ही हवन करना चाहिये। अग्नि के कर्ण में आहुति देने से होता बधिर होता है। इसी प्रकार आँख में हवन करने से अन्धता होती है, नाक में आहुति डालने से मनोरोग होता है एवं शिर पर हवन करने से मृत्यु होती है। हवनकुण्ड में जहाँ प्रज्वलनरहित केवल काष्ठ होते हैं, वहाँ अग्निदेव का कान होता है; जहाँ-जहाँ धूम होता है, वह नासिका होती है; जहाँ पर अग्नि की लपटें कम रहती हैं, वह नेत्र होता है; जहाँ भस्म रहता है, वह शिर होता है एवं जहाँ प्रज्वलित अग्नि रहती है, वह स्थान जातवेद अग्नि का मुख होता है।।६३-६७।।

एवं होमं विधायाथ मतिमान्तापयेच्चरुम् ।
पात्रे ताम्रमये शुद्धे दुग्धेन कापिलेन वै ॥६८॥
शुद्धतण्डुलसम्भूतं प्रसृतेर्विंशतिं क्षिपेत् ।
घृतधारां ततो दद्याद्यावद्भिन्नो भवेच्चरुः ॥६९॥
अथ हुत्वा च मेधावी कृष्णमावाह्य मन्त्रवित् ।
विसृजेद्बिन्दुगे धाम्नि नित्यहोमोऽयमीरितः ॥७०॥
स्वगृह्योक्तविधानेन बलिं वैष्णवमाचरेत् ।
भागद्वयमथ चरुं कृष्णाय विनिवेदयेत् ॥७१॥
एकभागं स्वयं भुक्त्वाऽपरं शिष्ये समर्पयेत् ।
शयीत संयतः शिष्यः कम्बले वा कुशासने ॥७२॥
भूतेश्वरस्य मन्त्रेण आशिषा बन्धयेद्गुरुः ।
ततः शयीत तां रात्रिमधिवासोऽयमीरितः ॥७३॥

इति गौतमीये महातन्त्रे एकादशोऽध्यायः

●

इस प्रकार हवन करने के बाद मतिमान होता को ताम्रपात्र में कपिला गाय के दूध में बीस प्रस्थ शुद्ध चावल का चरु पाक करना चाहिये। उसमें तबतक घृतधारा डालनी चाहिये, जबतक कि चरु का पाक न हो जाय। मेधावी मन्त्रज्ञ को इसके बाद कृष्ण का आवाहन करके हवन करने के उपरान्त बिन्दुधाम में विसर्जन करना चाहिये। यही नित्य होम कहा गया है।

इसके पश्चात् अपने गृहसूत्र के विधान के अनुसार वैष्णव को बलिवैश्वदेव करना चाहिये। पक्व चरु के दो भाग को हवन के रूप में कृष्ण को अर्पित करना चाहिये, एक भाग गुरु को स्वयं खाना चाहिये और शेष एक भाग शिष्य को देना चाहिये। तदनन्तर रात्रि में शिष्य को कम्बल या कुशासन पर शयन करना चाहिये एवं गुरु को भूतेश्वर मन्त्र से आशीष प्रदान करते हुये शिष्य को आवद्ध अर्थात् रक्षित करके स्वयं भी शयन करना चाहिये। इस प्रकार के शयन को अधिवास कहा जाता है।।६८-७३।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के एकादश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

द्वादशोऽध्याय:

[शुभाशुभ स्वप्न के लक्षण, हवन, दिक्पाल-पूजन, ग्रह-नक्षत्रादि का पूजन, ब्रह्मार्पण मन्त्र आदि का कथन।]

ततः प्रातः समुत्थाय कृतनित्यक्रियो गुरुः ।
कृतकृत्योऽपि शिष्यस्तु निषीदेद्गुरुसन्निधौ ॥१॥
कथयेद्रात्रिवृत्तान्तं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
सुमङ्गलीभिर्नारीभिः सहितं भोजनं मिथः ॥२॥
गिरिशृङ्गारोहणं च हस्त्यश्वरथरोदसीम् ।
आरोहणं सौधगृहे देवोत्सवनिरीक्षणम् ॥३॥
मङ्गलं ससुरामांसं दर्शनं स्पर्शनं तथा ।
मन्त्रसिद्धस्य लिङ्गानि प्रोक्तानि तव सुव्रत ॥४॥

तदनन्तर प्रात:काल उठकर गुरु के नित्यक्रिया सम्पन्न कर लेने पर शिष्य को भी नित्य क्रिया से निवृत्त होकर गुरु के निकट बैठकर रात्रि के शुभ अथवा अशुभ वृत्तान्त को गुरु से निवेदित करना चाहिये। स्वप्न में सुमंगली नारी के साथ भोजन, पर्वतशिखर पर आरोहण, हाथी-घोड़ों और रथ की आवाज, ऊँचे महल पर चढ़ना, देवोत्सव देखना, मंगलोत्सव देखना, सुरा के साथ मांस देखना अथवा उनका स्पर्श करना—ये सभी मन्त्रसिद्धि के लक्षण कहे गये हैं।।१-४।।

अनाकूल्यानि कथये शृणु निन्द्यानि सर्वतः ।
कृष्णवर्णैर्भटैः स्वप्ने प्रहारस्तैललेपनम् ॥५॥
विप्राणां रोषवादे च परस्त्रीणां निषेवणम् ।
सिद्धिविघ्नानि चोक्तानि अन्यानि विदितानि च ॥६॥

अब सव प्रकार से प्रतिकूल निन्द्य स्वप्नों को कहता हूँ; सुनो। काले रंग के योद्धाओं द्वारा प्रहार करना, तैल का लेपन करना, विप्रों द्वारा क्रोधपूर्वक बोलना, परस्त्री का सेवन करना—ये सभी एवं अन्य भी बहुत से अशुभ स्वप्न सिद्धि के लिये विघ्नकारक कहे गये हैं।।५-६।।

एवं दोषं समाज्ञाय क्षणात् परिहरेद्गुरुः ।
होमं कुर्यात्सहस्रादि दिव्यैः कल्पोक्तदर्शितैः ॥७॥

साङ्गं सपरिवारं च हुत्वा बलिमथाचरेत्।
मण्डलस्य बहिर्भागे लोकेशादि बलिं हरेत्॥८॥

इन दोषों को सुनकर गुरु को तत्काल उनका परिहार करना चाहिये; साथ ही दिव्यकल्पोक्त विधि से एक हजार हवन करना चाहिये। इस प्रकार सांग सपरिवार हवन करने के उपरान्त बलि प्रदान करनी चाहिये। मण्डल के बाहरी भाग में लोकपालों को वलि देनां चाहिये॥७-८॥

नक्षत्राणां सवाराणां सराशीनां यथाक्रमम्।
गन्धाद्यैः सम्यगभ्यर्च्य तत्तन्मन्त्रैस्तु मन्त्रवित्॥९॥
शुद्ध्वाऽनेन सतोयेन तत्तत्स्थानेष्वनुक्रमात्।
दद्याद्बलिं गन्धपुष्पधूपदीपमथादरात्॥१०॥
ताराणामश्विन्यादीनां राशिः पादाधिकद्वयम्।
मेषादिशुक्रनक्षत्रसंज्ञापूर्वमनन्तरम् ॥११॥
देवताभ्यः पदं प्रोक्त्वा दिवानक्तं वदेत्तथा।
चारिभ्यो सर्वभूतेभ्यस्तेभ्यश्चैव नमो वदेत्॥१२॥
एवं राशौ तु सम्पूर्णं तस्मिंस्तद्वत् प्रयोजयेत्।
तथा राश्यधिपानां च ग्रहाणां तत्र तत्र तु॥१३॥
मीनमेषान्तराले तु करणानां बलिं हरेत्।
मेषवृश्चिकयोर्भौमः शुक्रो वृषतुलाधिपः॥१४॥
बुधो युक्कन्ययोश्चाथ चन्द्रः कर्कटकाधिपः।
सिंहराश्यधिपो भानुश्चापमीनाधिपो गुरुः॥१५॥
मकरस्यापि कुम्भस्य मन्दो राश्यधिपा इमे।
तां इन्द्राय इत्यादि विष्णुं पारिषदं तथा॥१६॥

इसके बाद यथाक्रम नक्षत्रों, दिवसों, राशियों का उनके मन्त्रों का उच्चारण करते हुये गन्ध आदि से पूजन करना चाहिये। अनुक्रम से उनके स्थानों को शुद्ध जल से शुद्ध करके आदर के साथ गन्ध, पुष्प, दीप की बलि प्रदान करनी चाहिये। अश्विनी आदि नक्षत्रों, मेषादि राशियों को उनके मन्त्रों को उच्चारण करते हुये बलि प्रदान करनी चाहिये। बलि का मन्त्र इस प्रकार होता है—'ॐ अश्विनीदेवताभ्यो दिवानक्तचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।' इसी प्रकार राशि का भी मन्त्र बनाकर बलि देनी चाहिये; जैसे—मेष-अश्विनी-भरणी-कृत्तिकापाददेवताभ्यो दिवानक्तचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। इसी प्रकार राशियों के अधिपति का मन्त्र बनाकर उन्हें भी बलि देनी चाहिये; जैसे—मेषाश्विनीभरणीकृत्तिकापाददेवताभ्यो नमः दिवानक्तचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। राशि के अधिपति ग्रहों का मन्त्र बनाकर उन्हें भी बलि प्रदान करनी चाहिये। मीन-मेष के बीच में करणों को बलि देनी चाहिये।

राशियों के अधिपति इस प्रकार कहे गये हैं। मेष एवं वृश्चिक राशि के अधिपति मंगल हैं। वृष-तुला के अधिपति शुक्र हैं। बुध मिथुन एवं कन्या राशि के अधिपति हैं। चन्द्रमा कर्क राशि का अधिपति है। सिंह राशि के स्वामी सूर्य हैं। धनु और मीन राशि के स्वामी बृहस्पति हैं। मकर एवं कुम्भ राशि के स्वामी शनैश्चर हैं।

इसी प्रकार गुरु को इन्द्रादि दिक्पालों एवं विष्णु के पार्षदों को भी विधिपूर्वक बलि प्रदान करनी चाहिये।।९-१६।।

दद्याद्बलिं दिगीशाय विधिनाथ गुरूत्तमः।
ॐ अश्विनीदेवताभ्यो दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥१७॥
रोहिणीमृगशीर्षपूर्वाषाढादेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।
फाल्गुन्युत्तरफाल्गुनीपाददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥१८॥
उत्तराफाल्गुनीत्रिपादहस्तदेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।
हस्तचित्रार्धदेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥१९॥
चित्रोत्तरार्द्धस्वातीविशाखात्रिपाददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।
विशाखापाददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२०॥
मूलदेवताभ्यो रेवतीदेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।
पूर्वाषाढोत्तराषाढपाददेवताभ्यो
दिर्वानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२१॥
उत्तराषाढश्रवणदेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।
धनिष्ठार्धशतभिषादेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२२॥
शतभिषापूर्वभाद्रपददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।

यहाँ पर मूल में नक्षत्रों के बलिमन्त्र सुस्पष्ट रूप से दिये गये हैं; इन्हीं मन्त्रों का उच्चारण करते हुये तत्तत् नक्षत्रों को बलि देनी चाहिये।।१७-२२।।

मेषाश्विनीभरणीकृत्तिकापाददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२३॥
वृषकृत्तिकात्रिपादरोहिणीमृगशिर:पूर्वार्द्धदेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।
मिथुनमृगशिरार्द्रापुनर्वसुत्रिपाददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२४॥
कर्कपुनर्वस्वेकपादपुष्याश्लेषादेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।
सिंहमघापूर्वोत्तराफाल्गुनीपाददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२५॥
कन्योत्तरात्रिपादहस्तचित्रार्द्धदेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।
तुलाचित्रार्द्धस्वातीविशाखात्रिपाददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२६॥
वृश्चिकविशाखानुराधाज्येष्ठादेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।
धनुर्मूलपूर्वाषाढोत्तराषाढपाददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२७॥
मकरोत्तराषाढत्रिपादश्रवणधनिष्ठार्धदेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।
कुम्भधनिष्ठोत्तरार्द्धशतभिषापूर्वभाद्रपददेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।
मीनपूर्वभाद्रपदोत्तरभाद्रपदरेवतीदेवताभ्यो
दिवानक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥२८॥

यहाँ पर मूल में राशियों के बलिमन्त्र सुस्पष्ट रूप से दिये गये हैं; इन्हीं मन्त्रों का उच्चारण करते हुये तत्तत् राशियों को बलि देनी चाहिये।।२३-२८।।

पाददेवताभ्यो नमः शुक्रदेवताभ्यो नमः ।
बुधदेवताभ्यो नमः चन्द्रदेवताभ्यो नमः ॥२९॥
आदित्यदेवताभ्यो नमः बृहस्पतिदेवताभ्यो नमः ।
शनैश्चरदेवताभ्यो नमः सिंहदेवताभ्यो नमः ॥३०॥

यहाँ पर मूल में ग्रहदेवताओं के बलिमन्त्र सुस्पष्ट रूप से दिये गये हैं; इन्हीं मन्त्रों का उच्चारण करते हुये तत्तत् ग्रहदेवताओं को बलि देनी चाहिये।।२९-३०।।

व्याघ्रदेवताभ्यो नमः वराहदेवताभ्यो नमः ।
खरदेवताभ्यो नमः गजदेवताभ्यो नमः ॥३१॥
वृषदेवताभ्यो नमः कुक्कुरदेवताभ्यो नमः ।
हरदुर्गागुहविष्णुब्रह्मलक्ष्मीधनाधिपाः ॥३२॥
वारदेवता इति प्रोक्तास्तेभ्यो बलिं हरेद्गुरुः ॥३३॥

यहाँ पर मूल में वारदेवताओं के बलिमन्त्र सुस्पष्ट रूप से दिये गये हैं; इन्हीं मन्त्रों का उच्चारण करते हुये तत्तत् वारदेवताओं को वलि देनी चाहिये।।३१-३३।।

इत्थं बलिविधिः प्रोक्तः सर्वविघ्नौघनाशनः ।
गोपुच्छमूषिकां त्यक्त्वा तृणैरास्तरणं भवेत् ॥३४॥
जम्बीरं कलिवृक्षं च त्यक्त्वा चैधांसि कल्पयेत् ।
शुभसिन्दूरबालार्कवर्णो वह्नेः सुशोभनः ॥३५॥
भेरीवादित्रगम्भीरशब्दो वह्नेः शुभप्रदः ।
कर्पूरचन्दनवृन्दाभधूमः सर्वार्थसिद्धिकृत् ॥३६॥
खरवायसवच्छब्दो वह्नेः सर्वविनाशकृत् ।
कृष्णः कृष्णगतिर्वर्णो राज्यं चापि विनाशयेत् ॥३७॥

इस प्रकार समस्त विघ्नों के विनाश करने वाले बलि की विधि का निरूपण किया गया। गोपुच्छ एवं मूषक को छोड़कर तृण से आस्तरण कल्पित करना चाहिये। जम्बीर और कलिवृक्ष को छोड़कर हवन के लिये ईन्धन ग्रहण करना चाहिये। हवन में अग्नि का वर्ण सिन्दूर अथवा बालसूर्य के समान हो तो कल्याणकारक होता है। अग्नि का शब्द भेरी अथवा नगाड़े के समान गम्भीर हो तो शुभदायक होता है। कपूर एवं चन्दन के समान यदि हवनकुण्ड का धुआँ हो तो वह सर्वार्थसिद्धिप्रद होता है। अग्नि का शब्द यदि गदहा एवं कौए के शब्द के समान हो तो वह शब्द पूर्ण रूप से विनाशकारी होता है। काला धुआँ, काली अर्थात् तिरछी गति एवं कृष्ण वर्ण राज्य का भी विनाश करने वाला होता है।।३४-३७।।

पूर्णाहुतिं ततो दद्यादेभिश्चैव विधानवित् ।
ॐ भूरग्नये पृथिव्यै च महते स्वाहा ततः ॥३८॥
ॐ भुवो चान्तरिक्षाय च दिवे च स्वाहा ततः ।
स्वश्चन्द्रमसे दिग्भ्यश्च नक्षत्रेभ्यश्च स्वाहा ॥३९॥
ॐभूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते स्वाहा ।
स्रुवस्रुचौ समादाय घृतेनापूर्य तौ पुनः ॥४०॥
होमद्रव्याणि निक्षिप्य नाभौ संस्थाप्य तौ पुनः ॥४१॥

ब्रह्मार्पणेन मनुना दद्यात् पूर्णाहुतिं ततः।
इतः प्राणपूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः ॥४२॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु च मनसा वाचा कर्मणा।
हस्ताभ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यत्कृतम् ॥४३॥
यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा।
ब्रह्मार्पणमनुः सोऽयं ब्रह्मार्पणविधौ स्मृतः ॥४४॥

इति गौतमीये महातन्त्रे द्वादशोऽध्यायः

●

इस प्रकार उपर्युक्त विधि से हवन करने के पश्चात् हवनविधि के ज्ञाता को मूलोक्त मन्त्रों से पूर्णाहुति प्रदान करके मूलोक्त मन्त्र से ही कृत कर्म को ब्रह्मा को अर्पित कर देना चाहिये।।३८-४४।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के द्वादश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

त्रयोदशोऽध्यायः

[मन्त्रदान की विधि, गुरुदक्षिणा, शिष्य के नियमादि का कथन।]

एवं होमविधिं कृत्वा कुण्डस्थण्डिलदेवताः।
दिक्पालदेवतां चापि अङ्कुरार्पणदेवताः ॥१॥
आनयेत्कलशे चापि कृष्णैक्यं भावयेद्गुरुः।
कृष्णं सुधात्मतां नीत्वा शिष्यमाहूय मन्त्रवित् ॥२॥
वाससा नेत्रं बध्नीयान्नेत्रमन्त्रेण यत्नतः।
पाययित्वा पञ्चगव्यं मन्त्रामृतमयं शुभम् ॥३॥
स्पृश्य तत्र मन्त्रज्ञोऽध्वषट्कं च शोधयेत्।
विष्णुतत्त्वानि संशोध्य अभिषेकगृहं नयेत् ॥४॥
वर्णः कलापदं तत्त्वं मन्त्रो भुवनमेव च।
अध्वषट्कमिति प्रोक्तं मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥५॥
वर्णाध्वा वर्णसंघश्च कलाध्वा सद्भिरीरितः।
पदाध्वा पदसङ्घः स्यात्तत्त्वाध्वा पञ्चविंशतिः ॥६॥
षड्त्रिंशद्वैष्णवं तत्त्वमिति तत्त्वविदो विदुः।
मन्त्राध्वा मन्त्रराशिः स्यात्ते हि वैदिकतान्त्रिकाः ॥७॥
भुवनाध्वेति कथितो भुवनानि चतुर्दश।
शोधयाम्यमुमध्वानममुकस्येति पूर्वकः ॥८॥
ॐ वेदगर्भो नमश्चान्ते मनुरध्वविशोधने।
नवाहुतीर्गुरुः कुर्यादेकैकाध्वविशोधने ॥९॥
हस्ते गृहीत्वा तं शिष्यमभिषेकगृहं नयेत्।
निवेश्य मातृकायन्त्रे सेचयेत् कलशामृतैः ॥१०॥

इस प्रकार से हवन करने के पश्चात् गुरु को कुण्ड एवं स्थण्डिलदेवता, दिक्पाल-देवता तथा अंकुरार्पणदेवता में ऐक्य की भावना करते हुये उन्हें कलश में समाहित करते हुये कृष्ण के साथ ऐक्य की भावना करनी चाहिये अर्थात् उन देवताओं को अभिन्न समझना चाहिये। फिर अमृतात्मा कृष्ण को उस कलशजल में लाकर शिष्य को बुलाकर उसकी आँखों पर वस्त्रों की पट्टी बाँधकर यत्नपूर्वक मन्त्र से पंचगव्य को मन्त्रामृतमय बनाकर उसे पान कराना चाहिये। फिर उसका स्पर्श करके छहों अध्वों का

शोधन करना चाहिये। विष्णुतत्त्वों का शोधन करके उसे अभिषेकगृह में ले जाना चाहिये।

अध्व छः होते हैं—वर्णाध्व, कलाध्व, पदाध्व, तत्वाध्व, मन्त्राध्व और भुवनाध्व। वर्णाध्व पचास वर्णों के समूह को कहते हैं। कलाध्व कलासमूह है। पदाध्व पदसमूह है। तत्त्वाध्व में पच्चीस तत्त्व होते हैं। तत्त्वज्ञाताओं के अनुसार वैष्णवमत में छब्बीस तत्त्व होते हैं। मन्त्राध्व के मन्त्रसमूह में वैदिक और तान्त्रिक मन्त्र आते हैं। भुवनाध्व में चौदहों भुवन आते हैं। इन अध्वों का नामसहित शोधन करना चाहिये। शिष्य को दिव्य दृष्टि से देखते हुए गुरुदेव द्वारा उसके चैतन्य को आत्मा से संयोजित करके अध्वों का शोधन। कुशगुच्छ से स्पर्श करते हुए करना चाहिये; जैसे—

१. पैरों का स्पर्श करते हुए 'ॐ शोधयामि कलाध्वानं स्वाहा' कहकर तिल-घृत की नव आहुतियाँ देनी चाहिये।

२. गुह्य का स्पर्श करते हुए 'ॐ शोधयामि तत्त्वाध्वानं स्वाहा' कहकर नव आहुतियाँ देनी चाहिये।

३. नाभि का स्पर्श करते हुए 'ॐ शोधयामि भुवनाध्वानं स्वाहा' कहकर नव आहुतियाँ देनी चाहिये।

४. हृदय का स्पर्श करते हुए 'ॐ शोधयामि वर्णाध्वानं स्वाहा' से कहकर नव आहुतियाँ देनी चाहिये।

५. ललाट का स्पर्श करते हुए 'ॐ शोधयामि पदाध्वानं स्वाहा' कहकर नव आहुतियाँ देनी चाहिये।

६. मस्तक का स्पर्श करते हुए 'ॐ शोधयामि मन्त्राध्वानं स्वाहा' कहकर नव आहुतियाँ देनी चाहिये।

तदनन्तर गुरु को शिष्य का हाथ पकड़कर अभिषेक गृह में लाकर मातृकायन्त्र पर उसे बिठाकर कलशामृत से उसका सेचन करना चाहिये।।१-१०।।

कृष्णानुभवपूर्णात्मा आचार्यश्चानयेद् घटम्।
गोरोचनापल्लवानि कल्पवृक्षधिया मृशन्।।११।।
शिशोः शिरसि संयोज्य विलोममातृकां जपन्।
मूलमन्त्रं तथा जप्त्वा कुर्यादेवाभिषेचनम्।।१२।।
कृष्णात्मकं तु तत्तोयं शिरआदि पदावधि।
अभिसिञ्चेत्तेन मन्त्री कृष्णात्मा भवति ध्रुवम्।।१३।।
रत्नौषधिकलाभिश्च जलं कृष्णात्मकं भवेत्।
तेन तत्सेकमात्रेण शिशुः कृष्णो न चान्यथा।।१४।।

एवं यः कुरुते भक्त्या आत्मानं विष्णुसंस्कृतम्।
इह भुक्त्वा यथाकामं देहान्ते तत्पदं व्रजेत्॥१५॥
चन्दनालेपिताङ्गश्च द्विजाशीर्भिश्च संयुतः।
कृष्णात्मकं देशिकं तं प्रणम्य च पुनः पुनः॥१६॥
निषीदेत् सन्निधौ तस्य नियतो विनयान्वितः।
न्यासजालं तस्य देहे गुरुः संन्यस्य यत्नतः॥१७॥
दक्षकर्णे वदेन्मन्त्रं त्रिवारं पूर्णमानसः।
गणेशादिमनुं चोक्त्वा समयात्कथयेद् गुरुः॥१८॥
मन्त्रार्थं मन्त्रबीजं च तच्छक्तिं तत्फलानि च।
आत्मानं दर्शयेत्साक्षात्स्वनाम्ना तन्मयत्वतः॥१९॥
मन्त्रकुण्डलिदेवानामेकार्थत्वं प्रकाशयेत्।
सिद्धान्तं वैष्णवं यत्नाद्बोधयेत्तस्य चेद् गुरुः॥२०॥
यथा ग्रामगतं तोयं विष्ठादिमूत्रदूषितम्।
गङ्गायां मिलितं तत्तु गङ्गैव भवति ध्रुवम्॥२१॥
तथा मातृमानमेयं त्रयातीतो भवेच्छिशुः।

कृष्ण का अनुभव करने से पूर्णात्मा आचार्य घट को लाकर गोरोचन एवं पल्लवों को कल्पवृक्ष मानकर हाथों से उन्हें मलकर शिष्य के शिर पर उसे रखकर विलोममातृका का जप करते हुये मूल मन्त्र का जप करके शिष्य का अभिषेचन करें। कृष्णात्मक उस जल से शिष्य के मस्तक से पैरों तक सेचन करने से शिष्य निश्चय ही कृष्णात्मा हो जाता है। रत्न, औषधि एवं कलाओं से जल कृष्णात्मक हो जाता है; अतः उसके द्वारा अभिषेक करने से वह शिष्य भी कृष्ण ही हो जाता है; दूसरा नहीं रह जाता। इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक अपना विष्णुसंस्कार करता है, वह इस संसार में इच्छित भोगों को भोग करके देहान्त होने पर विष्णुपद को प्राप्त करता है। चंदन-लिप्त शरीर एवं द्विज के आशीर्वाद से संयुक्त वह कृष्णात्मक शिष्य आचार्य को बार-बार प्रणाम करे। तब गुरु उसके निकट सावधान होकर नम्रतापूर्वक बैठकर उस शिष्य के देह में यत्नपूर्वक न्यासों को न्यस्त करके पूर्णमानस होकर उसके दाँयें कान में तीन बार मन्त्र का उच्चारण करे। साथ ही साथ गणेश आदि के मन्त्रों को भी कहकर सम्प्रदायगत सिद्धान्तों का कथन करते हुये मन्त्र का अर्थ, उसका बीज, उसकी शक्ति और उसके फलों का भी कथन करे। स्वयं को कृष्णस्वरूप मानकर तन्मय मानते हुये मन्त्र, कुण्डलिनी एवं देवता का एकार्थत्व प्रकाशित करे। यत्नपूर्वक शिष्य को वैष्णव-सिद्धान्तों को बतलावे। जिस प्रकार विष्ठा-मूत्र आदि से दूषित गाँव का जल भी गंगा में मिलकर गंगाजल हो जाता हैय वैसे ही वह शिष्य भी मातृ, मान एवं मेय—तीनों से मुक्त हो जाता है।।११-२१।।

शिष्योऽपि पूर्णतां मत्वा गुरुं यत्नेन तोषयेत् ।।२२।।
गुरवे दक्षिणां दद्याद्वित्तार्द्धं भक्तितत्परः ।
तदर्द्धं वा ततो दद्याद्यथाशक्त्याथ भक्तितः ।।२३।।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कृतेऽनर्थं समावहेत् ।
गोभूहिरण्यवस्त्रादि गुरवेऽथ निवेदयेत् ।।२४।।
गुरुपुत्रे च तत्पत्न्यै तच्छिष्ये स्वशक्तितः ।
वस्त्रालङ्करणं दद्याद्भोज्यमिष्टं यथारुचि ।।२५।।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद् वस्त्रालङ्कारसंयुताम् ।
स तु तांस्तर्पयेद्भक्त्या यथाविभवविस्तरात् ।।२६।।

शिष्य भी अपने को पूर्ण मानकर गुरु को यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करे और गुरु को दक्षिणा में भक्तिपूर्वक अपने धन का आधा भाग प्रदान करे। अथवा आधे का आधा अर्थात् चौथाई भाग या अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिभाव से दक्षिणा प्रदान करे; इसमें वित्तशाठ्य कदापि न करे। दक्षिणा देने में शिष्य यदि वित्तशाठ्य करता हैं तो वह अनर्थ को ही आवाहित करता है। इसके बाद गुरु को गाय, सोना एवं वस्त्र भी प्रदान करे। इस प्रकार गुरु को सन्तुष्ट करने के उपरान्त गुरुपुत्र, गुरुपत्नी और गुरु के शिष्यों को भी अपनी शक्ति के अनुसार वस्त्र, आभूषण, भोजन के साथ-साथ उनका अभीष्ट प्रदान करके उन्हें तृप्त करे।।२२-२६।।

ततः प्रभृति मन्त्रज्ञो गुरुशासनसंस्थितः ।
यथा मन्त्रे तथा देवे यथा देवे तथा गुरौ ।।२७।।
पश्येदभेदतो मन्त्री एवं भक्तिक्रमो मुने ।
अभक्तिभजनाल्लोके देवता क्लेशदायकः ।।२८।।
त्रिदिनं निवसेद्भक्त्या सिद्धये गुरुसन्निधौ ।
अन्यथा तद्गतं तेजो गुरुमेति न संशयः ।।२९।।

इति गौतमीये महातन्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः

●

इसके बाद वह मन्त्रज्ञ शिष्य गुरु के अनुशासन में रहते हुये मन्त्र, देवता और गुरु में भेद न करे; अपितु भक्तिपूर्वक तीनों को एक ही समझे। भक्ति से रहित होकर भजन करने से देवता इस लोक में कष्ट प्रदान करने वाले होते हैं। सिद्धि की प्राप्ति के लिये शिष्य को तीन दिनों तक भक्तिपूर्वक गुरु के समीप निवास करना चाहिये; अन्यथा उस शिष्य में स्थित तेज को गुरु अधिगत कर लेता है; इसमें कोई संशय नहीं है।।२७-२९।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के त्रयोदश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

चतुर्दशोऽध्याय:

[पुरश्चरण-विधि, पुरश्चरण के नियम, मालाभेद, फल के प्रकार, जपविधि, जप के भेद, जप के उपरान्त हवनादि का विधान, हवन के अभाव में प्रतिनिधि-विधि, दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर मन्त्र की जपसंख्या, तर्पण-अभिषेक आदि, स्थानविशेष में जपसंख्या आदि का कथन।]

चैत्रे मास्यथवा कृत्वा शुभर्क्षे गुरुशासनात्।
द्वादश्यां शुक्लपक्षे च माधवे मासि तत्तिथौ ॥१॥
आरभेदमलायां चेत् पुरश्चर्यां स्वसिद्धये।
जपहोमौ तर्पणं च सेको ब्राह्मणभोजनम् ॥२॥
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते।
आदौ पुरस्क्रियां कर्त्तुं कुर्याद् भूमेः परिग्रहम् ॥३॥
स्वेच्छाहारविहाराय तत ऊर्ध्वं न लङ्घयेत्।
जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥४॥
पुरश्चरणहीनोऽपि न तथा फलदो मनुः।
पर्वताग्रे नदीतीरे गोष्ठे देवालये तथा ॥५॥
पुण्यारण्ये तथा तीरे समुद्रस्य निजे गृहे।
तुलसीकाननेऽरण्ये बिल्वमूले च शस्यते ॥६॥
विष्णुक्षेत्रे च विधिवत् सिद्धये जपमारभेत्।
पुरश्चरणकृन्मन्त्री भक्ष्याभक्ष्यं विचारयेत् ॥७॥
अन्यथा भोजनाद्दोषात्सिद्धिहानिः प्रजायते।
सत्कुलस्थानजातानि शुचीनां श्रीमतां सिताम् ॥८॥
गृहस्थानां वदान्यानां भीक्षाशीतोग्रजन्मनाम्।
भुञ्जानो वा हविष्यान्नं शाकं च विहितं तथा ॥९॥
मूलं च क्रमुकेन्दूनां वर्ज्जयेद्विहितं मुने।
पयोदधि फलं चापि नारिकेलं यथोदितम् ॥१०॥
हविष्यं वा तथाश्नीयात् सक्तुं यवसमुद्भवम्।

गुरु के अनुशासन से चैत्र मास के शुभ नक्षत्र में द्वादशी शुक्लपक्ष में या माधव मास की उसी तिथि में अपनी सिद्धि के लिए शिष्य को पुरश्चरण का प्रारम्भ करना

चाहिये। जप, हवन, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मणभोजन—इस पंचांग की उपासना को लोक में पुरश्चरण कहा जाता है। पुरश्चरण के लिए सर्वप्रथम भूमि का चयन करने के बाद अपने आहार-विहार के लिये इच्छा होने पर भी कभी उसकी सीमा से बाहर नहीं जाना चाहिये। जिस प्रकार जीव से रहित शरीर किसी भी कर्म को करने में समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार पुरश्चरण से रहित मन्त्र भी किसी प्रकार का फल प्रदान नहीं करता। पर्वत के शिखर पर, नदी के किनारे, गोशाला में, देवालय में, पावन जंगल में, समुद्र के किनारे, अपने घर में, तुलसी की वाटिका में, अरण्य में अथवा वेलवृक्ष के नीचे पुरश्चरण का अनुष्ठान करना चाहिये। सिद्धि के लिये विष्णुक्षेत्र में विधिपूर्वक जप का आरम्भ करना चाहिये। पुरश्चरणकाल में साधक को भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार अवश्य करना चाहिये; क्योंकि अन्यथा भोजन के दोष से सिद्धि की हानि होती है। सत्कुल में स्थित अथवा उत्पन्न, पवित्र व्यक्ति, श्रीमान्, गृहस्थ, सत्यवादी ब्राह्मण के यहाँ से भिक्षा ग्रहण करके भोजन करना चाहिये अथवा हविष्यान्न या शाक का भक्षण करना चाहिये। मूल एवं सुपारी का सर्वथा परित्याग करना चाहिये। सरलता से प्राप्त होने पर दूध, दही, फल, नारियल अथवा यव के सत्तु का हविष्य भोजन में लेना चाहिये।।१-१०।।

आम्रमामलकं चैव मूलं केशरिसम्भवम् ।।११।।
रम्भाफलं तिन्तिडीकं कमलागरुरङ्गकम् ।
फलान्येतानि भोज्यानि एषामन्यादि वर्जयेत् ।।१२।।
भूशय्यां ब्रह्मचारित्वं मौनं चाप्यनसूयताम् ।
नित्यं त्रिसवनस्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम् ।।१३।।
नित्यपूजा नित्यदानं देवतास्तुतिकीर्त्तनम् ।
नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ।।१४।।
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ।
नित्यं सूर्यमुपस्थाय तस्य चाभिमुखो जपेत् ।।१५।।
देवताप्रतिमादौ च वह्नौ चाभ्यर्च्य तन्मुखः ।
अनिर्वेदस्तथाव्यग्रः शास्त्रोक्ताचारपालकः ।।१६।।
एवमादौ च नियमात् पुरश्चरणमुच्चरेत् ।
शक्तौ त्रिसवनस्नानमन्यथा द्विः सकृत्तथा ।।१७।।
अस्नातस्य फलं नास्ति न वा तर्पयतः पितॄन् ।
अमेध्यसम्भवं देहं जलादिन्द्रियशुद्धता ।।१८।।
तस्मान्मुख्यं जलस्नानं सर्वेषां मुनिभिर्मतम् ।

आम, आँवला, केशरिसम्भव अर्थात् विजौरा नीबू, केला, इमली, नारंगी—इतने फल भोज्य हैं। इनके अतिरिक्त सभी फल वर्जित हैं। भूमि पर शयन, ब्रह्मचर्य, मौन,

अनसूयता, प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में स्नान, क्षुद्र कर्म का त्याग, नित्य पूजन, नित्य दान, देवता की स्तुति और कीर्तन, नैमित्तिक अर्चन, गुरु एवं देव में विश्वास तथा जप में निष्ठा—ये बारह कर्म मन्त्र की सिद्धि देने वाले होते हैं। सूर्य का नित्य उपस्थान करके उसकी ओर मुख करके जप करना चाहिये। देवता की प्रतिमा और अग्नि का पूजन करके उनकी तरफ मुख करके जप करना चाहिये। अनिर्वेद एवं अव्यग्र रहकर शास्त्रोक्त आचार का पालन करना चाहिये। प्रारम्भ में इन नियमों का पालन करते हुये पुरश्चरण का अनुष्ठान करना चाहिये। समर्थ होने पर तीनों सन्ध्याओं में स्नान करना चाहिये; अन्यथा अशक्तता की स्थिति में एक ही वार स्नान प्रशस्त होता है। स्नान और पितरों को तर्पण के विना अनुष्ठान का कोई फल प्राप्त नहीं होता। अमेध्यसंभव देह एवं इन्द्रियों की शुद्धि जल से होती है। इसलिये समस्त मुनियों का मत है कि जलस्नान मुख्य है।।११-१८।।

न वीक्ष्येत्पतितं व्रात्यं पिशुनं वेदनिन्दकम्।।१९।।
तथा चाश्रमिणं विप्रं विष्ण्वार्थस्य विनिन्दकम्।
ऋतुकालं विना मन्त्री स्वस्त्रियं नापि संस्पृशेत्।।२०।।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत्।
पर्वते सिन्धुतीरे वा पुण्यारण्ये नदीतटे।।२१।।
यदि कुर्यात्पुरश्चर्यां तत्र कूर्मञ्च चिन्तयेत्।
दीपस्थानं द्विधा प्रोक्तं मुखं पृष्ठं च मन्त्रिणः।।२२।।
दीपस्थाने भवेत्सिद्धिर्नान्यथा कोटिजापनैः।
पूर्वोत्तरविभागेन चतुःसूत्रनिपातनात्।।२३।।
नवकोष्ठं भवेदेतत् कूर्मदेहमनुत्तमम्।
पूर्वादिदिशि मन्त्रज्ञः प्रदक्षिणक्रमेण तु।।२४।।
कादिवर्गांल्लिखेद्विद्वान् पञ्चपञ्चविभागशः।
यादिवर्गं शादिवर्गं लक्ष्मीशे च संलिखेत्।।२५।।
कूर्मस्याङ्गं च कूर्मवत्कुर्याच्छोभा यथा भवेत्।
स्वराणां युग्मयुग्मं च मध्ये चाष्टसु दिक्षु च।।२६।।
एवमष्टाङ्गवान् कूर्मः सर्वेषां सिद्धिदीपकः।
दीपनार्थं लिखेन्मध्ये पूजयेत्तं विभावयन्।।२७।।
यस्यां दिशि ग्रामनामाद्यक्षरं दृश्यते तथा।
कूर्मवक्त्रं च जानीयात्तत्र सिद्धिरनुत्तमा।।२८।।
वक्त्रपार्श्वे च कोष्ठे द्वे करौ कूर्मस्य विद्धि हि।
मध्ये कुक्षौ उभौ ज्ञेयौ पादौ द्वौ शेषपुच्छकः।।२९।।

एवं कूर्मं विजानीयाद्दीपचक्रविवेचकः ।
मुखे शुद्धिर्भवेन्नूनं मध्ये सिद्धिश्च जायते ॥३०॥
उदासीनः करस्थश्चेत् जक्षिस्थो दुःखमाप्नुयात् ।
पादस्थः पीड्यते मन्त्री बन्धनोच्चाटनादिभिः ॥३१॥
पुच्छे मृत्युर्भवेन्नूनमेवं कूर्मस्य संस्थितिः ।
मन्त्राक्षरेण मन्त्रं चेत् कूर्मनाम्नो भवेद्यदि ॥३२॥
साधकस्य च नाम्नाथ किं न सिध्यति मन्त्रिणः ।
पञ्चाशद्वर्णरूपेण क्षेत्रेण विश्वविग्रहः ॥३३॥
तस्माच्चक्रं विचार्य्यैवं मित्रं चेत्सर्वसिद्धिदम् ।
यस्मिन्देशे दीपपतिः सगुणं नाममन्त्रयोः ॥३४॥
तत्र यत्नेन गन्तव्यं स पीठो दुर्लभो मतः ।

पतित, व्रात्य, चुगलखोर, वेदनिन्दक, आश्रमी विप्र एवं विष्णु के अर्थ के निन्दक को नहीं देखना चाहिये। ऋतुकाल से अतिरिक्त समय में मन्त्रज्ञ को अपनी पत्नी का भी स्पर्श नहीं करना चाहिये। मैथुन अथवा उसकी वार्त्ता अथवा उसकी गोष्ठी में सहभागी नहीं होना चाहिये। पर्वत पर, समुद्रतट पर, पुण्य वन में अथवा नदीं के किनारे यदि पुरश्चरण का अनुष्ठान अभीष्ट हो तो कूर्मचक्र का भी विचार करना चाहिये। कूर्मचक्र में मुख और पृष्ठ को मन्त्रज्ञ लोग दीपस्थान कहते हैं। उस दीपस्थान में बैठकर जप करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है; अन्यथा करोड़ों जप से भी सिद्धि हस्तगत नहीं होती। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर चार सूत्रों के निपातन से नव कोष्ठ बनते हैं। इसमें उत्तम कूर्मशरीर बनता है। इस चक्र को कूर्म के आकार का बनाकर मध्यभाग में स्वरवर्णों को लिखकर पूर्व से उत्तर तक कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग के वर्णों को लिखना चाहिये। ईशान कोण में ळ एवं क्ष लिखना चाहियें। जिस स्थान या नगर में जप करना अभीष्ट हो, उसके नाम का पहला अक्षर कूर्मचक्र में जहाँ पड़े, उसे मुख कहते हैं। उसके दोनों ओर के कोष्ठकों को भुजायें कहते हैं। उसके निचले दो कोष्ठकों को कुक्षि कहते हैं। उसके निचले सभी कोष्ठकों को पैर और शेष भाग को पूँछ कहते हैं। मुख वाले भाग में बैठकर साधक को साधना करनी चाहिये। कूर्मचक्र के मुख को दीपस्थान कहते हैं। दीपस्थान में साधना करने से सिद्धि प्राप्त होती है। भुजा में बैठकर जप करने से अल्पायु की प्राप्ति होती है। कुक्षि में बैठकर जप करने से विफलता होती है एवं पैरो में बैठकर जप करने से कष्ट होता है। पूंछ पर बैठकर साधना करने से मृत्यु होती है। मन्त्र के प्रथम अक्षर और साधक के नाम के प्रथम अक्षर के साथ कूर्म का दीपस्थान जहाँ पड़े, वहाँ क्या सिद्ध नहीं होता। पचास वर्णों के रूप में क्षेत्र विश्वविग्रहस्वरूप होता है। इसलिये

साधक के नाम का प्रथम अक्षर, मन्त्र का प्रथम अक्षर और दीपपति जहाँ एक हों, वहाँ सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। अतः उस दुर्लभ पीठस्थान पर अवश्य जाना चाहिये।।१९-३४।।

कूर्मचक्र

लक्ष
क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
अं अः
अ आ
इ ई
श ष स ह
ओ औ
उ ऊ
ट ठ ड ढ ण
ए ऐ
ऌ ॡ
ऋ ॠ
य र ल व
प फ ब भ म
त थ द ध न

रुद्राक्षैरपि पद्माक्षैः पुत्रजीवकचन्दनैः ॥३५॥
स्फाटिकैश्च प्रवालैश्च कुशग्रन्थिभवैस्तथा ।
तथामलकसम्भूतैस्तुलसीकाष्ठनिर्मितैः ॥३६॥
एभिश्च मालिकां कुर्यात् प्रज्ञावान् वैष्णवे मनौ ।

वुद्धिमान् साधक को वैष्णव मन्त्र की साधना के लिये रुद्राक्ष, पद्माक्ष, जायफल, चन्दन, स्फटिक, मूंगा, कुशग्रन्थि, आँवला अथवा तुलसी की लकड़ी से माला-हेतु मणियों का निर्माण करना चाहिये।।३५-३६।।

रुद्राक्षसम्भवा माला त्वनन्तफलदा मता ॥३७॥
पुण्डरीकभवा माला गोपालमनुसिद्धिदा ।
पुत्रजीवभवा या तु पुत्रं वितनुतेऽचिरात् ॥३८॥
अष्टोत्तरशतमणिभिर्निर्मिता या तु मालिका ।
राज्यं वितनुते नृणां देहान्ते मोक्षदायिनी ॥३९॥
मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या पुत्रार्थी त्रिंशता जपेत् ।
चत्वारिंशन्मणिभवा अभिचाराय केवलम् ॥४०॥
पञ्चाशन्मणिभिर्माला सर्वकर्मप्रसाधिका ।
आकारादिक्षकारान्ता अक्षमालेति कीर्त्तिता ॥४१॥
क्षान्तं मेरुमुखं तत्र कल्पयेन्मुनिसत्तम ।
अनया सर्वमन्त्राणां जपः सर्वसमृद्धिदः ॥४२॥
नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यावबोधना ।
आरभ्यानामिकामूलात् परिवर्त्तेन वै क्रमात् ॥४३॥
तर्ज्जनीमध्यपर्यन्तं जपेदष्टसु पर्वसु ।
गोपालतन्त्रमन्त्राणां करमालेयमीरिता ॥४४॥
कार्पाससम्भवं सूत्रं पुण्यस्त्रीभिर्विनिर्मितम् ।
अथवा पट्टसूत्रेण स्वर्णसूत्रेण वा तथा ॥४५॥
अणिमादिकमोक्षान्ताः सिद्धयः स्वर्णसूत्रके ।
पट्टसूत्रं वश्यकरं धनपुत्रादिवर्द्धनम् ॥४६॥
कार्पाससम्भवं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ग्रथयेच्छिल्पशास्त्रतः ॥४७॥
मुखे मुखं तु संयोज्यं पुच्छे पुच्छं नियोजयेत् ।
गोपुच्छसदृशी माला यद्वा सर्पाकृतिः शुभा ॥४८॥

रुद्राक्ष की माला अनन्त फल प्रदान करने वाली होती है। कमलगट्टे की माला से गोपालमन्त्र की सिद्धि होती है। पुत्रजीव की माला सद्यः पुत्र प्रदान करने वाली होती

है। एक सौ आठ दाने की माला इस लोक में राज्य देने वाली होती है एवं देहान्त होने पर मोक्ष प्रदान करती है। मोक्ष की कामना वाले के लिये पच्चीस दानों से बनी माला एवं पुत्रप्राप्ति के इच्छुक के लिये तीस दानों से निर्मित माला प्रशस्त कही गई है। चालीस मणियों की माला केवल अभिचार कर्म में प्रयुक्त होती है। पचास मनकों की माला से सर्वार्थसिद्धि होती है। अकार से क्षकार तक की माला को अक्षमाला कहते हैं। हे मुनिसत्तम! इसमें क्ष-अक्षर को मेरु जानना चाहिये। इस माला से जप करने पर सभी मन्त्र समृद्धिदायी होते हैं। अक्षमाला पर नित्य जप करना चाहिये; लेकिन काम्य कर्मों के अनुष्ठान में इस पर जप नहीं करना चाहिये। अनामिकामूल से आरम्भ करके क्रमशः तर्जनीमध्य तक आठ पर्वों पर गोपालमन्त्रों का जप करना चाहिये। इसे करमाला कहा जाता है। कपास के धागे में गुँथी माला से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त होते हैं। तीन धागों से माला गूँथने में गाँठ त्रिगुणित करके लगाना चाहिये। शिल्पशास्त्र के अनुसार माला को ग्रथित करना चाहिये। मुख से मुख एवं पुच्छ से पुच्छ को मिलाते हुये माला को गूँथना चाहिये। गोपुच्छ के आकार वाली अथवा सर्प के आकार वाली माला शुभ होती है।।३७-४८।।

एवं निर्माय मालां वै शोधयेन्मुनिसत्तम।
अश्वत्थपत्रनवकैः पद्माकारं तु कारयेत्।।४९।।
तन्मध्ये स्थापयेन्मालां मातृकां मूलमुच्चरन्।
नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय च।।५०।।
छालयेदीशसूक्तेन लिम्पेत्तत्पुरुषेण तु।
गन्धैरनल्पैर्मतिमानघोरेण तु धूपयेत्।।५१।।
अघोरेणैव सूक्तेन शतान्न्यूनं तु मन्त्रयेत्।
वामदेवेन सूक्तेन समीकुर्याद्विचक्षणः।।५२।।
एकैकमणिमादाय ब्रह्मग्रन्थिं प्रकल्पयेत्।
एकैकमातृकावर्णान् ग्रथनादौ तु सञ्जपेत्।।५३।।
तत्सजातीयमेकाक्षं मेरुं च त्रिः प्रकल्पयेत्।
एवं संग्रथितां मालां पुनः पद्मोपरि न्यसेत्।।५४।।

इस प्रकार माला को बनाकर उसका शोधन करना चाहिये। एतदर्थ पीपल के नव पत्तों से अष्टदल कमलाकार मण्डल बनाकर उसके मध्य में मातृकाओं के मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये माला को स्थापित करके नित्य-नैमित्तिक कर्म सम्पन्न करके सामान्यार्घ्य की स्थापना कर रुद्रसूक्त से माला को धोकर तत्पुरुषमन्त्र से माला में चन्दनादि का लेप करने के पश्चात् अघोर मन्त्र से धूप देकर सौ अघोर मन्त्र से उसे मन्त्रित करना चाहिये। तत्पश्चात् विचक्षण साधक को वामदेव सूक्त से उसका

समीकरण करना चाहिये। एक-एक मणियों में ब्रह्मग्रन्थि लगाकर तत्तत् मनकों के लिये उनके ग्रथन के पूर्व एक-एक मातृकावर्ण का जप करना चाहिये। माला के सजातीय एक मनके को मेरु मानकर संग्रथित माला को पुनः कमलदल पर स्थापित कर देना चाहिये।।४९-५४।।

तत्रावाह्य यजेद्देवं यथाविभवविस्तरैः।
मन्त्रयेन् मूलमन्त्रेण तथोक्तक्रमयोगतः ।।५५।।
तथैव मातृकावर्णैर्मन्त्रयेत्तन्त्रतत्त्ववित्।
क्षालयेत् पञ्चगव्येन पुनरीशानसूक्ततः ।।५६।।
पुनर्विलिप्य गन्धेन जपेन्मन्त्रं यथेच्छया।
नान्यमन्त्रं जपेन्मन्त्री कम्पयेन्न विधूनयेत् ।।५७।।
कम्पनात् सिद्धिहानिः स्याद्धूननं बहुदुःखकृत्।
शब्दे जाते भवेद्रोगः करभ्रष्टो विनाशकृत् ।।५८।।
छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युस्तस्माद्यत्नपरो भवेत्।
जपान्ते कर्णदेशे वा उच्चस्थाने च वा न्यसेत् ।।५९।।
त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते ।।६०।।
इत्युक्त्वा परिपूज्याथ गोपयेद्यत्नतो यती।

उस कमलदल पर देवता का आवाहन करके अपने विभव के अनुसार विस्तार से पूजन करना चाहिये। साथ ही उक्त क्रमयोग से मूल मन्त्र से माला को मन्त्रित करना चाहिये। तदनन्तर तत्त्वज्ञ साधक को मातृकावर्णों से भी उसे मन्त्रित करना चाहिये। फिर पञ्चगव्य के द्वारा ईशानसूक्त से उसका प्रक्षालन करके गन्ध का लेप लगाकर इच्छानुसार जप करना चाहिये। पुरश्चरणकाल में किसी अन्य मन्त्र का जप नहीं करना चाहिये। साथ ही माला को न तो कम्पित करना चाहिये और न ही उसका विधूनन करना चाहिये; क्योंकि माला के कम्पन से सिद्धि की हानि होती है एवं उसके विधूनन से अतिशय दुःख प्राप्त होता है। मालाजप के समय शब्द होने से व्याधि होती है एवं हाथ का मर्दन करने से विनाश होता है। माला के धागे के टूटने से मृत्यु होती है। इसलिये यत्नपूर्वक जप का अनुष्ठान करना चाहिये। जप के बाद माला को अपने कान के बराबर स्थान पर अथवा किसी उच्च स्थान पर रखना चाहिये। तदनन्तर 'त्वं माले.......नमोऽस्तु ते' मन्त्र द्वारा उस माला की पूजा करके व्रती को उसे यत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये।।५५-६०।।

माला मन्त्रं च मुद्रां च पशुभ्यो न प्रकाशयेत् ।।६१।।

प्रकाशने कार्यहानिरित्युक्तं तन्त्रवेदिभिः ।
अङ्गुष्ठतर्ज्जनीभ्यां च जपाच्छुभशतं भवेत् ।।६२।।
तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगेन शत्रूच्चाटनकारकः ।
अङ्गुष्ठमध्यमायोगान्मन्त्रसिद्धिः सुनिश्चिता ।।६३।।
अङ्गुष्ठानामिकायोगादुच्चाटोद्वन्धने मते ।
ज्येष्ठाकनिष्ठायोगेन शत्रूणां नाशनं मतम् ।।६४।।
इति ते कथितो विद्वन् मालयाः परिनिर्णयः ।

माला, मन्त्र एवं मुद्रा को पशुओं अर्थात् अदीक्षितों के समक्ष प्रकाशित नहीं करना चाहिये। तन्त्रज्ञों का कहना है कि इन सबका पशुओं के समक्ष प्रकाशन करने से कार्य की हानि होती है। अंगूठे और तर्जनी के योग से जप करने पर सैकड़ों शुभ होते हैं। तर्जनी एवं अंगूठे के योग से किया गया जप शत्रुओं का उच्चाटन करने वाला होता है। अंगूठे और मध्यमा से जप करने पर निश्चित रूप से मन्त्रसिद्धि होती है। अंगूठे और अनामा के योग से जप करने पर उच्चाटन एवं बन्धन होता है। ज्येष्ठा अर्थात् मध्यमा और कनिष्ठा को मिलाकर जप करने से शत्रुओं का नाश होता है। हे विद्वन्! इस प्रकार तुमसे माला के सम्बन्ध में मैंने विवेचन किया।।६१-६४।।

शक्त्या त्रिसवनस्नानमन्यथा द्विः सकृत्तथा ।।६५।।
त्रिसन्ध्यं प्रजपेन्मन्त्रं पूजनं तत्समं भवेत् ।
एकदा तु भवेत्पूजा न जपेत् पूजनं विना ।।६६।।
प्रातःकालेऽथ वा पूजा जपान्ते वा यजेद्धरिम् ।
प्रातःकालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि ।।६७।।
पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः ।
सौषुम्न्यध्वन्युच्चरिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते ।।६८।।
मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोक्तानि च विभावयेत् ।
तामेव परमे व्योम्नि परमामृतबृंहितः ।।६९।।
दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजा होमादिभिर्विना ।

समर्थ होने पर प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में स्नान करना चाहिये; अन्यथा दो बार अथवा अशक्तता की स्थिति में एक ही बार स्नान करना चाहिये। तीनों सन्ध्याओं में पूजन के उपरान्त मन्त्र का जप करना चाहिये। पूजा एक ही बार होती है; लेकिन जप कभी भी पूजन के बिना नहीं करना चाहिये। प्रातःकाल में पूजा के बाद अथवा पूजा के पूर्व भी जप किया जा सकता है। प्रातःकाल से प्रारम्भ करके मध्य दिवस तक जप करना चाहिये। पशुभाव के साधक के लिये मन्त्र केवल वर्णरूप में रहते हैं; सुषुम्णा मार्ग से उच्चरित होने पर उनमें शक्ति का आधान होता है। ऐसी भावना करनी चाहिये

कि मन्त्र के अक्षर चित् शक्तियों से समन्वित हैं और वह चित् शक्ति परमाकाश में परमामृत से वृंहित होती रहती है तथा पूजा-हवन के विना भी वह अपनी महिमा को प्रकट करती रहती है।।६५-६९।।

मनः संहत्य विषयात् मन्त्रार्थगतमानसः ।।७०।।
न द्रुतं न विलम्बं च जपेन्मौक्तिकपंक्तिवत् ।
जपः स्यादक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ।।७१।।
धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ।
उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः ।।७२।।
जिह्वोष्ठौ चालयेत्किञ्चिद्देवतागतमानसः ।
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ।।७३।।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः ।
पश्यन्त्यादित्रिभिर्भेदैः कथितं जपलक्षणम् ।।७४।।
एवं जपं पुरा कृत्वा तेजोरूपं समर्पयेत् ।
देवस्य दक्षिणे हस्ते कुशपुष्पार्घ्यवारिभिः ।।७५।।
सफलं तद्विभाव्यैवं प्राणायामं त्रयं चरेत् ।
जपस्यादावथ चान्ते त्रितयं त्रितयं चरेत् ।।७६।।
न न्यूनं नाधिकं चापि जपं कुर्याद्दिने दिने ।
यदि कुर्यात् प्रमादात्तु जपं नेष्टमवाप्नुयात् ।।७७।।
न्यूने न्यूनाङ्गदोषः स्यादधिके चाधिकाङ्गकम् ।
यथाविधि कृतानि हि फलन्ति नान्ययत्नतः ।।७८।।

मन को विषयों से हटाकर मन्त्रार्थ में संलग्न करते हुये न तेजी से और न ही विलम्ब से अर्थात् समभाव से मोतियों की पंक्ति के रूप में जप करना चाहिये। वर्ण, स्वर एवं पदरूप अक्षरों की श्रेणी को ही जप कहा जाता है। वर्ण-स्वर-पदात्मिका उस अक्षरश्रेणी के अर्थ को समझते हुये बुद्धि द्वारा अर्थात् मन ही मन जो उच्चारण किया जाता है, वह मानस जप कहलाता है। देवता में मन को लगाकर होठों और जीभ को थोड़ा-थोड़ा चलाते हुए कुछ सुनायी पड़ने योग्य उच्चारण को उपांशु जप कह जाता है। मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण करते हुये किया जाने वाला जप वाचिक जप कहलाता है। इस प्रकार पश्यन्ती आदि तीन भेदों के अनुसार जप का लक्षण बतलाया गया। इस प्रकार जप को पूर्ण करके उसे तेजरूप में देव के दाहिने हाथ में कुश, पुष्प, अर्घ्यजल के साथ समर्पित करना चाहिये और उस जप को सफल मानकर तीन प्राणायाम करना चाहिये। जप के प्रारम्भ और अन्त में भी तीन-तीन प्राणायाम करना चाहिये। जप प्रतिदिन समान संख्या में करना चाहिये; कम या अधिक नहीं करना

चाहिये। प्रमादवश यदि किसी दिन कम और किसी दिन अधिक जप किया जाता है, तो ऐसा करने से अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती। निश्चित संख्या से कम या अधिक जप करने पर क्रमशः न्यूनांग-अधिकांग दोष होता है; अतः विधि के अनुरूप किया गया जप ही फलप्रद होता है; अविधिूर्वक किया गया जप यत्न करने पर भी फलपद नहीं होता।।७०-७८।।

जपान्ते प्रत्यहं मन्त्री होमयेत्तद्दशांशतः।
तर्पणं मार्जनं चैव तत्तद्दशांशतो मुने।।७९।।
प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान् न्यूनाधिकप्रशान्तये।
विप्रभोजनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद्ध्रुवम्।।८०।।
गोषु शुश्रूषणं कुर्यात्ताभ्यश्च यवसप्रदः।
गोष्वपि प्रियमाणासु गोपालोऽयं प्रसीदति।।८१।।
कर्मान्ते संस्मरेत् कृष्णं अन्तःकरणशुद्धये।
नामसङ्कीर्त्तनं विष्णोः सर्वविघ्ननिकृन्तनम्।।८२।।
अथवा लक्षपूर्तौ च होमादिकृत्यमाचरेत्।
सम्पूर्णायां प्रतिज्ञायां तर्पणादि तथाचरेत्।।८३।।
विष्णोर्निवेदितान्नं यद्रात्रौ भुञ्जेदकुत्सयन्।
यदन्ना देवता यस्य तदन्नः पुरुषो भवेत्।।८४।।

मन्त्रज्ञ को प्रतिदिन जप के उपरान्त जप का दशांश हवन करने के बाद हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराने से जप के न्यूनाधिक दोष का शमन होता है; क्योंकि ब्राह्मण के भोजनमात्र से ही अङ्गरहित साधना भी अङ्गसहित हो जाती है। घास आदि प्रदान करते हुये गोसेवा भी करनी चाहिये; क्योंकि गौओं के प्रसन्न होने से गोपाल भी प्रसन्न होते हैं। कर्म के अन्त में अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कृष्ण का स्मरण करना चाहिये; क्योंकि विष्णु के नाम का संकीर्तन सभी विघ्नों का विनाश करने वाला होता है।

अथवा एक लाख जप पूर्ण होने पर हवन आदि कृत्य सम्पन्न करना चाहिये; साथ ही संकल्प के पूर्ण होने पर तर्पणादि करना चाहिये। रात्रि में प्रसन्नतापूर्वक विष्णु को निवेदित अन्न का भोजन करना चाहिये; क्योंकि जिस देवता को निवेदित अन्न का मनुष्य भोजन करता है, उसी देवता के समान वह हो जाता है।।७९-८४।।

शयीत शुद्धशय्यायां कम्बले वा कुशास्तरे।
एवं प्रतिदिनं कुर्यात् यावत्साङ्गं व्रतं भवेत्।।८५।।

होमं च पूर्ववत् कुर्यात् पायसैरथवाम्बुजैः।
होमाभावे जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्॥८६॥
षड्गुणं वाष्टगुणितं यथासंख्या द्विजादयः।
शूद्रस्य विप्रभृत्यस्य तत्पत्नीसदृशो जपः॥८७॥
होमशून्यस्य विप्रस्य यो जपः स तु तादृशः।
दशाक्षरं मनुवरं सिद्धये दशलक्षकम्॥८८॥
जप्त्वा तदन्ते होमादि विधिना कर्ममाचरेत्।
दशाक्षरं जपेन्मन्त्री सहस्रदशकं जपेत्॥८९॥
प्रत्यहं मुख्यकल्पोऽयमन्यन्न्यूनमुदाहृतम्।
अष्टादशार्णमनुवरं पञ्चलक्षं जपेत्ततः॥९०॥
कृत्यमेवं समुद्दिष्टमन्यत्तत्कल्पसंग्रहात्।
तर्पणं च ततः कुर्यात्तीर्थोदैश्चन्द्रमिश्रितैः॥९१॥
जले देवं समावाह्य पाद्याद्यैरुदकात्मकैः।
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या परिवारसमन्वितम्॥९२॥
एकैकमञ्जलिं तोयं परिवारान्प्रतर्पयेत्।
ततो होमदशांशेन तर्पयेत् पुरुषोत्तमम्॥९३॥

कम्वल या कुश की शुद्ध शय्या पर शयन करना चाहिये। ऐसा प्रतिदिन तब तक करना चाहिये, जब तक कि अङ्ग-सहित व्रत पूर्ण न हो जाय। तदनन्तर पायस अथवा कमल से पूर्ववत् हवन करना चाहिये। किसी करणवश यदि हवन करना सम्भव न हो तो द्विज (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) को अपने वर्ण के अनुसार क्रमश: हवनसंख्या का चौगुना, छ:गुना या आठगुना जप करना चाहिये। होम से रहित ब्राह्मण का जप भी उसी प्रकार का होता है, जैसा कि विप्रसेवक शूद्र अथवा विप्रपत्नी द्वारा किया गया जप अर्थात् किसी के भी द्वारा किया गया होमरहित जप निष्फल होता है।

कृष्ण के दशाक्षर मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) की सिद्धि के लिए दश लाख जप करके विधिवत् हवन आदि कर्म सम्पादित करना चाहिये। प्रतिदिन दशाक्ष्रर मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये; यही मुख्य कल्प है। अन्य कल्पों में कुछ कम जप का भी विधान दृगोचर होता है। अठारह अक्षरों के मन्त्र का जप पाँच लाख करना चाहिये। न्यूनाधिक जपसंख्या का अवलोकन अन्य कल्पों में करना चाहिये। इसके बाद कपूर-मिश्रित तीर्थजल से तर्पण करना चाहिये। जल में परिवार-सहित देव का आवाहन करके जलरूप पाद्यादि द्वारा भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करनी चाहिये। देव के परिवार के प्रत्येक सदस्य का एक-एक अंजलि जल से तर्पण करना चाहिये; तदनन्तर हवन के दशांश भाग से पुरुषोत्तम का तर्पण करना चाहिये।।८५-९३।।

आदौ मन्त्रं समुच्चार्य श्रीपूर्वं कृष्णमित्यपि।
तर्पयाम्यहमित्युक्त्वा नमोऽन्तस्तर्पयेन्मनुः ॥९४॥
तर्पणस्य दशांशेन अभिषेकं तथाचरेत्।
न्यासानशेषान् कृत्वा वै तदभेदेन पूजयेत् ॥९५॥
कृष्णात्मानं स्वमात्मानं ध्यात्वा रश्मिसमन्वितम्।
कुसुमं तोयमेकं च सुगन्धिपरिमिश्रितम् ॥९६॥
जलाञ्जलिं समादाय मूलमुच्चार्य साधकः।
श्रीकृष्णमभिषिञ्चामि नम इत्यभिषिञ्चने ॥९७॥
अभिषेकदशांशेन ब्राह्मणान् परितर्पयेत्।
क्षीरखण्डाज्यभोज्यैश्च बहुमानपुरःसरम् ॥९८॥
विप्रभोजनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद् ध्रुवम्।
सर्वथा भोजयेद्विप्रान् ते च कृष्णमनुर्यतः ॥९९॥
यत्र भुंक्ते श्रियः कान्तस्तत्र भुंक्ते जगत्त्रयम्।

तर्पण-हेतु मन्त्र का उच्चारण करके 'श्रीकृष्णं तर्पयाम्यहं नमः' लगाकर मन्त्र बनाना चाहिये। जैसे कि दशाक्षर मन्त्र का तर्पणमन्त्र होगा—'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा श्रीकृष्णं तर्पयाम्यहं नमः'। तर्पण का दशांश मार्जन भी करना चाहिये। तदनन्तर सभी न्यासों को करने के पश्चात् अभेदबुद्धि से देवता की पूजा करनी चाहिये। तेज से समन्वित स्वयं और कृष्ण को एक मानते हुये फूल, जल, सुगन्धि-मिश्रित जल को अंजलि में लेकर मूल मन्त्र बोलकर 'श्रीकृष्णमभिषिञ्चामि नमः' कहकर अभिषेक करना चाहिये। अष्टादशाक्षर मन्त्र से अभिषेक करने का मन्त्र इस प्रकार बनेगा—'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा, श्रीकृष्णमभिषिञ्चामि नमः'। अभिषेक के दशांश संख्या में ब्राह्मणों को अत्यधिक आदर के साथ दूध, दधि, घी-मिश्रित भोजन कराकर सब प्रकार से तृप्त करना चाहिये। विप्र के भोजन करने-मात्र से अंगरहित अनुष्ठान भी अंगसहित हो जाता है। सब प्रकार से ब्राह्मणों को भोजन अवश्य कराना चाहिये; क्योंकि वे साक्षात् कृष्णमन्त्र-स्वरूप होते हैं। लक्ष्मीपति जहाँ भोजन कर लेते हैं, वहाँ तीनों लोकों का भोजन हो जाता है।।९४-९९।।

गुरवे दक्षिणां दद्याद्भोजनाच्छादनादिभिः ॥१००॥
गुरुसन्तोषमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेत् सकलेप्सितम् ॥१०१॥
एवं नित्यक्रमं कृत्वा नैमित्तिकमथाचरेत्।
कृते नैमित्तिके विप्र नित्यस्य पूर्णता भवेत् ॥१०२॥

अन्यथा नैव सिद्धिः स्यादनुष्ठानशतैरपि ।
मथुरायां महाक्षेत्रे वसन् कृष्णं समर्चयेत् ॥१०३॥
लक्षमात्रं जपेन्मन्त्री मण्डलादीप्सितं भवेत् ।
मन्दरस्य महारण्ये सरलद्रुमकानने ॥१०४॥
पुष्पैर्वन्यसमुद्भूतैर्दुग्धाशी विजितेन्द्रियः ।
लक्षमात्रं जपेद्भक्त्या अणिमादिगुणान् लभेत् ॥१०५॥

गुरु को भोजन, वस्त्रादि के साथ दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये; क्योंकि गुरु के सन्तुष्ट होने से अवश्य ही मन्त्रसिद्धि होती है। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से साधक को अपने सभी मनोरथों को सिद्ध करना चाहिये।

इस प्रकार नित्य कर्म करने के उपरान्त नैमित्तिक कर्म का सम्पादन करना चाहिये; क्योंकि हे विप्र! नैमित्तिक कर्म के करने से ही नित्य कर्म की पूर्णता होती है। नैमित्तिक कर्म न करने से सैकड़ों अनुष्टान करने पर भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती।

मथुरा क्षेत्र में निवास करते हुये विधिपूर्वक कृष्ण का अर्चन करना चाहिये। चालीस दिनों में मन्त्र के एक लाख जप से समस्त इच्छित कार्य पूर्ण होते हैं। पर्वत के महावन में, सरल वृक्षों के मध्य रहते हुये भोजन के रूप में मात्र दुग्ध का पान करते हुये जितेन्द्रय रहकर वन्य पुष्पों से पूजा करके भक्तिपूर्वक मन्त्र का एक लाख जप करने से जापक को अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है।।१००-१०५।।

समुद्रगासरिन्मध्ये कुदिने निवसन्यतिः ।
दुग्धाहारो जपेल्लक्षं पापः शतभवोद्भवम् ॥१०६॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो वाक्सिद्धिं चापि विन्दति ।
पर्वताग्रे यजेत् कृष्णं शाकमूलफलाशनः॥१०७॥
लक्षं तत्रापि सञ्जप्य खेचरीमेलनं भवेत् ।
समुद्रगानदीतीरे तुलसीकानने वसन् ॥१०८॥
लक्षमात्रं जपात्तत्र कोटिजन्माघनाशनम् ।
पुण्डरीकबकैः कृष्णं मासमेकं समर्चयन् ॥१०९॥
धर्मार्थकाममोक्षाणि करस्थानि लभेद् ध्रुवम् ।
तुलास्थे भास्करे पद्मैर्होमयेद्दशसहस्रकम् ॥११०॥
लक्ष्मी स्थिरा भवेत्तस्य पुत्रपौत्रानुयायिनी ।
श्रीपुष्पैर्जुहुयान्मन्त्री वैशाखे मासि दुग्धपः ॥१११॥
सर्वपापक्षयकरः सर्वसिद्धिप्रवर्द्धकः ।
वेदाः सर्वे नमस्यन्ति भक्त्या तं पुरुषर्षभम् ॥११२॥

श्रीजलैस्तर्पयेत् कृष्णं मत्स्यण्डीचन्द्रसंयुतैः।
अष्टोत्तरशतं कृत्वा पूजान्ते भक्तितत्परः॥११३॥
मण्डलाल्लभते सिद्धिं दुष्करं सुकरं तु वा।
यद्यत्कामयते मन्त्री अनायासाल्लभेच्च तत्॥११४॥

दुर्दिनों में भी व्रती यदि समुद्रगामिनी सरिता के जल में निवास करते हुये केवल दुग्ध का आहार ग्रहण करते हुये मन्त्र का एक लाख जप करना है तो निःसन्दिग्ध रूप से उसके सैकड़ों जन्म के पापों का भी नाश हो जाता है और वह साधक वाक्सिद्धि को प्राप्त कर लेता हैं।

शाक, मूल एवं फल का आहार करते हुये पर्वत पर रहकर कृष्ण की पूजा करते हुये साधक मन्त्र का यदि एक लाख जप करता है तो उसे आकाशगमन की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

समुद्रगामिनी नदी के किनारे तुलसी की वाटिका में निवास करते हुये मन्त्र का एक लाख जप करने से करोड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है।

एक महीने तक कृष्ण का पूजन कमल और मौलसिरी के पुष्पों से करने से निश्चय ही साधक को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष हस्तगत हो जाते हैं।

सूर्य जब तुला राशि में हो, उस समय कमलपुष्पों से दश हजार हवन करने से साधक को स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और वह लक्ष्मी उसके पुत्र-पौत्रों का भी अनुगमन करती है।

वैशाख मास में केवल दुग्ध का पान करते हुये श्रीपुष्पो से हवन करने से समस्त पापों का नाश होता है और सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उस श्रेष्ठ पुरुष को सभी वेद भक्ति के साथ प्रणाम करते हैं।

चालीस दिनों तक जल में बेलपत्र, शक्कर एवं कपूर मिलाकर कृष्ण की पूजा के बाद एक सौ आठ वार तर्पण करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है एवं उस साधक के लिये दुष्कर कार्य भी सुकर हो जाता है; साथ ही वह साधक अनायास ही समस्त मनोरथों को प्राप्त कर लेता है।।१०६-११४।।

दुग्धबुद्ध्या जलैर्नित्यमष्टोत्तरशतं शतम्।
तर्पयन्नखिलान् कामान् लभेत् मोक्षं च विन्दति॥११५॥
कुशपुष्पैः समभ्यर्च्य मासमात्रं निरामयः।
यशसे धर्मबुद्ध्यै च ब्रह्मचारिव्रते स्थितः॥११६॥
हयारिकुसुमैः शुक्लैर्मण्डलाद्वाञ्छितं भवेत्।
तथा रक्ताश्वमारेण अचलां भक्तिमाप्नुयात्॥११७॥

तथा द्वाभ्यां समभ्यर्च्य भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।
गोषु भक्तिः सदा कार्या गोषु कण्डूयनं तथा॥११८॥
गोषु नित्यं प्रसन्नासु गोपालः सम्प्रसीदति।
ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां वैश्यानां शेषजन्मनाम्॥११९॥
स्त्रीणां चैव महाबाहो नैमित्तिकमिदं स्मृतम्।
एतेषां चैकमात्रं तु कृत्वा काम्यानि साधयेत्॥१२०॥

इति गौतमीये महातन्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः

●

जल को दूध मानकर सौ दिनों तक नित्य एक सौ आठ तर्पण करने से साधक समस्त कामनाओं को अवाप्त कर लेता है एवं अन्त में उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

कुश के पुष्पों से विधिपूर्वक एक माह तक पूजा करने से साधक समस्त रोगों से रहित हो जाता है।

यश एवं धर्म की कामना वाला साधक यदि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये उजले कनैल के फूलों से चालीस दिनों तक पूजा करता है तो उसका मनोरथ पूर्ण हो जाता है तथा लाल कनैल के फूल से पूजा करने पर साधक को अचला भक्ति की प्राप्ति होती है। साथ ही उजले और लाल—दोनों प्रकार के फूलों से अर्चन करने पर भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

गौओं में सदा भक्ति रखनी चाहिये, उनके शरीर को बराबर सहलाना चाहिये; क्योंकि गौओं के प्रसन्न रहने से गोपाल प्रसन्न होते हैं।

हे महाबाहो! ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों एवं स्त्रियों के लिये यह नैमित्तिक कर्म कहा गया है। इनमें से किसी एक कर्म का भी अनुष्ठान करके अभीप्सित कामनाओं को पूर्ण किया जा सकता है।।११५-१२०।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के चतुर्दश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

पञ्चदशोऽध्यायः

[श्रीकृष्ण का त्रिकाल-पूजन, श्रीकृष्ण-ध्यान, नैवेद्य-समर्पण, मध्याह्न में श्रीकृष्ण-ध्यान, पूजन, भगवान् की शक्तियों का पूजन, वासुदेव आदि का पूजन, हवन-विधान, भगवान् का ध्यान, मन्त्रजप, सायंकाल में वासुदेव का पूजन, पूजन के फल आदि का कथन।]

त्रिकालाभ्यर्चनं वक्ष्ये गोविन्दस्य यथाविधि।
मन्त्रयोरुभयोः कार्यमन्येषां च तदात्मनः ॥१॥
कलापकुसुमश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्।
वार्षिकं च शिशुं मुग्धमासीनं पद्मविष्टरे ॥२॥
भङ्गविद्रुमविम्बाभकरप्राप्ताधरोत्तमम्।
गुडालकचयाच्छन्नमुखेन्दुग्रहसंवृतम् ॥३॥
कुन्देन्दुकाशसङ्काशहासभासितदिङ्मुखम्।
राजदन्तद्वयोद्भासनिन्दितानेकमौक्तिकम् ॥४॥
महाश्मरश्मिसङ्कीर्णसुवर्णानेकभूषणम्।
सुपुष्टं धूसराङ्गं च धेनुधूलिचयोत्थितम् ॥५॥
गोपगोपीगवां वृन्दैर्वीक्ष्यमाणं सुविस्मितैः।
ब्रह्मणा शङ्करेणापि प्रेमोत्कण्ठात् सुविक्षितम् ॥६॥
पुरन्दरमुखैर्देवैर्मुनिभिः संस्तुतं परम्।
एवं ध्यात्वा जपेत्कृष्णं यजेद्भक्तिप्रधानतः ॥७॥

अब गोविन्द के विधिपूर्वक त्रिकाल अर्चन को कहता हूँ। यह त्रिकाल अर्चन दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर—दोनों ही मन्त्रों से किया जाता है; साथ ही उसी प्रकार के अन्य मन्त्रों से भी किया जा सकता है। अर्चन के पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये।

कलायपुष्प के समान श्याम वर्ण वाले, नीलकमल के सदृश नेत्रों वाले, एकवर्षीय सुन्दर बालक के सदृश, कमल के आसन पर आसीन, विद्रुम तथा विम्ब के सदृश हथेलियों तलवों एवं होठों की आभा वाले, घुंघुराले अलकों से आच्छादित मुख वाले, कुन्दपुष्पों के हार, चन्द्रमा एवं कास के पुष्पों से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, अपने राजदन्त (आगे के दो दाँत) की कान्ति से अनेक मुक्ताओं को भी

लज्जित करने वाले, दीप्तिमान बहुविध मणिजटित सुवर्णनिर्मित अनेक आभूषण धारण करने वाले, गौओं के खुराघात के फलस्वरूप उड़ती धूल से धूसरित पुष्ट शरीर वाले, आश्चर्यपूर्वक गोप-गोपियों एवं गौओं द्वारा देखे जाते हुये, ब्रह्मा तथा शंकर द्वारा भी अतिशय प्रेम एवं उत्कण्ठा से देखे जाते हुये, इन्द्रादि देवताओं एवं मुनियों द्वारा संस्तुत स्वरूप वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये भक्तिपूर्वक उनका यजन करके मन्त्रजप करना चाहिये।।१-७।।

अङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरावृत्तित्रितयान्वितम् ।
क्षीरखण्डाज्यदुग्धं च कदलीनवनीतकम् ।।८।।
मोचारम्भाफलं चापि अन्यद्बालप्रियं च यत् ।
जपं चाष्टसहस्रं च कृत्वा कृष्णं प्रसादयेत् ।।९।।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्भक्त्या नमस्कारप्रदक्षिणैः ।
दुग्धबुद्ध्या जलैरष्टशतं सन्तर्प्य मन्त्रवित् ।।१०।।
आत्मानं तत्पदाम्भोजे ह्यनन्यः सन् समर्पयेत् ।
ब्रह्मार्पणाख्यमनुना तथोद्वास्य हृदं नयेत् ।।११।।
पूर्वोक्तेन क्रमेणाथ शेषमन्यत् समर्पयेत् ।
हुत्वाशेषं निराशी च एकाकी च निशां नयेत् ।।१२।।
य एवं मासमात्रं तु भक्त्या कृष्णं समर्चयेत् ।
पूज्यो लोके कविर्वाग्मी लक्ष्मीं प्राप्यानपायिनीम् ।।१३।।
पुत्रैर्मित्रैश्च सम्बद्धः प्रयात्यन्ते परम्पदम् ।

श्रीकृष्ण के यजन के पश्चात् तीन आवरणों की पूजा भी करनी चाहिये। प्रथम आवरण में षडंग पूजन, द्वितीय आवरण में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन तथा तृतीय आवरण में दिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिये।

तत्पश्चात् नैवेद्य में दूध, मिश्री, आज्य, कदली, मक्खन, मेवा, केला के साथ-साथ अन्य भी बालकों के प्रिय पदार्थों का अर्पण करना चाहिये। इसके बाद आठ हजार जप करके श्रीकृष्ण को प्रसन्न करना चाहिये। जप के अनन्तर मन्त्रज्ञ को भक्तिपूर्वक अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करने के उपरान्त नमस्कार करके प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर मन्त्रज्ञ को जल को दूध मानते हुये उस जल से ही एक सौ आठ बार तर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वयं को उनके चरणकमलों में अनन्य भाव से समर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर ब्रह्मार्पण मन्त्र से देव को उद्वासित करके अपने हृदय में लाकर पूर्वोक्त क्रम से अन्य शेष कार्य का समापन करके पूर्णाहुति होम करके निराहार रहते हुये अकेले रात्रि व्यतीत करनी चाहिये। इस प्रकार एक माह तक जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक कृष्ण की पूजा करता है, वह लोक में पूज्य, कवित्व शक्ति से

सम्पन्न एवं वक्ता होने के साथ-साथ अनपायिनी लक्ष्मी को प्राप्त करता है। साथ ही पुत्र-मित्र से सम्बद्ध होकर अन्त में परम पद को प्राप्त होता है।।८-१३।।

मध्याह्ने वासुदेवं तं राजमण्डलमध्यगम् ।।१४।।
द्वारवत्यां सहस्रार्कदीपिते भवनान्तरे।
कल्पवृक्षसमाकीर्णे पुण्यपक्षिनिनादिते ।।१५।।
पद्मोत्पलादिकह्लारैः सङ्कीर्णैः समलङ्कृते।
तस्मिन् सुपुलिने रम्ये छायायां कल्पकस्य च ।।१६।।
रत्नस्तम्भै रत्नदीपैर्मुक्तादामविभूषिते।
नानाविचित्रचित्रान्तर्वितानशतसङ्कुले ।।१७।।
तत्पार्श्वे च वनं ध्यायेत् पुन्नागैर्नागकेशरैः।
तथा नानाविधैर्वृक्षैः पाटलैश्चम्पकादिभिः ।।१८।।
वकुलैश्चारलैर्वन्यैः कुररैर्वेष्टितैरपि।
सर्वर्तुकुसुमोपेतैः पुष्पावनतशाखिभिः ।।१९।।
रत्नसिंहासनासीनं पुण्डरीकदलेक्षणम्।
पृथुवक्षं सुपुष्टाङ्गं राजन्यगणमोहनम् ।।२०।।
नीलकुञ्चितकेशान्तं विचित्राम्बरभूषणे।
सुभ्रूललाटवदनं पुष्पहासं सुलोचनम् ।।२१।।
सुकपोलं सुताम्रौष्ठं श्यामलं मङ्गलालयम्।
नीलकुञ्चितकेशान्तं विचित्रवरभूषणम् ।।२२।।
कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णकौस्तुभोद्भासिवक्षसम्।
महाबली महोरस्कं महाभुजचतुष्टयम् ।।२३।।
बलिबन्धुरमध्ये च राजदध्वरशोभितम्।
प्रदक्षिणगतश्रीमद् वृत्तनाभिविभूषितम् ।।२४।।
केयूरमणिसन्नद्धराजद्भुजचतुष्टयम्।
विचित्रकटकैर्युक्तं नूपुरैः पादशोभितम् ।।२५।।
नानारत्नमयैर्हेमैरङ्गुलीयैर्विराजितम्।
अनन्तरत्नसञ्छन्नस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।।२६।।
सौवर्णैर्नाभिरुचिरनानाचित्रविचित्रितैः।
लोलभ्रमरसञ्छन्नैः प्रसूनैर्मुकुटोज्ज्वलम् ।।२७।।
शङ्खचक्रगदापद्मधरं शन्तमुखेक्षणम्।
दिव्यलक्षणसम्पन्नं दिव्यभूषणभूषितम् ।।२८।।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
ललाटे हृदये कुक्षौ कण्ठे बाह्वोश्च पार्श्वयोः ।।२९।।

विराजितोर्ध्वमुद्रेण चन्दनेन विभूषितम् ।
महीभारभूताराति तर्जयन्तं मुहुर्मुहुः ॥३०॥
उद्धवादिमन्त्रिवरैर्मन्त्रयन्तं मुहुर्मुहुः ।
तेषां निपातनायैव धर्मार्थनीतिमुक्तिभिः ॥३१॥

मध्याह्नकाल में द्वारका में राजमण्डल के मध्य-स्थित वासुदेव का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—हजारों सूर्य के समान आलोकित भवन के मध्य कोयल आदि पवित्र पक्षियों से निनादित, कल्पवृक्षों से मण्डित, वहुतायत में कमल-उत्पल-कल्हार आदि से सुशोभित वार्पा के सुन्दर तट पर कल्पवृक्ष की छाया में रत्न-जटित स्तम्भों एवं मुक्ताओं से विभूषित अनेक चित्र-विचित्र वितानों से सुशोभित भवन के बगल में पुन्नाग-नागकेशर-पाटल-चम्पक-वकुल-कुरवक आदि सभी ऋतुओं में होने वाले पुष्पों की झुकी हुई शाखाओं से समन्वित रत्नजटित सिंहासन पर वासुदेव आसीन हैं। उनके नेत्र कमलदल के समान हैं, वक्षःस्थल विशाल है, सभी अंग अत्यन्त पुष्ट हैं, वे राजाओं को मोहित करने वाले हैं, उनके नीले केशों का अग्रभाग आकुञ्चित है, उनके वस्त्र एवं आभूषण विचित्र हैं, भौंहें ललाट एवं मुख सुन्दर हैं, फूलों के समान उनका हास्य है, आँखें सुन्दर हैं, कपोल सुन्दर है, ओष्ठ ताम्रवर्ण-सदृश हैं, श्याम वर्ण वाले वे समस्त मंगलों के आकर हैं, उनके नीले घुंघुराले केशों के ऊपर विचित्र आभूषण विराजमान है। उनकी गर्दन सुराही के समान है, विशाल वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि से उद्भासित है, उनका वल असीमित है, कन्धे विशाल हैं, लम्बी-लम्बी चार भुजायें हैं, त्रिवली एवं वलय से विभूषित उदर है, प्रदक्षिणक्रम से समन्वित कान्तिमान वर्त्तुल नाभि है, चारो भुजाओं पर बाजूबन्द वँधा है, पैरों में विचित्र कटकों से युक्त नूपुर विराजमान है, हाथों की अंगुलियों में अनेक प्रकार की रत्न-जटित अंगूठियाँ सुशोभित हैं, अनेक प्रकार के पन्नों से सुशोभित मकरकुण्डल शोभायमान है, विविध प्रकार के चित्रों से चित्रित उनका सुवर्णमुकुट भ्रमरों से आच्छादित पुष्पों से शोभायमान है, वे शंख-चक्र-गदा एवं पद्म धारण किये हुये हैं, उनके मुख एवं नेत्र शान्त हैं, वे दिव्य लक्षणों से सम्पन्न एवं दिव्य आभूषणों से भूषित हैं, वे दिव्य माला एवं वस्त्र धारण किये हैं तथा ललाट, हृदय, कुक्षि, कण्ठ, भुजा एवं अगल-बगल दिव्य गन्ध का अनुलेप लगाये हैं। चन्दन से विभूषित होकर ऊर्ध्व मुद्रा में विराजमान वे पृथ्वी के भारस्वरूप शत्रुओं को बार-बार तिरस्कृत करते हुये उनके विनाश के लिये उद्धव आदि मन्त्रियों से धर्म-अर्थ-नीति एवं युक्ति के अनुरूप बार-वार मन्त्रणा कर रहे हैं।।१४-३१।।

एवं मध्याह्नसम्प्राप्तकाले ध्यायञ्जगद्गुरुम् ।
आवाह्य विधिवद्भक्त्या पूजयन्नुपचारकैः ॥३२॥

अङ्गं पूर्ववदुद्दिष्टं पुर आदि प्रपूजयेत्।
रुक्मिणीं सत्यभामां च कालिन्दीं च सुलक्षणाम्॥३३॥
नाग्नजितीं जाम्बवतीं मित्रवृन्दां सुशीलिकाम्।
इत्यष्टशक्तीर्देवस्य पूज्याः कृष्णस्य वल्लभाः॥३४॥
अग्नौ सुदर्शनं चक्रं नैर्ऋते च जलोद्भवम्।
वायव्ये च गदां दिव्यामीशाने पद्ममुज्ज्वलम्॥३५॥
ततो दलानां बाह्ये च वसुदेवं च देवकीम्।
नन्दगोपं यशोदां च पुर आदि प्रपूजयेत्॥३६॥
पाद्यैरर्घ्यैस्तथा पुष्पैः पूर्वादिदलतोऽर्चयेत्।
बलभद्रं सुभद्रां च रोहिणीं च तथोत्तरे॥३७॥
सुदामं च तथा दामं वसुदामं च किंकिणीम्।
देवस्य वामपार्श्वे तु पूजयेद् गुरुपादुकाः॥३८॥
परमं च गुरुं तत्र परापरगुरुं तथा।
पादुकान्तं समभ्यर्च्य पूर्वसिद्धांस्तथार्चयेत्॥३९॥
पूर्वं गणपतिं पश्चात् तद्बहिः परिपूजयेत्।
इन्द्रादिलोकपालांश्च स्वस्वदिक्षु स्वमन्त्रतः॥४०॥
कुमुदं कुमुदाक्षं च पुण्डरीकं च वामनम्।
शङ्कुवर्णं सर्वनेत्रं सुमुखं सुप्रतिष्ठितम्॥४१॥
दक्षिणावर्तमेतास्तु पूर्वादिदलतोऽर्चयेत्।
उत्तरेशानयोर्मध्ये विष्वक्सेनं समर्चयेत्॥४२॥
सम्पूज्यैव हरिं भक्त्या नैवेद्यं च निवेदयेत्।
पायसं शर्करापूरं खण्डाज्यं कदलीफलम्॥४३॥
सितोदकैराचमनं स्वर्णपात्रे निवेदयेत्।
अथवा रौप्यपात्रे च ताम्रपात्रेऽथवा पुनः॥४४॥
अभावात्पद्मपत्रे वा ह्यन्यथा नरकं व्रजेत्।
सुवर्णचषके वाथ रौप्ये वा विधिना ततः॥४५॥
सशर्करं पक्वदुग्धमन्नं व्यञ्जनपायसम्।
नानाविधोपहाराणि गोविन्दाय निवेदयेत्॥४६॥
राजोपचारं दत्वाऽन्ते स्तुत्वा नत्वा विसर्जयेत्।

मध्यदिवस में जगद्गुरु श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करते हुये आवाहन करके भक्तिपूर्वक उपचारों से विधिवत् पूजन करके पूर्ववत् उनके अंग तथा पुर आदि की भी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, नाग्नजिती,

जाम्बवन्ती, मित्रवृन्दा एवं सुशीला—इन आठ कृष्णप्रिया शक्तियों की पूजा पूजन यन्त्र के आठ दलों में करनी चाहिये। तदनन्तर सुन्दर अष्टदल पद्म के आग्नेय कोण में सुदर्शन चक्र की, नैर्ऋत्य कोण में शंख की, वायव्य कोण में गदा की एवं ईशान कोण में दिव्य पद्म की पूजा करने के बाद दलों के बाहर वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा तथा पुर आदि की पूजा करनी चाहिये।

तत्पश्चात् पाद्य, अर्घ्य एवं पुष्प प्रदान करते हुये पूर्व में बलभद्र, सुभद्रा एवं रोहिणी की; उत्तर में सुदाम, दाम, वसुदाम एवं किंकिणी की तथा वाम पार्श्व में गुरु, परमगुरु, परापरगुरु की पूजा करके पूर्वसिद्धों की पूजा करनी चाहिये। पूर्व में गणपति की पूजा करने के पश्चात् उसके बाहर तत्तत् दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा उनके मन्त्रों से करनी चाहिये। पूर्वादि दलों में दक्षिणावर्त क्रम से कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुवर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख एवं सुप्रतिष्ठित—इन आठ दिग्गजों की पूजा करनी चाहिये। उत्तर और ईशान के मध्य में विष्वक्सेन का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार सम्यक् रूप से भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण की पूजा करने के पश्चात् नैवेद्य में पायस, शर्करा, अपूप, खाँड़, घृत, केला एवं शीतल जल सोने, चाँदी अथवा ताम्बे के पात्र में अथवा इन सबके अभाव में कमल के पत्ते पर अर्पण करना चाहिये। ऐसा न करने से नरक-गमन करना पड़ता है। तदनन्तर विधिपूर्वक सोने या चाँदी के चषक में शक्कर-सहित गर्म दूध, अन्न, व्यंजन, पायस आदि नाना प्रकार के उपहार गोविन्द के लिये निवेदित करना चाहिये। तदनन्तर राजोपचार देकर अन्त में स्तुति करके प्रणाम करते हुये विसर्जन करना चाहिये।।३२-४६।।

य एवं पूजयेद्देवं गोपालं विगतस्पृहः ॥४७॥
राजानः किङ्कराः सर्वे सामान्याः सपरिच्छदाः ।
राजपुत्राश्च पत्न्यश्च सर्वे तस्यानुवर्त्तिनः ॥४८॥
इह भुक्त्वा वरान् भोगानन्ते विष्णोः पदं व्रजेत् ।
अष्टोत्तरशतं होमं कुर्यात् तत्संख्ययादृतः ॥४९॥
होमतर्पणयोर्मन्त्री साधयेदखिलान्यपि ।
प्रातर्होमं प्रकुर्वीत तथा मध्यन्दिनेऽथवा ॥५०॥
रात्रिहोमं च मध्याह्ने कुर्यादेवं विधिः स्मृतः ।
तृतीयकालपूजाया नास्ति कालविकल्पना ॥५१॥
सायाह्ने निशि वेत्यत्र वदन्त्येके विपश्चितः ।
अष्टादशार्णं सायाह्ने रात्रौ चेद्दशवार्णिकम् ॥५२॥
उभये उभयेनैव वदन्ति ब्रह्मवादिनः ।

स्पृहा से रहित होकर जो व्यक्ति इस प्रकार गोपाल का पूजन करता है, उसके अनुवर्ती दास-दासी-अमात्य-परिजन-सहित समस्त राजा, राजपुत्र एवं राजपत्नियाँ हो जाते हैं और वह इस संसार में श्रेष्ठ भोगों को भोगकर अन्त में विष्णुलोक को प्राप्त करता है। पूजन के पश्चात् आदरपूर्वक एक सौ आठ की संख्या में हवन करना चाहिये। हवन और तर्पण से साधक सभी कार्यों को सिद्ध कर सकता है। प्रात:काल अथवा मध्यदिवस में होम करना चाहिये। रात्रि का हवन भी मध्यदिवस में ही करना चाहिये; यही विधिसम्मत है। तृतीय काल रात्रि की पूजा में कालविकल्पना कही गई है। सायंकाल अथवा रात्रि में भी किसी-किसी विद्वान् के मत में होम करना कहा गया है। सायंकाल में अष्टादशाक्षर मन्त्र से और रात्रि में दशाक्षर मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मवादियों का कहना है कि दोनों मन्त्रों से दोनों ही समय में पूजा की जा सकती है।।४७-५२।।

सायाह्ने द्वारवत्यां तु चित्रकोद्यानमध्यगः ।।५३।।
सौगन्धिकोत्पललसद्दीर्घिकाशतवेष्टिते ।
नन्दनोद्यानमध्ये तु कदम्बवनमध्यगः ।।५४।।
ज्वलद्रत्नमयैः स्तम्भैः सुरत्नवीथिकान्विते ।
नानारत्नमयोल्लासिप्राचीरद्वारशोभिते ।।५५।।
महारत्नमयं गेहं मुनिभिः परिवेष्टितम् ।
नारदाद्यैर्मुनिवरैः शौनकैः पिप्पलादिभिः ।।५६।।
सनकादिब्रह्मपुत्रैः परीतं तत्त्वनिर्णये ।
नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकम् ।।५७।।
विष्वक्सेनं च सैनेयं कृपादृष्टिविलज्जितम् ।
तेभ्यो मुनिभ्यः स्वं धाम दिशन्तं परमक्षरम् ।।५८।।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं विश्वावासं सुदीपितम् ।
नानारत्नगणाकीर्णं महामुकुटभूषितम् ।।५९।।
अनेकरत्नसंयुक्तैर्लसन्मकरकुण्डलम् ।
तारहारावलीराजल्लसत्कौस्तुभवक्षसम् ।।६०।।
नानारत्नगणाकीर्णं केयूरवलयाष्टकम् ।
विद्रवत् कनकाभासं पीताम्बरयुगावृतम् ।।६१।।
बन्धुरोदारजठरं गम्भीरनाभिपङ्कजम् ।
उत्तुङ्गचरणाम्भोजलसत्स्वर्णाङ्गुलीयकम् ।।६२।।
प्रदीप्तरत्नकटकतुलाकोटिद्वयान्वितम् ।
शशरक्ताधरपुटमारक्तपदपङ्कजम् ।।६३।।

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् ।
शुद्धज्ञानस्वभावत्वात् सुशुक्लं तं परात्परम् ॥६४॥
अज्ञाननाशकार्थत्वान्नववारिजसन्निभम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशमविद्याध्वान्तनाशनम् ॥६५॥
इत्येवं परमात्मानं ध्यायन्ति ब्रह्मवादिनः ।

सायंकाल में परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—सुगन्धित उत्पलों से सुशोभित सैकड़ों दीर्घिकाओं से वेष्टित द्वारका-स्थित चित्रक उद्यान के मध्यवर्ती नन्दनवन के मध्य-स्थित कदम्बवन में जाज्वल्यमान रत्नजटित स्तम्भों के द्वारा रत्नमय गलियों से समन्वित महारत्नमय गृह में नारद, शौनक, पिप्पलाद आदि श्रेष्ठ मुनियों एवं सनकादि ब्रह्मपुत्रों से तत्त्वनिर्णय में निमग्न; नारद, पर्वत, जिष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, शैनेय को अपनी कृपादृष्टि से देखकर परम अक्षर अपने धाम का उपदेश देते हुये; करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रकाशमान, विश्वाकाश को उद्भासित करते हुये, अनेक रत्नखचित श्रेष्ठ मुकुट से विभूषित, अनेक रत्नों से परिपूर्ण मकरकुण्डल से शोभायमान, हारों की पंक्तियों से सुशोभित वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि धारण करने वाले, नाना रत्नों से खचित केयूर तथा वलयाष्टक धारण करने वाले, तप्त सुवर्ण के समान दीप्तिमान, दो पीत वस्त्रों से आवृत, लहरदार उदर एवं गम्भीर नाभि वाले, उत्तुङ्ग चरणकमलों में स्वर्णाङ्गुलीयक धारण करने वाले, प्रदीप्त रत्नजटित कटक एवं नूपुरद्वय धारण करने वाले, रक्ताभ अधर एवं रक्तिम चरणकमल वाले, शंख-चक्र-गदा-पद्म एवं वनमाला धारण करने वाले, शुद्ध ज्ञान-स्वभाव वाले होने के कारण सम्यक् रूप से शुक्लभावापन्न, परात्परस्वरूप, अज्ञान के विनाशक होने के कारण नवीन मेघ के समान, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, अविद्यारूपी अन्धकार का विनाश करने वाले परमात्मा का ध्यान ब्रह्मवादीगण करते हैं।।५३-६५।।

एवं ध्यात्वा मध्यमार्चाविधानेन प्रपूजयेत् ॥६६॥
सहस्रैकं जपेन्मन्त्रं होमाद्दशांशतर्पणम् ।
रजतो राजिते पात्रे खण्डदुग्धं निवेदयेत् ॥६७॥
पूर्वोपचारान् दत्वाथ नमस्कृत्य विसर्जयेत् ।
गृहस्थानां वनस्थानां न्यासिनां हृदयाम्बुजे ॥६८॥
ध्यात्वा सम्पूज्य मुनिभिर्मानसैरुपचारकैः ।
विविक्तो गृहमेधी च मुनिभिः सह पूजयेत् ॥६९॥
वासुदेवादिभिरपि निर्वाणं परमाप्नुयात् ।
सायाह्ने वासुदेवं च पूजयेद्विधिना नरः ॥७०॥

देवाः सर्वे नमस्यन्ति किं पुनर्नरमर्कटाः ।
संसारसागरं घोरं विषयनक्रसंयुतम् ॥७१॥
सन्तीर्य विषयान्मुक्त्वा ज्ञानी तत्पदमाप्नुयात् ।
दुर्वासनां परित्यज्य कोटिजन्मसमुद्भवाम् ॥७२॥
एकेन जन्मना मुक्तिं याति कैवल्यनिर्मिताम् ।
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥७३॥

इस प्रकार से ध्यान करके विधिवत् मध्यमार्चन करना चाहिये। एक हजार मन्त्रजप करके उसका दशांश हवन और हवन का दशांश तर्पण करने के पश्चात् चाँदी के सुन्दर पात्र में खाँड़ मिला हुआ दूध निवेदित करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वोक्त उपचारों को अर्पित करके नमस्कार कर विसर्जन करना चाहिये। यह विधि गृहस्थों के लिये कही गई है। वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों को हृदय-कमल में ध्यान करके मानसिक उपचारों से पूजा करनी चाहिये। विविक्तों एवं गृहमेधियों को मुनियों के साथ पूजन करना चाहिये। वासुदेवादि के पूजन से भी निर्वाण प्राप्त होता है। जो मनुष्य सायंकाल विधिपूर्वक वासुदेव की अर्चना करता है, उसे सभी देवता नमस्कार करते हैं; फिर नर-वानरों की तो बात ही क्या है। वह मनुष्य विषयरूपी मगर से संयुक्त घोर संसारसागर को पार करके विषयों से मुक्त एव ज्ञानी होकर वासुदेव के पद को प्राप्त करता है। करोड़ों जन्मों से उद्भूत दुर्वासनाओं से मुक्त होकर एक ही जन्म में कैवल्य मोक्ष प्राप्त करता है। उस विष्णु के परमपद का सूरिगण सदा दर्शन करते रहते हैं।।६६-७३।।

रात्रौ चेन्मदनाक्रान्तमानसं देवकीसुतम् ।
रासगोष्ठीपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम् ॥७४॥
वृन्दावनगतं ध्यायेच्छायायां कल्पशाखिनः ।
सुस्थितं वेणुगायन्तं वनमालापरिवृतम् ॥७५॥
गोपिकागोपसङ्घातैर्वेष्टितं जगतां पतिम् ।
यक्षैर्विद्याधरगणैर्बर्हिणैर्भूवियद्गतैः ॥७६॥
ब्रह्मर्षिभिर्देवर्षिभिः स्तूयमानं सुविस्मितैः ।
नानाविधैरप्सरोभिर्वीक्षमाणं सुविस्मितैः ॥७७॥
लेलिह्यमानं प्रणयाद्देवैस्त्रिंशतकोटिभिः ।
इन्दीवरनिभं रत्नसुन्दरेन्दुवराननम् ॥७८॥
सम्फुल्लपद्मवदनं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
पद्मनाभिपाणिपादं पद्मरागनिभाधरम् ॥७९॥
शरणं सर्वभूतानां गोपिकाजनवल्लभम् ।
क्वचिच्छङ्कुपरिमिलत् पङ्कजोपरि संस्थितम् ॥८०॥

कल्पितानेकदेहेन नारीणां शतकोटिभिः ।
वेष्टितं रममाणं च गायन्तं दिव्यमूर्च्छनैः ॥८१॥

यदि रात्रि हो तो भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—देवकीपुत्र का मन काम से आक्रान्त है, वे जगत्पति रासगोष्ठी से थककर गोपियों में मध्य वृन्दावन के कल्पवृक्ष की छाया में बैठकर वनमाला धारण करके वेणुगान करते हुये गोप-गोपियों से वेष्टित हो विराजमान हैं। अत्यन्त विस्मित यक्षों, विद्याधरों, भूमि एवं आकाश में विचरण करने वाले पक्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा देवर्षियों द्वारा स्तूयमान हैं। नाना प्रकार की अप्सरायें विस्मित होकर उन्हें देख रही हैं। सौ करोड़ देवस्त्रियाँ स्नेह से लालचभरी दृष्टि से देख रही हैं। नीलकमल के समान दीप्तिमान उनका मुख उत्तमोत्तम रत्नों के समान सुन्दर एवं चन्द्रमा के सदृश कान्ति से समन्वित है। सदा-सर्वदा प्रफुल्लित मुखमुद्रा है। कमलपत्र के समान उनकी आँखें हैं। नाभि, हाथ एवं चरण कमल के समान हैं। अधर पद्मराग के समान है। वे समस्त प्राणियों के आश्रय एवं गोपिकाओं के प्रियतम हैं। इच्छानुसार कभी-कभी भ्रमरयुक्त कमल पर अवस्थित हैं। अनेक शरीर धारण करके सैकड़ों करोड़ों नारियों के द्वारा वेष्टित होकर उनके साथ रमण करते हुये दिव्य मूर्च्छना से समन्वित गायन कर रहे हैं।।७४-८१।।

द्वाभ्यां द्वाभ्यां वल्लभाभ्यां मध्ये मध्ये विराजितम् ।
यथा मरकतस्तम्भं सुवर्णेनाभिवेष्टितम् ॥८२॥
क्वचिद्गोपाङ्गनावस्त्रहारिणं हेलयान्वितम् ।
क्वचिद्धसन्तं हासयन्तं स्त्रीवृन्दमुपहासकैः ॥८३॥
विस्मितैर्देवनिकरैरर्चितं पुष्पवृष्टिभिः ।
देवस्त्रीभिर्वीक्ष्यमाणं कामोत्कण्ठितचेष्टितैः ॥८४॥

बीच-बीच में दो-दो प्रेमिकाओं के मध्य विराजमान होकर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो मरकत मणि से निर्मित स्तम्भ सोने से आच्छादित है। क्रीड़ावश कभी गोपाङ्गनाओं के वस्त्रों का हरण करते हैं, कभी उनके साथ बैठ जाते हैं तो कभी नाना प्रकार के उपहासों द्वारा उन गोपाङ्गनाओं को हँसाते हैं। यह सव देखकर विस्मित देवसमूहों द्वारा पुष्पवृष्टि से वे पूज्यमान हैं। देवस्त्रियाँ भी कामोत्कण्ठित होकर विविध चेष्टाओं को करती हुईं टकटकी लगाकर उनकी ओर देख रहीं हैं।।८२-८४।।

एवं ध्यात्वा मधुरिपुं यजेत्तं संशितव्रतः ।
मिथुनैश्च षोडशकैः केशवादिभिरावृतम् ॥८५॥
महर्षिभिस्तथा वीतं गोपीभिरपि सर्वतः ।
एवमभ्यर्च्य विधिना कांस्ये वा रजतान्विते ॥८६॥

पात्रे दुग्धं निवेद्याथ मिथुनेभ्यस्तथार्पयेत्।
जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य हृत्पद्मे तं विसर्जयेत्॥८७॥
एवमभ्यर्च्य जगतां पतिं शुद्धमना यतिः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां दायादो भवति ध्रुवम्॥८८॥
विप्रो वेदाधिपो भूयात् साक्षाद् भूमिपुरन्दरः।
क्षत्रियो राजवर्यश्च वैश्यो धनसमृद्धवान्॥८९॥
शूद्रः सुखानि सर्वाणि भुक्त्वा चान्ते परं व्रजेत्।
एवं ते कथितं विप्र संसारभयनाशनम्॥९०॥
अर्चनं त्रिविधं यत्ते मूलाविद्यानिकृन्तनम्॥९१॥

इति गौतमीये महातन्त्रे पञ्चदशोऽध्यायः

●

इस प्रकार मधुसूदन का ध्यान करके सावधानतया व्रत-परायण होकर केशवादि सोलह युगलों से आवृत, महर्षियों द्वारा स्तूयमान एवं चारो ओर से गोपियों से घिरे उन वासुदेव की विधिवत् अर्चना करने के उपरान्त कांस्य अथवा रजतपात्र में दुग्ध समर्पित करने के पश्चात् उक्त केशवादि सोलह युगलों को भी समर्पित करना चाहिये। तदनन्तर उनके मन्त्र का जप, स्तुति एवं नमस्कार करने के बाद अपने हृदयकमल में उनका विसर्जन करना चाहिये। जो व्यक्ति स्वच्छ मन से इस प्रकार जगत्पति की पूजा करता है, उसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की अवश्यमेव प्राप्ति होती है। इस प्रकार अर्चना करने से ब्राह्मण पृथ्वी पर साक्षात् इन्द्र के सदृश होकर वेदों का अधिपतित्व अवाप्त करता है; क्षत्रिय श्रेष्ठ राजा होता है; वैश्य धन एवं समृद्धि से युक्त होता है तथा शूद्र समस्त सुखों को भोगकर अन्त में परमधाम को प्राप्त होता है। हे विप्र! इस प्रकार संसार के भय का विनाश करने वाली एवं अविद्या का समूल निवारण करने वाली तीन प्रकार की अर्चनविधि को मैंने तुमसे कहा।।८५-९१।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के पञ्चदश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

षोडशोऽध्यायः

[गोपालमन्त्र का उद्धार, गोपाल का ध्यान, गोपाल का पूजन, हवन आदि का कथन।]

गौतम उवाच

ब्रूहि मे बालकृष्ण त्वं तत्त्वं सार्वज्ञकारणम्।
ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं सेवया तपसोऽर्जितः ॥१॥
यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ त्रैलोक्यं विदितं तु ते।
यथाक्रमं कथय मे सर्वमेव समाहितः ॥२॥
शुश्रूषा मे बलवतर गोपालस्यार्चनं प्रति।

गौतम बोले—हे नारद! अब आप मुझसे सर्वज्ञता की प्राप्ति के कारणभूत बालकृष्ण के उस तत्त्व को कहें, जिसे प्राचीन काल में आपकी सेवा, तपस्या एवं अर्चना से प्रसन्न होकर ब्रह्म ने आपसे कहा था और जिसकी कृपा से हे मुनिश्रेष्ठ! आप समस्त त्रैलोक्य के ज्ञाता हुये हैं। आप मुझे उस तत्त्व का समाहित चित्त से क्रमपूर्वक उपदेश करें; क्योंकि गोपाल के अर्चनक्रम को सुनने के लिये मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ।।१-२।।

नारद उवाच

बाल्यं ते कथयाम्यद्य देवस्य परमाद्भुतम् ॥३॥
गोपनीयं न ते किञ्चित्तत्त्वं वेदविदांवर।
तपसाऽकल्मषमनाः कृष्णे भक्तोऽसि निश्चयात् ॥४॥
तारः प्रजापतिः शक्रो माया च बिन्दुरेव च।
एतन्मन्त्रवरं विद्धि रहस्यं परमाद्भुतम् ॥५॥
महाचमत्कारकरं रिपुक्षोभणकारकम्।
चतुर्वर्गफलं चार्च्य जपमात्रेण सिद्ध्यति ॥६॥
गोपालस्यापि ये मन्त्रा वक्ष्यन्तेऽत्रैव ते मया।
सन्दीपितमनेनैव फलप्रदमवेक्षताम् ॥७॥
चूड़ामणिरयं प्रोक्तो देवस्य शिशुरूपिणः।
अहं मुनिः समाख्यातो गायत्री छन्द उच्यते ॥८॥
देवता कथितः कृष्णः सर्वकामफलप्रदः।
समाहारोच्चारणोऽयं मध्यमस्वर ईरितः ॥९॥

नेत्राब्धितर्कसूर्येन्द्रैः कलवर्णविभेदकै ।
पञ्चाङ्गानि मनोः कृत्वा ध्यानं कुर्यात्समाहितः ॥१०॥

नारद ने कहा—हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! अब मैं आपसे श्रीकृष्ण के अत्यन्त अद्भुत बाल्य तत्त्व को कहता हूँ; क्योंकि आपसे कोई भी तत्त्व गोपनीय नहीं है; साथ ही आप निश्चित रूप से अपनी तपस्या के प्रभाववश पूर्ण रूप से निष्कलुष मन वाले हैं और श्रीकृष्ण के परम भक्त हैं। तार (ॐ) प्रजापति (क्) शक्ति (ल) माया (ई) और बिन्दु के योग से 'क्लीं' मन्त्र बनता है। इस श्रेष्ठ मन्त्र को अत्यन्त अद्भुत रहस्यों से युक्त जानना चाहिये। यह मन्त्र अतिशय चमत्कार करने वाला एवं शत्रुओं को क्षुब्ध करने वाला है। इसके पूजन और जपमात्र से ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुवर्ग की सिद्धि हो जाती है। इसी मन्त्र से दीपित होकर गोपाल के अन्य मन्त्र भी फलप्रद होते हैं। शिशुरूप देव श्रीकृष्ण के लिये यह मन्त्र चूड़ामणिस्वरूप है। मैं नारद इस मन्त्र का ऋषि हूँ, छन्द गायत्री है एवं सर्वकामफलप्रद कृष्ण इसके देवता हैं। मध्यम स्वर से इसका उच्चारण कहा गया है। इसका ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करना चाहिये—

शिरसि नारदऋषये नमः।
मुखे गायत्रीछन्दसे नमः।
हृदि कृष्णाय देवतायै नमः।

ऋष्यादि न्यास सम्पन्न करने के उपरान्त इस प्रकार पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये—

क्लां हृदयाय नमः।
क्लीं शिरसे स्वाहा।
क्लूं शिखायै वषट्।
क्लैं कवचाय हुं।
क्लौं अस्त्राय फट्।

इस प्रकार मन्त्र से पञ्चाङ्गन्यास सम्पन्न करके समाहित मन से ध्यान करना चाहिये।।३-१०।।

मथुरायाः पूरे ध्यायेत् कंसस्यान्तः पुराजिरे ।
सूतिकागृहमध्यस्थं जातमात्रं जगत्पतिम् ॥११॥
सिद्धचारणगन्धर्वदेवदानवकिन्नरैः ।
यक्षराक्षसवेतालैः खेचरैर्दिक्चरैरपि ॥१२॥
विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिः समन्ततः ।
ब्रह्मणा तनयैः सार्द्धं वीक्ष्यमाणं मुदान्वितैः ॥१३॥
इन्द्रादिभिश्च दिक्पालैर्लसत्कुसुमवर्षणैः ।
चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गधरं हरिम् ॥१४॥

दक्षस्योर्ध्वे स्मरेच्चक्रं गदां च तदधः करे ।
वामस्योर्ध्वे शार्ङ्गधनुः शङ्खं च तदधः करे ॥१५॥
नवीनजलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
विलसत्कुन्तलाभोगभास्वरे निजमूर्द्धनि ॥१६॥
विहिताशेषसद्रत्नशोभिस्वर्णकिरीटिनम् ।
सुगन्धिपारिजातैश्च शोभिताशेषकुन्तलम् ॥१७॥
ललाटे न्यस्तकस्तूरीतिलकोज्ज्वलशोभितम् ।
अष्टमीचन्द्रशकलभासिभालतलोज्ज्वलम् ॥१८॥
उत्फुल्लपुण्डरीकश्रीनयनद्वयभासितम् ।
मनोभवधनुःकल्पचिल्लचापविराजितम् ॥१९॥
दाडिमीबीजकुन्दाभदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ।
पक्वबिम्बफलोद्भासिदन्तवासोज्ज्वलं विभुम् ॥२०॥
भास्वदनेकरत्नश्रीस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
महामरकतस्तम्भभासमानभुजोत्करम् ॥२१॥
रत्नचामीकराभोगैरङ्गदैर्वलयैर्युतम् ।
कम्बुग्रीवं महोरस्कं मुक्ताहारविराजितम् ॥२२॥
श्रीवत्सलाञ्छनं भ्राजत्कौस्तुभोज्ज्वलवक्षसम् ।
रत्नवैडूर्यघटितकिङ्किणीजालमालिना ॥२३॥
पट्टसूत्रेण सम्बद्धमध्यदेशोपशोभितम् ।
रत्नमञ्जीरफलकमञ्जुश्रीपादपल्लवम् ॥२४॥
देवक्या वसुदेवेन हरेण विधिना तथा ।
विदिक्षु तिष्ठता स्तोत्रमुखरेण पदाञ्जलिम् ॥२५॥
मेरुशृङ्गप्रतीकाशं गरुडोपरि संस्थितम् ।

मथुरा में कंस के अन्त:पुर के आंगन-स्थित सूतिकागृह में उत्पन्न हुये जगत् के स्वामी का ध्यान करना चाहिये। उस समय वहाँ पर सिद्धों, चारणों, गन्धर्वों, देवों, दानवों, किन्नरों, यक्षों, राक्षसों, वेतालों, खेचरों, दिक्चरों, विद्याधरियों, देवपत्नियों, किन्नरियों एवं अपने मानस पुत्रों के साथ स्वयं ब्रह्मा उपस्थित होकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनका दर्शन कर रहे हैं। इन्द्रादि दिक्पाल देवगण उनके ऊपर विकसित पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। शंख-चक्र-गदा-शार्ङ्गधनुर्धारी उन हरि के दाहिने ऊपर वाले हाथ में चक्र एवं उसके नीचे वाले हाथ में गदा तथा बाँयें ऊपर वाले हाथ में शार्ङ्गधनु एवं उसके नीचे वाले हाथ में शंख शोभायमान है। उनका वर्ण नूतन मेघ के समान श्याम है एवं पीले रंग का रेशमी वस्त्र है। उनके मस्तक पर अतिशय शोभासम्पन्न

रत्नजटित स्वर्णमुकुट प्रकाशित हो रहा है। पारिजातपुष्पों के सुगन्ध से उनकी अलकें सुशोभित हैं। ललाट पर कस्तूरी का तिलक शोभित हो रहा है। उनका भालतल अष्टमी तिथि के चन्द्रखण्ड के समान उज्ज्वल है। उनके नेत्रद्वय विकसित कमल के सदृश हैं। उनके हाथों में मन्मथ के धनुष के समान धनुष विराजित है। अनार के दानों तथा कुन्दपुष्प के सदृश मनोहारी उनकी दन्तावलि है और उस दन्तावलि का वासस्थान अर्थात् अधर पक्व विम्बफल के समान है। उनका मकरकुण्डल अनेक रत्नों से समन्वित होने के कारण दीप्यमान है। महान् मरकतमणि के स्तम्भ के सदृश दीप्तिमान् उनकी भुजायें हैं। वे रत्नजटित सुवर्ण के अंगद एवं वलय धारण किये हुये हैं। विविध रत्नों एवं वैदूर्य से समन्वित उनकी करधनी है। उनके शरीर का मध्यभाग पट्टसूत्र से वेष्टित है। उनके पैरों में रत्नजटित नूपुर अपनी शोभावृद्धि कर रहा है। देवकी, वसुदेव, शंकर एवं ब्रह्मा उनके चारो ओर खड़े होकर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे हैं। मेरुशिखर के समान उन्नत गरुड़ पर वे विराजमान हैं।।११-२५।।

इति ध्यात्वा परात्मानं गुरुमात्मानमेव च ।।२६।।
एकीभावेन सम्भाव्य ततः पूजनमारभेत् ।
कर्पूरमिलितालोलसितचन्दनचर्चितम् ।।२७।।
आलिखेद्देवकीपुत्रं पत्रशोभनरेखया ।
शलाकया वैद्रुमया तथा चापि च हैमया ।।२८।।
किञ्जल्करूपतं वृत्तं ततो लेख्यं चतुर्दलम् ।
ततो वृतं चाष्टदलं लिखेद्दशदं ततः ।।२९।।
समरेखं चतुष्कोणचतुर्द्वारसुशोभितम् ।
बीजशोभिचतुर्द्वारचतुष्कोणविराजितम् ।।३०।।

उपर्युक्त प्रकार से परमात्मा का ध्यान करके परमात्मा, गुरु एवं स्वयं में ऐक्य की भावना करते हुये पूजन का आरम्भ करना चाहिये। एतदर्थ देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का यन्त्र कपूर और चन्दन के लेप से विद्रुम अथवा सुवर्ण की शलाका द्वारा सुन्दर रेखायें खींचकर बनाना चाहिये। सर्वप्रथम किंजल्करूप वृत्त बनाकर उसमें चार दल बनाना चाहिये। उसके बाहर वृत्त बनाकर अष्टदल और उसके बाहर दसदल कमल बनाना चाहिये। उसके बाहर चार द्वारों से युक्त चतुरस्र बनाना चाहिये। चारो द्वारों और चारो कोणों में 'क्लीं' बीज लिखना चाहिये।।२६-३०।।

पूजन यन्त्र

मध्ये सम्पूज्य देवेशं पूजयेत्तु चतुर्दले।
ऐशान्यामीश्वरं देवमाग्नेय्यां च पितामहम् ॥३१॥
नैर्ऋत्यां वसुदेवं च वायव्यां देवकीमपि।
ततश्चाष्टसु पत्रेषु पूजयेद्देववल्लभाः ॥३२॥
रक्ताम्बरधराः सौम्याः कराम्बुजधृताम्बुजाः।
सर्वालङ्करणोद्दीप्ता लसद्यौवनविभ्रमाः ॥३३॥
श्रीमद्देवमुखाम्भोजन्यस्तनेत्रमधुव्रताः।
ततो दशदले पूज्या लोकपालास्ततो बहिः ॥३४॥
गरुडं पश्चिमे द्वारे जयं पूर्वे प्रपूजयेत्।
विजयं दक्षिणे तद्वन्नारदं च तथोत्तरे ॥३५॥
पुटाञ्जलिकराः सर्वे सुस्तोत्रमुखरा अपि।
विलसद्वनमालाश्च पीतकौशेयवाससः ॥३६॥

ततः शंङ्खञ्च चक्रञ्च गदां कौमोदकीमपि।
शार्ङ्गं धनुश्च सम्पूज्य तद्बाह्ये पूजयेदपि ॥३७॥
एरावतादीनभ्यर्च्य गणानष्टौ ततो बहिः।

उक्त निर्मित यन्त्र के मध्य में देवेश की पूजा करने के उपरान्त चतुर्दल कमल के ईशान में महेश्वर की, आग्नेय में ब्रह्मा की, नैर्ऋत्य में वसुदेव की एवं वायव्य में देवकी की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि क्रम से रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों की पूजा करनी चाहिये। अत्यन्त सौम्य वे आठो देवियाँ लाल वस्त्र धारण की हुई हैं, करकमलों में कमल धारण की हुई हैं, समस्त अलंकारों से सुशोभित वे सभी सुन्दर युवती हैं और श्रीकृष्ण के मुखकमल पर उनकी दृष्टि लगी हुई हैं।

इसके बाद दश दल में इन्द्रादि दश लोकपालों की पूजा करने के बाद उसके वाहर चतुरस्र के पश्चिम द्वार पर गरुड़ की, पूर्व द्वार पर जय की, दक्षिण द्वार पर विजय की एवं उत्तर द्वार पर नारद की पूजा करनी चाहिये। पीत रेशमी वस्त्र एवं वनमाला धारण किये ये सभी हाथ जोड़कर स्तोत्रपाठ कर रहे हैं। तदनन्तर उसके बाहर शंख, चक्र, कौमोदकी गदा और शार्ङ्ग धनुष की पूजा करनी चाहिये। पुनः उसके बाहर आठो दिशाओं में ऐरावत आदि आठ दिग्गजों की पूजा करनी चाहिये।

पूजनविधि—यन्त्र के मध्य में 'क्लीं कृष्णाय नमः' मन्त्र से श्रीकृष्ण की पूजा पञ्चोपचार या षोडशोपचार से करनी चाहिये। तत्पश्चात् चतुर्दल के—

ईशान दल में—ॐ महेश्वराय नमः पादुकां पूजयामि।
आग्नेय दल में—ॐ ब्रह्मणे नमः पादुकां पूजयामि।
नैर्ऋत्य दल में—ॐ वसुदेवाय नमः पादुकां पूजयामि।
वायव्य दल में—ॐ देवक्यै नमः पादुकां पूजयामि।

तत्पश्चात् अष्टदल के—
पूर्व में—ॐ रुक्मिण्यै नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
आग्नेय में—ॐ सत्यभामायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
दक्षिण में—ॐ कालिन्द्यै नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
नैर्ऋत्य में—ॐ लक्ष्मणायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
पश्चिम में—ॐ नाग्नजित्यै नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
वायव्य में—ॐ जाम्बवत्यै नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
उत्तर में—ॐ मित्रवृन्दायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
ईशान में—ॐ सुशीलायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर दश दल में पूर्वादि क्रम से—

पूर्व में—ॐ इन्द्राय नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
आग्नेय में—ॐ अग्नये नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
दक्षिण में—ॐ यमाय नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
नैर्ऋत्य में—ॐ निर्ऋतये नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
पश्चिम में—ॐ वरुणाय नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
वायत्य में—ॐ वायवे नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
उत्तर में— ॐ कुवेराय नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
ईशान में—ॐ ईशानाय नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
नवें दल में—ॐ ब्रह्मणे नम: श्रीपादुकां पूजयामि।
दशवें दल में —ॐ अनन्ताय नम: श्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर चतुरस्त्र के चारो द्वारों पर—
पश्चिम द्वार पर—ॐ गरुडाय नम:।
पूर्व द्वार पर—ॐ जयाय नम:।
दक्षिण द्वार पर—ॐ विजयाय नम:।
उत्तर द्वार पर—ॐ नारदाय नम:।

इसके बाद चतुरस्त्र के चारो द्वारों के बाहर पूर्वादि क्रम से—
पूर्व में—ॐ शङ्खाय नम:।
दक्षिण में—ॐ चक्राय नम:।
पश्चिम में—ॐ कौमोदकीगदायै नम:।
उत्तर में—ॐ शार्ङ्गधनुषे नम:।

दश दलों के बाहर आठो दिशाओं में आठ दिग्गजों की पूजा इन मन्त्रों से करनी चाहिये—ॐ कुमुदाय नम:। ॐ कुमुदाक्षाय नम:। ॐ पुण्डरीकाय नम:। ॐ वामनाय नम:। ॐ शंकुकर्णाय नम:। ॐ सर्वनेत्राय नम:। ॐ सुमुखाय नम:। ॐ सुप्रतिष्ठिताय नम:। साथ ही उत्तर-ईशान के मध्य में 'ॐ विष्वक्सेनाय नम:' मन्त्र से विष्वक्सेन की पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार विधिवत् पूजन करने के पश्चात् मन्त्रजप करना चाहिये।।३१-३७।।

कृते लक्षं जपेन्मन्त्रं त्रेतायां द्विगुणं तथा ॥३८॥
त्रिलक्षं द्वापरे जाप्यं चतुर्लक्षं कलौ जपेत्।
लक्ष्मीं प्रसूनैर्जुहुयाच्छ्रियमिच्छन्ननिन्दिताम् ॥३९॥
आज्येनान्नेन जुहुयादाज्यान्नस्य समृद्धये।
आरण्यैः कुसुमैर्विप्राञ्ज्ञातीभिः पृथिवीपतीन् ॥४०॥

प्रसूनैरसितैर्वैश्यान् शूद्रान्नीलोत्पलैरपि।
वशेयुर्लवणैः सर्वान् पङ्कजैर्वनिताजनान् ॥४१॥
गोशालासु कृतो होमः पायसेन ससर्पिषा।
गवां शान्तिं करोत्याशु गोविन्दो गोकुलप्रियः ॥४२॥

उपर्युक्त विधि से पूजन करने के बाद मन्त्र का सत्ययुग में एक लाख, त्रेतायुग में दो लाख, द्वापरयुग में तीन लाख एवं कलियुग में चार लाख की संख्या में जप करना चाहिये। जप पूर्ण होने के अनन्तर अनिन्दित लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये कमलपुष्पों से हवन करना चाहिये। इसी प्रकार घी एवं अन्न की समृद्धि के लिये घृत एवं अन्न मिलाकर हवन करना चाहिये। वनोत्पन्न पुष्पों से होम करने पर ब्राह्मण, जातिपुष्पों से होम करने पर राजा, श्वेत पुष्पों से होम करने पर वैश्य एवं नीलकमलों से होम करने पर शूद्र वशीभूत हो जाते हैं। एवमेव सर्ववशीकरण के लिये नमक से एवं स्त्रीवशीकरण के लिये कमल से होम करना चाहिये। पायस में घृत मिलाकर गोशाला में सम्यक् रूप से होम करने से गोकुलप्रिय गोविन्द गौओं को सद्यः शान्ति प्रदान करते हैं।।३८-४२।।

शिशुवेषधरं देवं किङ्किणीजालशोभितम्।
स्मृत्वा प्रतर्पयेन्मन्त्री दुग्धबुद्ध्या शुभैर्जलैः ॥४३॥
धनं धान्यांशुकादीनि प्रीतस्तस्मै ददाति सः।
पिण्डमूलेन दहनं पुरयुगे कोणराजसा ॥४४॥
षडर्णं कुर्यात्पद्मं दशार्णं स्फुरद्दशदलम्
कामबीजेन वीतं पद्मं किञ्जल्कसंस्थम्।
स्वर विकृति दलप्रोल्लसत्षोडशार्णं
किंजल्कं व्यंजनानां विकृतिदयुगे त्वर्पितानुष्टवर्णम् ॥४५॥
पाशाङ्कुशाभ्यामावीतं क्षोणीपुरयुगान्वितम्।
अष्टाक्षरेण संवीतं यन्त्रं गोविन्ददैवतम् ॥४६॥
धर्मार्थकामफलदं सर्वरक्षाकरं स्मृतम्।
पञ्चान्तको धरासंस्थो मनुबिन्दुविभूषितम् ॥४७॥
पिण्डबीजमिदं प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं परम्।
चतुर्लक्षं जपेत्तत्र तद्दशाशं हुनेत्ततः ॥४८॥
तर्पयेत्तद्दशाशं तु दशांशं चाभिषेचयेत्।
ब्राह्मणान्भोजयेच्चापि दशांशमिति च क्रमात् ॥४९॥
गणेशं भास्करं रुद्रं गौरीं च परिपूजयेत्।
विदिक्षु यन्त्रराजस्य स्वस्वमन्त्रपुरःसरम् ॥५०॥

एतद्धारणमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेद् ध्रुवम्।
यद्यन्निजेप्सितं सर्वं साधयेन्नात्र संशयः ॥५१॥
अनेन सदृशो मन्त्रो यन्त्रं वापि न विद्यते।
केवलं प्रेमभावेन कथितं त्वयि सुव्रत ॥५२॥

इति गौतमीये महातन्त्रे षोडशोऽध्यायः

●

मन्त्रज्ञ को किंकिणियों द्वारा सुशोभित बालरूपधारी कृष्ण का तर्पण शुद्ध जल में दुग्ध की भावना रखकर करना चाहिये। ऐसा करने से श्रीकृष्ण अतिशय प्रसन्न होकर उस मन्त्रज्ञ को धन-धान्य और वस्त्र प्रदान करते हैं।

'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' इस षडक्षर मन्त्र को चतुरस्र पर लिखकर दशाक्षर मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) को दशदलकमल के पत्तों पर लिखकर उस दशदल कमल के किञ्जल्क में क्लीं लिखे। विकृत स्वरों एवं व्यंजनों से उसे वेष्टित करके उसके ऊपर आं ह्रीं से आवृत अष्टाक्षर मन्त्र लिखे। इस प्रकार अष्टाक्षर से समन्वित देव गोविन्द का यह यन्त्र धर्म-अर्थ-कामरूप फल प्रदान करने वाला एवं सर्वविध रक्षा करने वाला होता है।

(इस यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर षडक्षर, दशाक्षर, षोडशाक्षर और अष्टाक्षर मन्त्रों से श्रीकृष्ण की पूजा करके सोने के ताबीज में भरकर धारण करना चाहिये।)

'ग्लौं' मनु एवं विन्दु से विभूषित, धरासंस्थ तथा पञ्चान्तक है। इसे पिण्डवीज कहा गया है और यह समस्त श्रेष्ठ सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। इस बीजमन्त्र का चार लाख की संख्या में जप करके क्रमश: जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। यन्त्र के विदिशाओं में गणेश, सूर्य, रुद्र एवं गौरी की पूजा उनके मन्त्रों से करनी चाहिये। इस यन्त्र को मात्र धारण करने से ही साधक तीनों कालों का ज्ञाता हो जाता है और इसका पूजन करने से अपने अभीप्सित को सिद्ध करता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। हे सुव्रत! कोई दूसरा यन्त्र अथवा मन्त्र इसकी समानता करने वाला नहीं है; केवल आपके प्रति प्रीति के कारण इसे मैंने प्रकाशित किया है।।४३-५२।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के षोडश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

सप्तदशोऽध्यायः

[भगवान् के विविध रूपों के जप एवं फल, दुर्गा आदि के बीज, तत्तत् उपचारों से पूजन का फलभेद, सम्बन्धित फल की कामना के अनुसार जप आदि का कथन।]

अथ प्रयोगान् प्रवक्ष्यामि मन्त्रयोरुभयोः समान्।
यान् कृत्वा साधकवरो लोकद्वयसुपूजितः ॥१॥
तदर्थकारि मुद्रान्वै वक्ष्यामि च क्वचित्क्वचित्।
तदेतं देवकीपुत्रं सद्योजातं द्युसत्प्रभम् ॥२॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम्।
एवं ध्यात्वा मधुरिपुं लक्षं ब्राह्मे मुहूर्त्तके ॥३॥
जप्त्वा मेधां परां प्राप्य कवीनामग्रणीर्भवेत्।
अथवा स्फटिकाभासं द्विभुजं लेखपुस्तकम् ॥४॥
धारिणं तं विचिन्त्याथ लक्षं ब्राह्मे मुहूर्त्तके।
जप्त्वा मन्त्री त्रिकालज्ञो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥५॥

अब दोनों समान मन्त्रों के प्रयोगों को कहता हूँ। इन प्रयोगों को करके श्रेष्ठ साधक दोनों लोकों में पूजित होता है। उन प्रयोगों में प्रयोगार्थ कतिपय मुद्राओं को भी कहीं-कहीं कहूँगा। शंख, चक्र, गदा, पद्म एवं वनमाला धारण करने वाले तथा सद्यः समुद्भूत कान्ति वाले उन देवकीपुत्र मधुसूदन का ध्यान करके ब्राह्म मुहूर्त में दशाक्षर (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) अथवा अष्टादशाक्षर (क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) मन्त्र का एक लाख जप करके परा मेधा को प्राप्त करके साधक कवियों में अग्रगण्य हो जाता है। अथवा स्फटिक के समान आभा वाले, दो भुजाओं वाले, लेखनी एवं पुस्तक धारण करने वाले उन देव का ध्यान करके ब्राह्म मुहूर्त में एक लाख मन्त्रजप करने से साधक बृहस्पति के समान तीनों कालों का ज्ञाता हो जाता है।।१-५।।

अथवैतन्महामन्त्राः प्रोच्यन्ते शृणु तत्त्वतः।
श्यामलं कोमलं बालं क्रीडन्तं मातुरङ्कके ॥६॥
द्विभुजं स्तनपातारं चिन्तयन् श्रुतिधरो भवेत्।
लक्षं वा प्रजपेदेनं समानं लभते फलम् ॥७॥

कामबीजाद्यमन्त्रोऽयं किं न सिध्यति भूतले।
उपसंहृतदिव्याङ्गं पुरेव मातुरङ्कके ॥८॥
चलत्पद्मपदं बालं ध्यायन् ब्राह्मे मुहूर्त्तके।
जप्त्वा मनुवरं विद्वान् सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत् ॥९॥
सर्ववेदार्थकुशलो ज्ञानवान्भवति ध्रुवम्।
नन्दाङ्गणे पर्यटन्तं धूलीनिचयधूसरम् ॥१०॥
प्रदीप्तमणिभिर्दीप्तं यशोदालोकनोत्सुकम्।
एवं ध्यात्वा मनुवरं जपेन्नियममास्थितः ॥११॥
लक्षैकजपनादस्य किं न सिध्यति भूतले।
प्रातः प्रातः पिबेत्तोयमष्टोत्तरशतं जपन् ॥१२॥
अनेन मूको दुष्टात्मा जडः पाषाणवत्तथा।
अनेन जलपानेन साक्षाद्वाक्पतिसन्निभः ॥१३॥
जायते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं न चान्यथा।

अथवा इन महामन्त्रों को तत्त्वतः श्रवण करो। अत्यन्त कोमल श्याम वर्ण शरीर वाले, दो भुजाओं वाले, बालरूप धारण करके माता की गोद में क्रीड़ापूर्वक स्तनपान करने वाले श्रीकृष्ण का चिन्तन करने वाला श्रुतिधर अर्थात् सुनते ही धारण करने वाला हो जाता है अथवा मन्त्र के एक लाख जप से भी वही फल (श्रुतिधरता) प्राप्त होता है। दशाक्षर या अष्टादशाक्षर मन्त्र के आदि में 'क्लीं' बीज लगाकर इस पृथ्वी पर क्या नहीं सिद्ध हो सकता है? अपने दिव्य अंगों को माता के अंक में समेटकर गौ के समान चलते हुये बाल कृष्ण का ध्यान करके ब्राह्ममुहूर्त में श्रेष्ठ मन्त्र का जप करके साधक समस्त शास्त्रों के अर्थ का ज्ञाता हो जाता है। वह निश्चित ही समस्त वेदों के अर्थ करने में निष्णात एवं ज्ञानी हो जाता है। नन्द के आंगन में भ्रमण करते हुये धूलि-धूसरित अंगों वाले, दीप्तिमान मणियों से उद्भासित, माता यशोदा को उत्सुकतापूर्वक देखते हुये कृष्ण का ध्यान करके व्रती होकर इस मन्त्र का एक लाख जप करने से इस पृथ्वी पर क्या सिद्ध नहीं किया जा सकता? नित्य प्रातःकाल मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित जल का पान करने से मूक, दुष्टात्मा एवं पत्थर के समान जड़बुद्धि भी साक्षात् बृहस्पति के समान हो जाता है; यह पूर्णतः सत्य है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये।।६-१३।।

पद्भ्यां विक्षिप्य शकटं रुदन्तं प्राकृतं यथा ॥१४॥
लक्षं जप्यादिति ध्यात्वा ह्यापभ्यो मुच्यते ध्रुवम्।
शत्रुभ्यो न भयं तस्य राजतो दस्युतोऽपि वा ॥१५॥

न तस्य विद्यते प्रीतिः कदाचिदपि सुव्रत! ।
अथापरं प्रवक्ष्यामि रहस्यं सुरपूजितम् ॥१६॥
यज्ज्ञात्वा साधकवरः प्रयोगफलमाप्नुयात् ।
ब्रह्माणं सोमसंयुक्तमिन्दुबिन्दुसमन्वितम् ॥१७॥
दौर्गं बीजमिति ख्यातं समस्तापन्निवारणम् ।
शम्भोः पदं वह्नियुतं मायाबिन्दुसमन्वितम् ॥१८॥
अशेषजगतो बीजं महामायेति विश्रुतम् ।
अनया योगतो मन्त्री ह्यसाध्यमपि साधमेत् ॥१९॥
वान्तं वह्निसमायुक्तं चतुर्थस्वरभूषितम् ।
श्रियो बीजमिति प्रोक्तं नृणां सर्वसुखप्रदम् ॥२०॥
विरञ्चीन्द्रसमायुक्तं चतुर्थस्वरभूषितम् ।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं बीजं त्रैलोक्यमोहनम् ॥२१॥
प्रोक्तं शताक्षरं तं तु षष्ठस्वरसमन्वितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं कूर्चबीजमिति स्मृतम् ॥२२॥

पैरों से शकट को उलटकर प्राकृत जनों के समान रुदन करते हुये बाल श्रीकृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करने से मनुष्य निश्चित ही आपदाओं से मुक्त हो जाता है। उसको शत्रुओं, राजा और दस्युओं का भय नहीं रहता और न ही कभी उनसे उसकी प्रीति होती है।

अब दूसरे देवपूजित रहस्य को कहता हूँ, जिसको जानकर श्रेष्ठ साधक प्रयोग के फल को प्राप्त करता है। ब्राह्मण (द) और सोम (उ) के इन्दुबिन्दु अर्थात् चन्द्रबिन्दु से समन्वित होने पर 'दुं' होता है, जो कि दुर्गाबीज के रूप में प्रसिद्ध है। यह सभी आपदाओं का निवारक है। शम्भो पद 'ह' वह्नियुत 'र' माया 'ई' बिन्दु-समन्वित 'ह्रीं' होता है। सारे संसार का बीजस्वरूप यह माहामाया नाम से प्रसिद्ध है। मन्त्र के साथ इसे संयुक्त करके मन्त्री असाध्य को भी सिद्ध कर सकता है। वात 'श' वह्नि 'र' से युक्त चतुर्थ स्वर 'ई' से भूषित लक्ष्मी का बीज 'श्रीं' होता है। यह मनुष्यों को सब प्रकार के सुखों को देने वाला कहा गया है। विरञ्ची 'क' इन्द्र 'ल' से युक्त चतुर्थ स्वर 'ई' से भूषित नाद अर्थात् चन्द्रबिन्दु से संयुक्त 'क्ली' बीज तीनों लोकों को मोहित करने वाला कहा गया है। 'ह' को छठा स्वर 'ऊ' एवं नाद-बिन्दु (चन्द्रबिन्दु) से युक्त करने पर कूर्चबीज 'हूं' का उद्धार होता है।।१४-२२।।

एतेषां बीजवर्गाणां ज्ञात्वा कर्माणि मन्त्रवित् ।
गुरुतः शास्त्रतः सम्यक् सर्वकर्माणि साधयेत् ॥२३॥

अन्यथा नैव सिद्धः स्यान्मन्त्रः कल्पशतैरपि ।
मेरुश्चतुर्दशस्वरमधोवह्निसमन्वितः ॥२४॥
नृसिंहबीजमित्युक्तं सर्वापस्मारनाशनम् ।
समाहितमना भूत्वा पद्माक्षैः कृतमालया ॥२५॥
अयुतैकं जपेन्मन्त्रं ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
अल्पायासेन कामाः स्युर्दरिद्रश्च न जायते ॥२६॥
सर्वे मनोरथास्तस्य सिध्यन्ति च न संशयः ।
नित्यकर्मरतं कृष्णं वन्यपुष्पैः समर्चयेत् ॥२७॥
वश्या भवन्ति सर्वे च ब्राह्मणा नात्र संशयः ।
गोपालवेषं मनसा जातिपुष्पैः समर्चयेत् ॥२८॥
वश्या भवन्ति राजानो नात्र कार्या विचारणा ।
तमेव रक्तपुष्पैस्तु वैश्या वश्या भवन्ति हि ॥२९॥
नीलोत्पलैश्च शूद्राः स्युर्मासं कृष्णं समर्चयेत् ।

मन्त्रज्ञ को चाहिये कि इन समस्त बीजों के कर्मों को गुरु एवं शास्त्र से सम्यक् रूप से ज्ञात करके समस्त कर्मों का साधन करे। अन्यथा सौ कल्पों में भी मन्त्र की सिद्धि नहीं होती। मेरु 'क्ष' चतुर्दश स्वर 'औ' वह्नि 'र' से युक्त 'क्ष्रौं' को नृसिंहबीज कहा गया है। यह सभी अपस्मारों का विनाशक होता है। समाहित मन से ब्रह्मचर्य धारण करके कमलगट्टे की माला से इस मन्त्र का दश हजार जप करने से अल्प प्रयास से ही दरिद्रता नष्ट हो जाती है और उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है। नित्यकर्म में रत रहते हुए जंगली पुष्पों से कृष्ण का अर्चन करने से सभी ब्राह्मण वश में हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है। गोपालवेश का स्मरण करते हुए जातिपुष्पों से अर्चन करने से राजा वश में हो जाते हैं; इसमें विचार अनावश्यक है। इसी प्रकार लाल फूलों से पूजा करने पर निश्चित रूप से वैश्य वश में हो जाते हैं। एक महीने तक नीलोत्पल से कृष्ण का अर्चन करने पर शूद्र वश में होते हैं।।२३-२९।।

जुहुयाद्रक्तपुष्पैर्मिश्रितैस्तिलतण्डुलैः ॥३०॥
मन्त्रेणाष्टसहस्रं तु जप्त्वा भस्म धरेद्यदि ।
ललाटे विधृते तस्य सर्वे वश्या भवन्ति हि ॥३१॥
अनेन च शरीरेण राजानो वश्यतामियुः ।
स्त्रियो वश्या भवन्त्यस्य पुत्रामात्याश्च सर्वथा ॥३२॥
विवाहार्थो जपेन्मन्त्रं मासमष्टसहस्रकम् ।
रासमण्डलमध्यस्थं कृष्णं ध्यात्वा व्रजे स्थितम् ॥३३॥

विवाहयेदुत्तमां तां कन्यां सर्वकुलोज्ज्वलाम्।
पुत्रं मे रक्ष रक्षेति द्विजेन प्रार्थितो हरिः ।।३४।।
हृतपुत्रं समाहृत्य ददौ यस्तं विचिन्तयेत्।
पुत्रकामो लभेत्पुत्रं मासेनैकेन सुन्दरम् ।।३५।।
दीर्घायुरप्रतिहतं बलवीर्यसमन्वितम्।
कुन्दपुष्पैः समाराध्य कृष्णं ध्यायेच्च कन्यका ।।३६।।
मासद्वयं तथा मन्त्रं जपेदष्टसहस्रकम्।
मनोरथपतिं लब्ध्वा दीर्घकालं च क्रीडति ।।३७।।

लाल फूल, तिल एवं चावल को मिलाकर मन्त्रजप करते हुये आठ हजार हवन करके उसके भस्म को ललाट में धारण करने से सभी वश में हो जाते हैं। इसके धारण करने से स्त्री, पुत्र, अमात्य-सहित राजा भी वश में हो जाते हैं।

विवाह का इच्छुक व्यक्ति यदि व्रज के रासमण्डल में स्थित कृष्ण का ध्यान करके एक माह तक मन्त्र का आठ हजार जप करता है तो समस्त कुलों में उज्ज्वल उत्तम कन्या से उसका विवाह होता है। 'हे हरि! मेरे पुत्र की रक्षा करें' इस प्रकार पुत्ररक्षा के लिए गुहार करते विप्र को अपहरित पुत्र लाकर देने वाले कृष्ण का चिन्तन करते हुये एक माह तक मन्त्रजप करने से पुत्रकामी को सुन्दर, दीर्घायु-सम्पन्न, अप्रतिहत बल-वीर्य से समन्वित पुत्र प्राप्त होता है। विवाहकामिनी कन्या यदि कृष्ण का ध्यान करती हुई कुन्दपुष्पों से दो महीनों तक उनका पूजन और आठ हजार की संख्या में मन्त्र का जप करती है तो मनोऽनुकूल पति को प्राप्त कर दीर्घ काल तक उसके साथ क्रीड़ा करती है।।३०-३७।।

अञ्जनं कुसुमं वस्त्रं ताम्बूलं चन्दनं तथा।
अन्यान्युपभोग्यानि स्पृष्ट्वा मन्त्रशतं जपेत् ।।३८।।
दीयते यस्य यस्येति सोऽचिराद्दासवद्वशी।
स्त्रियो वश्या अनेनैव भवन्ति मुनिसत्तम!।।३९।।
पुरुषं वशयेन्नारी अनेनैव विधानतः।
अर्थार्थकामः श्रीपुष्पैः सिततण्डुलमिश्रितैः ।।४०।।
अष्टोत्तरसहस्रं तु जुहुयादर्थवान् भवेत्।
विश्वरूपधरं ध्यात्वा शतमष्टोत्तरं जपेत् ।।४१।।
समाहृतमना मन्त्री यशस्वी कीर्तिमाप्नुयात्।
प्रेतभूतपिशाचैश्च स्कन्दादिग्रहपीडितैः ।।४२।।
पूतनास्तनपातारं ध्यात्वा मन्त्रशतं जपेत्।
प्रणश्यन्ति ग्रहा दुष्टाः पलायन्त इतस्ततः ।।४३।।

सर्पमण्डलिदष्टाश्च मूषिकाद्यैश्च दंशितान्।
कृष्णं कालीयदमनं चिन्तयित्वा जपेन्नरः ॥४४॥
तर्जयन्तं विषं घोरं हूंकारेण विनाशयेत्।

अञ्जन, पुष्प, वस्त्र, पान, चन्दन तथा अन्य उपभोग्य वस्तुओं को स्पर्श करके एक सौ आठ बार मन्त्रजप करके उक्त अभिमन्त्रित वस्तुयें जिसे दी जाती हैं, वह अल्प काल में ही दास के समान वशीभूत हो जाता है। हे मुनिसत्तम! इससे स्त्रियाँ भी वशीभूत होती हैं और इसी विधान से स्त्रियाँ भी अपने पति को वशीभूत कर सकती हैं। धनार्थी श्रीपुष्प (कमल) और उजले चावल के मिश्रण से इस मन्त्र से एक हजार आठ हवन करके धनवान हो जाता है। विश्वरूपधारी श्रीकृष्ण का ध्यान करके मन्त्रज्ञ साधक यदि एकाग्र होकर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करता है तो वह साधक यशस्वी होकर कीर्ति प्राप्त करता है। भूत, प्रेत, पिशाच, स्कन्द आदि ग्रहों से पीड़ित मनुष्य यदि पूतना का स्तनपान करते हुये कृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करता है तो वे दुष्ट ग्रहादि इधर-उधर भागते हुये नष्ट हो जाते हैं। सर्पों द्वारा ड़से हुये अथवा चूहे आदि के काटने पर कालीयदमन करने वाले श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुये जप करके 'हूं'कार करने से अतिशय भयंकर विष भी नष्ट हो जाते हैं।।३८-४४।।

अत्रान्यान्यं मनुं हूंबीजाद्यं मे शृणु तत्त्वतः ॥४५॥
कालीयस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम्।
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ॥४६॥
ज्वरार्त्तोऽभ्यर्चयेन्मन्त्री जपेदष्टशतं तथा।
ज्वरेण संस्कृतं कृष्णं बलप्रद्युम्नसंयुतम् ॥४७॥
दहन्तं बाणनगरीं गरुडोपरि संस्थितम्।
निजज्वरेण सम्पिष्टं ध्यात्वा तं नाशयेत्क्षणात् ॥४८॥
शीतलाकामलादीनि तथा चातुर्थिकोद्भवान्।
प्लीहगुल्मयकृद्वायुरपस्मारभवस्तथा ॥४९॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो दृष्टिमात्रेण मान्त्रिकः।
गोपालं यष्टिपाशं च वेणुमादाय संस्थितः ॥५०॥
गोवर्द्धनधरं कृष्णं ध्यात्वा मन्त्रं जपेन्नरः।
वातवर्षादिभिर्घोरैर्भये सम्यगुपस्थिते ॥५१॥
जपेदष्टसहस्रं तु वृष्टिमाप्नोत्यसंशयम्।
एवं च मनसा ध्यात्वा वृष्टिं वर्षासु नावहेत् ॥५२॥
एवं जलाशये ध्यात्वा जपेदष्टसहस्रकम्।
वृष्टिर्भवत्यकालेऽपि महती नात्र संशयः ॥५३॥

अव अन्य-अन्य 'हूं' बीजाद्य मन्त्र को मुझसे तत्त्वतः सुनिये। कालीय नाग के फणों के मध्य दिव्य नृत्य करने वाले नृत्यराट् देवकीपुत्र अच्युत को मैं प्रणाम करता हूँ—इस प्रकार अर्चना करते हुये मन्त्र के पूर्व 'हूं' लगाकर ज्वरपीड़ित व्यक्ति यदि एक सौ आठ बार मन्त्रजप करता है तो उसका ज्वर नष्ट हो जाता है। साथ ही ज्वर से संस्कृत कृष्ण बलराम और प्रद्युम्न के साथ गरुड़ पर सवार होकर वाणासुर की नगरी को जला रहे हैं—ऐसा ध्यान करने से भी ज्वरपीड़ित व्यक्ति का ज्वर तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है। मन्त्रज्ञ साधक चेचक, कामला आदि के साथ-साथ चातुर्थिक ज्वर, प्लीहा, गुल्म, यकृत्, वायु, अपस्मार आदि को अपनी दृष्टिमात्र से ही नष्ट कर देता हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है। आँधी, घोर वर्षा आदि भय उपस्थित होने पर डंडा, रस्सी एवं मुरली के साथ गौओं की रक्षा करते हुये गोवर्द्धनधारी कृष्ण का ध्यान करके आठ हजार मन्त्रजप करने से वर्षादि-जन्य भय का शमन हो जाता है। जलाशय का चिन्तन करके आठ हजार मन्त्रजप करने से अकाल में भी भारी वर्षा होती हैं; इसमें कोई संशय नहीं है।।४५-५३।।

गायन्तं वेणुना कृष्णं गानकामो विचिन्तयेत्।
आज्यमष्टशतं हुत्वा किन्नरैरिह गीयते ।।५४।।
जयकामो जपेद्यस्तु हरन्तं कल्पकद्रुमम्।
संस्तुतं देवताभिश्च गरुडारूढमच्युतम् ।।५५।।
ध्यात्वा रक्तकरवीरसमिद्भिर्जुहुयाद्वशी।
अष्टोत्तरसहस्रं तु तत्क्षणान्नाशयेद् ध्रुवम् ।।५६।।
नीलोत्पलादिभिः पुष्पैरष्टोत्तरसहस्रकम्।
शङ्खादिनिधिसंयुक्तं द्वारिकामध्यगं हरिम् ।।५७।।
ध्यात्वा तण्डुलदूर्वाभिर्हुत्वा शान्तिकमावहेत्।
कदम्बमूले गायन्तं कदम्बवनमालिनम् ।।५८।।
कदम्बपुष्पैः संस्पृष्टं चिन्तयित्वा जनार्दनम्।
अपामार्गशतैर्हुत्वा जपेदष्टसहस्रकम् ।।५९।।
सर्वलोकान् वशीकृत्य आशु विज्ञो भविष्यति।
राजद्वारे सभायां च व्यवहारे च मन्त्रवित् ।।६०।।
मन्त्रमष्टशतं जप्त्वा प्रथमं वाक्यमुच्चरेत्।
अनेनैव विधानेन सर्वत्र विजयी भवेत् ।।६१।।

गायक होने की कामना हो तो वेणु द्वारा गायन करते हुये कृष्ण का चिन्तन करते हुये उक्त मन्त्र से एक सौ आठ हवन गोघृत से करने पर साधक इस लोक में किन्नरों के समान गाने लगता है। युद्ध में विजय की कामना वाला यदि कल्पद्रुम का हरण

करते हुये देवताओं द्वारा संस्तुत गरुड़ पर आरूढ़ श्रीकृष्ण का ध्यान करके रक्त करवीर की समिधा से एक हजार आठ हवन करता है तो वह निश्चित रूप से शत्रुओं का तत्काल ही नाश कर देता है। शंखादि निधियों से समन्वित द्वारिका नगरी में स्थित श्रीकृष्ण का ध्यान करके एक हजार आठ हवन नीलकमल, चावल एवं दूर्वा से करने से शान्ति होती है। कदम्ब के नीचे गाते हुये, कदम्बवनमाला धारण किये एवं कदम्बपुष्पों से संस्पृष्ट जनार्दन का ध्यान करके अपामार्ग की समिधा से एक सौ आठ हवन करके मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से साधक समस्त लोकों को वश में करके आशुविज्ञ हो जाता है। मन्त्रज्ञ साधक राजदरबार में, सभा में, व्यवहार में मन्त्र का एक सौ आठ वार जप करने के उपरान्त प्रथम वाक्य का उच्चारण करे तो इस विधि से वह सर्वत्र विजयी होता है।।५४-६१।।

मोक्षकामो जपेद्यस्तु पुण्डरीकाक्षमव्ययम्।
शनकाद्यैः स्तुतं कृष्णं शुक्लाम्बरधरं परम्।।६२।।
शङ्खचक्रधरं ध्यात्वा मन्त्रं लक्षं जपेन्नरः।
ताराभ्यां पुटितं कृत्वा विधिवत्स्थानमाश्रितः।।६३।।
चक्राब्जमण्डले कृष्णं पूजयन् भक्तिमावहन्।
संसारसागरात् सद्यो मुच्यते नात्र संशयः।।६४।।
य इच्छेद् ब्राह्मणो मन्त्री वशीकर्तुं जगत्त्रयम्।
वन्यैर्मनोहरैः पुष्पैर्वेणुं गायन्तमच्युतम्।।६५।।
ध्यात्वा सम्पूज्य विधिवल्लक्षमेकं सहोमकम्।
जप्त्वा समस्तलोकानां प्रियो भवति नान्यथा।।६६।।
देवोपमं सुखं भुक्त्वा याति विष्णुं तनुं त्यजन्।
अर्चयेन् मनसा कृष्णं सहस्रं प्रत्यहं जपेत्।।६७।।
वत्सराल्लभते मोक्षं यद्गत्वा न निवर्तते।
वर्णिनां च गृहस्थानां न्यासिनामप्ययं विधिः।।६८।।

कमल के सदृश नेत्र वाले, अव्यय, शनकादि महर्षियों द्वारा स्तुत, शुक्ल वस्त्र एवं शंख-चक्र धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करके मन्त्र को तार (ॐ) से पुटित करके उसका एक लाख जप करके विधिवत् स्नान कर कृष्ण के पूजनयन्त्र में भक्तिपूर्वक पूजन करता है तो वह निस्सन्दिग्ध रूप से संसारसागर से सद्यः मुक्त हो जाता है। मन्त्रज्ञ ब्राह्मण को तीनों लोकों को वश में करने के लिये श्रीकृष्ण का मनोहारी वन्य पुष्पों से पूजन करना चाहिये। वेणुवादन करते हुये अच्युत का ध्यान करके सविधि पूजन करके होम-सहित एक लाख मन्त्रजप करने से वह साधक समस्त लोकों का प्रिय हो जाता है; यह अन्यथा नहीं है। साथ ही वह देवताओं के समान

सुख का भोग करके शरीरत्याग करने के पश्चात् विष्णुलोक को गमन करता है। मन से कृष्ण का पूजन करके प्रतिदिन एक हजार की संख्या में मन्त्रजप करे तो एक वर्ष के पश्चात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है और पुन: इस लोक में वापस नहीं आता। गृहस्थों एवं संन्यासियों के लिये भी यही विधि कही गई है।।६२-६८।।

मेधाकामो हुतेदग्नौ पालाशैराज्यमिश्रितैः ।
समिद्भिः पूर्ववद्ध्यात्वा मेधा स्यादतिमानुषी ।।६९।।
वाचमिच्छन् लभेद्वाचं ब्राह्मे जप्त्वा मुहूर्त्तके ।
शतं शतं च षण्मासं वाग्मी चापि सुधीर्भवेत् ।।७०।।
शत्रूणां जयकामस्तु पारिजातहरं हरिम् ।
गरुडारोहणं ध्यात्वा जिताशेषदिवौकसम् ।।७१।।
समिद्भिश्चापि जुहुयात् करवीरसमुद्भवैः ।
लक्षं जप्त्वा तथा लक्षं जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ।।७२।।
जित्वा शत्रुगणानेताननाक्रान्तो यथाविधि ।
प्रतिष्ठां कारयेद्यस्तु भगवन्तं विचिन्त्य च ।।७३।।
शङ्खपद्मनिधियुक्तं वसन्तं द्वारकापुरीम् ।
ध्यात्वा तिलाज्यकरणाज्जुहुयात् सिततण्डुलान् ।।७४।।
अष्टोत्तरसहस्रं वै प्रतिष्ठां लभते ध्रुवम् ।
सर्वाल्लोकान् वशीकर्तुं कामयन् पङ्कजासने ।।७५।।
कदम्बमालया नित्यं भगवन्तमलंकृतम् ।
सनकाद्यैः प्रार्थ्यमानं योगिभिर्गोपवेषकम् ।।७६।।
विचित्रपुष्पमालाभिर्भूषितं वनमालया ।
कदम्बमूले गायन्तं चिन्तयेत् सर्वनायकम् ।।७७।।
समिद्भिरप्यपामार्गैरष्टोत्तरसहस्रकम् ।
मध्वाज्ययुक्तैर्जुहुयात् सर्वलोको वशे भवेत् ।।७८।।

मेधावी होने के लिये गोघृत-मिश्रित पलाश की समिधा से हवन करना चाहिये। फिर पूर्ववत् ध्यान करने से अतिमानुषी मेधा प्राप्त होती है। वक्ता होने के लिये छ: मास तक ब्राह्म मुहूर्त में प्रतिदिन सौ-सौ की संख्या में जप करने से साधक वाग्मी और बुद्धिमान हो जाता है। शत्रुओं को जीतने की कामना से पारिजात-हरण के लिये गरुड़ पर आरूढ़ होते कृष्ण का ध्यान करने से सभी देवताओं को भी वह जीत लेता है। साथ ही करवीर की समिधा से हवन करके मन्त्र का एक लाख जप करने से साधक सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है। प्रतिष्ठा के इच्छुक व्यक्ति द्वारा शंखनिधि एवं पद्मनिधियुक्त भगवान् के द्वारकापुरी में होने का ध्यान करके तिल, गोघृत और चावल

से एक हजार आठ हवन करने से उसे अवश्य प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। सभी लोकों को वश में करने के इच्छुक को ध्यान करना चाहिये कि श्रीकृष्ण कमल के आसन पर अवस्थित हैं; उनके गले में कदम्बपुष्पों की माला है, सनकादि द्वारा प्रार्थ्यमान उनकी गोपवेष में योगी जन भी प्रार्थना कर रहे हैं, विचित्र पुष्पों की वनमाला से वे भूषित है, कदम्बवृक्ष के नीचे गायन कर रहे हैं। इस प्रकार ध्यान करके मधु एवं घी से युक्त अपामार्ग की समिधा से एक हजार आठ हवन करने से समस्त लोक उसके वश में हो जाते हैं।।६९-७८।।

मुमुक्षुभिर्भगवन्तं पुण्डरीकदलेक्षणम्।
सनकाद्यैश्चिन्त्यमानं सिद्धैरन्यैश्च योगिभिः ।।७९।।
ब्रह्मेन्द्रशङ्करमुखैर्गणैश्चापि दिवौकसाम्।
प्रह्लादप्रमुखैर्भक्तैरन्यैश्चापि महात्मभिः ।।८०।।
हृत्पद्मकर्णिकोत्तुङ्गदिव्यसिंहासनोपरि।
ध्यात्वैवं परमात्मानं यशोदानन्दवर्द्धनम् ।।८१।।
पलाशतुलसीपत्रैः सौवर्णकुसुमैः शुभैः।
मानसैर्वा यथाशक्त्या अर्चयेत् पुरुषोत्तमम् ।।८२।।
आत्मानं देवकीपुत्रं लीलायष्टिधरं स्मरेत्।
यद्यत्कामयते मन्त्री तत्तदाप्नोत्ययत्नतः ।।८३।।
अनेन विधिना सर्वं साधयेत्प्रियमात्मनः।
योजयेच्च चतुर्थेन विष्णोश्चैव तु बुद्धिमान् ।।८४।।
तृतीयमष्टमं विद्याद् ब्रह्मणा विष्णुना सह ।।८५।।

इति गौतमीये महातन्त्रे सप्तदशोऽध्यायः

●

मुमुक्षुओं को इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—भगवान् के नेत्र कमलदल के समान हैं; सनकादि उनका चिन्तन कर रहे हैं; अन्य सिद्ध योगी, ब्रह्मा, इन्द्र, शंकर, देवताओं के मुख्य गण, प्रह्लाद आदि प्रमुख भक्त एवं अन्य महात्मा अपने हृदयकमल की कर्णिका में ऊँचे सिहासन पर यशोदा के आनन्दवर्द्धक परमात्मा को विराजमान किये हैं। इस प्रकार ध्यान करके पलाश, तुलसीपत्र, सुनहले फूल या मानसिक उपचारों से यथाशक्ति पुरुषोत्तम की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अपने को लीलायष्टिधारी देवकीपुत्र मानकर वह साधक जो-जो इच्छा करता है, उन सबों को वह प्राप्त कर लेता है। इस विधि से अपने सभी मनोरथों को सिद्ध करना चाहिये। बुद्धिमान को तुरीय विद्या से विष्णु को जोड़ना चाहिये तथा तृतीय और अष्टम विद्या को ब्रह्मा और विष्णु से योजित करना चाहिये।।७९-८५।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के सप्तदश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

अष्टादशोऽध्यायः

[भगवान् के तत्तत् कालों के स्वरूपों के दर्शनादि का फल, सम्बन्धित यन्त्र-मन्त्र आदि के प्रयोग का फल आदि का कथन।]

अथापरान्प्रवक्ष्यामि प्रयोगान् भुवि दुर्लभान्।
यत्कृत्वा मानवः सम्यक् सद्यो देवत्वमृच्छति ॥१॥
नासाध्यं विद्यते तस्य भुवि स्वर्गे रसातले।
निशातशरनिर्भिन्नं भीष्मतापहरं हरिम् ॥२॥
दृष्ट्वा पीयूषवर्षिण्या कारुण्यात्तं विलोकयन्।
एवं ध्यात्वाऽयुतजपादसाध्यज्वरनाशनम् ॥३॥
मूर्च्छादाहगदस्फोटविषकीटसमुद्भवम् ।
नाशयेद्दाहमचिरादमृतां दशशतं हुनेत् ॥४॥
काशीराजेन प्रहितां कृत्यां तां द्वारिकापुरीम्।
निजारिणा तां छित्वाथ तत्पुरीं चक्रतेजसा ॥५॥
दहन्तं तं हरिं स्मृत्वा जपेदयुतमादरात्।
स्वस्नेहाक्तैः सर्षपैश्च हुनेद्रात्रौ तथायुतम् ॥६॥
कृत्याः परेरितास्तं तु न ग्रसन्ति कदाचन।
डाकिनीपूतनाकृत्यायक्षपन्नगराक्षसाः ॥७॥
अन्ये वै क्रूरसत्त्वाश्च प्रयोगाज्जपहोमयोः।
देशाद्देशान्तरं यान्ति न समर्थाश्च हिंसितुम् ॥८॥

अब पृथ्वी पर अन्य दुर्लभ प्रयोगों को कहता हूँ; जिनको सम्यक् रूप से सम्पन्न करके मनुष्य तत्काल देवत्व को प्राप्त करता है और उसके लिये पृथ्वी, स्वर्ग एवं पाताल में कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। असंख्य बाणों से विद्ध होकर शरशय्या पर पड़े भीष्म के ताप को हरण करने के लिये कृष्ण करुणार्द्र होकर आनी अमृतवर्षिणी दृष्टि से देख रहे हैं—इस प्रकार से हरि का ध्यान करते हुए मन्त्र का दश हजार जप करने से असाध्य ज्वर का नाश हो जाता है। अमृता (गुरुच) से यदि दश हजार हवन किया जाय तो सद्यः ही मूर्च्छा, दाह, गद, चेचक, कीटसमुद्भूत दाह का नाश हो जाता है।

द्वारिका के विनाश-हेतु काशीराज के द्वारा भेजी गई कृत्या को अपने सुदर्शन चक्र से नष्ट करके उसी चक्र के तेज से काशीराज की नगरी का दहन करने वाले कृष्ण

का स्मरण करके आदर-सहित मन्त्र का दश हजार जप करके सरसों को उसी के तेल में भिगोकर रात्रि में दश हजार हवन करने से दूसरे के द्वारा भेजी गई कृत्या कभी भी उसका ग्रास नहीं कर पाती। डाकिनी, पूतना, कृत्या, यक्ष, सर्प, राक्षस के साथ ही अन्य भी क्रूर जीव-जन्तु इस जप एवं हवन का प्रयोग करते ही प्रयोक्ता का किसी भी प्रकार से अनिष्ट करने में असमर्थ होकर वहाँ से अन्यत्र पलायित हो जाते हैं।।१-८।।

ध्यात्वा विश्वेश्वरं देवं व्याप्तविश्वावकाशकम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।।९।।
एवं ध्यात्वा च मतिमान् लक्षमेकं जपेन्मनुम्।
जुहुयादयुतं भक्त्या शतवीर्याङ्कुरत्रिकैः।।१०।।
अकालमृत्युनाशाय सत्यमेतत्परं पदम्।
मृत्युञ्जयं हरिं ध्यात्वा सर्वपापैर्विमुच्यते।।११।।
आसीनमाश्रमे दिव्ये बदरीखण्डमण्डिते।
स्पृशन् बृहद्भ्यां हस्ताभ्यां घण्टाकर्णकलेवरम्।।१२।।
एवं ध्यात्वा जपेन्मासमष्टोत्तरसहस्रकम्।
समस्तविपदां मन्त्री प्रशमाय शमाय च।।१३।।
समता सर्वभूतेषु आशु निर्वाणदायिनी।
निशीथे रथमारूढं तर्जयन्तं मुहुर्मुहुः।।१४।।
धावमानं रिपुगणमनुधावन्तमच्युतम्।
विसृजद्बाणसङ्घेन नयन्तं दूरदेशतः।।१५।।
उच्चाटनं भवेत्सद्यो रिपूणां लक्षजापतः।

समस्त विश्व को व्याप्त करके करोड़ सूर्य के समान प्रकाशमान एवं करोड़ों चन्द्रमा के समान पूर्ण रूप से शीतल स्वभाव वाले उन जगन्नियन्ता देव का ध्यान करके मतिमान साधक द्वारा मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त शतवीर्या (दूर्वा) के तीन-तीन अंकुरों से दश हजार हवन करने से अकालमृत्यु का विनाश होता है; यह पूर्णतः सत्य है। मृत्युञ्जयस्वरूप कृष्ण का ध्यान करने से साधक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

बदरीखण्ड-मण्डित दिव्य आश्रम में अवस्थित कृष्ण अपने लम्बे-लम्बे हाथों से घण्टाकर्ण के शरीर का स्पर्श कर रहे हैं—इस प्रकार ध्यान करते हुये एक महीने तक प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से मान्त्रिक सभी विपत्तियों का शमन कर देता है। सभी जीवों में समता का भाव रखने से शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति होती है।

रात्रि में रथ पर सवार होकर दौड़ते हुये शत्रुओं का पीछा करते हुये उन्हें तिरस्कृत

करने के साथ-साथ बाणों का प्रक्षेप करके अपने देश से खदेड़ते अच्युत कृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप से शत्रुओं का सद्यः उच्चाटन होता है।।९-१५।।

द्वेषयन्तं रुक्मिबलौ पाण्डवमध्यस्थं हरिम् ॥१६॥
ध्यात्वा लक्षं मनुवरं निम्बस्नेहविमिश्रितम् ।
तदन्ते जुहुयान्मन्त्री गुलिका गोमयोद्भवाः ॥१७॥
एवं प्रयोगमात्रेण वैरस्यं जायते मिथः ।
अन्योन्यकलहेनैव देशाद्देशान्तरं व्रजेत् ॥१८॥
विद्विष्टस्तत्र तत्रापि काकवत्पर्यटन्महीम् ।
पार्थे दिशन्तं गीतार्थं रथस्थं मधुसूदनम् ॥१९॥
राजमण्डलमध्यस्थं सूर्यचन्द्रायुतप्रभम् ।
ध्यात्वाऽयुतं मनुवरं शमाय प्रजपेत्सुधीः ॥२०॥
अनेन जपमात्रेण किं न सिध्यति भूतले ।
स्थाने हृषीकेशेत्यादिसूक्तं वाचार्जुनर्षिकम् ॥२१॥
गायत्रीछन्दोवलितं विश्वात्मा विश्वदैवतम् ।
सपर्या पूर्ववत्प्रोक्ता साधयेत्सकलेप्सितम् ॥२२॥

पाण्ड्वों के मध्य में अवस्थित होकर रुक्मि एवं बलराम से द्वेष करते श्रीकृष्ण का ध्यान करके श्रेष्ठ मन्त्र का एक लाख जप करके निम्बतैल-विमिश्रित गोबर की गोलियों से हवन करने से दो लोगों में आपस में वैर हो जाता है और वे दोनों आपस में कलह करते हुये ही एक देश से दूसरे देश में भ्रमण करते हुये विद्वेषी कौओं के समान समस्त पृथ्वी पर इधर-उधर भटकते रहते हैं। उनके द्वेष का शमन करने के लिये हजारों चन्द्र-सूर्य के समान प्रकाशमान मधुसूदन कुरुक्षेत्र में राजमण्डल के मध्य में रथ पर बैठे अर्जुन को गीता का उपदेश दे रहे हैं—इस प्रकार का ध्यान करते हुये विद्वान् साधक को श्रेष्ठ मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये। इस जप से पृथ्वी पर क्या सिद्ध नहीं हो सकता? 'स्थाने हृषीकेश' इत्यादि सूक्त के ऋषि अर्जुन हैं, छन्द गायत्री है एवं देवता विश्वात्मा कृष्ण हैं। इसकी सपर्या पूर्ववत् कही गई है। इससे सभी मनोरथ सिद्ध किये जा सकते हैं। मन्त्र है—क्लीं हृषीकेशाय नमः।।१६-२२।।

श्रीमायाद्यौ जपेन्मन्त्रवरौ ध्यात्वा च पूर्ववत् ।
लक्षैकजपमात्रेण कुबेर इव मोदते ॥२३॥
अन्नं दैवतगोपालं वक्ष्येऽन्यं शृणु तत्त्वतः ।
अन्नरूपः रसरूपस्तुष्टिरूपप्रदोपरि ॥२४॥
अन्नाधिपतये स्वाहा सोऽयमन्नाधिपो मनुः ।
श्रीबीजाद्यो मनुः प्रोक्तो ह्यन्नरत्नसमृद्धिदः ॥२५॥

आचक्राद्याङ्गक्लृप्तिः स्यान्नारदोऽस्य मुनिः स्मृतः।
गायत्रीछन्द इत्युक्तो देवोऽत्रान्नप्रदो हरिः ॥२६॥
ध्यानार्चनादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत्।
य एनं पूजयेन्मन्त्रं स तु सर्वसमृद्धिमान् ॥२७॥

दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर मन्त्र के पूर्व 'श्रीं ह्रीं' लगाकर (यथा—श्रीं ह्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) पूर्ववत् ध्यान करते हुये एक लाख जप करने से जापक कुबेर के समान आनन्दित रहता है।

अब अन्नस्वरूप देवता गोपाल के अन्नमन्त्र को कहता हूँ; तत्त्वतः श्रवण करो। 'श्रीं अन्नरूप, रसरूप, तुष्टिरूप अन्नाधिपतये स्वाहा' को अन्न एवं रत्न की समृद्धि प्रदान करने वाला अन्नाधिप मन्त्र कहा गया है। आचक्रादि से इसका अंगन्यास कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता अन्नाधिपति श्रीकृष्ण कहे गये हैं। इस मन्त्र का ध्यान-अर्चन आदि पूर्ववत् है। जो इस मन्त्र से श्रीकृष्ण की पूजा करता है, वह समस्त समृद्धियों से युक्त होता है।।२३-२७।।

आहृत्य स्वर्णपात्रं च क्षालितं शुद्धवारिणा।
विलिप्तगन्धपङ्केन लिखेदष्टदलाम्बुजम् ॥२८॥
कर्णिकायां लिखेद्वह्नेः पुटितं मण्डलद्वयम्।
तन्मध्ये विलिखेत्कामं सदाख्यं कर्मसंयुतम् ॥२९॥
ततः शिष्टैर्मनोर्वर्णैस्तं कामं वेष्टयेत् सुधीः।
श्रियं षट्कोणकोणेषु ऐन्द्रनैर्ऋतवायुषु ॥३०॥
आलिख्य च लिखेन्मायां वह्निवारुणशूलिषु।
अक्षरैः कामगायत्र्या वेष्टयेत् केशरेषु च ॥३१॥
काममालामनोर्वर्णैर्दलेष्वष्टसु मन्त्रवित्।
लिखेद्धुहाननैर्वर्णैर्मातृकां तद्बहिर्लिखेत् ॥३२॥
भूबिम्बञ्च लिखेद्बाह्ये श्रीमाये दिग्विदिक्ष्वपि।

स्वर्ण-निर्मित पात्र को शुद्ध जल से धोकर उसपर गन्ध का लेप लगाकर अष्टदल कमल का निर्माण करके उसकी कर्णिका में 'रं' से पुटित दो मण्डल बनाकर उसके मध्य में 'क्लीं' और साध्य कर्म लिखने के उपरान्त क्लीं को मन्त्र के अवशिष्ट वर्णों से वेष्टित करके षट्कोण के ऐन्द्र, नैर्ऋत्य, वायुकोणों में 'श्रीं' एवं आग्नेय, वारुण, ईशान कोणों में 'ह्रीं' लिखना चाहिये।

कामगायत्री के अक्षरों से केशरों को वेष्टित करके कमलामन्त्र के छः-छः अक्षरों को आठो दलों में लिखकर उसके बाहर मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। तत्पश्चात्

वाहर में 'वं' लिखकर चारो दिशाओं में 'श्रीं' और विदिशाओं में 'ह्रीं' लिखना चाहिये। इस विधि से निर्मित यन्त्र का स्वरूप निम्नवत् होता है।।२८-३२।।

यन्त्रमेवं समालिख्य जातरूपमये पटे ।।३३।।
राजते ताम्रपात्रे वा भूर्जक्षौममयेऽपि वा ।
सूक्ष्मतन्तुमये वापि प्रतिष्ठाप्य समीरणम् ।।३४।।
आकर्षणं सुरस्त्रीणां नागलोकनिवासिनाम् ।
पिशाचयक्षरक्षांसि क्रूरग्रहाश्च ये स्थिताः ।।३५।।
दुष्टसत्त्वाश्च ये सर्वे परिसर्पन्ति भूतले ।
यन्त्रराजधरं दृष्ट्वा विद्रवन्ति त्रसन्ति च ।।३६।।
बहुना किमिहोक्तेन सर्वलोकसुखावहम् ।
स्त्रीणामाकर्षणं राज्ञां लोकवश्यकरं भुवि ।।३७।।

योगसिद्धिकरं पुंसां भवसागरतारकम्।
भुक्तिमुक्तिकरं यन्त्रमिति प्रोक्तं स्वयम्भुवा ॥३८॥

इस प्रकार से स्वर्ण, चाँदी या ताम्बे के पत्र पर या भोजपत्र पर, रेशमी वस्त्र पर या सूक्ष्म तन्तुमय वस्त्र पर यन्त्र को लिखकर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। यह यन्त्र देव तथा नागलोक की स्त्रियों को आकर्षित करने वाला होता है। साथ ही पृथ्वी पर अवस्थित पिशाच, यक्ष, राक्षस, क्रूर ग्रह एवं दुष्ट जीव-जन्तु भाग खड़े होते हैं तथा इस यन्त्र को धारण करने वाले को देखकर सभी रुदन करते हैं और भयभीत होते हैं। अधिक क्या कहा जाय; यह यन्त्र सर्वलोकसुखावह है। यह यन्त्र पृथ्वी पर स्त्रियों को आकर्षित करने वाला होने के साथ-साथ राजा और संसार को वश में करने वाला है। यह मनुष्यों को योग की सिद्धि प्रदान करने वाला होने के साथ-साथ भवसागर से उद्धार कर भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है—ऐसा स्वयं ब्रह्मा द्वारा कहा गया है।।३३-३८।।

वान्तं यान्तं समारूढं मायाबिन्दुविभूषितम्।
श्रियो बीजमिति प्रोक्तं नृणां सद्यः सुखप्रदम् ॥३९॥

वान्त 'श' पर आरूढ़ यान्त 'र' माया 'ई' एवं बिन्दु से विभूषित होकर उद्धृत 'श्रीं' लक्ष्मीबीज का गया है। यह मनुष्यों को सद्यः सुखदायक कहा गया है।।३९।।

आदौ क्लींकारमुद्धृत्य कामदेवपदं वदेत्।
आयान्तं विद्महे पुष्पबाणायेति पदं तथा ॥४०॥
धीमहीति पदं प्रोक्त्वा तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्।
एषा मन्मथगायत्री प्रोक्ता मन्मथदीपिनी ॥४१॥

सर्वप्रथम 'क्लीं' उद्धृत करने के पश्चात् 'कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय' पद का उच्चारण करने के बाद 'धीमहि' पद का उच्चारण करके 'तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्' कहना चाहिये। इस प्रकार जो कामदेवगायत्री बनती है, वह है—क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्। यह मन्मथ (काम) को उद्दीप्त करने वाली होती है।।४०-४१।।

कामबीजं च सम्भाव्य ततः कामपदं वदेत्।
देवायेति पदं ब्रूयात् तथा सर्वजनं पदम् ॥४२॥
प्रियायेति पदान्ते च वदेत् सर्वजनं पुनः।
ब्रूयात् सम्मोहनायेति ज्वलशब्दं च वीप्सयेत् ॥४३॥
प्रज्वलेति पदं सर्वजनस्य हृदयं तथा।
उक्त्वा मम वशं पश्चात् कुरुशब्दं च वीप्सयेत् ॥४४॥
वह्निजायां तथेत्युक्त्वा मालाख्यो मन्मथो मनुः।

उपर्युक्त श्लोकों का उद्धार करने पर कामदेव का मालामन्त्र इस प्रकार निष्पन्न होता है—क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा।।४२-४४।।

भूगृहं चतुरस्रं स्यादष्टवज्रविभूषितम् ।।४५।।
अस्मिन् यन्त्रे समाराध्य वासुदेवं जगद्गुरुम् ।
किं न साध्यति मन्त्रज्ञो ह्यकथ्यं कथितं च ते ।।४६।।

चतुरस्र भूगृह में अष्टव्रज से विभूषित इस यन्त्र पर जगद्गुरु वासुदेव की आराधना करके मन्त्रज्ञ क्या सिद्ध नहीं कर सकता? अर्थात् सबकुछ सिद्ध कर सकता है। इस प्रकार जो अकथ्य है अर्थात् अत्यन्त गुप्त है, उसे मैंने तुमसे कह दिया।।४५-४६।।

एवं ते कथितं यन्त्रं प्रयोगान्तरमिष्यते ।
लक्षं जप्त्वा पलाशानां कुसुमैस्तत्समं हुनेत् ।।४७।।
व्याख्याता सर्वशास्त्राणामचिरादेव जायते ।
स योगी सत्यविज्ञानी विष्णुयोगी तथात्मवित् ।।४८।।
शुक्लादिवस्त्रलाभाय शुक्लादिपुष्पमाहुनेत् ।
अष्टोत्तरशतं कृत्वा राजतो नान्यतोऽन्वितम् ।।४९।।

इस प्रकार तुमसे यन्त्रकथन करने के बाद अब इसके अन्य प्रयोगों को कहता हूँ। एक लाख जप करके पलाश के फूलों से एक लाख हवन करने से साधक अल्प काल में ही सभी शास्त्रों का व्याख्याता हो जाता है; साथ ही वह योगी, सत्य को जानने वाला, विष्णुयोगी एवं आत्मज्ञानी भी हो जाता है।

राजा से श्वेत वस्त्र की प्राप्ति के लिये श्वेत पुष्पों से एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये। इसमें दूसरे रंग के पुष्पों का मिश्रण नहीं करना चाहिये।।४७-४९।।

मुञ्चन्तौ पितरौ कृष्णं मथुरानिगडार्दितौ ।
ध्यात्वायुतं जपान्ते च तावत्संख्यां च होमयेत् ।।५०।।
निगडान्मुच्यते सद्यो यमुद्दिश्य कृता क्रिया ।
पुरन्दरमुखैर्देवैः स्थितं वृन्दावने हरिम् ।।५१।।
सुरभ्याः पयसा तोयैरभिषिच्य च संस्थितम् ।
राजराजेश्वरं कृत्वा मङ्गलाचारपूर्वकम् ।।५२।।
उर्वशीप्रमुखाभिश्च स्ववेंश्याभिरधिष्ठितम् ।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं पङ्कजैरयुतं हुनेत् ।।५३।।
सार्वभौमो भवेत्सोऽपि येनेयं विहिता क्रिया ।

मथुरा में निगडबद्ध माता-पिता को कैद से मुक्त कराते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान

करके दश हजार मन्त्रजप करने के उपरान्त उतनी ही संख्या में हवन करने पर जिसके लिये यह प्रयोग किया जाता है, वह तत्काल ही बन्धन से मुक्त हो जाता है।

वृन्दावन में स्थित कृष्ण का अभिषेक इन्द्रादि प्रमुख देवता सुरभि गाय के दूध और जल से कर रहे हैं। राजोपचार से पूजा के बाद मंगलाचार के साथ उर्वशी आदि प्रमुख अप्सरायें उनके चारो ओर अधिष्ठित हैं। ऐसा ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करके कमल से दश हजार हवन करने पर जिसके द्वारा यह क्रिया की जाती है, वह सार्वभौम राजा होता है।।५०-५३।।

आत्मानं कंसमथनं रिपुं कंसात्मकं स्मरन् ॥५४॥
निशीथे प्रजपेन्मन्त्री दक्षिणामुखसंस्थितः ।
लक्षमेकं जपान्ते तु वानीरतरुतर्पणैः ॥५५॥
हवनान्म्रियते शत्रुः शङ्करेणापि रक्षितः ।
अरिष्टदलकर्पासव्योमास्थिकणसंयुतम् ॥५६॥
हवनाल्लक्षमात्रेण यदि दूरस्थितो भवेत् ।
अपि पीयूषसेवी च म्रियतेऽरिर्न चान्यथा ॥५७॥
हरिद्राग्रन्थिहोमेन स्तम्भयेदरिवाहिनीम् ।
न सस्तं मारणं कर्म कदाचिद्वैष्णवे मनौ ॥५८॥
क्रूरं क्रूराशयं कष्टदायिनीं च सतामपि ।
ईदृग्विधं मनुं प्राप्य अभिचाराय योजयेत् ॥५९॥
प्रायश्चित्ताय गायत्रीं लक्षं जप्त्वा तु साधकः ।
तदन्ते पायसैर्मन्त्री अयुतं होममाचरेत् ॥६०॥
अपि प्रयोगकर्तॄणां शान्तिः स्यान्नैव चान्यथा ॥६१॥

इति गौतमीये महातन्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः

●

स्वयं को कंस का मर्दन करने वाला एवं शत्रु को कंसस्वरूप समझते हुये रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद वानीर वृक्ष के पत्रों से हवन करने पर साक्षात् शंकर द्वारा रक्षित शत्रु की भी मृत्यु हो जाती है।

रीठा, कपास, हड्डीचूर्ण से दश हजार हवन करन पर अमृतभोजी दूरस्थ शत्रु भी अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। हल्दी के गाँठ से हवन करने पर शत्रु की सेना स्तम्भित हो जाती है।

यद्यपि वैष्णव मन्त्र में कभी भी मारण कर्म प्रशस्त नहीं होता तथापि क्रूर, अतिक्रूर अथवा कष्ट देने वाले के शमन हेतु सज्जनों को भी इस मन्त्र को प्राप्त करके अभिचार

कर्म-हेतु उपयोग में लाना चाहिये। साथ ही उस अभिचार कर्म के प्रायश्चित्त के लिये गायत्री मन्त्र का एक लाख जप करके साधक को पायस से दश हजार होम करना चाहिये। इस क्रिया से ही प्रयोगकर्ता को शान्ति प्राप्त होती है; अन्यथा नहीं।।५४-६१।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के अष्टादश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

एकोनविंशोऽध्यायः

[भगवन्मन्त्रों के जप का फल, कालानुसार उपचार-समर्पण के फल आदि का कथन।]

कामान्तरमथो वक्ष्ये शृणुष्वावहितोऽनघ।
यज्जप्त्वा मन्दभाग्योऽपि लभेन्मन्त्रफलानि वै ॥१॥
प्रणवद्वयमध्यस्थं जपेदयुतसङ्ख्यया।
त्रिरात्रं जपमात्रेण बृहस्पतिसमो भवेत् ॥२॥
व्याख्याता सर्वशास्त्राणां वेदानामपि जायते।
रविवारेऽश्वत्थवृक्षमालभ्याष्टोत्तरं शतम् ॥३॥
भूयो भूयो भवेच्छान्तिर्जीवेदष्टोत्तरं शतम्।
तस्य शान्तिर्भवेन्नूनं यामुद्दिश्य कृता क्रिया ॥४॥
अंशुकैरर्चयेत्कृष्णं मासमात्रं तु निर्मलैः।
मुच्यते मलिनैः कृच्छैः पापैर्घोरतरैरपि ॥५॥
पट्टवस्त्रैर्यजेद्भक्त्या सम्पत्तिमतुलां लभेत्।
विद्रुमैः पूजयन् कृष्णं त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥६॥
माणिक्यैः पूजयन् भक्त्या सार्वभौमतमो भवेत्।
पद्मरागैर्यजेत्कृष्णं राजा भवति निश्चितम् ॥७॥
क्षत्रियः सार्वभौमः स्यात्साधयेत्सकलां महीम्।
गारुत्मतमयै रत्नैः पूजयेत् ज्ञानवान्भवेत् ॥८॥
अपि हीरकयुग्मेन पूजयन् किं न साधयेत्।

हे अनघ! अब कामान्तर को कहता हूँ; सावधान होकर श्रवण करें। जिसके जप से मन्दभाग्य व्यक्ति भी निश्चित रूप से मन्त्रफल को प्राप्त कर सकता है, उस 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' मन्त्र को दो प्रणव के मध्य रखकर प्रतिदिन दश हजार की संख्या में तीन रात्रि तक जप करने मात्र से ही जापक बृहस्पति के समान हो जाता है; साथ ही वह सभी वेदों एवं शास्त्रों का व्याख्याता हो जाता है।

रविवार को पीपल वृक्ष का आलम्भन करके मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से भूरि-भूरि शान्ति प्राप्त होती है और साधक एक सौ आठ वर्षों तक जीवित रहता है। जिसके लिये यह क्रिया की जाती है, उसको भरपूर शान्ति प्राप्त होती है।

निर्मल रेशमी वस्त्र से एक महीने तक जो कृष्ण का अर्चन करता है, वह मलिन एवं कष्टसाध्य भयंकर पापों से भी मुक्त हो जाता है। भक्तिपूर्वक रेशमी वस्त्र से पूजा करने पर अतुल सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

श्रीकृष्ण की पूजा मूंगे से करने पर तीनों लोक वश में हो जाते हैं। माणिक्य से पूजा करने पर सार्वभौम राजाओं के समतुल्यता की प्राप्ति होती है। पद्मराग से कृष्ण की पूजा करने पर पूजक को अवश्य ही राजत्व की प्राप्ति होती है और पूजक यदि क्षत्रिय हो तो वह सार्वभौमत्व को अवाप्त करके समस्त पृथिवी को अपने वश में कर लेता है। पन्ना रत्न से पूजा करने पर साधक ज्ञानवान होता है एवं दो हीरों से पूजा करने पर क्या सिद्ध नहीं किया जा सकता।।१-८।।

सुवर्णपुष्पैरभ्यर्च्य मासं भक्तिपरायणः ॥९॥
कुबेरसमसम्पत्तिं सम्प्राप्य मोदते चिरम्।
देहान्ते हरितां प्राप्य निर्वाणपदमृच्छति ॥१०॥
रविवारे तथाम्भोजैः कह्लारैः सोमवारके।
मंगले रक्तपुष्पैस्तु बुधे तगरसम्भवैः ॥११॥
चम्पकैर्गुरुवारे तु शुक्रे कुन्दसमुद्भवैः।
शनिवारे शमीपुष्पैः पूजयेद्भक्तितो यतिः ॥१२॥
रविवारे घृतान्नं तु पयोभ्यक्तं निवेदयेत्।
सोमवारे पिष्टकादि सितया सह योजयेत् ॥१३॥
मंगले गुडसम्मिश्रमन्नं बहुगुणान्वितम्।
बुधवारे यावकैस्तु गुरुवारेऽपूपसम्भवैः ॥१४॥
मुद्गान्नं शुक्रवारे तु शनौ सघृतपायसम्।

एक मास-पर्यन्त भक्तिपरायण होकर स्वर्णपुष्पों से पूजन करने वाला कुबेर के समान सम्पत्ति को प्राप्त करके दीर्घ काल तक आनन्दित रहता हैं और देहान्त होने पर विष्णुत्व को प्राप्त करके निर्वाण पद प्राप्त करता है।

व्रती को रविवार को कमल से, सोमवार को कल्हार से, मंगलवार को लाल फूलों से, बुधवार को तगर के फूलों से, गुरुवार को चम्पा के फूलों से, शुक्रवार को कुन्दपुष्पों से एवं शनिवार को शमीपुष्पों से भक्तिपूर्वक पूजन करके नैवेद्यस्वरूप क्रमशः रविवार को दुग्ध-मिश्रित घृतान्न (दूध-भात), सोमवार को मिश्री के साथ पीठा, मंगलवार को गुड़ का खीर अथवा गुड़ का पूआ, बुधवार को यव से निर्मित भोज्य पदार्थ, गुरुवार को अपूप, शुक्रवार को मूंग से बने पकवान और शनिवार को घृत-मिश्रित पायस समर्पित करना चाहिये।।९-१४।।

वैशाखे मासि विधिवत्पवित्रैः पूजयेद्विभुम् ॥१५॥
एकैकं स्वर्णसूत्राणि ग्रन्थियुक्तानि कारयेत्।
अथवा पट्टसूत्राणि पद्मसूत्राणि वा पुनः ॥१६॥
पूजान्ते देवदेवाय महिषीभ्यो निवेदयेत्।
मिथुनेभ्यस्तथा दत्वा महान्तमुत्सवं चरेत् ॥१७॥
तोषयेद्भक्ष्यभोज्यैस्तु ब्राह्मणान् संशितव्रतान्।
एवं संवत्सरे मन्त्री कृत्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥१८॥
न चेद्वर्षकृता पूजा वास्तोभक्षाय कल्पते।
श्रावणे मासि कृष्णं तं पूजयेत् केतकोद्भवैः ॥१९॥
चन्द्रचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमादिसुवासितैः।
एलालवङ्गकल्लोलफलानि बहुधाऽर्पयेत् ॥२०॥

वैशाख महीने में पवित्रों से श्रीकृष्ण का विधिवत् पूजन करना चाहिये। एतदर्थ एक-एक स्वर्णसूत्र, रेशमी धागे अथवा कमलसूत्रों में गाँठ लगाकर पवित्र का निर्माण करके पूजा के अन्त में देवदेव और उनकी पटरानियों को अर्पित करना चाहिये। पति-पत्नी को पवित्रा अर्पित करके महान् उत्सव मनाना चाहिये। संशितव्रती ब्राह्मणों को भक्ष्य-भोज्य खिलाकर सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्ष तक करने से अभीष्ट की प्राप्ति होती है; अन्यथा करने से वह पूजा वास्तु देवता का भक्ष्य बन जाती है अर्थात् निष्फल हो जाती है।

श्रावण के महीने में कृष्ण की पूजा केतकी-पुष्पों से करनी चाहिये। कपूर, चन्दन, कस्तूरी, कुमकुम आदि से सुगन्धित इलायची, लवंग, कल्लोल आदि के फल बहुतायत में अर्पित करना चाहिये।।१५-२०।।

भाद्रे मासि यजेद्विष्णुं भक्तैर्बहुगुणान्वितैः।
ईषे मासि यजेद्भक्त्या भक्ष्यैर्भोज्यैः सुविस्तरैः ॥२१॥
कार्पासनिर्मितैर्वस्त्रैर्नानाभरणशोभितैः।
तुलास्थे भास्करे कृष्णं पूजयेन्मासमात्रकम् ॥२२॥
रात्रौ प्रदीपैर्होमैश्च दुग्धपिष्टादिसंयुतैः।
घृतदीपमविच्छिन्नं दद्यान्मासं महोज्ज्वलम् ॥२३॥
एकादश्यामुपवसेद् द्वादश्यां पारणादिने।
शुक्लायां विष्णुमभ्यर्च्येद्वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥२४॥
अस्यां तिथौ तु मतिमान् वर्षतोत्सवमाचरेत्।
भोज्यानि बहुभक्ष्याणि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥२५॥

एवंकृते देवतास्य तुष्टा चेष्टं प्रयच्छति।
श्वेतं लोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥२६॥
मार्गशीर्षे यजेद्देवं नवान्नैर्व्यजनैः शुभैः।
नारिकेलफलं क्षौद्रं मिश्रितं गुडजीरकैः ॥२७॥
सुपक्वं देवदेवाय भक्त्या तस्मै निवेदयेत्।
पौषे मासि च माषं वै घृतैः पूपैः प्रपूजयेत् ॥२८॥
ग्रहदोषं विजित्याशु भूयान्नृपतिसन्निभः।
माघे मासि यजेत्कृष्णमक्षतैः कुसुमैः सितैः ॥२९॥
दुग्धान्नशर्करायुक्तं मिष्ठान्नं च निवेदयेन्।
अस्मिन् मासि शुभदिने वस्त्रेणाच्छादयेद्विभुम् ॥३०॥

भाद्रपद में विष्णु का पूजन सुवासित भात से करना चाहिये। आश्विन मास में भक्तिपूर्वक प्रचुर भक्ष्य-भोज्य, कार्पास-निर्मित वस्त्र एवं अनेकविध आभूषण समर्पित करते हुये विस्तृत पूजन करना चाहिये।

कार्तिक मास में एक मास तक कृष्ण की पूजा करते हुये रात्रि में दूध-पीठी से युक्त अखण्ड दीप जलाना चाहिये। शुक्ल पक्ष की एकादशी को उपवास करने के उपरान्त पारणा के दिन द्वादशी को वस्त्र, आभूषण आदि से विष्णु का पूजन करना चाहिये। बुद्धिमान साधक को इस तिथि को वार्षिकोत्सव मनाते हुये ब्राह्मणों को विविध प्रकार के भक्ष्य-भोज्य निवेदित करना चाहिये। ऐसा करने से देवता सन्तुष्ट होकर अभीष्ट प्रदान करते हैं और वह पुनरागमन से रहित श्वेत लोक प्राप्त करता है।

अगहन के महीने में देव का पूजन नूतन अन्न से निर्मित व्यंजनों से करना चाहिये। नारियल के महीन टुकड़ों में गुड़ और जल मिलाकर उसे आग पर अच्छी तरह पकाकर भक्तिपूर्वक देवता को निवेदित करना चाहिये।

पौष मास में घी से बने उड़द के पुओं से पूजा करने से साधक ग्रहदोष से रहित होकर राजा के समान हो जाता है।

माघ महीने में कृष्ण का पूजन अक्षत एवं उजले फूल से करके शर्करा से समन्वित दूध में पके अन्न अर्थात् पायस एवं मिष्ठान्न निवेदित करना चाहिये; साथ ही इस मास के शुभ दिन में परमात्मा को वस्त्र से आच्छादित करना चाहिये।।२१-३०।।

फाल्गुने देवकीपुत्रं पूजयेत् स्वर्णचम्पकैः।
चूतसौगन्धिकुसुमैर्धूपैर्दीपैः सुविस्तरैः ॥३१॥
चैत्रे मासि वासुदेवं सर्वैः पुष्पैः समर्चयेत्।
पौर्णमास्यां यजेद्भक्त्या दमनैश्च सगुच्छकैः ॥३२॥

अस्मिन्दिने रतिं कामं पूजयेद्भक्तितत्परः ।
न चेत्सांवत्सरी पूजा वृथा भवति निश्चितम् ॥३३॥
भस्मीभूतं स्मरं दृष्ट्वा रुदिता सा रतिः सती ।
तां दृष्ट्वा कृपयाविष्टो वरं दातुं स्वयं शिवः ॥३४॥
प्रत्युवाच रतिस्तेऽयं सुभगत्वमवाप्नुयात् ।
सुन्दरः सर्वलोकेषु क्रीडार्थं व्रजसुन्दरि ॥३५॥
ततोऽभवेच्चन्दनजलात्पुष्पं दमनकं शुभम् ।
तेन पूजनमात्रेण संवत्सरफलं लभेत् ॥३६॥
होमयेल्लक्षमात्रं यः पिष्टकैर्घृतभर्जितैः ।
तावत्संख्यं मनुं जप्त्वा कृष्णं पश्यति मन्त्रवित् ॥३७॥

फाल्गुन मास में देवकीपुत्र की पूजा विस्तृत रूप से स्वर्णचम्पा, आम्रमञ्जरी एवं धूप-दीप निवेदित करते हुये करना चाहिये।

चैत्रमास में वासुदेव की पूजा सभी प्रकार के पुष्पों से करनी चाहिये; साथ ही पौर्णमासी के दिन भक्तिपूर्वक दमनकगुच्छ समर्पित करते हुये रति एवं काम का भी पूजन करना चाहिये। ऐसा न करने से चैत्र मास की सांवत्सरी पूजा निश्चित रूप से व्यर्थ हो जाती है।

अपने पति कामदेव को भस्मीभूत जानकर सती रति को रुदन करते हुये देखकर स्वयं भगवान् शिव ने करुणार्द्र होकर उसे वर प्रदान करते हुये इस प्रकार कहा कि हे व्रजसुन्दरि! समस्त लोकों में क्रीड़ा-हेतु शोभन सुभगत्व को प्राप्त करो। तदनन्तर रति के रुदन करने के फलस्वरूप उसकी आँखों से भरे आँसुओं से दमनकपुष्पों की उत्पत्ति हुई; उस दमनकपुष्प से पूजन करने पर संवत्सरपूजन का फल प्राप्त होता है।

मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद घृतपक्व पीठी से जो एक लाख हवन करता है, वह मन्त्रज्ञ कृष्ण का साक्षात् दर्शन प्राप्त करता है।।३१-३७।।

इति ते कथितं सम्यक् पूजनं वार्षिकोद्भवैः ।
कृत्वानेन विधानेन किं न साध्यति भूतले ॥३८॥
पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च मुनयो ब्रह्मचारिणः ।
वनस्थाश्च तथा कृत्वा वाञ्छितं प्राप्नुयुः क्षणात् ॥३९॥
स्त्रियः शूद्राश्च विधिवत् कृत्वा फलमवाप्नुयुः ।
इह भुक्त्वा वरान् भोगान्न भूयो भवसम्भवः ॥४०॥
एवं कृष्णं यजन्भक्त्या यत्कृतं जन्मकोटिभिः ।
तत्पापैर्न विलिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥४१॥

इति गौतमीये महातन्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः

●

इस प्रकार वर्ष-पर्यन्त किये जाने वाले श्रीकृष्ण के पूजन को सम्यक् रूप से मैंने तुमसे कहा। इस विधान से पूजन करने पर मनुष्य पृथिवी पर क्या सिद्ध नहीं कर सकता? पवित्र स्त्रियाँ, गृहस्थ पुरुष, मुनि, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ सभी इस प्रकार की पूजा करके सद्य: ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेते हैं। स्त्रियाँ एवं शूद्र भी उपर्युक्त पूजन को सविधि सम्पन्न करके अभीष्ट फल को प्राप्त कर इस संसार में उत्तम भोगों का भोग करके अन्त में उस लोक को प्रयाण कर जाते हैं, जहाँ से उनका पुनर्जन्म सम्भव नहीं होता। इस प्रकार भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण का पूजन करने से पूजक द्वारा किये गये उसके करोड़ों जन्मों के पाप भी उसका उसी प्रकार स्पर्श नहीं करते हैं, जैसे कि कमल के पत्तों को जल स्पर्श नहीं कर पाता।।३८-४१।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के एकोनविंश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

विंशोऽध्यायः

[श्रीकृष्ण के विविध मन्त्र एवं उन मन्त्रों के नियमपूर्वक जप के फल आदि का कथन।]

गौतम उवाच

विस्तरेण मम ब्रह्मन् कृष्णमन्त्रान् प्रब्रूहि तान्।
भक्तोऽहं तव शिष्योऽहं योग्योऽस्मि श्रवणे गुरौ ।।१।।

गौतम ने कहा कि हे ब्रह्मन्! आप कृष्णमन्त्रों को विस्तारपूर्वक मुझसे कहें; क्योंकि मैं कृष्णभक्त हूँ, आपका शिष्य हूँ और गुरु से श्रवण करने की योग्यता भी मुझमें है।।१।।

नारद उवाच

शृणु ब्रह्मन् कृष्णमन्त्रान् सर्ववैदिकसम्मतान्।
यदेकज्ञानमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ।।२।।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य नमस्तदनु चोच्चरेत्।
कौस्तुभायेति सम्प्रोक्तो मनुरष्टाक्षरः परः ।।३।।
एतद्विज्ञानमात्रेण साक्षाद्विष्णुर्भवेद्यतिः।
षड्दीर्घस्वरसम्भेद्यकामेनाङ्गक्रिया मता ।।४।।
कलापकुसुमश्यामं शङ्खचक्रगदाम्बुजम्।
अनेकरत्नसञ्छन्नं कौस्तुभोद्भासिवक्षसम् ।।५।।
तारहारावलीरम्यं गरुडोपरि संस्थितम्।
ध्यात्वैवं परमानन्दं दशलक्षं जपेन्मनुम् ।।६।।
होमयेत्तद्दशांशेन साधितैः पूपपायसैः।
पुरश्चरणमङ्गं यच्छ्रेयमन्यत्समापयेत् ।।७।।
य एनं भजते मन्त्री भोगमोक्षैककारणम्।
करप्रचेयाः सर्वार्था अन्ते च परमं व्रजेत् ।।८।।
दशाक्षरसमानं हि पूजनं समुदीरितम्।

नारद ने कहा—हे ब्रह्मन्! सभी वेदों से सम्मत कृष्णमन्त्रों का श्रवण करें, जिनमें से एक मन्त्र का भी ज्ञान हो जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता। 'ॐ नमस्ते कौस्तुभाय'

इस अष्टाक्षर मन्त्र को सम्यक् प्रकार से जानकर साधक स्वयं साक्षात् विष्णुस्वरूप हो जाता है। छ: दीर्घ स्वर-समन्वित कामबीजों (क्लां, क्लीं, क्लू, क्लैं, क्लौं, क्ल:) से इसका षडंग न्यास करना कहा गया है।

न्यास के वाद कह्लारपुष्प-सदृश श्याम वर्ण वाले, शंख-चक्र-गदा एवं पद्म धारण करने वाले, अनेक रत्नों से आच्छादित शरीर वाले, कौस्तुभ मणि से उद्भासित वक्ष:स्थल वाले, तारहारों की पंक्ति से मनोहर एवं गरुड़ पर आसीन परमानन्द श्रीकृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का दश लाख जप करने के उपरान्त जप का दशांश अर्थात् एक लाख हवन अपूप (पुआ) और पायस से करना चाहिये। पुरश्चरण के शेष कल्याणकारी अंगभूत तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मणभोजन कराकर समापन करना चाहिये। जो साधक इस प्रकार भोग-मोक्ष के एकमात्र कारणस्वरूप पूजन को करता है, उसे समस्त सम्पत्तियाँ हस्तगत होती हैं एवं अन्त में परमपद की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र का पूजन दशाक्षर मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) के समान ही कहा गया है।।२-८।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि षडर्णं मन्त्रराजकम् ।।९।।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो महीं चरेत् ।
त्रिमात्रं नमसा युक्तं चतुर्थ्या कृष्ण इत्यपि ।।१०।।
षडक्षरमनुः प्रोक्तो दृष्टादृष्टफलप्रदः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्रीछन्द उच्यते ।।११।।
श्रीकृष्णो देवता साक्षाद् दुर्गाधिमातृदेवता ।
त्रिमात्रं बीजमित्युक्तं नमः शक्तिरुदीरिता ।।१२।।
कृष्णाय कीलकं चास्य मन्त्रराजस्य कीर्तितम् ।
विनियोगोऽस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टये ।।१३।।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य आचक्राद्यैरुदीर्यते ।

अब मैं दूसरे श्रेष्ठ षडक्षर मन्त्र को कहता हूँ, जिसे जानने मात्र से ही साधक जीवन्मुक्त होकर पृथ्वी पर विचरण करने वाला हो जाता है। 'क्लीं कृष्णाय नम:' यह षडक्षर मन्त्र दृष्ट एवं अदृष्ट फलों को देने वाला कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि नारद मुनि, छन्द गायत्री, देवता श्रीकृष्ण और अधिमातृ देवता साक्षात् दुर्गा हैं। वीज 'क्लीं', शक्ति 'नम:' एवं कीलक 'कृष्णाय' कहा गया है। पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। आचक्रादि मन्त्र से इसका पंचांग न्यास किया जाता है। इस मन्त्र की पूजा के पहले के कृत्य इस प्रकार होते हैं—

ऋष्यादि न्यास—नारदऋषये नम: शिरसि। गायत्रीछन्दसे नम: मुखे। श्रीकृष्णाय देवतायै नम: हृदि।

विनियोग—अस्य श्रीकृष्णमन्त्रस्य नारदऋषिः गायत्रीछन्दः कृष्णो देवता क्लीं बीजं नमः शक्तिः पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

पंचांग न्यास—आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः। विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा। सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्। त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं। असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्।।९-१३।।

नीलजीमूतसङ्काशं किङ्किणीजालमालिनम् ।।१४।।
सर्वाभरणसन्दीप्तं रक्तपद्मोपरि स्थितम् ।
सनकाद्यैर्मुनिवरैः स्तुतं ध्यायेद्दिगम्बरम् ।।१५।।
अलोलकुन्तलोद्भासि मुखचन्द्रविराजितम् ।
शशरक्ताधरोष्ठं च पाणिपादविराजितम् ।।१६।।
कराभ्यां पायसं श्लक्ष्णं सद्यो हैयङ्गवीनकम् ।
दधतं चिन्तयेद्देवं भोगमोक्षफलप्रदम् ।।१७।।
ध्यात्वैवं परमात्मानं दशलक्षं जपेन्मनुम् ।

नीलजीमूत के सदृश आभा वाले, किंकिणीजालों (छोटी-छोटी घण्टियों) को धारण करने वाले, समस्त आभरणों से सम्यक् रूप से दीप्त, रक्तपद्म पर आसीन, सनक-सनन्दन आदि श्रेष्ठ मुनियों द्वारा स्तूयमान, दिशारूपी अम्बर (वस्त्र) वाले परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। उनका मुखमण्ड़ल दोलायमान केशों से सुशोभित है; उनके अधर, हाथ एवं पैर के तलवे रक्त वर्ण के हैं; वे अपने दोनों हाथों में पायस एवं सद्यः निःसृत मक्खन धारण किये हुये हैं तथा भोग एवं मोक्षरूप फल को देने वाले हैं। ऐसे परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का दश लाख जप करना चाहिये।।१४-१७।।

जपान्ते पायसैः शुद्धैः होमं कुर्यात् सशर्करैः ।।१८।।
तर्पयेत्तद्दशांशेन जलैः कर्पूरवासितैः ।
अभिषेकं दशांशेन दशांशैर्विप्रभोजनम् ।।१९।।
तदन्ते दक्षिणां दत्वा साधयेद्धितमात्मनः ।
भिक्षाहारो जपेन्मन्त्रं वर्षमेकं व्रते स्थितः ।।२०।।
कविर्वाग्मी समृद्धश्च सर्वज्ञो जायते ध्रुवम् ।
नवनीताशिनं देवं ध्यात्वा लक्षजपात्सुधीः ।।२१।।
दिव्यज्ञानमवाप्नोति त्रिलोकीं प्राप्य मोदते ।
य एनं मन्त्रराजं तु भजते भक्तितत्परः ।।२२।।
इह भुक्त्वा वरान्भोगान् देहान्ते परमं विशेत् ।

जप सम्पन्न करने के उपरान्त शर्करायुक्त पायस से जप का दशांश हवन करना चाहिये। तदनन्तर कपूर से सुवासित जल से हवन का दशांश तर्पण करना चाहिये। फिर तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। भोजन कराने के पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करके अपने हित का साधन करना चाहिये।

एक वर्ष-पर्यन्त भिक्षा माँग कर भोजन करने रूप व्रत का पालन करते हुये मन्त्रजप करने से साधक निश्चित ही कवि, वक्ता, धनवान एवं सर्वज्ञ हो जाता है। उसे दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है और त्रिलोक को प्राप्त करके वह आनन्दित होता है। भक्तियुक्त होकर जो इस मन्त्रराज की साधना करता है, वह इस लोक में श्रेष्ठ भोगों को भोगकर देहान्त होने पर परमलोक में प्रवेश प्राप्त करता है।।१८-२२।।

अथापरं प्रवक्ष्यामि षोडशार्णं महामनुम् ॥२३॥
यस्य विज्ञानमात्रेण कृष्णात्मा परमं विशेत् ।
प्रणवं नमसा युक्तं कृष्णगोविन्दकौ तथा ॥२४॥
श्रीपूर्वौ ङेन्तावुच्चार्य हुंफट् स्वाहेति कीर्तितः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोनुष्टुबुदाहृतम् ॥२५॥
परमात्मा हरिर्देवो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ।
दशार्णकवदेवास्य जपहोमौ प्रकीर्त्तितौ ॥२६॥
प्रयोगस्तत्समः प्रोक्तो बीजशक्ती च तत्समे ।
य एवं चिन्तयेन्मन्त्रं सोऽधीते श्रुतिचतुष्टयम् ॥२७॥
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ।
अनेनाराधितः कृष्णः प्रसीदत्येव तत्क्षणात् ॥२८॥

अब दूसरे सोलह अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। इस षोडशाक्षर मन्त्र के ज्ञानमात्र से ही साधक साक्षात् कृष्णस्वरूप हो जाता है। 'ॐ नम: श्रीकृष्णाय गोविन्दाय हुं फट् स्वाहा' यह षोडशाक्षर मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं भुक्ति-मुक्तिरूपी फल प्रदान करने वाले परमात्मा श्रीकृष्ण देवता कहे गये हैं। दशाक्षर मन्त्र के समान ही इसका जप, होम, प्रयोग, बीज एवं शक्ति कहा गया है। जो इस मन्त्र की साधना करता है, वह चारो वेदों का ज्ञानी हो जाता है। इसके समान दूसरा कोई मन्त्र सम्पूर्ण संसार में नहीं है। इस मन्त्र से आराधना करने पर श्रीकृष्ण तत्काल प्रसन्न हो जाते हैं।।२३-२८।।

अथ सन्तानसंसिद्ध्यै वच्म्येनं मन्त्रनायकम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण मन्त्राः सिध्यन्ति मन्त्रिणः ॥२९॥

देवकीपुत्रशब्दान्ते गोविन्दपदमीरयेत्।
वासुदेवपदान्ते तु ततो ब्रूयाज्जगद्गुरुम्॥३०॥
देहि मे तनयं देव त्वामहं पदमीरयेत्।
शरणं गत इत्युक्तो मनुश्चानुष्टुबव्ययः॥३१॥
नारदोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्रं कथितं बुधैः।
सन्तानदो हरिः साक्षाद्देवता च प्रकीर्तितः॥३२॥
व्यस्तैः समस्तैरङ्गानि कृत्वा देवं विचिन्तयेत्।

अब मैं सन्तानप्राप्ति के लिये उस मन्त्रराज को कहता हूँ, जिसके ज्ञानमात्र से मान्त्रिकों को मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। 'देवकीपुत्र' के बाद 'गोविन्द' तब 'वासुदेव जगद्गुरु' तब 'देहि मे तनयं देव त्वामहं शरणं गतः' के योजन से जो अव्यय अनुष्टुप् मन्त्र बनता है, वह इस प्रकार होता है—

देवकीपुत्र गोविन्द वासुदेव जगद्गुरु।
देहि मे तनयं देव त्वामहं शरणं गतः॥

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता सन्तान प्रदान करने वाले साक्षांत् श्रीकृष्ण कहे गये हैं। व्यस्त एवं समस्त दोनों प्रकार से पंचांग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—देवकीपुत्र गोविन्द हृदयाय नमः। वासुदेव जगद्गुरु शिरसे स्वाहा। देहि मे तनयं देव शिखायै वषट्। त्वामहं शरणं गतः कवचाय हुं। देवकीपुत्र गोविन्द वासुदेव जगद्गुरु देहि मे तनयं देव त्वामहं शरणं गतः अस्त्राय फट्। इस प्रकार अंगन्यास करने के बाद देवता का ध्यान करना चाहिये।।२९-३२।।

नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरयुगावृतम्॥३३॥
चतुर्भुजं शङ्खचक्रमूर्ध्वपाणिद्वये वृतम्।
अधः पाणिद्वये वेणुं वादयन्तं मुदान्वितम्॥३४॥
अनेकरत्नसम्बद्धकिरीटोज्ज्वलविग्रहम्।
नानालङ्कारसुभगं गरुडोपरि संस्थितम्॥३५॥
वेदस्तोत्रपरैर्नित्यं मुनिभिः परिवेष्टितम्।
एवं ध्यात्वार्चयेत्कृष्णं पञ्चाङ्गैः प्रथमावृतिः॥३६॥

नीलकमलपत्र के सदृश श्याम वर्ण वाले, दो पीतवस्त्र से आवृत, चार भुजाओं वाले, ऊपर के दो हाथों में शंख एवं चक्र धारण किये तथा नीचे के दो हाथों से प्रसन्नतापूर्वक वेणुवादन करते हुये, नानाविध रत्नजटित किरीट को धारण करने से उज्ज्वल शरीर वाले, बहुविध अलंकारों से सुशोभित, गरुड़ पर विराजमान एवं नित्यप्रति वैदिक स्तोत्र करते मुनियों द्वारा परिवेष्टित श्रीकृष्ण का ध्यान करके तीन

आवरणों में पूजा करनी चाहिये। जैसे पूजन यन्त्र में षट्कोण और चतुरस्र भूपुर बनाकर प्रथम आवरण के पूजनक्रम में षट्कोण में क्लीं देवकीपुत्र गोविन्द हृदयाय नम: हृदयं पूजयामि नम:। क्लीं वासुदेव जगद्गुरु शिरसे स्वाहा शिर: पूजयामि नम:। क्लीं देहि मे तनयं देव शिखायै वषट् शिखां पूजयामि नम:। क्लीं त्वामहं शरणं गत: कवचाय हुं कवचं पूजयामि नम:। क्लीं देवकीपुत्र गोविन्द वासुदेव जगद्गुरु तनयं देहि मे देव त्वामहं शरणं गत: अस्त्राय फट् अस्त्रं पूजयामि नम: मन्त्रों से पञ्चाङ्ग पूजन करके 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि...प्रथमावरणार्चनम्' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।।३३-३६।।

इन्द्रादिभिर्द्वितीया स्यात्तृतीया तु तथायुधै: ।
एवमभ्यर्च्य देवेशं लक्षमात्रं जपेन्मनुम् ।।३७।।
अनर्चितै: पुत्रजीवैस्तत्फलैरयुतं हुनेत् ।
अनन्तरं दशांशेन तर्पणादीनि चाचरेत् ।।३८।।
य एनं प्रभजेन्मन्त्री सन्तानाख्यं महामनुम् ।
पुत्रै: पौत्रैर्विनन्द्येह तदन्ते परमं व्रजेत् ।।३९।।
अविच्छिन्नं भवेद्वंशं यावदाभूतसम्प्लवम् ।

द्वितीय आवरण के पूजन में चतुरस्र में इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करने के उपरान्त तृतीय आवरण के पूजन में लोकपालों के निकट उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार देवेश की पूजा करके मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। जप के पश्चात् अनर्चित पुत्रजीवक (जायफल) से जप का दशांश दश हजार हवन करने के वाद क्रमश: हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इस सन्तानप्रद महामन्त्र से जो व्यक्ति उपासना करता है, वह इस लोक में पुत्र-पौत्रों से आनन्दित होकर देहान्त होने पर परमपद को प्राप्त करता है और उसका वंश महाप्रलय तक अविच्छिन्न बना रहता है।।३७-३९।।

दशम्यां शुक्लपक्षे तु निशीथे स्वस्तिमण्डले ।।४०।।
हरिमावाह्य विधिवत्पूजयेदुपचारकै: ।
एवमर्चनमात्रेण वत्सरात्पुत्रवान्गृही ।।४१।।
दीर्घायुरप्रतिहतबलवीर्यसमन्वितम् ।
वत्सराल्लभते पुत्रं सत्यं सत्यं मयोदितम् ।।४२।।
यस्यार्थे कुरुते मन्त्री प्रयोगं स तु पुत्रवान् ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रान् शतहायनजीवितान् ।।४३।।
प्रातर्वाचंयमा नारी बोधिद्रुमदले जलम् ।
मन्त्रयित्वाष्टोत्तरशतं पिबेत्पुत्रीयति ध्रुवम्।।४४।।

एवं प्रयोगे मासेन तनयं लभते ध्रुवम्।
अनेन मन्त्रितं त्वाज्यं पुत्रसिद्धिकरं परम् ॥४५॥
अनेन जलपानेन वन्ध्या वर्षाल्लभेत् प्रजाम् ॥४६॥

इति गौतमीये महातन्त्रे विंशोऽध्यायः

●

शुक्ल पक्ष के दशमी की अर्धरात्रि में स्वस्तिमण्डल में हरि का आवाहन करके उपचारों से विधिवत् पूजन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्ष तक पूजन करने से वह गृहस्थ अर्चक एक वर्ष के भीतर ही पुत्रवान हो जाता है और वह पुत्र दीर्घायु होने के साथ-साथ अप्रतिहत बल-वीर्य से समन्वित होता है; यह पूर्णतः सत्य है।

मन्त्रज्ञ साधक जिसके लिये यह प्रयोग करता हैं, वह तो पुत्रवान होता ही है; वन्ध्या स्त्री भी इस प्रयोग के द्वारा सौ वर्षों तक जीवित रहने वाला पुत्र प्राप्त करती है।

स्त्रियाँ प्रात:काल मौनभाव से पीपल के वृक्ष की पूजा करके उसके पत्ते को जल में घोलकर एक सौ आठ मन्त्रजप से उसे अभिमन्त्रित करके उस अभिमन्त्रित जल का एक मास तक यदि पान करती हैं तो उन्हे निश्चित रूप से पुत्रलाभ होता है। इससे अभिमन्त्रित गोघृत सर्वश्रेष्ठ पुत्रप्रद होता है। इससे मन्त्रित जल पीने से एक वर्ष में वन्ध्या भी पुत्र प्राप्त करती है।।४०-४६।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के विंश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

एकविंशोऽध्यायः

[श्रीकृष्ण के द्वाविंशाक्षर मन्त्र की महिमा, द्वाविंशाक्षर मन्त्र का उद्धार, श्रीकृष्ण का ध्यान एवं जप, मन्त्रित पदार्थों का भक्षण, तत्तत् मन्त्रों के जप का फल, जप-हवनादि की संख्या आदि का कथन।]

गौतम उवाच

सर्वं जानासि त्वं विद्वन् स्वयम्भूसदृश प्रभो।
त्वदुदीरितमाकर्ण्य कृतार्थोऽहं न चान्यथा॥१॥
तपस्तप्त्वा पुरा ब्रह्मन् प्रार्थितो हरिरीश्वरः।
तेनैवोक्तं न चेदेनं कथितव्यमखण्डितम्॥२॥
तदारभ्य सदा ब्रह्मन् तव दर्शनलालसः।
गङ्गाप्रवाहणं मन्त्रं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥३॥

गौतम बोले—हे प्रभो! आप ब्रह्मा के समान विद्वान् हैं और आप सब कुछ जानते हैं। यह सत्य है कि आपके द्वारा दिये गये उपदेश से मैं कृतार्थ हूँ। हे ब्रह्मन्! पूर्व में ब्रह्मा द्वारा तप करके विष्णु से पूछने पर विष्णु के द्वारा कथित यह सब कहा गया था; अन्यथा अखण्डित रूप यह सब नहीं कहा जा सकता था। हे ब्रह्मन्! तब से ही मैं आपके दर्शन की लालसा कर रहा था। अब मैं गंगाप्रवाहण मन्त्र को तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ।।१-३।।

नारद उवाच

बहवः कथिता मन्त्रा मया ते मुनिसत्तम!।
तं मन्त्रं कथयाम्यद्य येन ज्ञानं प्रसीदति॥४॥
यस्य विज्ञानमात्रेण भक्तिः स्यात्प्रेमलक्षणा।
चतुर्विधं च पाण्डित्यं ज्ञानमात्रेण सिध्यति॥५॥
मन्दभाग्यो दरिद्रोऽपि शठो मूढोऽतिपातकी।
उपास्य मन्त्रराजं तुं वागीशसमतां व्रजेत्॥६॥
मयाऽप्येवं प्रपृष्टश्च पद्मयोनिर्यथावदत्।
तथा ते कथयिष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं मुने॥७॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वप्रवर्तकः।
सर्वतन्त्रेषु गुप्तोऽयं गोपनीयस्त्वया मुने॥८॥

वेदाश्च प्रादुर्भूतास्ते मन्त्रेणानेन वेधसः।
कवीन्द्रत्वं भार्गवश्च वागीशत्वं बृहस्पतिः ॥९॥
श्रियमिन्द्रादयो देवा ज्ञानं च सनकादयः।
सौभाग्यं चन्द्रमा प्राप्तः कुबेरोऽपि धनेशताम् ॥१०॥
इमं मन्त्रवरं ज्ञात्वा सर्वज्ञो भवति ध्रुवम्।
अदृष्टाश्रुतशास्त्रस्य व्याख्याता शिल्पगो भवेत् ॥११॥
महाकविर्महाप्राज्ञो वाक्पतेः समतां व्रजेत्।
ज्ञानं तु परमं लब्ध्वा विष्णोः सायुज्यतां व्रजेत् ॥१२॥
यं यं काममभिध्यायन् भजते मनुजो मनुम्।
तं तं काममवाप्नोति भुवि स्वर्गे रसातले ॥१३॥
तस्योद्धारमहं वक्ष्ये मम सार्वज्ञ्यकारणम्।
कृष्णगोविन्दकौ ङेऽन्तौ तथा गोपीजनं ततः ॥१४॥
वल्लभोऽग्निप्रिया सह पूर्वः स्वमनुस्वारकः।
नाम्नामादौ क्रमात्काममायालक्ष्मीर्नियोजयेत् ॥१५॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वाग्भवाद्यः प्रकीर्तितः।

ऋषि नारद बोले—हे मुनिसत्तम! आपसे मैंने बहुत-से मन्त्रों को कहा है। अब उन मन्त्रों को कहता हूँ, जिनसे प्रभु प्रसन्न होते हैं। जिसके ज्ञानमात्र से प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त होती है। जिसे जानने से ही चतुर्विध पाण्डित्य प्राप्त होता है। मन्दभाग्य, दरिद्र, शठ, मूर्ख एवं अतिपातकी भी इस मन्त्रराज की उपासना करके वागीश्वर के समान हो जाता है। हे मुने! मेरे द्वारा पूछने पर ब्रह्मा जी ने जिस प्रकार कहा था, उसी अत्यन्त गुप्त रहस्य को मैं आपसे कहता हूँ। बाईस अक्षरों का यह मन्त्र वागीशत्व प्रदान करने वाला है। हे मुने! यह सभी तन्त्रों में गुप्त है; अतः आपके द्वारा भी गुप्त ही रखने योग्य है। इसी मन्त्र के प्रभाव से ब्रह्मा के मुख से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है। इसी मन्त्र के प्रभाव से भार्गव शुक्राचार्य ने कवीन्द्रत्व, बृहस्पति ने वागीशत्व, इन्द्रादि देवों ने लक्ष्मी, सनकादि महर्षियों ने ज्ञान, चन्द्रमा ने सौभाग्य और कुबेर ने धनेशत्व प्राप्त किया है। इस मन्त्र को जानने वाला निश्चय ही सर्वज्ञ हो जाता है। इस मन्त्र का ज्ञाता अदृष्ट एवं अश्रुत अर्थ का व्याख्यान करने वाला तथा शिल्पशास्त्र का ज्ञाता हो जाता है। वह महाकवि एवं महाप्राज्ञ होकर वाचस्पति के समान हो जाता है। साथ ही परम ज्ञान को प्राप्त करके विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है। पृथिवी, स्वर्ग अथवा रसातल में भी जिस-जिस कामना की लालसा करते हुये मनुष्य इस मन्त्र का जप करता है, उसकी वह सभी कामनायें पूर्ण होती हैं। इस मन्त्रराज के उद्धार को कहने में इसी के प्रभाव से प्राप्त मेरी सर्वज्ञता ही कारण है। सबसे पहले 'ऐं' तब 'क्लीं कृष्णाय' तब

'ह्रीं गोविन्दाय' तब 'श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' कहने से जो बाईस अक्षर का मन्त्र बनता है, वह इस प्रकार होता है—ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सौः।।४-१५।।

अहमस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता मनोः ॥१६॥
गङ्गाप्रवाहणः कृष्णः सर्वदेवनमस्कृतः ।
गङ्गाप्रवाहवद्वाणी जायते न तदन्यथा ॥१७॥
गङ्गाप्रवाहणो नाम कीर्त्तने परमार्थतः ।
बीजं तु मान्मथं प्रोक्तं शक्तिर्पत्नी हविर्भुजः ॥१८॥
कृष्णाय कामबीजाभ्यां हृदयं परिकीर्त्तितम् ।
गोविन्दाय शिरस्तद्वन्मायान्यचरणेन च ॥१९॥
गोपीजन शिखा तद्वत् श्रीबीजाद्येन विन्यसेत् ।
वल्लभायेति कवचमस्त्रं जाया हविर्भुजः ॥२०॥
शेषबीजेन सहितं पञ्चाङ्गं मनवः स्मृतः ।

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता समस्त देवों से नमस्कृत गंगाप्रवाहण कृष्ण हैं। इस मन्त्रराज के प्रभाववश उपासक की वाणी गंगाप्रवाह के समान अप्रतिहत गति वाली हो जाती है। इसीलिये इसे परमार्थतः गंगाप्रवाहण अभिधान से अभिहित किया गया है। इस मन्त्र का बीज 'क्लीं' एवं शक्ति 'स्वाहा' है। इसका पंचांग न्यास इस प्रकार किया जाता है—

क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः।
ह्रीं गोविन्दाय शिरसे स्वाहा।
श्रीं गोपीजन शिखायै वषट्।
वल्लभाय कवचाय हुं।
स्वाहा सौः अस्त्राय फट्।।१६-२०।।

मूर्ध्नि लोमौ भ्रुवोर्मध्ये नेत्रे कर्णे तथा नसि ॥२१॥
आस्ये कण्ठे चे दोर्मूले हृदयोदरनाभिषु ।
लिङ्गमूले तथाधारे ऊर्वोर्जान्वोश्च गुल्फयोः।
समस्तेन च मन्त्रेण व्यापकं न्यस्य चिन्तयेत् ॥२२॥

इसके मन्त्रवर्णों का न्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. मूर्ध्नि ऐं नमः
२. ललाटे क्लीं नमः
३. भ्रूमध्ये कृं नमः
४. दक्षनेत्रे ष्णां नमः
५. वामनेत्रे यं नमः
६. दक्षकर्णे ह्रीं नमः

७. वामकर्णे गों नमः	१५. नाभौ नं नमः
८. नसोः विं नमः	१६. लिङ्गे वं नमः
९. मुखे न्दां नमः	१७. आधारे ल्लं नमः
१०. चिबुके यं नमः	१८. कट्योः भां नमः
११. कण्ठे श्रीं नमः	१९. जङ्घयोः यं नमः
१२. दोर्मूले गों नमः	२०. गुल्फयोः स्वां नमः
१३. हृदि पीं नमः	२१. दक्षपादे हां नमः
१४. उदरे जं नमः	२२. वामपादे सौः नमः।

तदनन्तर सम्पूर्ण मन्त्र से शिर से पैरों तक व्यापक न्यास करने के उपरान्त ध्यान करना चाहिये।।२१-२२।।

कलायकुसुमश्यामं पूर्णचन्द्रनिभाननम्।
बर्हिबर्हकृतोत्तंसं वनमालिनमीश्वरम्।।२३।।
किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डितम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभोद्भासितोरसम्।।२४।।
युवतीवेषलावण्यं रमणीयतनुं हरिम्।
दिव्यपीताम्बरधरं तारहारविभूषितम्।।२५।।
स्मेरारुणाधरन्यस्तवेणुं त्रैलोक्यमोहनम्।
सर्ववेदमयं वेणुं वादयन्तं चतुर्भुजम्।।२६।।
स्फाटिकीमक्षमालां च विद्यामूर्ध्वकरद्वये।
दधतं पुण्डरीकाक्षं दिव्यगानपरायणम्।।२७।।
अतुल्यानल्पसौन्दर्यैर्मोहयन्तं जगत्त्रयम्।
तपनीयलसत्कान्त्या वीणाकमलहस्तया।।२८।।
निरीक्षमाणचरणं वामपार्श्वस्थया श्रिया।
हेमसिंहासने रम्ये सर्वरत्नोपशोभिते।।२९।।
रुक्मिण्यादिमहिषिभिर्निवेषितमनारतम्।
चन्द्रमण्डलसङ्काशश्वेतछत्रोपशोभितम्।।३०।।
नारदाद्यैर्मुनिगणैर्ज्ञानार्थिभिरुपासितम्।
इन्द्राद्यैर्देवतावृन्दैः प्रणतं परमेश्वरम्।।३१।।
सर्वज्ञं जगदीशानं ध्यात्वा हृदयपङ्कजे।
जपेदेवं मनुवरं ध्यात्वा लक्षचतुष्टयम्।।३२।।

कलायपुष्प के सदृश श्याम वर्ण वाले, पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाले, मयूरपिच्छ

को शिर पर धारण करने वाले, वनमाला धारण करने वाले, किरीट-हार-केयूर एवं रत्नकुण्डल से सुशोभित, श्रीवत्स से सुशोभित वक्ष:स्थल वाले, कौस्तुभ मणि से उद्भासित हृदय वाले, युवतिवेश के सदृश लावण्य से रमणीय शरीर वाले, दिव्य पीताम्बर धारण करने वाले, तारहार से विभूषित, विकसित रक्तवर्ण अधर पर न्यस्त वेणु वाले, त्रैलोक्य को मोहित करने वाले, सर्ववेदमय वेणु का वादन करने वाले, चार भुजाओं वाले, ऊपरी दोनों भुजाओं में स्फटिक की माला एवं विद्या धारण करने वाले, कमलरूपी नेत्रों को धारण करने वाले, दिव्य गान में निरत, अतुलनीय प्रभूत सौन्दर्य से तीनों लोकों को मोहित करने वाले, वाम भाग में स्थित हाथों में वीणा एवं कमल धारण की हुई स्वर्णकान्ति से दीप्तिमान लक्ष्मी जिनके चरणों में दृष्टिनिक्षेप कर रही है, समस्त रत्नों से सुशोभित रमणीय स्वर्णसिंहासन पर विराजमान, रुक्मिणी आदि राजमहिषियों द्वारा अनवरत निवेदित सपर्या वाले, चन्द्रमण्डल के समान श्वेत छत्र से सुशोभित, ज्ञान के इच्छुक नारदादि मुनियों द्वारा उपास्यमान, इन्द्रादि देवताओं द्वारा नमस्कृत, सर्वज्ञ, जगत् के स्वामी परमेश्वर का हृदयकमल में ध्यान करके इस श्रेष्ठ मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिये।।२३-३२।।

आरक्तैः कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैर्होममाचरेत्।
दशांशं तेन मन्त्रोऽयं सिद्धो भवति नान्यथा ।।३३।।
पूजा दशाक्षरे पीठे अङ्गावृत्तिरनन्तरम्।
महिषीभिर्द्वितीया स्यात्तृतीया दिगधीश्वरैः ।।३४।।
चतुर्थी तत्प्रहरणैश्चतुरावृत्तिरीरिता।

जप के उपरान्त पलाश के लाल फूलों से जप का दशांश हवन करने से ही मन्त्र की सिद्धि प्राप्त होती हैं; अन्यथा नहीं। पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्र से यन्त्रपीठ पर अंगन्यास करने के पश्चात् चार आवरणों में पूजा करनी चाहिये। प्रथम आवरण में षडंग पूजन, द्वितीय में रुक्मिणी आदि आठ रानियों का पूजन, तृतीय आवरण में लोकपालों और चतुर्थ आवरण में उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।

पूजन यन्त्र में पहले षट्कोण बनाकर उसके बाहर वृत्त में अष्टदल कमल और उसके बाहर द्वारों से युक्त चतुरस्र निर्मित करना चाहिये। इनमें प्रथम आवरण की पूजा षट्कोण में, द्वितीय आवरण की अष्टदल में, तृतीय आवरण की चतुरस्र में एवं चतुर्थ आवरण की पूजा भी इन्द्रादि लोकपालों के समीप चतुरस्र में ही करनी चाहिये।।३३-३४।।

प्रातः प्रातः पिबेत्तोयं मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् ॥३५॥
वागीश्वरसमो भूत्वा काव्यकर्त्ता महान् भवेत् ।
अनेन मन्त्रितं नित्यं ब्राह्मीपत्रं प्रभक्षयेत् ॥३६॥
मण्डलादेव मतिमान् महाश्रुतिधरो भवेत् ।
ब्राह्मी कुष्ठवचाकल्कं घृतेन द्विगुणेन च ॥३७॥
चतुर्गुणं भवेद् दुग्धं पाचितं घृतमुत्तमम् ।
अवतार्य जपेदत्र अयुतं जपमादरात् ॥३८॥
कर्षमात्रं प्रातरेव भक्षयेन्मौनमास्थितः ।
एतद्भक्षणमात्रेण बृहस्पतिसमो भवेत् ॥३९॥
हस्तमारोप्य जिह्वायां जपेदयुतमादरात् ।
प्रतिभा जागते दिव्या सर्वलोकैकभाविता ॥४०॥
धवलैरुपचारैस्तु यदि देवं प्रपूजयेत् ।
दिव्यज्ञानमवाप्नोति प्रतिभा विश्वजित्वरी ॥४१॥

श्रीबीजाद्यं यदा जप्यात्तदा लक्ष्मीरचञ्चला।
कामाद्यजपनादेव सर्वलोकवशं नयेत्॥४२॥
मायादिजपनादेव वाक्सिद्धिर्जायते क्वचित्।
शक्तिबीजादिको मन्त्रो निर्वाणमचिराद्विशेत्॥४३॥
पुटनात्प्रणवाभ्यां तु मोक्षमाप्नोति निश्चितम्।
एवं मन्त्रजपं कृत्वा किं न साध्यति मन्त्रवित्॥४४॥
एवं मन्त्रवरं यस्तु भजते भक्तितत्परः।
इह भुक्त्वा वरान् भोगान् समस्तर्द्धिसंयुतान्॥४५॥
संवित्तिं परमं लब्ध्वा तदन्ते परमं पदम्।

प्रतिदिन प्रात:काल इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का पान करने से साधक वागीश्वर के समान होकर महान् काव्यकर्ता हो जाता है। इससे अभिमन्त्रित ब्राह्मीपत्र का चालीस दिनों तक नित्य भक्षण करने से साधक बुद्धिमान एवं महान् श्रुतिधर (सुनते ही याद करने वाला) हो जाता है। ब्राह्मी, कूठ और वच के कल्क को उससे दुगुने घी और चौगुने दूध में पाक करके अग्नि पर से नीचे उतार कर इस मन्त्र के दश हजार जप से अभिमन्त्रित करके प्रतिदिन प्रात:काल मौन होकर एक कर्ष अर्थात् १६ ग्राम की मात्रा में उसका भक्षणमात्र करने से ही साधक बृहस्पति के समान हो जाता है। जीभ पर हाथ रखकर इस मन्त्र का भक्तिपूर्वक दश हजार जप करने से समस्त लोकों में अनुपम दिव्य प्रतिभा प्राप्त होती है।

श्वेत वर्ण वाले उपचारों से भगवान् की सविधि पूजा करने से दिव्य ज्ञान के साथ-साथ विश्वविजयिनी प्रतिभा की प्राप्ति होती है।

'श्रीं ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सौ:' मन्त्र के जप से अचञ्चला लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

'क्लीं ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सौ:' के जप से सभी लोक वश में होते हैं।

'ह्रीं ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सौ:' के जप से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है।

'सौ: ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सौ:' के जप से शीघ्र ही निर्वाण की प्राप्ति होती है।

'ॐ ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सौ: ॐ' के जप से निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार से मन्त्र का जप करके मन्त्रज्ञ साधक क्या सिद्ध नहीं कर सकता? इस प्रकार भक्तियुक्त होकर जो व्यक्ति इस श्रेष्ठ मन्त्र की साधना करता है, वह इस लोक में उत्तम भोगों का भोग करते हुए सभी ऋद्धियों से युक्त परम संवित्ति को अवाप्त करके अन्त में परमपद को प्राप्त होता है।।३५-४५।।

कामेन्द्राद्या पराशक्तिर्नादबिन्दुसमन्विता ।।४६।।
कथितः कृष्णवर्णानां मन्त्रोऽयं मन्त्रनायकः ।
ऋषिर्ब्रह्मा समाख्यातो विराट् छन्द उदीरितः ।।४७।।
त्रैलोक्यमोहनो देवः श्रीकृष्णः परिकीर्त्तितः ।
कलषड्दीर्घबीजेन षडङ्गः परिकीर्तितः ।।४८।।

काम 'क' इन्द्र 'ल' परा शक्ति 'ई' के साथ नाद-बिन्दु के योग से कृष्णमन्त्रों का नायक एकाक्षर मन्त्र 'क्लीं' बनता है। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द विराट् एवं देवता त्रैलोक्यमोहन श्रीकृष्ण कहे गये हैं। क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः—इन दीर्घ बीजमन्त्रों से षडङ्ग न्यास कहा गया है।।४६-४८।।

अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोल्लसद्भ्रूतलैः
किञ्चित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारेक्षणम् ।
आलोलाङ्गुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्यायेज्जगन्मोहनम् ।।४९।।

कन्धे तक लटकते हुये बाँयें कान में कुण्डल धारण करने वाले, मन्द-मन्द उल्लसित भ्रूतल वाले, किञ्चित् आकुञ्चित कोमल अधरों वाले, प्रसरित नेत्रों वाले, चंचल अंगुलिरूपी पल्लवों से मुरली को आपूरित करते हुये कल्पवृक्ष के नीचे त्रिभङ्गी रूप में अवस्थित जगन्मोहन का ध्यान करना चाहिये।।४९।।

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं श्रद्धया दशलक्षकम् ।
तद्दशांशेन जुहुयात्पायसैरथवाम्बुजैः ।।५०।।
दशाक्षरोदिते पीठे पूजयेत्तद्विधानतः ।
प्रयोगानपि सर्वत्र तदुक्तानपि कारयेत् ।।५१।।

उपर्युक्त प्रकार से ध्यान करके मन्त्र का श्रद्धापूर्वक दश लाख जप करना चाहिये। तदनन्तर पायस अथवा कमल से उसका दशांश अर्थात् एक लाख हवन करना चाहिये। तदनन्तर दशाक्षरोक्त पीठ पर विधि-विधानपूर्वक पूजा करके दशाक्षर मन्त्र में कथित समस्त प्रयोगों को भी करना चाहिये।।५०-५१।।

अथवा बालकृष्णं च नीलेन्दीवरसन्निभम् ।
रत्नाभरणसन्दीप्तं द्विभुजं नीलकुन्तलम् ।।५२।।

पायसं नवनीतं च कराभ्यां दधतं स्मरेत्।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्री होमयेत्पायसैः शुभैः ॥५३॥
दशाशं विधिवद्भक्त्या पूजाङ्गेन्द्रादिभिरायुधैः।
होमयेदयुतं मन्त्री घृतभर्जितपिष्टकैः ॥५४॥
अलक्ष्मीर्नश्यति क्षिप्रं कान्तिस्तेजश्च विन्दति।
पलाशकुसुमैर्हुत्वा वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम् ॥५५॥
पङ्कजैर्जुहुयान्मन्त्री अयुतं श्रियमाप्नुयात्।
नवनीतस्य होमेन कविर्वाग्मी प्रजायते ॥५६॥

अथवा नीलकमल के सदृश वर्ण वाले, रत्नों के आभूषणों से दीप्तिमान, दो भुजाओं वाले, नीले केश वाले तथा हाथों में पायस एवं मक्खन धारण करने वाले वाल कृष्ण का स्मरण करते हुये मन्त्रज्ञ को मन्त्र का एक लाख जप करके पायस से जप का दशांश हवन करना चाहिये। इनकी पूजा तीन आवरणों में करनी चाहिये। पूजन यन्त्र में षट्कोण के वाहर चतुरस्र बनाकर प्रथम आवरण में षडंग पूजन, द्वितीय आवरण में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन एवं तृतीय आवरण में दिक्पालों के समीप ही उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। दश हजार हवन घृतपक्व पीठी से करना चाहिये। ऐसा करने से शीघ्र ही दरिद्रता का नाश होता है एवं कान्ति तथा तेज की वृद्धि होती है। पलाश के फूलों से हवन करने पर निश्चित रूप से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। कमलपुष्पों से दश हजार हवन करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। मक्खन से हवन करने पर साधक कवि और वक्ता होता है।।५२-५६।।

वसुदेवपदं चोक्त्वा निगडच्छेदनाय च।
वासुदेवपदं चोक्त्वा स्वाहेति तन्मनुर्भवेत् ॥५७॥
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
निगडच्छेदनो लक्ष्मीवासुदेवोऽस्य देवता ॥५८॥
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य आचक्राद्यैश्च कल्पयेत्।

'वसुदेवनिगडच्छेदनाय वासुदेवाय स्वाहा' इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं निगड़च्छेदन लक्ष्मी-वासुदेव देवता कहे गये हैं। आचक्रादि मन्त्रों से पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—

आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः।
विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा।
सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्।
त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं।
असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्।।५७-५८।।

रङ्गमण्डलमध्ये तु कंसं निपात्य हेलया ॥५९॥
ज्ञातीनां वर्धयन् हर्षमानीय पितरौ स्वयम्।
निगडान् मोक्षितौ भक्त्या प्रणम्य च पुनः पुनः ॥६०॥
राज्ये संस्थाप्य विधिवत् देवकं वीक्षितं नृपैः।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥६१॥
अंगैराशाधिपैः सम्यक् ततस्तैर्वचनोदिता।
य एवं चिन्तयेन्मन्त्री स सम्यक् सम्पदां पतिः ॥६२॥
राजदुर्गभयादिभ्यो मुच्यते बन्धनादितः।
राजद्वारे भये घोरे स्मरणान्मुच्यते भयात् ॥६३॥

इति गौतमीये महातन्त्रे एकविंशोऽध्यायः

●

रङ्गमण्ड़ल के मध्य में लीलापूर्वक कंस को निपातित करके ज्ञातियों को अतिशय आनन्दित करते हुये अपने माता-पिता को लाकर स्वयं उनको बन्धनों से मुक्त करके भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम करते हुये राजा के रूप में विधिवत् स्थापित करके उपस्थित राजाओं द्वारा देखे जाते हुये कृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप एवं उसका दशांश होम करने के पश्चात् अङ्गन्यासादि करना चाहिये।

जो व्यक्ति इस प्रकार साधना करता है, वह समस्त सम्पदाओं का अधिपति होने के साथ-साथ राजभय-दुर्गभय आदि के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। भगवान के उक्त स्वरूप के स्मरणमात्र से ही राजद्वार पर प्राप्त घोर भय से भी स्मर्त्ता मुक्त हो जाता है।।५९-६३।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के एकविंश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

द्वाविंशोऽध्यायः

[गोपालपिण्ड़ मन्त्र, ऋषि-छन्द-देवता, मन्त्र का जप-हवन आदि, महामन्त्र वर्ण, उनके धारण के फल आदि का कथन।]

गोपालं पिण्डसंज्ञं च कथयामि मुने शृणु।
यदाकर्ण्य गुरोर्भक्त्या परत्रेह च मोदते ॥१॥
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते।
पञ्चान्तको धरासंस्थश्चतुर्दशस्वरैर्युतः ॥२॥
कथितो मन्त्रराजोऽयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्री छन्दः श्रीकृष्णदेवता ॥३॥
गवाभ्यां बीजशक्तिस्तु कीलकं तुर्यमुच्यते।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥४॥

हे मुने! अब मैं गोपाल के पिण्डमन्त्र को कहता हूँ; श्रवण करें, जिसको सुनकर गुरुभक्ति के फलस्वरूप साधक इस लोक एवं परलोक में आनन्दित होता है। संसार में इसके समान दूसरा कोई भी मन्त्र नहीं है। पंचान्तक 'ग' धरा 'ल' चतुर्दश स्वर 'औं' के योग से 'ग्लौ' पिण्डमन्त्र बनता है। कहा जाता है कि यह मन्त्रराज भुक्ति-मुक्तिरूपी फल को प्रदान करने वाला है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता श्रीकृष्ण हैं। इसका बीज एवं शक्ति 'गो' है। छः दीर्घ बीजमन्त्रों (गां गीं गूं गैं गौं गः) से इसके षडंग न्यास की कल्पना करनी चाहिये।।१-४।।

वृन्दावनगतं कृष्णं रत्नसिंहासनस्थितम्।
नारदाद्यैर्मुनिवरैः दिव्यगानरसात्मकैः ॥५॥
सहितं परया भक्त्या वनमालिनमीश्वरम्।
नानालङ्कारसन्दीप्तं शङ्खचक्रलसत्करम् ॥६॥
शब्दब्रह्ममयं वेणुमधःपाणिद्वयेरितम्।
एवं ध्यात्वा मनुवरं लक्षमात्रं जपेद्वशी ॥७॥
सितान्वितैः पायसैस्तु युतं होमं समाचरेत्।
य एवं भजते मन्त्री सिद्धयस्तस्य हस्तगाः ॥८॥

वृन्दावन में रत्नमय सिंहासन पर अवस्थित होकर नारदादि श्रेष्ठ मुनियों द्वारा

दिव्य गानरस के साथ परम भक्तिपूर्वक वनमालाधारी, अनेक अलंकारों से शोभायमान, हाथों में शंख एवं चक्र धारण करने वाले, नीचले दोनों हाथों से शब्दब्रह्ममय वेणु को धारित कर उसका वादन करते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान करके जितेन्द्रिय साधक को क्षेष्ठ मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये।

जप के उपरान्त मिश्री-युक्त पायस से दश हजार हवन करना चाहिये। जो साधक इस प्रकार उपासना करता है, सिद्धियाँ उसके हाथों में रहती हैं।।५-८।।

धवलैः कुसुमैर्होमाद्वाक्सिद्धिं लभते चिरात्।
कर्णिकारस्य होमेन लक्ष्मीः सर्वविधा भवेत्।।९।।
अनेन मन्त्रितं तोयं प्रातः प्रातः पिबेज्जलम्।
कविर्वाग्मी श्रुतिधरः सर्वज्ञो जायतेऽचिरात्।।१०।।
अस्योपासनमात्रेण किं न सिद्ध्यन्ति मन्त्रिणः।
इह भोगान् वरान् भुक्त्वा पुत्रपौत्रसमन्वितैः।।११।।
अन्ते तत्परमं धाम मन्त्री याति निरामयम्।

धवल अर्थात् श्वेत वर्ण के पुष्पों के होम से अल्प काल में ही वाक्सिद्धि की प्राप्ति होती है। कर्णिकारपुष्प के हवन से सभी प्रकार के लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का सवेरे-सवेरे पान करने से साधक स्वल्प समय में ही कवि, वक्ता, श्रुतिधर एवं सर्वज्ञ हो जाता है। इसकी उपासना से मन्त्रज्ञ को क्या सिद्ध नहीं होते। वह मन्त्रज्ञ इस संसार में पुत्र-पौत्रों के साथ श्रेष्ठ भोगों का भोग करके अन्त में हरि के परमधाम में आमयरहित होकर प्रस्थान करता है।।९-११।।

अथ वक्ष्ये महायन्त्रं सर्वेप्सितफलप्रदम्।।१२।।
यस्य धारणमात्रेण विं न सिध्यति भूतले।
बीजं त्रिकोणमालिख्य षट्कोणं तद्बहिर्लिखेत्।।१३।।
षडक्षरं लिखेत्तत्र वृत्तं चाष्टदलं लिखेत्।
अष्टाक्षरेण संयुक्तं तद्बहिः षोडशच्छदम्।।१४।।
षोडशार्णं कृष्णमनुं बहिर्दशदलान्वितम्।।१५।।
दशाक्षरेण संयुक्तमष्टादशदलं ततः।
अष्टादशार्णं तन्मध्ये तद्बहिर्द्वात्रिंशदम्बुजम्।।१६।।
अनुष्टुभाख्यं तत्रैव तद्बहिर्वृत्तमालिखेत्।
पिण्डबीजं वेष्टनेन लिखेद्यन्त्रस्य सर्वतः।।१७।।
तद्बहिर्वृत्तं निष्पाद्य मातृकां तत्र वेष्टयेत्।
वृत्तद्वयं पुनः कृत्वा पाशाङ्कुशेन वेष्टयेत्।।१८।।

तद्बहिर्वृत्तमेकं तु चतुरस्रं सवज्रकम्।
एतदुक्तं महायन्त्रं कृपया मुनिसत्तम ॥१९॥

अब समस्त अभीष्ट फलों को देने वाले महायन्त्र को कहता हूँ, जिसको धारण करके इस पृथ्वी पर क्या सिद्ध नहीं किया जा सकता? पहले त्रिकोण वनाकर उसमें वीज 'गं' लिखकर उस त्रिकोण के बाहर षट्कोण का निर्माण करके उसमें षडक्षर मन्त्र (क्लीं कृष्णाय नम:) के अक्षरों को कोणों में लिखना चाहिये। पुन: उसके बाहर षोडश दल वनाकर दलों में षोडशाक्षर मन्त्र (श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा क्लीं ह्रीं श्रीं) के अक्षरों को लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर दशदल कमल बनाकर उसमें दशाक्षर मन्त्र (क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नम:) के अक्षरों को लिखकर पुन: उसके वाहर अष्टादशदल कमल वनाकर उसके दलों में अष्टादशाक्षर मन्त्र (क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) के अक्षरों को लिखकर उसके बाहर बत्तीस दल कमल वनाकर उसके दलों में अनुष्टुप् मन्त्र (देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणङ्गत:) के अक्षरों को लिखकर उसके बाहर वृत्त बनाकर उसे पिण्डबीज 'ग्लौं' से वेष्टित करके पुन: उसके वाहर वृत्त बनाकर उसे मातृकाओं से वेष्टित करना चाहिये। पुन: उसके वाहर दो वृत्त वनाकर उसे पाश एवं अंकुश (आं क्रों) से वेष्टित करने के वाद उसके वाहर एक वृत्त एवं चतुरस्र का निर्माण करने के उपरान्त वज्र का निर्माण करना चाहिये। इस प्रकार हे मुनिसत्तम! इस महायन्त्र को कहा गया।।१२-१९।।

सुवर्णपट्टे भूर्जे वा नित्यं यः सुसमाहितः।
अष्टगन्धैर्मर्षीं कृत्वा लिखेत्स्वर्णशलाकया ॥२०॥
अस्य धारणमात्रेण साक्षाद्भूमिपुरन्दरः।
मुच्यते मलिनैः कृच्छ्रैर्दु:खैर्घोरतरैरपि ॥२१॥
शान्तिं च शाश्वतीं लब्ध्वा याति तत्परमं पदम्।
स्त्रीणां वामभुजे नित्यं धारणात्किं न सिध्यति ॥२२॥
वन्ध्यापि लभते पुत्रं शतहायनजीवितम्।
दीर्घायुरप्रतिहतबलवीर्यसमन्वितम् ॥२३॥

सोने के पत्र या भोजपत्र पर समाहित चित्त से अष्टगन्ध की स्याही से सोने की शलाका से इस यन्त्र का अंकन करके सोने के तावीज में भरकर धारण करने से मनुष्य पृथ्वी पर साक्षात् इन्द्र के समान हो जाता है; साथ ही मलिन, कृच्छ्र, भयंकर दु:खों से भी छुटकारा पा जाता है। इसके साथ ही साथ वह शाश्वती शान्ति प्राप्त करके श्रीकृष्ण के परम पद को प्राप्त करता है। इसे स्त्रियों द्वारा बाँयीं भुजा में धारण करके

क्या सिद्ध नहीं किया जा सकता? इसके धारण से वन्ध्या स्त्री को भी दीर्घायु के साथ-साथ अप्रतिहत वल-वीर्य से समन्वित सौ वर्ष की आयु वाला पुत्र प्राप्त होता हैं।

विशेष—अष्टगन्ध में अगर, तगर, गोरोचन, केसर, कस्तूरी, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन और सिन्दूर आते हैं।।२०-२३।।

राशिचक्रं विलिख्याथ कुम्भं संस्थाप्य पूर्ववत्।
निक्षिप्य मन्त्रं तन्मध्ये सेकात्सर्वं हि साधयेत्॥२४॥
नित्यदर्शी भवेद्विप्रो महीं शास्ति महीपतिः।
वैश्यः समृद्धिमान् भूयाल्लभेत्पुत्रं यथेप्सितम्॥२५॥
एतत्तु कथितं यन्त्रं पुरुषार्थैकसाधनम्।
केवलं तत्प्रयत्नेन गोपयस्व मुने स्वयम्॥२६॥

इति गौतमीये महातन्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः

●

राशिचक्र को लिखकर पूर्ववत् कलश का स्थापन करके उसके मध्य में मन्त्र को निक्षिप्त करके उससे अभिषेक करने से सभी कार्यों को सिद्ध किया जा सकता है। ऐसा करने से विप्र नित्यदर्शी, क्षत्रिय पृथ्वी का शासक एवं वैश्य धनवान होने के साथ-साथ बहुत पुत्रों से युक्त होता है। इस प्रकार यह पुरुषार्थ के एकमात्र साधक यन्त्र को कहा गया। हे मुने! इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये।।२४-२६।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के द्वाविंश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

त्रयोविंशोऽध्यायः

[मन्त्रोद्धार-प्रसंग, मन्त्रराज-कथन, मन्त्र के ऋषि-छन्द-देवता, मन्त्रजप, जपसंख्या के अनुसार विविध पदार्थों से हवन के फल, अष्टादशाक्षर मन्त्र, अष्टादशाक्षर मन्त्र के ऋषि-छन्द-देवता, मन्त्र का जप, त्रयोदशाक्षर मन्त्र एवं उसके ऋषि-छन्द आदि, भगवान् का ध्यान एवं मन्त्रजप, मन्त्रभेद, मन्त्रोपासना की महिमा, सपरिवार हरि का स्मरण, जपान्त में हवन, कामगायत्री और उसकी महिमा, यन्त्रधारण, तत्तत् पदार्थों से हवन के फल आदि का कथन।]

अथ वक्ष्ये मनुवरं समस्तपुरुषार्थदम्।
यज्ज्ञानात्सिद्धयः सर्वा भवन्ति करसंस्थिताः ॥१॥
लक्ष्मीर्माया कामबीजं ङेऽन्तं कृष्णपदन्तथा।
स्वाहेति मन्त्रराजोऽयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥२॥
नारदो मुनिराख्यातः छन्दोऽनुष्टुबुदीरितम्।
देवता कृष्ण इत्युक्तः समस्तपुरुषार्थदः ॥३॥
षडङ्गं कामबीजेन षड्दीर्घभेदनेन तु।
कलायकुसुमश्यामं वृन्दावनगतं हरिम् ॥४॥
गोपगोपीगवावीतं पीतवस्त्रयुगावृतम्।
नानालङ्कारसुभगं कौस्तभोद्भासिवक्षसम् ॥५॥
सनकादिमुनिश्रेष्ठैः संस्तुतं परया मुदा।
शङ्खचक्रलसद्बाहुं वेणुं हस्तद्वयेरितम् ॥६॥
ध्यात्वैवं परमात्मानं चतुर्लक्षं जपेन्मनुम्।
दशांशं जुहुयान्मन्त्री कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः ॥७॥
भक्त्या त्रिसन्ध्यं च यजेदङ्गैरिन्द्रादिभिस्ततः।
तथा प्रयोगे कुर्वीत धर्मकामार्थमुक्तये ॥८॥
पायसैरयुतं हुत्वा ज्ञानं दिव्यमवाप्नुयात्।
तद्वच्च लवणैर्हुत्वा लोकं सङ्कर्षयेद् ध्रुवम् ॥९॥
पलाशपुष्पैर्जुहुयात् कविर्वाग्मी च जायते।
मत्स्यण्डीकदलीदुग्धघृतपायसतद्धिया ॥१०॥
तर्पयेदयुतं मन्त्री गाङ्गेयेन जलेन वा।
मण्डलाद्विहिता सिद्धिर्भवेन्नैवात्र संशयः ॥११॥

अब समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ, जिसे जानने से सभी सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं। यह मन्त्र लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं) कामवीज (क्लीं), चतुर्थ्यन्त कृष्ण शव्द (कृष्णाय) एवं 'स्वाहा' के योग से निष्पन्न होता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा। यह मन्त्रराज भुक्ति एवं मुक्तिरूपी फल प्रदान करने वाला है। इसके ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण हैं। छः दीर्घ कामबीजों (क्लां, क्लीं, क्लूं, क्लैं, क्लौं, क्लः) से इसका षडंग न्यास करने के उपरान्त वृन्दावन में अवस्थित कलायपुष्प (मटरपुष्प) के सदृश श्याम वर्ण, गोप-गोपियाँ एवं गौओं से घिरे, दो पीत वस्त्रों से आच्छादित, अनेक अलंकारों से शोभायमान, कौस्तुभ मणि से उद्भासित वक्षःस्थल, प्रसन्नतापूर्वक सनकादि महर्षियों द्वारा स्तूयमान, दो हाथों में शंख-चक्र एवं दो हाथों में वेणु धारण किये हुये परमात्मा श्रीहरि का ध्यान करके मन्त्र का चार लाख जप करने के पश्चात् जप का दशांश ब्रह्मवृक्ष (पलाश) के पुष्पों से हवन करना चाहिये; साथ ही तीनों सन्ध्याओं में षडंग पूजन, लोकपालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इसके वाद धर्म-काम-अर्थ-मोक्षरूप चतुर्विध पुरुषार्थ के लिये प्रयोग करना चाहिये।

पायस से दश हजार हवन करने पर दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। उसी प्रकार नमक से हवन करने पर निश्चित रूप से सभी लोकों का आकर्षण होता है। पलाश के फूलों से हवन करने पर साधक कवि एवं वक्ता होता है। शक्कर, केला, दूध, घी, पायस से भी तत्तत् कामनाओं के लिये हवन करना चाहिये। हवन के पश्चात् गंगाजल से तर्पण करना चाहिये। इस विधि से चालीस दिनों तक साधना करने पर निश्चित ही साधक को अभीप्सित सिद्धि प्राप्त हो जाती है; इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिये।।१-११।।

वाग्भवाद्येन जापेन वागीशसमतां व्रजेत्।
व्याघ्रीतत्कुसुमैर्हुत्वा निधिं प्राप्नोत्ययत्नतः ॥१२॥
श्रीवृक्षफलहोमेन राज्यैश्वर्यमवाप्नुयात्।
एवं ते कथितं भक्त्या दुर्लभं मन्त्रनायकम् ॥१३॥
सत्सम्प्रदायसम्प्राप्तं किं न सिद्ध्यति मन्त्रिणः।
अष्टादशार्णो मारान्तो मन्त्रः सुतधनप्रदः ॥१४॥

मन्त्र के आदि में वाग्भवबीज 'ऐं' लगाकर (ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा) जप से साधक वागीश की समता प्राप्त कर लेता है। व्याघ्री (कंटकारि कटैला) के पुष्पों से हवन करने पर अनायास ही निधि की प्राप्ति होती है। श्रीवृक्ष (वेल) के फल से

हवन करने पर राज्यैश्वर्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार दुर्लभ मन्त्रनायक को आपकी भक्ति के वशीभूत होकर मैंने कहा। सत्सम्प्रदाय से प्राप्त इस मन्त्र द्वारा क्या सिद्ध नहीं किया जा सकता अर्थात् सबकुछ सिद्ध किया जा सकता है।।१२-१४।।

नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्रं कथितं बुधैः।
बालकृष्णो देवतास्य समस्तार्थफलप्रदः ।।१५।।
षड्दीर्घभाजा कामेन बीजेनाङ्गक्रिया मता।
इन्दीवरसमाभासं बालं त्रैलोक्यमोहनम् ।।१६।।
लसद्रत्नमयैर्दीप्तैर्मण्डितं बहुभूषणैः।
नानारत्नमयोद्भासिव्याघ्रकामाङ्कुशाङ्गुलम् ।।१७।।
कुन्तलान्तसमुद्भासि स्फुरन्मकरकुण्डलम्।
हस्तिहस्तकराभ्यां च नवनीतं च पायसम् ।।१८।।
दधतं देववृन्दैश्च वेष्टितं गोपबालकैः।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्री द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ।।१९।।

'कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा क्लीं' इस प्रकार का मार (कामबीज) से अन्त होने वाला अट्ठारह अक्षरों का मन्त्र पुत्र और धन प्रदान करने वाला होता है। इसके ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता समस्त पुरुषार्थों को देने वाले बाल कृष्ण कहे गये हैं। छः दीर्घ कामबीज से अर्थात् 'क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः' मन्त्रों से इसका अंगन्यास कहा गया है।

न्यासोपरान्त इन्दीवर (नीलकमल) के सदृश आभायुक्त, त्रैलोक्य का मोहन करने वाले, दीप्त रत्नों से मण्डित बहुविध आभूषणों से शोभायमान, अंगुलियों में अनेकविध रत्नों से प्रकाशमान व्याघ्रनख धारण करने वाले, केशों के नीचे दीप्तिमान मकरकुण्डल धारण करने वाले, हाथी के हाथ (सूँड़)-सदृश हाथों में नवनीत (मक्खन) एवं पायस लिये हुये तथा देवताओं एवं गोपबालकों से चारो ओर से घिरे बालकृष्ण का ध्यान करके मन्त्रज्ञ को मन्त्र का बत्तीस लाख की संख्या में जप करना चाहिये।।१५-१९।।

जपान्ते जुहुयादग्नौ पायसैस्तद्दशांशतः।
तर्पणादीनि सर्वाणि पूर्ववत्समुपाचरेत् ।।२०।।
साधयेत्सर्वकर्माणि सिद्धेनानेन मन्त्रवित्।
रक्तपद्मायुतं हुत्वा द्विजो ज्ञानमवाप्नुयात् ।।२१।।
सर्वलोकैकशास्ता च क्षत्रियो नात्र संशयः।
अन्येषां यद्यदिष्टं तत्साधयेन्मनुनामुना ।।२२।।

उक्त संख्या में जप करने के उपरान्त पूर्ववत् जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध किये गये इस मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक समस्त कार्यों को सिद्ध कर सकता है। लाल कमलपुष्प से दश हजार हवन करके ब्राह्मण ज्ञान प्राप्त करता है एवं क्षत्रिय सभी लोकों का शासक हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य जो भी अभीष्ट हो, उन सभी को इस मन्त्र की साधना से साधक सिद्ध कर सकता है।।२०-२२।।

रक्तपद्मोपरि ध्यात्वा शर्करापृथुलाजकैः ।
कदलीगुडबुद्ध्या च जलैः सन्तर्प्य केशवम् ।।२३।।
वत्सराल्लभते पुत्रं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
अनेन च यद्यदिष्टं जपमात्रेण साधयेत् ।।२४।।

शर्करा, चिवड़ा एवं लावा से निर्मित कृष्ण का लाल कमल पर विराजमान ध्यान करते हुये केला और गुड़ के घोल से एक वर्ष तक तर्पण करने से समस्त लोक द्वारा नमस्कृत पुत्र की प्राप्ति होती है। अन्य भी जो इच्छायें हों, उन सभी को केवल जप से ही पूरा किया जा सकता है।।२३-२४।।

मायारमाकामबीजत्रयाप्तो दशवर्णकः ।
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रो दृष्टादृष्टफलप्रदः ।।२५।।
ऋषिरस्य स्वयं ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
श्रीकृष्णो देवता प्रोक्तो महदैश्वर्यदायकः ।।२६।।
कुर्यादस्य मनोर्मन्त्री कामाद्यैरङ्गपञ्चकम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मपाशाङ्कुशलसत्करम् ।।२७।।
कराभ्यां वेणुमादाय धमन्तं सर्वमोहनम् ।
सूर्यायुतसमाभासं पीताम्बरयुगावृतम् ।।२८।।
नानालङ्कारसुभगं रविमण्डलसंस्थितम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं चतुर्लक्षमनन्यधीः ।।२९।।
जपान्ते तद्दशांशेन पायसैर्होमयेद् द्विजः ।
पूजयेद्यन्त्रराजेन वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।।३०।।

आदि में माया (ह्रीं), रमा (श्रीं) एवं काम (क्लीं) का योग करने से दशाक्षर मन्त्र 'ह्रीं श्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' के रूप में त्रयोदशाक्षर हो जाता है; जो कि दृष्ट-अदृष्ट समस्त फलों को देने वाला होता है। इसके ऋषि स्वयं ब्रह्मा एवं छन्द अनुष्टुप् कहे गये हैं। महान् ऐश्वर्य प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण इसके देवता कहे गये

हैं। छः दीर्घ कामबीजों अर्थात् क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः से इसका पंचांग न्यास किया जाता है। पञ्चाङ्गन्यास में नेत्रों में न्यास नहीं किया जाता।

न्यास करने के बाद शंख, चक्र, गदा, पद्म, पाश एवं अंकुश से सुशोभित छः हाथों वाले, दो हाथों से वेणुवादन करते हुये सबका मोहन करने वाले, दश हजार सूर्य-सदृश प्रकाशमान, दो पीताम्बर वस्त्रों से आवृत, अनेक अलंकारों से शोभायमान, सूर्यमण्डल में अवस्थित श्रीकृष्ण का ध्यान करके बुद्धि को एकाग्र करके मन्त्र का चार लाख जप करने के उपरान्त ब्राह्मण को पायस से जप का दशांश हवन करना चाहिये। तदनन्तर वक्ष्यमाण मार्ग से मन्त्रराज द्वारा इस प्रकार पूजा करनी चाहिये।।२५-३०।।

मध्ये कृष्णं समावाह्य षडङ्गविधिनार्चयेत्।
विंशत्यर्णोदितं विप्र प्रयोगानपि साधयेत्।।३१।।
य एनं भजते मन्त्री भक्त्या च परिपूजयेत्।
राज्यैश्वर्यमवाप्यान्ते भूयात्तत् परमं महः।।३२।।

यन्त्रराज के मध्य में कृष्ण का आवाहन करके षडंग विधान से पूजन करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मण को बीस अक्षरों के मन्त्र में कथित प्रयोगों को सिद्ध करना चाहिये। 'ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह बीस अक्षरों का मन्त्र है। (इसके पूजन यन्त्र का वर्णन बाईसवें अध्याय के श्लोक १२ से १९ तक की व्याख्या में द्रष्टव्य है; तदनुसार ही प्रयोग करना चाहिये।) इससे यन्त्र में भक्तिपूर्वक जो साधक अर्चन करता है, वह इस लोक में राज्यैश्वर्य प्राप्त करके अन्त में परमलोक में वास करता है।।३१-३२।।

काममायारमापूर्वो दशार्णो मनुनायकः।
रमामायाकामपूर्वो दशार्णः सम्प्रकीर्तितः।।३३।।
अनयोर्मन्त्रयोर्मन्त्री आचक्राद्यैः षडङ्गकम्।
कृत्वा दशार्णवत्सम्यग् ध्यानपूजादिकं सुधीः।।३४।।
सपर्यां च चरेद्यस्तु मन्त्रयोरेकमाश्रितः।
इह भुक्त्वा वरान् भोगान् महत्त्वेन समन्वियात्।।३५।।
पुत्रैः पौत्रैः प्रपौत्रैश्च देहान्ते हरितां व्रजेत्।

आदि में काम (क्लीं), माया (ह्रीं) एवं रमा (श्रीं) तथा रमा, माया एवं काम से युक्त दशाक्षर (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा)—ये दोनों ही मन्त्र श्रेष्ठ कहे गये हैं। दोनों मन्त्रों का स्वरूप इस प्रकार होता है—'क्लीं ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' एवं 'श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा'। इन दोनों ही मन्त्रों की साधना में मन्त्रज्ञ को आचक्रादि से षडंग न्यास करना चाहिये। तदनन्तर दशाक्षर मन्त्र के समान सम्यक्

रूप से ध्यान-पूजन आदि करने के उपरान्त किसी एक मन्त्र के आश्रित होकर जो देव का अर्चन करता है, वह इस संसार में श्रेष्ठ भोगों का भोग करते हुये अतिशय सम्मान प्राप्त करता है। साथ ही इस लोक में पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रों से युक्त होकर शरीरान्त होने पर विष्णु का सान्निध्य प्राप्त करता है।।३३-३५।।

अथ वक्ष्ये शृणु मुने प्रतिपत्तिं जगत्पतेः ।।३६।।
इन्द्रादिप्रमुखैर्देवैः सुगुप्ता क्रियते तथा।
कुबेरोऽपि च यां ज्ञात्वा तपस्यन्ब्रह्मणो मुखात् ।।३७।।
महेशसखितां प्राप्य धनेशत्वमवाप्नुयात्।
इन्द्रोऽपि यामुपास्यैव देवराजत्वमाप्तवान् ।।३८।।
त्रैलोक्ये विजयी भूत्वा देवदैत्यैकशासकः।
मायारमादिको ह्यष्टादशार्णो विंशदर्णकः ।।३९।।
अनेन सदृशो मन्त्रस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः।
ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द एव च ।।४०।।
देवता देवतावृन्दवन्द्यः श्रीकृष्ण ईरितः।
अष्टादशार्णवत् कुर्यान्मन्त्रार्णैरङ्गपञ्चकम् ।।४१।।

हे मुने! अब आप मुझसे जगत्पति की प्रतिपत्ति को सुनें; जिसे इन्द्रादि प्रमुख देवगण भी अत्यन्त गुप्त रखते हैं। जिसको ब्रह्मा के मुख से सुनकर कुबेर ने भी तप करते हुये शिवजी की मित्रता को प्राप्त करने के साथ-साथ धनेशत्व भी प्राप्त किया था। जिसकी उपासना करके इन्द्र भी देवराज पद प्राप्त करते हुये तीनों लोकों को जीतकर देवों एवं दैत्यों के एकमात्र शासक हुये थे।

आदि में माया (ह्रीं) एवं रमा (श्रीं) से समन्वित अष्टादशाक्षर मन्त्र विंशाक्षर हो जाता है, जिसका स्वरूप इस प्रकार होता है—'ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपी-जनवल्लभाय स्वाहा'। ऐसा मन्त्र तीनों लोकों में दुर्लभ है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा एवं छन्द गायत्री कहे गये हैं। इसके देवता देवताओं के द्वारा वन्दनीय श्रीकृष्ण कहे गये हैं। अष्टादशाक्षर मन्त्र के समान ही मन्त्रों से इसका पंचांग न्यास करना चाहिये।।३६-४१।।

द्वारवत्यां महोद्याने दीर्घिकाशतमण्डिते।
पारिजातवने रम्ये सुवर्णभूमिमध्यतः ।।४२।।
सर्वरत्नमये चित्रे सुमेरुनिभमण्डपे।
सिंहासने समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।४३।।
रक्तोत्पलसमाभासे पाणिपादाम्बुजं स्मरेत्।
दक्षिणं चरणाम्भोजं रत्नपूर्णघटोपरि ।।४४।।

वामपादाम्बुजं दिव्यं स्वस्तिकाकारकारितम्।
शङ्खचक्रगदापद्मलसद्बाहुचतुष्टयम् ॥४५॥
सर्वाङ्गसुन्दरं देवं सर्वाभरणभूषितम्।
रत्नद्याः समुद्धृत्य सर्वरत्नैश्च रोचितम्॥४६॥
रुक्मिणी सत्यभामा च वामदक्षे च तिष्ठती।
रत्नकुम्भेन रत्नेन सिञ्चन्ती परया मुद्रा॥४७॥
कालिन्दी ऋक्षजा रत्नं दिशन्त्यौ कलशौ तयोः।
नाग्नजिती सुनन्दा च मित्रविन्दा सुलक्षणा॥४८॥
आनीय रत्नकलशं रत्नद्याः समुद्धृतम्।
दिशन्त्यः सर्वमाङ्गल्यं सम्पन्ना महिषी हरेः॥४९॥
ततः षोडसाहस्रं सिञ्चन्त्यः परितः श्रियः।
गीतैर्नृत्यैश्च वाद्यैश्च मुमुदुः सर्वदेवताः॥५०॥
एवं हरिं स्मरन्मन्त्री चतुर्लक्षं जपेन्मनुम्।

द्वारका के सैंकड़ों बावलियों से घिरे महान् उद्यान के सुरम्य पारिजातवन की सुवर्णमय भूमि के मध्य समस्त रत्नों से चित्रित सुमेरु-सदृश मण्ड़प में सिंहासन पर विराजमान, करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा से समन्वित, रक्तकमल की आभायुक्त कर-चरणतल वाले, रत्नपूरित घट पर न्यस्त दक्ष चरण एवं दिव्य स्वस्तिकाकृति पर न्यस्त वाम चरण वाले, रत्नों की नदी से निकाले गये समस्त रत्नों से सुशोभित अनेक आभरणों से अलंकृत सर्वाङ्गसुन्दर शरीर वाले, क्रमशः रुक्मिणी एवं सत्यभामा बाँयें एवं दाहिने अवस्थित होकर रत्नकुम्भ के रत्नों से प्रसन्नतापूर्वक जिनका सिञ्चन कर रही हैं, कालिन्दी एवं जाम्ववती अभिषेकार्थ जिनके कलशों में रत्न भर रही हैं, नाग्नजिती-सुनन्दा-मित्रविन्दा एवं सुलक्षणा रत्ननदी से निकाले गये रत्नकलशों को लाकर जिनका सर्वविध मंगलकार्य कर रही हैं, चारो ओर से सोलह हजार रानियाँ जिनका अभिषेक कर रही हैं एवं समस्त देवगण गीत, नृत्य एवं वाद्य के द्वारा जिन्हें प्रसन्न कर रहे हैं, ऐसे श्रीहरि का स्मरण करते हुये मन्त्रज्ञ को मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिये।।४२-५०।।

जपान्ते पायसैर्दिव्यैर्जुहुयात्तद्दशांशतः॥५१॥
तर्पयेत्तद्दशांशेन भक्तितश्चेन्दुमज्जलैः।
अभिषिच्य दशांशेन ब्राह्मणानपि भोजयेत्॥५२॥
कर्णिकायां लिखेद्बीजं ससाध्यं तद्बहिर्लिखेत्।
शेषसप्तदशार्णेन वह्नेर्गेहयुतं ततः॥५३॥

वृत्ताद्बहिरष्टदलं चतुरस्रं सवज्रकम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं यन्त्रमेतत्सुलक्षणम् ॥५४॥
पूर्वदक्षिणपाश्चात्यकोणे मायां विलिख्य तु ।
श्रीबीजमन्यतो लेख्यं षडर्णं कोणगं तथा ॥५५॥
पत्रे तु कामगायत्री त्रिंशस्त्रिशो विभागशः ।
कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ॥५६॥
इत्युक्त्वा कामगायत्रीं समस्तजनमोहिनीम् ।
कामाद्यजापादस्यास्तु सर्वकर्माणि साधयेत् ॥५७॥
दलमध्ये लिखेत्काममनुं षट्शः क्रमेण तु ।
नमोऽन्ते कामदेवाय सर्वजनप्रियाय च ॥५८॥
सर्वसम्मोहनायेति ज्वलयुग्मं प्रज्वलेति च ।
सर्वस्य जनशब्दान्ते हृदयं मम संवदेत् ॥५९॥
वशं कुरुयुगं प्रोक्त्वा स्वाहान्तो मनुरीरितः ।
प्रोक्तो गोपालमन्त्रोऽयं कामाद्यः साधको मुने ॥६०॥

जप सम्पन्न करने के उपरान्त दिव्य पायस से उसका दशांश हवन करना चाहिये। फिर कर्पूर-मिश्रित जल से भक्तिपूर्वक उसका दशांश तर्पण करके तर्पण का दशांश अभिषेक (मार्जन) एवं अभिषेक का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये।

इसका पूजन यन्त्र इस प्रकार निर्मित किया जाता है। सर्वप्रथम त्रिकोण निर्मित कर उसके मध्य में 'क्लीं' लिखने के उपरान्त मन्त्र के शेष सत्रह अक्षरों से उसे वेष्टित करने के बाद त्रिकोण के वाहर वृत्त बनाकर उसमें अष्टदल बनाना चाहिये। फिर उसके बाहर चार द्वारयुक्त चतुरस्र वनाकर पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम में 'ह्रीं' तथा अन्य कोणों में 'श्रीं' लिखकर षडक्षर मन्त्र लिखना चाहिये। अष्टदल के पत्रों में कामगायत्री के तीन-तीन अक्षरों को लिखना चाहिये। समस्त जनों को मोहित करने वाली कामगायत्री इस प्रकार कही गई है—कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्। इस गायत्री के पहले 'क्लीं' लगाकर जप करने से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। अष्टदल के पत्रों के मध्य में काममाला मन्त्र के छः-छः अक्षरों को लिखना चाहिये। काममाला मन्त्र है—नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा। इसके पहले 'क्लीं' लगाने पर समस्त कामनाओं को साधक यह गोपालमन्त्र कहलाता है।।५१-६०।।

हाटकारचिते पात्रे भूर्जे वापि विलिख्य च ।
साधयेत्साधितं यन्त्रं जपसेकसमन्वयात् ॥६१॥

अस्य धारणमात्रेण किं न सिध्यति भूतले।
राजानो वश्यतां यान्ति दासवत् शत्रुसङ्कुलम् ॥६२॥
त्रैलोक्यमोहनो मन्त्रः सर्वलोकैकपूजितः।

स्वर्ण-निर्मित पत्र पर अथवा भोजपत्र इस यन्त्र को लिखकर जप एवं अभिषेक से साधित करके धारण करने से पृथ्वी पर क्या सिद्ध नहीं किया जा सकता? इसके प्रभाव से राजा लोग वशीभूत होते हैं एवं शत्रुओं का समूह दास के समान हो जाता हैं। त्रैलोक्यमोहन मन्त्र समस्त लोकों में एकमात्र पूजित मन्त्र है।।६१-६२।।

अस्मिन्यन्त्रे समावाह्य राजराजेश्वरं हरिम् ॥६३॥
पूजयेद्भक्तितो मन्त्री सर्वराजोपचारकैः।
कोणषट्कैः षडङ्गं तु तद्बहिश्च विदिग्दले ॥६४॥
वासुदेवं सङ्कर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम्।
सरस्वतीं तथा लक्ष्मीं रुचिं प्रीतिं च दिग्दले ॥६५॥

तद्बहिरष्टमहिषी रुक्मिण्याद्याः प्रपूजयेत् ।
इन्द्रनीलमुकुन्दाख्यान् मकरानन्दकच्छपान् ॥६६॥
शङ्खपद्मनिधींश्चापि तद्बहिः परिपूजयेत् ।
इन्द्रादीन् स्वस्वदिक्ष्वेवं वज्रादींस्तदनन्तरम् ॥६७॥
इति षट्कावृत्तियुतमच्युतं भक्तितोऽर्चयेत् ।
संसारसागरं घोरं वासनानक्रसङ्कुलम् ॥६८॥
सन्तीर्य परमं धाम मन्त्री याति न चान्यथा ।

मन्त्रज्ञ को इस यन्त्र में राजराजेश्वर श्रीकृष्ण का आवाहन करके भक्तिपूर्वक समस्त राजोपचारों से पूजन करना चाहिये। पहले षट्कोण बनाकर उसके बाहर अष्टदल का निर्माण करके उस अष्टदल के पूर्वादि दिशाओं के दल में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध की और आग्नेयादि कोणस्थित दलों में सरस्वती, लक्ष्मी, रुचि एवं प्रीति की पूजा करनी चाहिये। दलों में ही उसके बाहर रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों की पूजा करनी चाहिये। उसके बाहर इन्द्र, नील, मुकुन्द, मकर, आनन्द, कच्छप, शंख

एवं पद्मनिधि की पूजा करनी चाहिये। अपनी-अपनी दिशा में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करने के उपरान्त उनके वज्रादि आयुधों की भी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार छः आवरणों में भक्तिपूर्वक अच्युत की पूजा करके मन्त्रज्ञ साधक वासनारूपी मगर से पूर्ण इस घोर संसारसागर को पार करके हरि के परम धाम में गमन करता हैं।

आवरणपूजन के क्रम में प्रथम आवरण में षट्कोण में षडंग पूजन करने के उपरान्त। द्वितीय आवरण में षट्कोण के बाहर वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सरस्वती, लक्ष्मी, रुचि, प्रीति का पूजन किया जाता है। तदनन्तर तृतीय आवरण में अष्टदल में रुक्मिणी आदि आठ महिषियों का पूजन करके चतुर्थ आवरण में इन्द्र, नील, मुकुन्द, मकर, आनन्द, कच्छप, शंख एवं पद्मनिधि का पूजन सम्पन्न करने के पश्चात् एवं अन्तिम पंचम आवरण में इन्द्रादि दश दिक्पालों का षष्ठ आवरण में लोकपालों के वज्रादि आयुधों का पूजन किया जाता हैं।।६३-६८।।

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं पायसैर्हुनेत् ।।६९।।
अथवा पङ्कजैः फुल्लैः शेषमन्यत् समापयेत् ।
उद्वास्य हृदये विष्णुं न्यस्य न्यासान्यथोदितान् ।।७०।।
तन्मयो विहरेन्मन्त्री तीर्णसंसारसागरः ।

मन्त्र का चार लाख जप करने के उपरान्त पायस अथवा विकसित कमलपुष्पों से जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करने के बाद शेष अन्य कृत्यों का सम्पादन करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रज्ञ को अपने हृदय में विष्णु का विसर्जन करके यथोक्त न्यासों को तत्तत् स्थानों में न्यस्त करने के अनन्तर संसारसागर को पार करके कृष्णमय होकर विहार करना चाहिये।।६९-७०।।

अयुतं रक्तपद्मैस्तु हुत्वा विश्वं वशं नयेत् ।।७१।।
तद्भस्म धारयेद्भाले संस्पृशेद्यं निरीक्षयेत् ।
यैः स्पृष्टो वीक्ष्यते यैर्वा ते भवन्त्यस्य किङ्कराः ।।७२।।
आरक्तहयमारैस्तु राजानो दासवद्वशी ।
शुक्लादिवस्त्रलाभाय शुक्लादिकुसुमैर्हुनेत् ।।७३।।
हुनेद्धान्यसमृद्ध्यै तु आरक्तां धान्यमञ्जरीम् ।
श्रीवृक्षकुसुमैर्होमात्सदा लक्ष्मीः प्रसीदति ।।७४।।

लाल कमलों से दश हजार हवन करके सम्पूर्ण संसार को वशीभूत किया जा सकता है। उस हवन के भस्म को ललाट में धारण करके साधक जिसका स्पर्श करता हैं अथवा जिसको देखता है, वह उसका दास हो जाता है।

लाल हयमार (कनेर) के पुष्प से हवन करने पर राजागण दास के समान वशीभूत

हो जाते हैं। श्वेत वस्त्रादि की प्राप्ति के लिये श्वेत पुष्पों से हवन करना चाहिये। धान्य की समृद्धि के लिये लाल धान्यमंजरी से हवन करना चाहिये। श्रीवृक्ष (बेल) के पुष्पों से हवन करने से लक्ष्मी सदा प्रसन्न रहती है।।७१-७४।।

बिल्वपत्रैश्च जुहुयात् पुत्रपौत्रानुयायिनीम्।
लभेल्लक्ष्मीं न सन्देहस्तत्फलै राज्यमाप्नुयात्।।७५।।
केवलं घृतहोमेन ब्राह्मं तेजश्च जायते।
आयुर्वृद्धिं यशोलक्ष्मीं वश्यतां सर्वयोषिताम्।।७६।।
लभते नात्र सन्देहः सुखं सर्वातिशायिनम्।
घृततण्डुलहोमेन बलवाञ्जायतेऽचिरात्।।७७।।
भक्ष्यभोज्यादिकं हुत्वा भोगः स्याद्यावदायुषम्।
अष्टादशार्णदशयोः प्रयोगांस्तत्र चाचरेत्।।७८।।
अत्रेरिताः प्रयोगास्तु द्वाभ्यामेवं तु कारयेत्।
रत्नाभिषेकं गोपालं योऽनेन विधिना भजेत्।।७९।।
सर्वैश्वर्यसमृद्धोऽपि सर्वभुक् सर्वकारकः।
देहत्यागे हरिं यायादित्येवं मुनयो जगुः।।८०।।

इति गौतमीये महातन्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः

●

बिल्वपत्रों से हवन करने से पुत्र-पौत्रों की अनुगामिनी लक्ष्मी प्राप्त होती है अथवा राज्यप्राप्ति होती है। केवल घृत के हवन से ब्राह्म तेज उदित होता है; साथ ही आयुवृद्धि, यशप्राप्ति, धनप्राप्ति, समस्त स्त्रियों की वश्यता के साथ-साथ अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। घृतसिक्त चावल के हवन से अल्प काल में ही साधक बलवान हो जाता है। भक्ष्य-भोज्य आदि के हवन से मनुष्य आजीवन भोग प्राप्त करता है।

यहाँ पर कथित प्रयोग अष्टादशाक्षर एवं दशाक्षर दोनों ही मन्त्रों द्वारा सम्पन्न करना चाहिये। जो व्यक्ति इस विधि से गोपाल का रत्नाभिषेक करता है, वह समस्त ऐश्वर्य एवं समृद्धियों से युक्त होते हुये समस्त प्रकार के भोगों से सम्पन्न होकर समस्त कार्यों के साधन की क्षमता प्राप्त कर लेता है। साथ ही शरीरत्याग के उपरान्त विष्णुलोक में जाता है, ऐसा मुनियों द्वारा कहा गया है।।७५-८०।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के त्रयोविंश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

चतुर्विंशोऽध्यायः

[मन्त्रोद्धार प्रसंग, षोडशाक्षर मन्त्र, मन्त्र के ज्ञान-ध्यान-स्मरण के फल, ऋषि-छन्द-देवता, श्रीकृष्ण का ध्यान, मन्त्रजप, हवन, पदार्थों के अनुसार हवन के फल, दशाक्षर मन्त्र के ऋषि-छन्द-देवता, श्रीकृष्ण का ध्यान-जप-हवनादि, मन्त्रान्तर एवं उनके ऋषि आदि, सिद्धगोपाल मन्त्र, श्रीरामकृष्ण का ध्यान, दशाक्षर-षोडशाक्षर मन्त्र आदि का कथन।]

नारद उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रुक्मिणीवल्लभं मनुम्।
यज्ज्ञानात् सर्वलोकानां वल्लभो भुवि जायते ॥१॥
नमोऽन्तो भगवान् ङेऽन्तो रुक्मिणीवल्लभस्तथा।
स्वाहान्तस्तारसंयुक्तः षोडशार्णो महामनुः ॥२॥
अस्य ज्ञानात्तथा मन्त्री ज्ञानवाञ्जायतेऽचिरात्।
ध्यानादष्टाङ्गयोगस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥३॥
स्मरणादस्य मन्त्रस्य सर्वतीर्थफलं लभेत्।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥४॥
कृष्णो देवता चास्य रुक्मिणीवलभाह्वयः।
व्यस्तैः समस्तैरङ्गानि पदैः कुर्यात् षडङ्गवित् ॥५॥

नारद जी बोले—अब मैं रुक्मिणीवल्लभ मन्त्र को कहता हूँ; जिसे जानकर साधक संसार में सभी लोकों का प्रिय हो जाता है। सोलह अक्षरों का रुक्मिणीवल्लभ मन्त्र है—ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा। इसके ज्ञानमात्र से मन्त्रज्ञ स्वल्प काल में ही ज्ञानी हो जाता है। इसके ध्यान से साधक निश्चित ही अष्टाङ्गयोगरूप फल प्राप्त करता है। इस मन्त्र के स्मरण करने से समस्त तीर्थों का फल प्राप्त होता है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता रुक्मिणीवल्लभ श्रीकृष्ण कहे गये हैं। षडङ्गज्ञानी को इसका षडंग न्यास मन्त्र के पदों से एवं सर्वांग न्यास पूरे मन्त्र से करना चाहिये; जैसे—ॐ हृदयाय नमः। नमो शिरसे स्वाहा। भगवते शिखायै वषट्। रुक्मिणी कवचाय हुं। वल्लभाय नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्।

इसके पश्चात् ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा से सर्वांग में व्यापक

न्यास करना चाहिये। मन्त्र का उच्चारण करते हुये शिर से लेकर पाँव तक सम्पूर्ण शरीर को स्पर्श करना ही व्यापक न्यास कहलाता है।।१-५।।

अतसीकुसुमश्यामं पीतवस्त्रयुगावृतम्।
नानालङ्कारसुभगं कौस्तुभोद्भासिवक्षसम्॥६॥
श्रीवत्सलाञ्छनं श्रीमद्रत्नाभरणभूषितम्।
द्वारकावरगेहस्थं रत्नसिंहासने शुभे॥७॥
रुक्मिण्यालापमधुरं शङ्खचक्रगदाधरम्।
ध्यात्वैवं परमात्मानं लक्षमेकं जपेन्मनुम्॥८॥
तदन्ते जुहुयान्मन्त्री तिलैर्मधुरसप्लुतैः।
पूजयेद्वैष्णवे पीठे दशाक्षरविधानतः॥९॥
पालाशैः कुसुमैर्हुत्वा दिव्यज्ञानमवाप्नुयात्।
पूर्ववत्तर्पणं कुर्यात् सर्वाभीष्टानि साधयेत्॥१०॥
पुण्डरीकायुतं हुत्वा श्रियमाप्नोत्ययत्नतः।
केवलं घृतहोमेन जीवेद्वर्षशतं सुखी॥११॥
इत्येवं रुक्मिणीनाथविधानं मुनिपूजितम्।
भोगमोक्षकरं यस्मान्मुने त्वमपि गोपय॥१२॥

अतसीपुष्प के समान श्याम वर्ण वाले, दो पीत वस्त्रों से आवृत, अनेकविध अलंकारों से शोभायमान, कौस्तुभ मणि से उद्भासित वक्ष:स्थल वाले, श्रीवत्स से शोभायमान, दीप्तिमान आभरणों से विभूषित, द्वारका के उत्कृष्ट गृह में शुभ रत्नमय सिंहासन पर स्थित होकर रुक्मिणी के साथ मधुर आलाप में संलग्न, शंख-चक्र-गदाधारी परमात्मा का ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। तत्पश्चात् मधुरससिक्त तिल से हवन करके दशाक्षर मन्त्र के विधानानुसार वैष्णवपीठ पर पूजन करने के अनन्तर पलाश के पुष्पों से हवन करने पर दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् पूर्ववत् तर्पणादि करने से समस्त अभीष्टों को सिद्ध किया जा सकता है।

कमल से दश हजार हवन करने पर अनायास ही धन की प्राप्ति होती है। केवल घृत से हवन करने पर साधक सुखपूर्वक सौ वर्षों तक जीवित रहता है। मुनियों द्वारा पूजित रुक्मिणीनाथ के पूजन का यही विधान कहा गया है, जो कि भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है; अत: हे मुने! इसे आपको भी गोपनीय रखना चाहिये।।६-१२।।

प्रणवं नमसश्चान्ते वदेद्भगवते पदम्।
नन्दपुत्रपदं ङेऽन्तं वदेन्नन्दवपुस्तथा॥१३॥
भूत्यन्ते दशवर्णश्च मनुः सर्वार्थसाधकः।

सर्वप्रथम प्रणव (ॐ) फिर क्रमशः नमः, भगवते, चतुर्थ्यन्त नन्दपुत्र एवं नन्दवपु, दशाक्षर मन्त्र और अन्त में भूति (स्वाहा) लगाने से मन्त्र का निष्पन्न स्वरूप इस प्रकार होता है—ॐ नमो भगवते नन्दपुत्राय नन्दवपुषे गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।।१३।।

नारदो मुनिराख्यातश्छन्दः उक्तो विराडपि ।।१४।।
श्रीकृष्णो देवता चात्र चतुर्वर्गफलप्रदः ।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य आचक्राद्यैः प्रकल्पयेत् ।।१५।।
ध्यायेद् वृन्दावने रम्ये गोपगोपीगणावृते ।
नानालङ्कारसुभगं पीताम्बरयुगावृतम् ।।१६।।
सर्वप्रियकरं देवं किशोरं श्यामविग्रहम् ।
वादयन्तं वेणु दोर्भ्यां भुवनैकगुरुं परम् ।।१७।।
एवं ध्यात्वा मनुवरं लक्षमेकं जपेत्तथा ।
तिलैश्च स्वादुसंयुक्तैर्जुहुयात्तद्दशांशतः ।।१८।।
दशाक्षरोदिते पीठे पूजयेत्तद्विधानतः ।
य एवं भजते मन्त्री भोगमुक्त्योः स भाजनम् ।।१९।।
बिल्वपत्रायुतं हुत्वा सर्वकामान् प्रसाधयेत् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा सभायां विजयी भवेत् ।।२०।।
सर्वलोकैकसुभगः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।
देहान्ते तत्पदं याति यद्गत्वा न निवर्तते ।।२१।।

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द विराट् एवं देवता धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप फल को देने वाले श्रीकृष्ण कहे गये हैं। इसका पंचांग न्यास आचक्रादि मन्त्रों से करना चाहिये। इस प्रकार न्यास करने के उपरान्त निम्नवत् ध्यान करना चहिये।

रम्य वृन्दावन में गोपों एवं गोपियों से चतुर्दिक् घिरे हुये, अनेक अलंकारों से शोभायमान, दो पीत वस्त्रों से आवृत, सबों का प्रिय करने वाले, किशोरावस्था वाले, श्याम वर्ण शरीर वाले, हाथों से वेणुवादन करते हुये चतुर्दश भुवनों के एकमात्र गुरुस्वरूप देव वासुदेव का ध्यान करके मन्त्रराज का एक लाख जप एवं जप का दशांश हवन मधु-चीनी से युक्त तिल से करना चाहिये। तदनन्तर दशाक्षर मन्त्र में उक्त पीठ पर विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। जो मन्त्रज्ञ इस प्रकार से साधना करता है, वह भोग एवं मोक्ष दोनों का भागी होता है।

बेलपत्रों से दश हजार हवन करने पर सभी कामनाओं की सिद्धि होती है। मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से सभा में विजय प्राप्त होती है। इसका साधक सभी लोकों में एकमात्र सुन्दर एवं समस्त ऐश्वर्यों से युक्त होता है। साथ ही शरीरान्त होने पर उस लोक में जाता है, जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता।।१४-२१।।

नन्दपुत्रपदं ङेऽन्तं श्यामलाङ्गपदं तथा।
अमृतं मुखवृत्तं च मांसं चैव वपुस्तथा॥२२॥
दशाक्षरान्तः प्रोक्तोऽयं मनुः सर्वसमृद्धिदः।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोनुष्टुबुदाहृतम्॥२३॥
देवता बालकृष्णोऽयं मुनिभिः परिकीर्तितः।
कलयेत् पूर्ववन्मन्त्री चक्राद्यैरङ्गपञ्चकम्॥२४॥

'नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय बालवपुषे गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह मन्त्र समस्त समृद्धियों को देने वाला है। मुनियों द्वारा इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता बालकृष्ण कहे गये हैं। पूर्ववत् आचक्रादि से इसका पंचांग न्यास करना चाहिये।।२२-२४।।

अतसीकुसुमश्यामं शङ्खचक्रलसत्करम्।
वादयन्तं वेणु दोर्भ्यां पीताम्बरयुगावृतम्॥२५॥
नानालङ्कारसुभगं तारहारविराजितम्।
एवं ध्यात्वा जपेद्देवं पञ्चाङ्गैश्च दिशाधिपैः॥२६॥
तदस्त्रैरभिसम्पूज्य जपेल्लक्षं व्रते स्थितः।
दशांशं जुहुयान्मन्त्री पायसैर्मधुराप्लुतैः॥२७॥
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु सर्वकर्माणि साधयेत्।
तिलाज्यैरयुतं हुत्वा ग्रहरोगान् विनाशयेत्॥२८॥
पलाशकुसुमैर्हुत्वा वागीशसमतां व्रजेत्।

अतसीपुष्प के सदृश श्याम वर्ण वाले, हाथों में शंख-चक्र धारण करने वाले, वेणुवादन करते हुये, पीताम्वरयुगल से आवृत, अनेक अलंकारों से शोभायमान एवं तारहार से सुशोभित देव श्रीकृष्ण का ध्यान करके उनका पंचांग पूजन करने के पश्चात् दश दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करने के अनन्तर व्रतानुष्ठान करते हुये मन्त्र का एक लाख जप सम्पन्न करके जप का दशांश हवन त्रिमधुराप्लुत पायस से करना चाहिये। इस प्रकार के अनुष्ठान से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर समस्त कार्यों का साधन करना चाहिये। तिल और गोघृत से हवन करने पर ग्रहजनित रोगों का विनाश होता है। पलाश के फूलों से हवन करने पर साधक को वागीशत्व की प्राप्ति होती है।।२५-२८।।

प्रणवं गोमिनीमाया नमो भगवते पदम्॥२९॥
नन्दपुत्रपदं ङेऽन्तं भूधरो मुखवृक्षयुक्।
मांसं वपुः पदं ङेऽन्तं मूलं विंशतिवर्णकः॥३०॥

नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितम्।
देवता नन्दतनयः सर्वलोकैकनन्दनः ॥३१॥
पञ्चाङ्गानि मनोरस्याचक्राद्यैः परिकल्पयेत्।

'ॐ ग्लौं ह्रीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे कृष्णाय' इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द विराट् एवं देवता समस्त लोकों को आनन्दित करने वाले नन्दपुत्र कृष्ण कहे गये हैं। इस मन्त्र के लिये पंचांग न्यास आचक्रादि मन्त्रों से करना चाहिये।।२९-३१।।

नवीनवारिदश्यामं पद्मपत्रदलेक्षणम् ॥३२॥
मुक्तादामलसत्कण्ठकेयूराङ्गदभूषणम्।
अनेकरत्नसम्बद्धस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥३३॥
उद्दामकौस्तुभोद्भासि वक्षः श्रीवत्सलाञ्छनम्।
बर्हिबर्हकृतोत्तंसं गोपगोपीसमावृतम् ॥३४॥
ध्यात्वैवं परमात्मानं जपेन्मनुवरं ततः।

नूतन मेघ के सदृश श्याम वर्ण वाले, कमलपत्र के सदृश नेत्रों वाले, मुक्तामाला से सुशोभित कण्ठ वाले, केयूर एवं अंगद धारण करने वाले, अनेक रत्नों से देदीप्यमान मकरकुण्ड़ल धारण करने वाले, उद्दाम कौस्तुभ मणि से उद्भासित वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स से शोभायमान, चूड़ा में मयूरपिच्छ धारण करने वाले, गोप-गोपियों से सम्यक् रूप से आवृत परमात्मा का ध्यान करने के उपरान्त मन्त्र का जप करना चाहिये।।३२-३४।।

चतुर्लक्षं जपान्ते तु दशांशं रक्तपङ्कजैः ॥३५॥
होमयेच्छेषमन्यत्तु पूर्ववत्समुपाचरेत्।
दशार्णयन्त्रे विश्वेशं समावाह्य प्रपूजयेत् ॥३६॥
प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्यान्महिषीभिर्द्वितीयका।
तृतीया दिगधीशैव वज्राद्यैस्तु चतुर्थिका ॥३७॥
एवं यः पूजयेत्कृष्णं चतुरावृत्तिसंयुतम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्पूर्ण लभते फलम् ॥३८॥
पायसैरयुतं हुत्वा महाधनपतिर्भवेत्।
पूर्णायुर्लभते मन्त्री अयुतं घृतहोमतः ॥३९॥
दूर्वाणां लक्षहोमेन जीवेद्वर्षशतं सुखी।
इत्येष कथितो मन्त्रः सर्वेषां सर्वसिद्धिदः ॥४०॥

मन्त्र का चार लाख जप सम्पन्न करने के पश्चात् जप का दशांश हवन लाल कमल के फूलों से करने के अनन्तर तर्पणादि शेष कर्मों को भी पूर्ववत् सम्पन्न करना चाहिये।

तदनन्तर पूर्वोक्त दशाक्षर यन्त्र में विश्वेश का आवाहन करके पूजन करना चाहिये। यह पूजा चार आवरणों में सम्पन्न होती है। प्रथम आवरण में षडंग पूजन, द्वितीय आवरण में रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों का पूजन, तृतीय आवरण में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन एवं चतुर्थ आवरण में उन दिक्पालों के वज्रादि दश आयुधों का पूजन किया जाता है। इस पूजा से धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्षरूप फल की प्राप्ति होती है।

पायस से दश हजार हवन करने से साधक महान् धनपति होता है। घी से दश हजार हवन करने से मन्त्री को पूर्ण आयु अर्थात् एक सौ बीस वर्ष की आयु प्राप्त होती है। दूब से एक लाख हवन करने पर साधक सुखपूर्वक सौ वर्षों तक जीवित रहता है। इस प्रकार सभी लोगों को सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाला यह मन्त्र कहा गया है।।३५-४०।।

अथापरं प्रवक्ष्यामि मनुं सर्वसमृद्धिदम्।
यज्ज्ञानान्मुनयः सर्वे भोगमोक्षैकभूमयः ॥४१॥
लीलादण्डधरं चोक्त्वा गोपीजनपदं ततः।
सुदोर्दण्डपदं चोक्त्वा मेघश्यामपदं ततः ॥४२॥
लीलादण्डावुभौ गोपीजनसंसदो पदम्।
दण्डान्ते बालरूपेति मेघश्यामपदं पुनः ॥४३॥
भगवान् विष्णुरित्युक्त्वा वह्निजायान्तको मनुः।
विष्णवे स्वाहेति मन्त्रोऽयं समस्तपुरुषार्थदः ॥४४॥

अब समस्त प्रकार की समृद्धियों को देने वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ; जिसके ज्ञान से सभी मुनिगण भोग-मोक्ष को देने वाले हुये हैं। समस्त पुरुषार्थों को देने वाला वह मन्त्र इस प्रकार है—लीलादण्डधर गोपीजन सुदोर्दण्ड मेघश्याम लीलादण्डधर गोपीजनसंसददण्ड वालरूप मेघश्याम भगवते विष्णवे स्वाहा (?)।।४१-४४।।

नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
देवता तु श्रीकृष्णोऽस्य सर्वविश्वार्थसाधकः ॥४५॥
पदैः पञ्चाङ्गक्लृप्तिः स्यात्ततो ध्यायेदथाच्युतम्।

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता समस्त विश्व के अर्थसाधक श्रीकृष्ण कहे गये हैं। मन्त्र के पदों से पंचाङ्ग न्यास करने के उपरान्त अच्युत श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये।।४५।।

तापिच्छकुसुमश्यामं सदा षोडशवार्षिकम् ॥४६॥
गोपीमध्यस्थितं ताभ्यां लिङ्गितं कामहृच्छया।
सर्वालङ्कारसुभगं पीताम्बरधरं परम् ॥४७॥

भुवनैकगुरुं ध्यात्वा लक्षमेकं जपेन्मनुम्।

तापिच्छपुष्प के सदृश श्याम वर्ण वाले, सदा षोडशवर्षीय, गोपियों के मध्य स्थित होकर उनके द्वारा कामेच्छा से आलिङ्गित, समस्त अलंकारों से सुशोभित, पीताम्बर धारण करने वाले, चतुर्दश भुवन के एकमात्र गुरु का ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये।।४६-४७।।

दशांशं कमलैर्हुत्वा शेषमन्यत् समापयेत्।।४८।।
तर्पयेन्नित्यशो देवं दुग्धबुध्या शुभैर्जलैः।
मण्डलाद्वाञ्छिता सिद्धिर्महाधनपतिर्भवेत्।।४९।।
य इमं भजते मन्त्रं जपहोमादितत्परः।
वाञ्छितानि हि तांल्लब्ध्वा देहान्ते तत्पदं व्रजेत्।।५०।।

निर्धारित संख्यक जप पूर्ण करने के पश्चात् जप का दशांश हवन कमल से करके शेष पूजन समाप्त करना चाहिये। जल में दुग्धबुद्धि रखते हुये नित्य तर्पण करना चाहिये। चालीस दिनों तक इस क्रिया को करने से साधक अभीष्ट-सिद्धि को प्राप्त कर अतिशय धनवान हो जाता है। जो व्यक्ति जप-हवनादि में तत्पर होकर इस मन्त्र की उपासना करता हैं, वह इस संसार में अपने समस्त अभीष्टों को प्राप्त करके शरीरान्त होने पर कृष्ण के परम पद को प्राप्त करता है।।४८-५०।।

वेदादिकमलामायाकामबीजमथो वदेत्।
श्रीकृष्णं च पदं ङेऽन्तं गोविन्दं च तथा वदेत्।।५१।।
गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभं ङेऽन्तमीरयेत्।
कामान्तं च रमाबीजं स प्रोक्तो मन्त्रनायकः।।५२।।
सिद्धगोपालमन्त्रोऽयं सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम्।
बीजैः पदैश्च पञ्चाङ्गं कृत्वा ध्यायेदथाच्युतम्।।५३।।

'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय क्लीं श्रीं' यह सिद्धगोपाल मन्त्र मनुष्यों के लिये समस्त प्रकार की सिद्धियों को देने वाला कहा गया है। इस मन्त्र के बीजों एवं पदों से पञ्चाङ्ग न्यास करने के उपरान्त अच्युत श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये।।५१-५३।।

पक्षिराजकृतच्छायौ सुरद्रुमतलासिनौ।
शङ्खेन्दुमरकताभौ दध्युत्थपायसाशिनौ।।५४।।
अलकैरावृतमुखौ ग्रहयुक्तौ यथाविधिः।
नानालङ्कारसुभगौ कौस्तुभामुक्तकन्धरौ।।५५।।
तारहारावलीरम्यौ सर्वाश्चर्यमयौ शिशू।
त्रैलोक्यशरणौ श्रीमद्रामकृष्णौ स्मरञ्जपेत्।।५६।।

लक्षमेकं मनुवरं दशांशं श्रीफलैर्हुनेत् ।
होमान्ते विधिवन्मन्त्री शेषमन्यत्समापयेत् ।।५७।।
दशाक्षरोदिते पीठे वक्ष्यमाणेन पूजयेत् ।
षडङ्गं केशवे यष्ट्वा दिगीशान् प्रहरणान्यपि ।।५८।।
एवं त्रयावृत्तिमयं सम्पूज्य पुरुषोत्तमम् ।
दुग्धबुध्या चलैर्नित्यं तर्पयेदिष्टसिद्धिदम् ।।५९।।

पक्षिराज गरुड़ द्वारा की गई छाया में देववृक्ष के नीचे आसीन, शंख एवं मरकत के सदृश कान्ति वाले, दधि-मिश्रित पायस का भक्षण करने वाले, अलकों से आवृत मुख वाले, विधिपूर्वक ग्रहयुक्त, अनेक अलंकारों से सुशोभित, कन्धे पर प्रकाशित कौस्तुभ मणि वाले, तारहारावली से मनोहर, सबके लिये आश्चर्यकारक, तीनों लोकों के शरणभूत, वालस्वरूप श्रीराम एवं कृष्ण का स्मरण करके मन्त्र का एक लाख जप करके जप का दशांश हवन बेल के फलों से करने के उपरान्त साधक को शेष कर्मों को भी सविधि सम्पन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् दशाक्षर यन्त्र के पीठ पर वक्ष्यमाण क्रम से पुरुषोत्तम का पूजन करना चाहिये—

षट्कोण के बाहर भूपुर बनाकर षडंग पूजन, इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन एवं उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करने से यह पूजा तीन आवरणों में सम्पन्न होती है। पूजन के अनन्तर जल में दुग्धबुद्धि रखते हुये उसी जल से इष्टसिद्धि प्रदान करने वाला तर्पण करना चाहिये।।५४-५९।।

लक्ष्मीमायाकामबीजैर्दशार्णं पुटयेत्क्रमात् ।
षोडशार्णो मनुः साक्षान्महालक्ष्मीः प्रयच्छति ।।६०।।
ब्रह्मा ऋषिः समुद्दिष्टो गायत्री छन्द ईरितम् ।
महासम्पत्प्रदः श्रीमान् देवता कृष्ण ईरितः ।।६१।।
दशार्णवदस्य क्लृप्तिर्ध्यायेद्देवमनन्यधीः ।
कालाभ्रनिचयप्रख्यपाणिपादाम्बुजारुणम् ।।६२।।
ताराहारावलीरम्यं कौस्तुभामुक्तवक्षसम् ।
किरीटकेयूरग्रैवेयकङ्कणोर्मिविराजितम् ।
ध्यायेद्रत्नगृहान्तस्थरक्तपङ्कजमध्यगम् ।।६३।।
चतुर्लक्षजपेन्मन्त्रं पायसैरयुतं हुनेत् ।
तर्पणादीनि सर्वाणि पूर्वोक्तविधिनाचरेत् ।।६४।।
य एनं भजते मन्त्री लक्ष्मीगोपालविग्रहम् ।
स सर्वसम्पदं लब्ध्वा यात्यानन्त्यमयत्नतः ।।६५।।

इति गौतमीये महातन्त्रे चतुर्विंशोऽध्यायः

●

लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं) एवं कामबीज (क्लीं) से पुटित दशाक्षर (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) मन्त्र षोडशाक्षर होकर साक्षात् महालक्ष्मी-स्वरूप हो जाता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा क्लीं ह्रीं श्रीं। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता महान् सम्पत्ति प्रदान करने वाले श्रीमान् श्रीकृष्ण कहे गये हैं। दशाक्षर मन्त्र के सदृश ही इसके अंगों की कल्पना एकाग्र होकर करनी चाहिये।

काले मेघों के सदृश कान्ति वाले, रक्तवर्ण हाथ एवं पैर वाले, तारहारावली से मनोहर, कौस्तुभ धारण करने वाले, किरीट-केयूर-ग्रैवेय एवं कङ्कण से सुशोभित, रत्नगृह के भीतर रक्त कमल के मध्य में विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का चार लाख जप करने के उपरान्त पायस से दश हजार हवन करने के पश्चात् शेष तर्पणादि समस्त कर्मों को पूर्वोक्त विधि के अनुसार सम्पन्न करना चाहिये। जो साधक इस प्रकार लक्ष्मीगोपाल के विग्रह की उपासना करता है, वह समस्त सम्पत्तियों को प्राप्त करके देहान्त होने पर परमपद-लाभ करता है।।६०-६५।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के चतुर्विंश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

पञ्चविंशोऽध्यायः

[मन्त्रोद्धार-प्रसंग, द्वादशाक्षर मन्त्र एवं उसके ऋषि-छन्द-देवता आदि, श्रीकृष्ण का ध्यान, मन्त्रजप-हवन आदि, श्रीकृष्ण के द्वारपालों का पूजन, विघ्नेश आदि का पूजन, वास्तुपुरुष का पूजन, गुरु पद की निरुक्ति, नारदादि गुरु आदि का पूजन, पादुका पद-निरुक्ति, पीठपूजन, श्रीकृष्ण-मूर्त्तिस्थापन की महिमा, मन्त्रान्तर एवं उनके ऋषि आदि, श्रीकृष्णध्यान-पूजन-हवन आदि, विविध पदार्थों के हवन के फल आदि का कथन।]

नारद उवाच

अथापरं प्रवक्ष्यामि मन्त्रराजं सुदुर्लभम्।
अवापुर्येन जप्तेन दिव्यं ज्ञानं मुनीश्वराः ॥१॥
भ्रष्टराज्यं सुरश्रेष्ठोऽवापुर्यदुपासनात्।
अन्येऽपि बहवो देवाः स्वस्वाधिकारतां गताः ॥२॥
त्रिमात्रं हृद्भगवते श्रीगोविन्दायेति तन्मनुः।
द्वादशाक्षर इत्युक्तो मन्त्रः सर्वसमृद्धिदः ॥३॥
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितः।
श्रीकृष्णो देवता प्रोक्तः सर्वदेवनमस्कृतः ॥४॥
विनियोगोऽस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टये।
व्यस्तैः पदैः समस्तैश्च पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥५॥
सृष्टिसंहृतिस्थित्या च करशोधनमाचरेत्।
स्थित्यन्तं दशतत्त्वञ्च मातृकां मनुसम्पुटाम् ॥६॥
तत्त्वन्यासं तथा कृत्वा केशवादिपुरःसरम्।

नारद जी बोले—अब अन्य अत्यन्त दुर्लभ मन्त्रराज को कहता हूँ, जिसका जप करके मुनीश्वरों ने दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है। इसी मन्त्र की उपासना से भ्रष्टराज्य इन्द्र ने अपना राज्य पुनः प्राप्त किया है और इसी की उपासना से बहुत से अन्य देवताओं ने अपना-अपना अधिकार प्राप्त किया है। वह द्वादशाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमो भगवंते श्रीगोविन्दाय। यह मन्त्र सभी समृद्धियों को देने वाला है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द विराट् एवं देवता समस्त देवताओं द्वारा नमस्कृत श्रीकृष्ण कहे गये हैं। पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। मन्त्र के व्यस्त

एवं समस्त पदों से इसके पंचांगों की कल्पना करनी चाहिये; जैसे—ॐ हृदयाय नमः, नमो शिरसे स्वाहा, भगवते शिखायै वषट्, श्रीगोविन्दाय कवचाय हुं, ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय अस्त्राय फट्।

सृष्टि, संहार एवं स्थितिन्यास द्वारा करशुद्धि करनी चाहिये। मन्त्राक्षरों से सम्पुटित दश तत्त्वन्यास एवं केशवादि न्यास भी सृष्टि-संहार-स्थितिक्रम से सम्पन्न करके भगवान् का ध्यान करना चाहिये।

सृष्टि करन्यास—
ॐ ॐ ॐ नमः दक्षाङ्गुष्ठे।
ॐ नं ॐ नमः दक्षतर्जन्याम्।
ॐ मों ॐ नमः दक्षमध्यमायाम्
ॐ भं ॐ नमः दक्षानामायाम्।
ॐ गं ॐ नमः दक्षकनिष्ठायाम्।
ॐ वं ॐ नमः वामकनिष्ठायाम्।
ॐ तें ॐ नमः वामानामायाम्।
ॐ श्रीं ॐ नमः वाममध्यमायाम्।
ॐ गों ॐ नमः वामतर्जन्याम्।
ॐ विं ॐ नमः वामाङ्गुष्ठे।
ॐ न्दां ॐ नमः करतले।
ॐ यं ॐ करपृष्ठे।

उपर्युक्त सृष्टिन्यास को दाँयें अंगूठे से आरम्भ करके बाँयें अंगूठे से होते हुये कनिष्ठा तक पूरा करने से स्थितिन्यास होता है। बाँयें अंगूठे से आरम्भ करके दाँयें कनिष्ठा से होते हुये अंगूठे तक न्यास करने से संहारन्यास होता है। इसी प्रकार मन्त्रवर्णों से दश तत्त्वन्यास भी संहार-सृष्टिक्रम से करना चाहिये; जैसे—

संहार मन्त्रवर्णन्यास (दश तत्त्व)—
पादयोः नं नमः पराय पृथिवीतत्त्वात्मने नमः।
लिङ्गे मों नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः।
हृदि भं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने नमः।
मुखे गं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः।
शिरसि वं नमः पराय आकाशतत्त्वात्मने नमः।
हृदि तें नमः पराय अहंकारतत्त्वात्मने नमः।
हृदि गों नमः पराय महत्तत्त्वात्मने नमः।

सर्वगात्रे विं नमः पराय प्रकृतितत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे न्दां नमः पराय पुरुषतत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे यं नमः पराय परतत्त्वात्मने नमः।

सृष्टिन्यास (दश तत्त्व)—
सर्वगात्रे यं नमः पराय परतत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे न्दां नमः पराय पुरुषतत्त्वात्मने नमः।
सर्वगात्रे विं नमः पराय प्रकृतितत्त्वात्मने नमः।
हृदि गों नमः पराय महत्तत्त्वात्मने नमः।
हृदि तें नमः पराय अहंकारतत्त्वात्मने नमः।
शिरसि वं नमः पराय आकाशतत्त्वात्मने नमः।
मुखे गं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः।
हृदि भं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने नमः।
लिङ्गे मों नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः।
पादयोः नं नमः पराय पृथ्वीतत्त्वात्मने नमः।

मन्त्रमातृका न्यास (सृष्टिक्रम)—
शिरसि नं नमः मध्यमया।
नेत्रयोः मों नमस्तर्जनीमध्यमाभ्याम्।
कर्णयोः भं नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
घ्राणे गं नमोऽङ्गुष्ठानामिकाभ्याम्।
मुखे वं नमः सर्वाङ्गुलिभिः।
हृदि तें नमोऽङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम्।
नाभौ गों नमोऽङ्गुष्ठमध्यमाभ्याम्।
लिङ्गे विं नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
जानुनि न्दां नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
पादयोः यं नमः सर्वाङ्गुलिभिः।

स्थितिक्रम—
हृदि नं नमोऽङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम्।
नाभौ मों नमोऽङ्गुष्ठमध्यमाभ्याम्।
लिङ्गे भं नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
जानुनि गं नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
पादयोः वं नमः सर्वाङ्गुलिभिः।

शिरसि तें नमः मध्यमया।
नेत्रयोः गों नमः मध्यमातर्जनीभ्याम्।
कर्णयोः विं नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
घ्राणे न्दां नमोऽङ्गुष्ठानामिकाभ्याम्।
मुखे यं नमः सर्वाङ्गुलिभिः।

संहारक्रम—
पादयोः नं नमः सर्वाङ्गुलिभिः।
जानुनि मों नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
लिङ्गे भं नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
नाभौ गं नमोऽङ्गुष्ठमध्यमाभ्याम्।
हृदि वं नमोऽङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम्।
मुखे तें नमः सर्वाङ्गुलिभिः।
घ्राणे गों नमोऽङ्गुष्ठानामिकाभ्याम्।
कर्णयोः विं नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरङ्गुलिभिः।
नेत्रयोः न्दां नमः मध्यमातर्जनीभ्याम्।
मूर्ध्नि यं नमः मध्यमया।

इस न्यास के बाद केशवमातृका न्यास इस प्रकार करना चाहिये—
ॐ अं केशवकीर्तिभ्यां नमः ललाटे।
ॐ आं नारायणकान्तिभ्यां नमः मुखवृत्ते।
ॐ इं माधवपुष्टिभ्यां नमः दक्षनेत्रे।
ॐ ईं गोविन्दातुष्टिभ्यां नमः वामनेत्रे।
ॐ उं विष्णुधृतिभ्यां नमः दक्षकर्णे।
ॐ ऊं मधुसूदनशान्तिभ्यां नमः वामकर्णे।
ॐ ऋं त्रिविक्रमक्रियाभ्यां नमः दक्षनासायाम्।
ॐ ॠं वामनदयाभ्यां नमः वामनासायाम्।
ॐ ऌं श्रीधरमेधाभ्यां नमः दक्षगण्डे।
ॐ ॡं हृषीकेशहर्षाभ्यां नमः वामगण्डे।
ॐ एं पद्मनाभश्रद्धाभ्यां नमः ओष्ठे।
ॐ ऐं दामोदरलज्जाभ्यां नमः अधरे।
ॐ ओं वासुदेवलक्ष्मीभ्यां नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ।
ॐ औं सङ्कर्षणसरस्वतीभ्यां नमः अधोदन्तपंक्तौ।

ॐ अं प्रद्युम्नप्रीतिभ्यां नम: मस्तके।
ॐ अ: अनिरुद्धरतिभ्यां नम: मुखे।
ॐ कं चक्रीजयाभ्यां नम: दक्षबाहुमूले।
ॐ खं गदीदुर्गाभ्यां नम: दक्षकूर्परे।
ॐ गं शार्ङ्गीप्रभाभ्यां नम: दक्षमणिबन्धे।
ॐ घं खड्गीसत्याभ्यां नम: दक्षाङ्गुलिमूले।
ॐ ङं शङ्खीचण्डाभ्यां नम: दक्षाङ्गुल्यग्रे।
ॐ चं हलीवाणीभ्यां नम: वामबाहुमूले।
ॐ छं मुसलीविलासिनीभ्यां नम: वामकूर्परे।
ॐ जं शूलीविजयाभ्यां नम: वाममणिबन्धे।
ॐ झं पाशीविरजाभ्यां नम: वामाङ्गुलिमूले।
ॐ ञं अङ्कुशीविश्वाभ्यां नम: वामाङ्गुल्यग्रे।
ॐ टं मुकुन्दविनदाभ्यां नम: दक्षपादमूले।
ॐ ठं नन्दजसुनन्दाभ्यां नम: दक्षजानुनि।
ॐ डं नन्दीसत्याभ्यां नम: दक्षगुल्फे।
ॐ ढं नर ऋद्धिभ्यां नम: दक्षपादाङ्गुलिमूले।
ॐ णं नरकजित्समृद्धिभ्यां नम: दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
ॐ तं हरिशुद्धिभ्यां नम: वामपादमूले।
ॐ थं कृष्णबुद्धिभ्यां नम: वामजानुनि।
ॐ दं सत्यमुक्तिभ्यां नम: वामगुल्फे।
ॐ धं सात्वतमतिभ्यां नम: वामपादाङ्गुलिमूले।
ॐ नं सौरिक्षमाभ्यां नम: वामपादाङ्गुल्यग्रे।
ॐ पं शूररमाभ्यां नम: दक्षपार्श्वे।
ॐ फं जनार्दनोमाभ्यां नम: वामपार्श्वे।
ॐ बं भूधरक्लेदिनीभ्यां नम: पृष्ठे।
ॐ भं विश्वमूर्तिक्लिन्नाभ्यां नम: नाभौ।
ॐ मं वैकुण्ठसुधाभ्यां नम: उदरे।
ॐ यं त्वगात्मभ्यां पुरुषोत्तमवसुदाभ्यां नम: हृदये।
ॐ रं असृगात्मभ्यां बलीपराभ्यां नम: दक्षांसे।
ॐ लं मांसात्मभ्यां बलानुजपराभ्यां नम: ककुदि।
ॐ वं मेदात्मभ्यां बालसूक्ष्माभ्यां नम: वामांसे।
ॐ शं अस्थ्यात्मभ्यां वृषघ्नसन्ध्याभ्यां नम: हृदादिदक्षकरे।

ॐ षं मज्जात्मभ्यां वृषप्रज्ञाभ्यां नमः हृदादिवामकरे।
ॐ सं शुक्रात्मभ्यां हंसप्रभाभ्यां नमः हृदादिदक्षपादे।
ॐ हं प्राणात्मभ्यां वराहनिशाभ्यां नमः हृदादिवामपादे।
ॐ ळं शक्त्यात्मभ्यां विमलमेघाभ्यां नमः हृदयाद्युदरे।
ॐ क्षं क्रोधात्मभ्यां नृसिंहविद्युद्भ्यां नमः हृदादिमुखे।

इस न्यास के बाद सृष्टि-स्थिति-संहारक्रम से मातृकान्यास करना चाहिये।।१-६।।

जनिपालनसंहारविधानैकविशारदम् ।।७।।
कलापकुसुमश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
अनेकरत्नाभरणं दीप्तविश्वावकाशकम् ।।८।।
तथैवासनसूनाभपीतवस्त्रयुगावृतम् ।
श्रीवत्सलक्षणं देवं कौस्तुभोद्भासिवक्षसम् ।।९।।
वेणुवाद्यविनोदेन मोहयन्तं चराचरम् ।
मुनिवृन्दैर्देववृन्दैर्ऋषिवृन्दैस्तु संस्तुतम् ।।१०।।
आवृत्तं महिषीवृन्दैर्निधिभिः परिसेवितम् ।
अथवा तप्तहेमाभकान्त्याक्रान्तजगत्त्रयम् ।।११।।
कल्पद्रुमतलासीनं रत्नसिंहासनोपरि ।
ध्यात्वा जपेन्मनुवरं लक्षद्वादशमादरात् ।।१२।।
वार्ताकर्णनमात्रं हि स्त्रीणां त्यक्त्वा वने स्थितः ।
पयोमूलफलाशी वा पूर्वोक्ताचारपालकः ।।१३।।
दशांशं जुहुयाद्भक्त्या कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः ।
ततः पूर्वोक्तविधिना शेषमन्यत्समापयेत् ।।१४।।

जनन, पालन एवं संहारविधान में प्रवीण, कलायपुष्प के सदृश श्याम वर्ण वाले, नीलकमल के सदृश नयनों वाले, नानाविध रत्नमय आभरणों की कान्ति से समस्त विश्व को कान्तिमान करने वाले, पीत वस्त्रों से आवृत होकर रत्नमय आसन पर आसीन, श्रीवत्स चिह्नयुक्त वक्षःस्थल पर कौस्तुभ धारण करने वाले, वेणु की ध्वनि से चराचर को मोहित करने वाले, मुनियों देवताओं एवं ऋषियों द्वारा सम्यक् प्रकार से स्तुत, राजमहिषियों से आवृत एवं निधियों से चारो ओर से आच्छादित, अथवा तप्त स्वर्णमयी आभा से तीनों जगत् को आक्रान्त किये हुये, कल्पवृक्ष के नीचे रत्नमय सिंहासन पर आसीन देवविग्रह का ध्यान करने के बाद आदर के साथ मन्त्रराज का बारह लाख जप करना चाहिये। जपकर्त्ता को स्त्रियों की वार्ता का त्याग कर वन में निवास करते हुये अथवा दुग्ध, मूल एवं फल का आहार ग्रहण करते हुये पूर्वोक्त आचार का

पालन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक जप का दशांश एक लाख बीस हजार की संख्या में पलाश के पुष्पों से हवन करना चाहिये। तदनन्तर अवशिष्ट अन्य कार्यों का पूर्वोक्त विधि से निष्पादन करना चाहिये।।७-१४।।

गोष्ठे प्रतिष्ठितं देवमथाऽरण्ये पुरोदिते।
प्रासादे वा प्रतिष्ठाप्य पूजयन्भोगमोक्षभाक् ॥१५॥
वृन्दावनगतं ध्यायेन्महामाणिक्यमण्डपम्।
सामान्यार्घं विशोध्याथ पूजयेद्द्वारपालकान् ॥१६॥
द्वाराग्रबलिपीठे च पक्षीन्द्रं परिपूजयेत्।
जयं च विजयञ्चैव बलप्रबलसंज्ञकौ ॥१७॥
चण्डम्प्रचण्डमथ च धातारं च विधारणम्।
द्वारेषु पूर्वादिषु तान् प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ॥१८॥
द्वारोर्ध्वे द्वारश्रियं यष्ट्वा देहल्यां देहलीं जयेत्।
द्वारस्य पार्श्वयोस्तद्वद्गङ्गाञ्च यमुनान्तथा ॥१९॥
विघ्नेशं क्षेत्रपालञ्च तयोः पार्श्वे प्रपूजयेत्।
दूर्वाक्षतान् समादाय विघ्नानुत्सार्य बाह्यतः ॥२०॥
पादाघातकरास्फोटसमुदञ्चितवक्त्रकैः ।
विघ्नं त्रिविधमुत्सार्य अस्त्रमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥२१॥
कोणेषु विघ्नं दुर्गां च वाणीं क्षेत्रेशमर्चयेत्।
अर्चयेद्वास्तुपुरुषं गृहमध्ये समाहितः ॥२२॥

गोशाला में अथवा पूर्वोक्त जंगल में अथवा मन्दिर में देव को प्रतिष्ठित करके पूजा करने से साधक भोग-मोक्ष का पात्र होता है। वृन्दावन में माणिक्य-मण्ड़प में विराजमान देव का ध्यान करते हुये सामान्य अर्घ्य का शोधन करके द्वारों के आगे द्वारपालों की एवं अवनिपीठ अर्थात् बलिपीठ पर पक्षिराज गरुड़ की पूजा करनी चाहिये। पूर्व द्वार पर जय-विजय की, दक्षिण द्वार पर बल-प्रबल की, पश्चिम द्वार पर चण्ड-प्रचण्ड की एवं उत्तर द्वार पर धाता-विधाता की पूजा करनी चाहिये। सभी द्वारों के ऊपर द्वारलक्ष्मी की एवं देहली पर देहली की पूजा करनी चाहिये। द्वारों के पार्श्वों में गंगा-यमुना की एवं उनके पार्श्व में गणेश एवं क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिये। सर्षप एवं अक्षत लेकर बाहर से विघ्नों का उत्सारण करने के उपरान्त मन्त्रज्ञ को ऊपर की ओर मुख करके बाँयीं एंड़ी को तीन बार पटककर और तीन ताली वजाकर अस्त्रमन्त्र से त्रिविध विघ्नों का उत्सारण करना चाहिये। तदनन्तर कोणों में विघ्न, दुर्गा, वाणी एवं क्षेत्रेश का पूजन करने के उपरान्त गृहमध्य में समाहित चित्त से वास्तुपुरुष का पूजन करना चाहिये।।१५-२२।।

तारस्याङ्गं पदं ङेऽन्तं सपूर्वञ्च शराय च।
हुं फट् नम इति प्रोक्त्वा मुद्रया यैः स्थितो हरेः ॥२३॥
विधेयमेतत्सर्वत्र स्थापिते तु विशेषतः।
आसने सूपविष्टस्तु तन्मन्त्रेण विधानवित् ॥२४॥
न्यासान्न्यस्य स्वदेहे च आत्मयागावसानकम्।
दशाक्षरोक्तविधिना पीठं सम्पाद्य पूजयेत् ॥२५॥
नारदादिगुरूनिष्ट्वा महाभागवतान् यजेत्।

'ॐ शार्ङ्गाय सशराय हुं फट् नमः' यह मन्त्र कहकर मुद्रा में स्थापित कृष्ण की विशेष पूजा करनी चाहिये। विधिज्ञ को आसन पर सम्यक् रूप से आसीन होकर उक्त मन्त्र से अपने शरीर में न्यास करने के उपरान्त आत्मयाग करके दशाक्षर मन्त्रोक्त विधि से पीठ स्थापित करके पूजन करना चाहिये। तदनन्तर नारदादि गुरुओं का यजन करके श्रेष्ठ भागवतों की पूजा करनी चाहिये।।२३-२५।।

गुकारं मरणं विद्याद्रुकारस्तद्विशोधकः ॥२६॥
गुरुरित्येव मुनिभिः प्रोक्तः कृष्णैकयोगतः।
नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकम् ॥२७॥
विष्वक्सेनं च शैनेयं वाद्यादीशानमर्चयेत्।
गुरुं परगुरुं चापि परमेष्ठिगुरुं तथा ॥२८॥
परापरगुरुं तद्वत्पूर्वसिद्धाननन्तरम्।
सनकश्च सनन्दश्च सनत्कुमारसंज्ञकम् ॥२९॥
सनातनाश्च इत्यादि परान् भागवतांस्तथा।
गुरोर्नाम प्रकृत्यैव पादुकाभ्यो नमो वदेत् ॥३०॥
अपायात्पाति नियतं दुःसङ्गान् दुर्निमित्तकान्।
कामितार्थप्रदानाय पादुका परिकीर्तिताः ॥३१॥
गत्यर्थे चरधातुश्च णश्चानन्द इहोच्यते।
आनन्दं प्रापयेद्यस्मात्तस्माच्चरणमुच्यते ॥३२॥

'गुरु' शब्द में 'गु' अक्षर का अर्थ है—मरण एवं 'रु' का अर्थ है उस मरण का विशोधक। तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति मरण (मल) का विशेष रूप से शोधन करने वाला हो, वही 'गुरु' पदवाच्य होता है। इसीलिये मुनियों ने कृष्ण को 'गुरु' कहा है।

कृष्ण के भक्तों में नारद, पर्वत, विष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, शैनेय का अर्चन आरम्भ से ईशान-पर्यन्त करना चाहिये। इसके पश्चात् गुरु, परमगुरु, परमेष्ठि गुरु, परापर गुरु तथा पूर्वसिद्धों का अर्चन करने के उपरान्त सनक, सनन्दन,

सनत्कुमार, सनातन इत्यादि श्रेष्ठ भागवतों का पूजन करना चाहिये। गुरुओं के अर्चनक्रम में गुरु के नाम के साथ 'पादुकाभ्यो नम:' कहकर पूजन करना चाहिये।

कुसङ्गति एवं दुर्निमित्त के कारण होने वाले अपाय से जो नित्य रक्षा करता है एवं काम्य अर्थ को प्रदान करता है, उसे पादुका कहा जाता है।

'चर' धातु का अर्थ गति करना है एवं 'ण' का अर्थ आनन्द है। आशय यह कि जिससे आनन्द की प्राप्ति होती है, उसे चरण कहा जाता है।।२६-३२।।

पीठपूजां विधायाथ तत्रावाह्य हरिं यजेत्।
सर्वोपचारान्कृत्वा ते षडङ्गावृत्तिमर्चयेत्।।३३।।
रूक्मिणीं सत्यभामाञ्च दक्षरामे प्रपूजयेत्।
वासुदेवं सङ्कर्षणं प्रद्युम्नं चानिरुद्धकम्।।३४।।
कालिन्दी नाग्निजित्याख्या सुशीला च सुनन्दका:।
ऋक्षजा लक्ष्मणा चैव इत्यष्टौ महिषी: स्मृता:।।३५।।
कौमोदकी पाञ्चजन्यं वसुदेवञ्च देवकी।
नन्दगोपं यशोदां च सम्पूज्य तदनन्तरम्।।३६।।
किङ्किणीं च तथाभ्यर्च्य दामादीनथ पूजयेत्।
दिगधीशान्स्वदिक्ष्वेवं गजानष्टौ तथार्चयेत्।।३७।।
कुमुद: कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामन:।
शङ्कुकर्ण: सर्वनेत्र: सुमुख: सुप्रतिष्ठित:।।३८।।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं श्रद्धयान्वित:।
मन्त्रवित्कृष्णमभ्यर्च्य भोगमुक्त्यो: स भाजनम्।।३९।।

तदनन्तर पीठपूजा करने के उपरान्त उसी पीठ पर आवाहित कर समस्त उपचारों से हरि का यजन करने के पश्चात् अन्त में षडंग पूजन करना चाहिये। यह प्रथम आवरण की पूजा होती है। श्रीकृष्ण के दाँयें रुक्मिणी की एवं बाँयें सत्यभामा की पूजा करने के अनन्तर वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर कृष्ण की आठ पटरानियों में शेष कालिन्दी, नाग्नजिति, सुशीला, सुनन्दा, जाम्बवन्ती एवं लक्ष्मणा—इन छ: पटरानियों की पूजा करनी चाहिये। इसके वाद कौमोदकी, पाञ्चजन्य, वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, किंकिणी, दाम, सुदाम आदि की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके वज्रादि आयुधों की उनकी दिशाओं में पूजा करके कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शंकुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख एवं सुप्रतिष्ठित—इन अष्ट दिग्गजों की पूजा करनी चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक एक समय, (प्रात:) दो समय (प्रात:-सायं) अथवा तीनों समय (प्रात:-

मध्याह्न-सायं) में श्रद्धापूर्वक कृष्ण का पूजन करके भोग एवं मोक्ष का पात्र हो जाता है।।३३-३९।।

गोष्ठे वा शैलशृङ्गे वा पुण्यारण्ये नदीतटे।
प्रासादे स्थापयन्कृष्णं तीर्थकोटिफलं लभेत्।।४०।।
कोटिकोटिमहादानात् कोटितीर्थपरिभ्रमात्।
तत्फलं लभते भक्त्या सम्प्रतिष्ठाप्य केशवम्।।४१।।
महामन्त्रकोटिजापाद्यत्फलं पुरुषोत्तमे।
कुरूक्षेत्रे सूर्यग्रहे गोदानायुतजं फलम्।।४२।।
तत्फलं लभते भक्त्या संस्थाप्य पुरुषोत्तमम्।

गोष्ठ, पर्वतशिखर, पावन वन, नदीतट या मन्दिर में कृष्ण की स्थापना करने से करोड़ों तीर्थों का फल प्राप्त होता है। करोड़ों-करोड़ महायज्ञ एवं करोड़ों-करोड़ तीर्थयात्रा से जो फल प्राप्त होता है, वही फल भक्तिपूर्वक केशव की प्रतिष्ठा करने से प्राप्त होता है। आजीवन हरि के नामसंकीर्त्तन से जो फल प्राप्त होता है, वही फल पुरुषोत्तम को स्थापित करने से भी प्राप्त होता है। अथवा करोड़ों मन्त्रों के जप से व्यक्ति जो फल प्राप्त करता है, वही फल पुरुषोत्तम की सविधि स्थापना से भी प्राप्त होता है। करोड़ों यज्ञ एवं पवित्र वन के सेवन से मनुष्य जो पुण्य प्राप्त करता है, वही पुण्य केशव की स्थापना करके भी प्राप्त करता है। सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में दश हजार गायों के दान करने का जो फल मिलता है, वही फल भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम की स्थापना से प्राप्त होता है।।४०-४२।।

सद्यः शारङ्गिसंयुक्तः कामः पञ्चस्वरान्वितः।।४३।।
मासं ते चैव नाथाय नमोऽन्तो मन्त्र ईरितः।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।।४४।।
गोवल्लभः श्रीकृष्णोऽस्य देवता परिकीर्तितः।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य आचक्राद्यानि कल्पयेत्।।४५।।

'क्लीं गोकुलनाथाय नमः' मन्त्र के ऋषि नारद एवं छन्द अनुष्टुप् कहे गये हैं। इसके देवता गोवल्लभ श्रीकृष्ण कहे गये हैं। इस मन्त्र के पंचांग न्यास की कल्पना पूर्वोक्त आचक्रादि मन्त्रों से करनी चाहिये।।४३-४५।।

ध्यायेद्वृन्दावने कृष्णं गोगोपशिशुभिर्वृतम्।
हस्ताभ्यां वेत्रं शृङ्गञ्च श्यामलं विश्वमोहनम्।।४६।।
बहुरत्नसमाबद्धकिङ्किणीहारनूपुरम्।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमात्रं समाहितः।।४७।।

होमयेत्तद्दशांशेन पायसैर्मधुरान्वितैः ।
अङ्गेन्द्रवज्रादिमुखैरित्यर्चनविधिः स्मृतः ॥४८॥

पञ्चाङ्ग न्यास करने के उपरान्त वृन्दावन में गौओं एवं ग्वालबालों से घिरे, हाथों में वेत्र एवं शृङ्ग धारण किये, श्याम वर्ण वाले, विश्व को मोहित करने वाले, अतिशय रत्न-जटित किंकिणी, हार एवं नूपुर धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान कर सावधान होकर मन्त्र का एक लाख जप सम्पन्न करके जप का दशांश हवन त्रिमधुराक्त (दूध-घी-मधु) पायस से करना चाहिये। पूजन यन्त्र में चार द्वारों से युक्त चतुरस्र भूपुर के अन्दर षट्कोण वनाकर प्रथम आवरण में षडंग पूजन, द्वितीय आवरण चतुरस्र में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन एवं तृतीय आवरण में उन दिक्पालों के वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।।४६-४८।।

य एवं भजते मन्त्री भक्त्या गोवल्लभं हरिम् ।
स गोगणवरैर्युक्तः सर्वैश्वर्यसमृद्धिमान् ॥४९॥
देहान्ते भगवद्धाम प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।

जो साधक इस प्रकार से भक्तिपूर्वक गोवल्लभ श्रीकृष्ण की अर्चना करता है, वह उत्तम गौओं से युक्त होकर समस्त ऐश्वर्य एवं समृद्धियों को प्राप्त करता है; साथ ही शरीरान्त होने पर निःसन्दिग्ध रूप से भगवद्धाम को प्राप्त करता है।।४९।।

ऊर्ध्वदन्तयुतः खान्तो वान्तो मासद्वयं तथा ॥५०॥
भीषणा मुखवृत्तेन गीतहोत्रसखान्वितः ।
सर्वार्थसाधकः प्रोक्तो नमोऽन्तोऽष्टाक्षरो मनुः ॥५१॥
कामबीजं मुखे दद्यात्सर्वार्थसम्प्रसाधकः ।
लुप्तबीजाश्च ये मन्त्रा गोपालस्य क्वचित्क्वचित् ॥५२॥
कामबीजं मुखे तेषां दद्यात्सर्वार्थसिद्धये ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितः ॥५३॥
देवता तु श्रीकृष्णोऽस्य समस्तपुरुषार्थदः ।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य आचक्राद्यैः प्रकल्पयेत् ॥५४॥

'ग्लौं श्यामलाङ्गाय नमः'—यह सर्वार्थसाधक अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया है। इस अष्टाक्षर मन्त्र के आदि में 'क्लीं' लगाकर जप करने से सर्वार्थसिद्धि होती है। कहीं-कहीं गोपाल के मन्त्रों में बीज लुप्त रहता है, वहाँ कामबीज लगाकर उस मन्त्र को सर्वार्थसिद्धि प्रदान करने वाला बना लेना चाहिये। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण कहे गये हैं। इस मन्त्र के लिये पंचांग न्यास की कल्पना आचक्रादि मन्त्रों से करनी चाहिये।।५०-५४।।

कलायकुसुमश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्।
नानालङ्कारसुभगं बालकं पञ्चहायनम् ॥५५॥
दध्युत्थं पायसं स्फीतं कराभ्यां दधतं हरिम्।
ताराहारावलीरम्यं गोपगोपीगणावृतम् ॥५६॥
ध्यात्वैवं परमानन्दं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।
अर्कलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं पायसैर्हुनेत् ॥५७॥
अथवा पङ्कजैर्हुत्वा सिद्धमन्त्रो भवेत्सुखी।

कलायपुष्प के सदृश श्याम वर्ण वाले, नीलकमल के सदृश नयनों वाले, बहुविध अलंकारों से शोभायमान, पञ्चवर्षीय बालकस्वरूप, दोनों हाथों में स्फीत नवनीत एवं पायस धारण किये हुये, तारहारों की माला से रमणीय, गोप-गोपियां से घिरे, सृष्टि-स्थिति एवं संहार के कारणस्वरूप परमानन्द श्रीकृष्ण का ध्यान करके मन्त्र का बारह लाख जप सम्पन्न करने के उपरान्त जप का दशांश हवन पायस अथवा कमलों से करके मन्त्र को सिद्ध कर साधक सुखी होता है।।५५-५७।।

दशाक्षरोदिते पीठे तद्विधानेन पूजयेत् ॥५८॥
अथवा गजेन्द्रवज्रादि पूजा चास्य समीरिता।
नवनीतायुतं हुत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥५९॥
पुत्राप्तिश्चम्पकैर्होमात् पाटलै राजवश्यता।
अन्नाज्यैर्होमतो नित्यं लक्ष्मीस्तस्य गृहे स्थिरा ॥६०॥
पूर्वोक्ततर्पणेनैव सर्वाभीष्टानि साधयेत्।

इति गौतमीये महातन्त्रे पञ्चविंशोऽध्यायः

●

दशाक्षर मन्त्र के लिये कथित पीठ पर दशाक्षर के विधान से ही पूजन करना चाहिये। अथवा दिक्पालों एवं उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिये।

मक्खन से दश हजार की संख्या में हवन करने पर साधक समस्त सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। चम्पा के फूलों से हवन करने पर पुत्र की प्राप्ति होती है एवं पाटलपुष्प से हवन करने पर राजा वश में होते हैं। नित्यप्रति अन्न एवं गाय के घी से हवन करने पर होता के घर में अचंचला लक्ष्मी का वास होता है। पूर्वोक्त विधि के अनुसार तर्पण करने से समस्त अभीष्टों की प्राप्ति होती है।।५८-६०।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के पञ्चविंश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

षड्विंशोऽध्यायः

[मन्त्रोद्धार प्रसंग, पञ्चाक्षर-षडक्षर-अष्टाक्षर एवं दशाक्षर मन्त्र तथा उनके ऋषि-छन्द-देवता आदि, श्रीकृष्णध्यान, मन्त्रजप-हवनादि, दशाक्षर एवं चतुर्दशाक्षर मन्त्र, मन्त्रजप की महिमा, मन्त्र के ऋषि आदि, श्रीकृष्णध्यान, मन्त्रजप, हवन, तर्पण, मन्त्रान्तर, चूड़ामणि मन्त्र एवं उसके ऋषि आदि का कथन।]

नारद उवाच

कामश्चाष्टस्वरारूढः सर्गवान् मन्त्रनायकः।
कृष्णोति द्व्यक्षरः प्रोक्तः कामपूर्वो गुणाक्षरः ॥१॥
कामाद्यन्तश्चतुर्वर्णश्चतुर्वर्गफलप्रदः।
ङेऽन्तकृष्णो नमोऽन्तश्चेत्पञ्चवर्णो महामनुः ॥२॥
स एव कामपूर्वश्चेत्षडक्षरमनुः स्मृतः।
एवञ्जप्त्वा त्रिकालज्ञः शातातपमुनीश्वरः ॥३॥
अस्य संस्मरणादेव सार्वज्ञकवितां वराम्।
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं हि मद्वचः ॥४॥
कृष्णगोविन्दकौ ङेऽन्तौ कामाद्यश्चाष्टवर्णकः।
आद्यन्ते कामबीजञ्च नवाक्षरमनुर्मतः ॥५॥
सुप्रसन्नात्मने वह्निवल्लभाद्यष्टवर्णकः।
कामबीजं धराबीजं पुनः कामं समुच्चरेत् ॥६॥
श्यामलाङ्गपदं ङेऽन्तं नमोऽन्तोऽयं दशाक्षरः।
एतेषां मनुवर्याणां नारदो मुनिरीरितः ॥७॥
उक्तं छन्दस्तु गायत्री बालकृष्णश्च देवता।
षड्दीर्घभाजा कामेन षडङ्गानि समाचरेत् ॥८॥

नारद कहते हैं कि (१) अष्टम स्वर 'ॠ' और विसर्ग से युक्त 'क' से निष्पन्न 'कॄः' कृष्ण का सर्वोत्तम एकाक्षर मन्त्र है। (२) दो अक्षरों का मन्त्र 'कृष्णः' है। (३) पूर्व में काम (क्लीं) से युक्त 'क्लीं कृष्णः' त्र्यक्षर मन्त्र है। (४) आदि एवं अन्त में काम से समन्वित 'क्लीं कृष्णः क्लीं' यह चतुरक्षर मन्त्र धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को देने वाला है। (५) चतुर्थ्यन्त कृष्ण के पश्चात् नमः लगाने से निष्पन्न 'कृष्णाय नमः' पञ्चाक्षर महामन्त्र है। (६) पञ्चाक्षर मन्त्र के आदि में क्लीं लगाने से 'क्लीं कृष्णाय नमः' यह

षडक्षर मन्त्र होता है, जिसकी उपासना करके शातातप मुनि त्रिकाल को जानने वाले हुये हैं। इस मन्त्र के स्मरणमात्र से ही स्मर्त्ता नि:सन्दिग्ध रूप से सर्वज्ञ एवं कवि हो जाता है; यह मैं सत्य कह रहा हूँ। (७) 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र है। (८) अष्टाक्षर मन्त्र के अन्त में भी कामबीज लगाने से 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं' यह नवाक्षर मन्त्र होता है। (९) 'सुप्रसन्नात्मने स्वाहा' अष्टाक्षर मन्त्र है। (१०) क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नम:' यह दशाक्षर मन्त्र होता है।

इन सभी श्रेष्ठ मन्त्रों के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता बाल कृष्ण हैं। छ: दीर्घ कामबीज अर्थात् क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्ल: से इन मन्त्रों का षडंग न्यास करने के बाद ध्यान करना चाहिये।।१-८।।

नीलपद्मसमानाक्षं बालं श्यामलविग्रहम्।
नानारत्नसमाबद्धविचित्राभरणान्वितम् ।।९।।
रक्तपद्मसमासीनं दध्युत्थं पायसं वरम्।
दधतं करपद्माभ्यां गोपालशिशुसंवृतम् ।।१०।।
एवं विचिन्त्य प्रजपेत् लक्षमेकं यथाविधि।
अन्ते च जुहुयाद्विधिवद्दशांशं श्रीफलैर्नवै: ।।११।।
दशाक्षरोदिते पीठे विधिना पूजयेद्धरिम्।
षडङ्गावृत्तिराद्या स्याद्द्वितीया दिगधीश्वरै: ।।१२।।
तृतीया तत्प्रहरणै: सपर्या सर्वकामदा।
अयुतं बिल्वपुष्पैस्तु हवनाल्लभते नर: ।।१३।।
तेजो वीर्यं तथा कान्तिं लक्ष्मी सर्वातिशायिनी।
रक्तपद्मायुतं होमाद्राजानश्चास्य किङ्करा: ।।१४।।
बिल्वपत्रैस्तथा हुत्वा लभेद्राज्यमकण्टकम्।
एतेषां मनुवर्याणामेकं यो भजते सुधी: ।।१५।।
इह भुक्त्वा वरान् भोगान्देहान्ते तत्पदं व्रजेत्।

नील कमल के सदृश आँखों वाले, श्याम वर्ण वाले, अनेक रत्न-जटित विचित्र आभरणों से समन्वित, रक्त कमल पर आसीन, दोनों हाथों में मक्खन एवं पायस लिये हुये, गोपाल बालकों से घिरे शिशु कृष्ण के रूप का ध्यान करके मन्त्र का यथाविधि एक लाख जप करने के उपरान्त नये श्रीफल से सविधि जप का दशांश हवन करना चाहिये। तदनन्तर दशाक्षर मन्त्र में उक्त पीठ पर विधिपूर्वक हरि की पूजा करनी चाहिये। पूजन यन्त्र षट्कोण के बाहर चतुरस्र से बनता है। प्रथम आवरण में षडंग पूजन, द्वितीय में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन और तीसरे आवरण में वज्रादि आयुधों की पूजा समस्त कामनाओं को देने वाली होती है।

वेल के फूलों से दश हजार हवन करने से मनुष्य को तेज, वीर्य, कान्ति एवं सर्वातिशायिनी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। लाल कमल से दश हजार हवन करने पर राजा उस मनुष्य के दास हो जाते हैं। बेलपत्रों से दश हजार की संख्या में हवन करने से साधक को निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति होती है। जो बुद्धिमान साधक उपर्युक्त श्रेष्ठ मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र की भी उपासना करता है, वह इस संसार में उत्तम भोगों का भोग करके देहान्त होने पर कृष्णपद प्राप्त करता है।।९-१५।।

अथापरं मनुवरं वक्ष्ये सर्वसमृद्धिदम् ॥१६॥
स्मरणादस्य मन्त्रज्ञो वागीशसमतां व्रजेत् ।
देवानामीश्वरः शक्रो धनदो धननायकः ॥१७॥
स्मरणादस्य मन्त्रस्य किं न सिध्यति भूतले ।

अब दूसरे समस्त समृद्धियों को देने वाले श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ, जिसका स्मरण करने से मन्त्रज्ञ वागीश के समान हो जाता है। इसी मन्त्र का स्मरण करके इन्द्र देवताओं के स्वामी एवं कुवेर धन के अधिपति हुये हैं। इस मन्त्र के जप से पृथ्वी पर क्या सिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् सबकुछ सिद्ध किया जा सकता है।।१६-१७।।

वाग्भवं कामबीजं च मायां लक्ष्मीमनन्तरम् ॥१८॥
दशार्णो मनुवर्यश्च भवेच्छक्राक्षरो मनुः ।

वाग्भवबीज (ऐं), कामबीज (क्लीं), मायाबीज (ह्रीं), लक्ष्मीबीज (श्रीं) को दशाक्षर मन्त्र के पूर्व संयोजित करने से चौदह अक्षरों का मन्त्र होता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।।१८।।

वाग्भवाद्यो यथा चायं मन्त्री वाक्पतिसन्निभम् ॥१९॥
वेदवेदाङ्गवेदान्तसिद्धान्तनतिरुज्ज्वलः ।
अमृतस्यन्दिनी वाचा कविता सर्वजित्वरी ॥२०॥
सर्ववाङ्मयवेत्ता च सर्वज्ञो जायतेऽचिरात् ।

मन्त्र के प्रारम्भ में यदि 'ऐं' लगा होता है तो उपासक वाक्पति की समता प्राप्त करता है। वह साधक वेद-वेदांग एवं वेदान्त के सिद्धान्त का ज्ञानी हो जाता है। उसकी वाणी अमृत के रथ पर सवार के समान हो जाती है। उसकी कविता सबों को जीतने वाली होती है। वह अल्प काल में ही समस्त वाङ्मय का जानकार एवं सर्वज्ञ हो जाता है।।१९-२०।।

संविदाद्यं यदा मन्त्रं साधको यदि वाऽभ्यसेत् ॥२१॥
अचिरात् सर्वसिद्धानामधिपो जायते सुधीः ।
राजानो वश्यतां यान्ति सामात्यैः सपरिच्छदैः ॥२२॥

देवाः सर्वे नमस्यन्ति किं पुनः कथ्यते परम्।

इस चौदह अक्षर वाले मन्त्र के आदि में 'ह्रीं' लगाकर (ह्रीं ऐं क्लीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) जप करने से बुद्धिमान साधक अल्प काल में ही समस्त सिद्धों का अधिपति हो जाता है। मन्त्रियों एवं दरबारियों के साथ राजा लोग उसके वशीभूत हो जाता है। सभी देवता भी उस उपासक को नमस्कार करते हैं; फिर और क्या कहा जाय।।२१-२२।।

श्रीबीजाद्यं यदा जप्याद्भक्तितो मन्त्रनायकम् ।।२३।।
अनन्यगा च मा तस्य मन्दिरे सम्पदावहा।
तस्य वंशे स्थिरा लक्ष्मीर्यावदाभूतसम्प्लवम् ।।२४।।

इस मन्त्र के पूर्व में यदि 'श्रीं' लगाकर (श्रीं ऐं क्लीं ह्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) जप किया जाता है तो उस उपासक के घर में अनन्यगा (अन्य गमन न करने वाली) लक्ष्मी सम्पत्प्रदात्री होती है और वह लक्ष्मी स्थिर होकर उसके वंश में प्रलयकाल तक बनी रहती है।।२३-२४।।

कामपूर्वो यदा मन्त्रो जप्यते साधकोत्तमैः।
त्रैलोक्यं वशतामेति मनोवाक्कायकर्मभिः ।।२५।।
स्त्रीणां कन्दर्पसदृशो दर्शनादेव मोहकृत्।
चमत्कारकरो लोके जीवेद्वर्षशतं सुखी ।।२६।।

इस मन्त्र के आदि में कामबीज लगाकर (क्लीं ऐं ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) जप करने से मन, वचन एवं कर्म से तीनों लोक उपासक के वश में हो जाते हैं। उस साधक के कामदेव-सदृश रूप को देखने मात्र से ही स्त्रियाँ मोहित हो जाती हैं। वह लोक में चमत्कार करने वाला होता है और सुखपूर्वक सौ वर्षों तक जीवित रहता है।।२५-२६।।

ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द ईरितः।
देवता सर्वजगतां मोहनः कृष्ण ईरितः ।।२७।।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य आचक्राद्यैः प्रकल्पयेत्।
सृष्टिसंहारस्थितिभिर्दशवर्णान् करे न्यसेत् ।।२८।।
तारसम्पुटितां कृत्वा नमो मध्यगतान्मुने।
दशवर्णान्न्यसेत्स्थाने दशवर्णान् विनिर्दिशेत् ।।२९।।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता सारे संसार को मोहित करने वाले श्रीकृष्ण कहे गये हैं। इस मन्त्र का पंचांग न्यास आचक्रादि मन्त्रों से करना चाहिये। दशाक्षर मन्त्र के दश अक्षरों से सृष्टि-संहार-स्थिति न्यास करना चाहिये; जैसे—

सृष्टिक्रम से मन्त्रवर्णों का अंगन्यास—

शिरसि ॐ गों ॐ नम: हृदि ॐ ल्लं ॐ नम:
नेत्रयो: ॐ पीं ॐ नम: नाभौ ॐ भां ॐ नम:
कर्णयो: ॐ जं ॐ नम: लिङ्गे ॐ यं ॐ नम:
घ्राणे ॐ नं ॐ नम: जानुनि ॐ स्वां ॐ नम:
मुखे ॐ वं ॐ नम: पादयो: ॐ हां ॐ नम:

स्थितिक्रम से मन्त्रवर्णों का अंगन्यास—

हृदि ॐ गों ॐ नम: शिरसि ॐ ल्लं ॐ नम:
नाभौ ॐ पीं ॐ नम: नेत्रयो: ॐ भां ॐ नम:
लिङ्गे ॐ जं ॐ नम: कर्णयो: ॐ यं ॐ नम:
जानुनि ॐ नं ॐ नम: घ्राणे ॐ स्वां ॐ नम:
पादयो: ॐ वं ॐ नम: मुखे ॐ हां ॐ नम:

संहारक्रम से मन्त्रवर्णों का अंगन्यास—

पादयो: ॐ गों ॐ नम: मुखे ॐ ल्लं ॐ नम:
जानुनि ॐ पीं ॐ नम: घ्राणे ॐ भां ॐ नम:
लिङ्गे ॐ जं ॐ नम: कर्णयो: ॐ यं ॐ नम:
नाभौ ॐ नं ॐ नम: नेत्रयो: ॐ स्वां ॐ नम:
हृदि ॐ वं ॐ नम: मूर्ध्नि ॐ हां ॐ नम:

दशाक्षर मन्त्र से करन्यास पहले सृष्टिक्रम से करना चाहिये; जैसे—

दक्षांगुष्ठे ॐ गों ॐ नम: वामकनिष्ठायां ॐ ल्लं ॐ नम:
दक्षतर्जन्यां ॐ पीं ॐ नम: वामानामायां ॐ भां ॐ नम:
दक्षमध्यमायां ॐ जं ॐ नम: वाममध्यमायां ॐ यं ॐ नम:
दक्षानामायां ॐ नं ॐ नम: वामतर्जन्यां ॐ स्वां ॐ नम:
दक्षकनिष्ठायां ॐ वं ॐ नम: वामाङ्गुष्ठे ॐ हां ॐ नम:

इस न्यास को दक्ष अंगुष्ठ से प्रारम्भ करके वामाङ्गुष्ठ होते हुये कनिष्ठा तक करने से स्थितिन्यास होता है एवं वामाङ्गुष्ठ से प्रारम्भ करके दक्ष कनिष्ठा होते हुये करने से संहारन्यास होता है।।२७-२९।।

केशवादि तथा तत्त्वं दशतत्त्वक्रमः क्रमात्।
ऋष्यादिन्यासमासाद्य षडङ्गन्यासमाचरेत्॥३०॥
कामाक्षरं परं बीजं स्वाहा प्रकृतिरीश्वरी।
केवलं चित्पराशक्तिमन्त्राधिष्ठातृदेवता॥३१॥

तदनन्तर दश तत्त्वक्रम से केशवादि न्यास करना चाहिये, जो कि पिछले पच्चीसवें अध्याय में द्रष्टव्य है। केशवादि न्यास करने के उपरान्त ऋष्यादि न्यास सम्पन्न करके षडङ्ग न्यास करना चाहिये। कामाक्षर (क्लीं) सर्वश्रेष्ठ बीज एवं स्वाहा साक्षात् प्रकृतिस्वरूप होता है। इस मन्त्र की अधिष्ठातृ देवता चित् परा शक्ति है।।३०-३१।।

ध्यायेद्वृन्दावने रम्ये काञ्चनीभूमिमध्यगे।
नानापुष्पलताकीर्णे वृक्षखण्डैश्च मण्डिते ।।३२।।
कल्पाटवीतले सम्यक् श्रीमन्माणिक्यमण्डपे।
देवकिन्नरगन्धर्वमुनिभिः परिषेविते ।।३३।।
नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैः स्तुतिभिः समुपस्थिते।
रत्नसिंहासने ध्यायेदुपविष्टं पङ्कजोपरि ।।३४।।
सजलजलदश्यामं रक्तपद्मदलेक्षणम्।
रक्तपद्मनिभं पादपाणिपङ्कजमण्डितम् ।।३५।।
आमुक्तवक्षसि श्रीमन् कौस्तुभोद्भासिताम्बरम्।
तारहारावलीरम्यं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।।३६।।
रोचनातिलकप्रान्ते कुन्तलभ्रमरार्पितम्।
कन्दर्पचापसदृशं चिल्लीमालविराजितम् ।।३७।।
अनेकरत्नसम्बद्धस्फुरन्मकरकुण्डलम्।
बर्हिबर्हकृतोत्तंसं सर्वज्ञं सर्ववेदिभिः ।।३८।।
उपासितं मुनिगणैरुपविष्टेद्धरिं सुधी।
एवं ध्यात्वा मनुवरं दशलक्षं व्रते स्थितम् ।।३९।।
दशाक्षरविधानेन जपात्सिद्धो भवेन्मनुः।

सुरम्य वृन्दावन की स्वर्णमयी भूमि के मध्य अनेक प्रकार के पुष्पयुक्त लताओं एवं वृक्षखण्ड़ों से मण्ड़ित कल्पतरु के नीचे शोभासम्पन्न माणिक्यमण्ड़प में देवताओं, किन्नरों गन्धर्वों एवं मुनियों द्वारा सेव्यमान तथा नारदादि श्रेष्ठ मुनियों के उपस्थित रहते हुये रत्नमय सिंहासन के ऊपर कमल के ऊपर बैठे हुये जलपूर्ण मेघ के सदृश श्याम वर्ण वाले, रक्त कमलपत्र के सदृश आँखों वाले, रक्तकमल द्वारा परित: मण्ड़ित हाथ-पैर वाले, नूतन रत्नजटित आभूषणों से सर्वत: विभूषित, कौस्तुभ मणि से उद्भासित वक्ष:स्थल वाले, तारहारावली से रमणीय श्रीवत्स-चिह्नित हृदय वाले, रोचना एवं तिलक के निकट घुंघुराले केशों से शोभायमान, कामधनु के सदृश चिल्लीमाल (?) धारण किये हुये, अनेकानेक रत्नजटित दीप्यमान मकरकुण्ड़ल वाले, मयूरपिच्छ को चूड़ में धारण किये हुये, मुनिगणों द्वारा उपासित हरि का ध्यान करके व्रत में स्थित साधक द्वारा दशाक्षर-विधान से श्रेष्ठ मन्त्र का दश लाख जप करने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।३२-३९।।

सिद्धेनानेन मनुना सर्वाभीष्टानि साधयेत् ।।४०।।
दशाक्षरोदिते पीठे तद्विधानेन पूजयेत् ।
अयुतं जुहुयान्मन्त्री कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः ।।४१।।
महाकविर्महाप्राज्ञो भवेन्मन्त्री न संशयः ।
मालतीकुसुमैर्होमात् वाक्सिद्धिमतुलां लभेत् ।।४२।।
तगरैः क्षीरसिक्तैश्च होमात्सर्वज्ञतां व्रजेत् ।
बकुलैः कुसुमैर्होमात्श्रियमाप्नोति चेप्सिताम् ।।४३।।
भक्ष्यभोज्यादिहोमेन समृद्धिमतुलां लभेत् ।
केवलं घृतहोमेन ब्रह्मतेजः प्रजायते ।।४४।।
श्रीफलस्य दलैर्हुत्वा राज्यं प्राप्नोत्ययत्नतः ।
तत्क्षणैर्मन्त्रसिद्धिः स्याद्दूर्वाभिरायुषे हुनेत् ।।४५।।
तर्पणं पूर्वविहितं कृत्वा सर्वं प्रसाधयेत् ।
दशाक्षरोदितं सर्वं प्रयोगमनुना चरेत् ।।४६।।

इस सिद्ध मन्त्र से अपने समस्त अभीष्टों को साधित करना चाहिये। दशाक्षर मन्त्र के प्रसंग में कथित पीठ पर दशाक्षरोक्त विधान से पूजन करके पलाशपुष्पों से दश हजार हवन करने से मन्त्रज्ञ साधक निःसन्दिग्ध रूप से महाकवि एवं महाप्राज्ञ हो जाता है। मालतीपुष्पों के हवन से अतुलनीय वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। दुग्ध-सिक्त तगरपुष्पों से हवन करने पर साधक सर्वज्ञ हो जाता है। मौलसिरी के पुष्पों से हवन करने पर इच्छित धन की प्राप्ति होती है। भक्ष्य-भोज्य के हवन से अतुलनीय समृद्धि प्राप्त होती है। केवल घी से हवन करने पर ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है। बेल के टुकड़ों से हवन करने पर बिना यत्न के राज्य की प्राप्ति होती है। बेल की गुद्दी से हवन करने पर तत्क्षण मन्त्रसिद्धि होती है। आयु-प्राप्ति के लिये दूर्वा से हवन करना चाहिये। पूर्वविहित तर्पण करके समस्त कार्यों को सिद्ध करना चाहिये। इसके पश्चात् इस मन्त्र से दशाक्षर मन्त्रोक्त समस्त प्रयोगों को करना चाहिये।।४०-४६।।

अथापरं प्रवक्ष्यामि मन्त्रं सर्वार्थसाधकम् ।
कृष्णेति द्व्यक्षरं मन्त्रं मध्यस्थं कामबीजयोः ।।४७।।
सद्यः फलप्रदं मन्त्रं कथितं भक्तितस्तव ।
अस्याराधनतः शक्रः सुरेशत्वमवाप्नुयात् ।।४८।।
ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द ईरितम् ।
देवता जगतामादिर्मुनिभिः कृष्ण ईरितः ।।४९।।
दीर्घषट्केन कामेन षडङ्गं विधिना चरेत् ।
एवमङ्गविधिं कृत्वा मन्त्री ध्यायेदथाच्युतम् ।।५०।।

अब अन्य सर्वार्थसाधक मन्त्र को कहता हूँ। दो कामबीजों के मध्य दो अक्षर का 'कृष्ण' शब्द रखने से 'क्लीं कृष्ण क्लीं' यह मन्त्र बनता है। आपकी भक्ति के कारण सद्य: फल प्रदान करने वाले इस मन्त्र को मैंने कहा है। इसकी उपासना से इन्द्र ने सुरेशत्व प्राप्त किया है। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता जगत् के आदिभूत श्रीकृष्ण हैं—ऐसा मुनियों का कथन है। छ: दीर्घ कामबीज अर्थात् क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्ल: से इसका षडंग न्यास किया जाता है। इस प्रकार अंगविधियों को सम्पन्न करने के पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक को अच्युत का ध्यान करना चाहिये।।४७-५०।।

कलायकुसुमश्यामं द्रुतहेमनिभं तु वा।
पारिजातवने रत्ने सिंहासनोपरि स्थितम्।।५१।।
देहोत्थसुप्रभाभिश्च भासयन्तं दिगन्तरम्।
शिशुवेषधरं देवं वासुदेवं जगन्मयम्।।५२।।
नानालङ्कारसुभगं गोपीभिः परिवीक्षितम्।
कल्पवृक्षविनिष्क्रान्तरत्नाद्यैः परिषिञ्चितम्।।५३।।
तारहारावलीरम्यं पीताम्बरयुगावृतम्।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं व्रतस्थः साधकोत्तमः।।५४।।

पारिजात वन में रत्नसिंहासन पर अवस्थित, कलायपुष्प अथवा द्रवित सुवर्ण के सदृश श्याम वर्ण वाले, शरीर से निकलती शोभन आभा से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, अनेक अलंकारों से सुशोभित, गोपियों द्वारा दृश्यमान, कल्पवृक्ष से समुद्भूत रत्नों आदि से परित: सिञ्चित, तारहारों की पंक्ति से रमणीय, पीताम्बरयुगल से आवृत, शिशु वेषधारी स्वप्रकाशस्वरूप वासुदेव का ध्यान करके व्रती श्रेष्ठ साधक को मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिये।।५१-५४।।

दशांशं जुहुयादन्ते श्रीफलैः सर्वसिद्धये।
अष्टच्छदाम्बुजे देवमावाह्य परिपूजयेत्।।५५।।
अङ्गषट्कावृतैरन्ते पूजयेद् दिगधीश्वरान्।
तदस्त्राण्यपि चान्ते च सपर्यैषा समीरिता।।५६।।
नवनीतायुतं हुत्वा श्रियमाप्नोत्यनिन्दिताम्।
धान्यस्य मञ्जरीं हुत्वा धनवाञ्जायतेऽचिरात्।।५७।।
अन्नवानन्नहोमेन घृतहोमाच्छ्रियं लभेत्।
य एनं भजते मन्त्री जपहोमादितत्परः।।५८।।
स तु सम्यक्छ्रियं लब्ध्वा देहान्ते तत्पदं व्रजेत्।

समस्त सिद्धियों की प्राप्ति के लिये बेल के फलों से जप का दशांश हवन करना

चाहिये। अष्टदल कमल पर देव का आवाहन करके पूजन करने के उपरान्त षट्कोण में अंगपूजा सम्पन्न कर चतुरस्र में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। यही सम्यक् रूप से पूजन कहा गया है। मक्खन से दश हजार हवन करने से अनिन्दित श्री की प्राप्ति होती है। धान्य की मंजरी से हवन करने पर साधक शीघ्र ही धनवान होता है। अन्न के हवन से अन्न प्राप्त होता है एवं घी के हवन से श्री (लक्ष्मी) की प्राप्ति होती है। जो मन्त्रज्ञ साधक जप-होमादि में तत्पर रहकर इस प्रकार उपासना करता है, वह इस संसार में प्रचुर लक्ष्मी को प्राप्त करके शरीरान्त होने पर हरि के धाम में गमन करता है।।५५-५८।।

चूडामणिमथो वक्ष्ये मन्त्रराजं सुदुर्लभम् ।।५९।।
यज्ज्ञानान्मुनयः सर्वे भूस्थास्त्रैलोक्यदर्शिनः ।
चतुर्वर्णस्य मन्त्रस्य कामाद्यो वह्नियोगतः ।।६०।।
अयं शिखामणिः प्रोक्तस्त्रैलोक्यदर्शनक्षमः ।
नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट्छन्द उदीरितम् ।।६१।।
देवता तु श्रीकृष्णोऽस्य मुनिभिः परिकीर्तितः ।
षट्दीर्घयुक्तकामेन बीजेनाङ्गक्रिया मता ।।६२।।
मन्त्रसम्पुटितं कृत्वा वर्णन्यासः तथाचरेत् ।
दशतत्त्वं ततो न्यस्य कराङ्गन्याससमन्वितः ।।६३।।

अव अतिदुर्लभ चूड़ामणि मन्त्रराज को कहता हूँ, जिसका ज्ञान प्राप्त करके समस्त मुनिगण भूमि पर अवस्थित होते हुये भी त्रैलोक्यदर्शी हो गये हैं। चार अक्षरों के मन्त्र के आदि में कामबीज एवं अन्त में स्वाहा का संयोजन करने से निष्पन्न 'क्लीं क्लीं कृष्ण क्लीं स्वाहा' यह मन्त्र अन्य सभी मन्त्रों का शिरमौर होकर साधना करने वाले साधक को त्रैलोक्यदर्शन में सक्षम बना देता है। मुनियों द्वारा इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द विराट् एवं देवता श्रीकृष्ण कहे गये हैं। छः दीर्घ कामबीजों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से इसका षडंग न्यास कहा गया है। तदनन्तर मन्त्रसम्पुटित वर्णन्यास कर्त्तव्य होता है। वर्णन्यास सम्पन्न करने के उपरान्त कर एवं अङ्गन्यास-समन्वित दश तत्त्वन्यास करने के पश्चात् (निम्नवत् ध्यान करना चाहिये)।।५९-६३।।

वृन्दावनगतं ध्यायेत्कल्पिकोद्यानमध्यगम् ।
दोलायमानं गोपीभिः सुवर्णदोलिकागतम् ।।६४।।
सूर्यायुतसमाभासं लसन्मकरकुण्डलम् ।
नानारत्नपरिभ्राजन्नानालङ्कारमण्डितम् ।।६५।।
पञ्चवर्षावधिं बालं कुन्तलोल्लासिसन्मुखम् ।
हसितोदारकान्त्यारभासयन्तं दिगन्तरम् ।।६६।।

इति ध्यात्वा चतुर्लक्षं जपेन्मनुशिखामणिम्।

वृन्दावन-स्थित कल्पतरु के उद्यान में सुवर्ण-निर्मित झूले पर गोपियों द्वारा झुलाये जाते हुये, दश हजार सूर्य-सदृश प्रकाशमान, मकरकुण्डल से सुशोभित, बहुविध रत्नों से दीप्तिमान अनेकों आभूषणों से सुशोभित, कुन्तल से उल्लसित शोभन मुख वाले, हँसते समय खुले मुख के दाँतों की कान्ति से दिग्दिगन्तों को प्रकाशित करने वाले पञ्चवर्षीय श्रीकृष्ण का ध्यान करके उक्त मन्त्रचूड़ामणि का चार लाख जप करना चाहिये।।६४-६६।।

तद्दशांशेन जुहुयात्पायसैरथवाम्बुजैः ।।६७।।
अङ्गेन्द्रवज्रावृत्तिभिस्त्रिभिः पूजनमीरितम्।
ब्रह्मवृक्षोत्थकुसुमैर्हुनेदयुतमादरात् ।।६८।।
त्रिकालज्ञो भवेन्मन्त्री नवनीतं हुतादपि।

चार लाख जप सम्पन्न करने के उपरान्त जप का दशांश पायस अथवा कमल से होम करने के पश्चात् षडंग पूजन, इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन एवं उनके वज्रादि आयुधों का पूजन तीन आवरणों में करना चाहिये। तदनन्तर पलाश के फूलों से अथवा मक्खन से श्रद्धापूर्वक दश हजार हवन करने से मन्त्रज्ञ साधक तीनों कालों का ज्ञाता हो जाता है।।६७-६८।।

श्रीफलस्य फलैर्होमाद्राज्यमाप्नोत्यकण्टकम् ।।६९।।
लक्ष्मीपुष्पहुतान्मन्त्री चिरं लक्ष्मीमवाप्नुयात्।
मूलत्रिकोणमध्ये तु ज्योतीरूपं विचिन्तयन् ।।७०।।
लक्षजापान्मनोरस्य त्रिकालज्ञो भवेद् ध्रुवम्।
करस्थामलकन्यायाद्विश्ववृत्तं च पश्यति ।।७१।।
हृदि स्थितं जनानां च सर्वं पश्यति चक्षुषा।

बेल के फलों से हवन करने पर साधक कण्टक-विहीन राज्य प्राप्त करता है। लक्ष्मीपुष्प से हवन करने वाला मन्त्रज्ञ स्थायी लक्ष्मी प्राप्त करता है। मूल त्रिकोण के मध्य में ज्योतिःस्वरूप हरि का चिन्तन करते हुये इस मन्त्र का एक लाख जप करने वाला साधक निश्चित रूप से तीनों कालों का ज्ञाता होता है एवं हस्तामलकवत् विश्व के समस्त वृत्तान्तों को देखने वाला होता है; साथ ही हृदय में अवस्थित सभी लोगों को भी आँखों से देखता है।।६९-७१।।

रविवारेऽश्वत्थमूले शतमष्टोत्तरं जपेत् ।।७२।।
एवञ्च नियतं कृत्वा म्रियते नापमृत्युतः।
वसंस्तत्र लक्षजपात्सर्वज्ञो जायतेऽचिरात् ।।७३।।

इति गौतमीये महातन्त्रे षड्विंशोऽध्यायः

रविवार के दिन अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे अवस्थित होकर इस मन्त्र का नित्य एक सौ आठ बार जप करने वाला साधक अपमृत्यु के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। वहीं पर अर्थात् अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ही एक लाख जप करने से साधक थोड़े ही दिनों में सर्वज्ञ हो जाता है।।७२-७३।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के सप्तविंश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

सप्तविंशोऽध्यायः

[मन्त्रोद्धार प्रसंग, त्रैलोक्यमोहन मन्त्र, श्रीकृष्ण-ध्यान, सपरिवार भगवदावाहन एवं पूजन, मन्त्रजप एवं हवन, अष्टाक्षर मन्त्र, विष्णुगायत्री एवं उसकी महिमा।]

गौतम उवाच

एकाक्षरं मनुवरं विष्णुं त्रैलोक्यमोहनम्।
श्रवणे यदि योग्योऽस्मि मुने ब्रूहि च तत्त्वतः ॥१॥

गौतम बोले—हे मुने! तीनों लोकों को मोहित करने वाले विष्णु के सर्वोत्तम एकाक्षर मन्त्र को सुनने की यदि मेरी योग्यता है तो उसे तत्त्वतः कहिये।।१।।

नारद उवाच

समस्तकृष्णमन्त्राणामुद्दीपनकरं परम्।
केवलं त्वत्प्रयत्नेन कथयामि मुने शृणु ॥२॥
कामाक्षरं धरासंस्थं शान्तिबिन्दुविभूषितम्।
त्रैलोक्यमोहनं विष्णुं कथितं तव यत्नतः ॥३॥

नारद जी बोले—हे मुने! सभी कृष्णमन्त्रों को उद्दीप्त करने वाले श्रेष्ठ मन्त्र को केवल आपके प्रयत्न के कारण मैं कह रहा हूँ; आप सुनें। कामाक्षर (क) में धराबीज (ल) संयुक्त करके चन्द्रबिन्दु लगाने से एकाक्षर मन्त्र 'क्लीं' बनता है। इस त्रैलोक्यमोहन विष्णु मन्त्र को तुम्हारी जिज्ञासावश मैंने व्यक्त किया है।।२-३।।

आनन्दनारदश्चास्य ऋषिछन्दो विराडपि।
त्रैलोक्यमोहनः प्रोक्तो देवता विष्णुरव्ययः ॥४॥
सर्वेषु कृष्णमन्त्रेषु मन्त्रोऽयं मन्त्रनायकः।
सृष्टिन्यासं दशतत्त्वं मातृकां मनुसम्पुटम् ॥५॥
षड्दीर्घभाजा बीजेन न्यासः कराङ्गन्यासमाचरेत्।
मूर्ध्नि भाले हृदि गुह्ये पादयोश्च यथाक्रमम् ॥६॥
पञ्चबाणस्य बीजानि न्यस्य ध्यायेदथाच्युतम्।
थान्तौ रेफसमायुक्तौ अनन्तशान्तिभूषितौ ॥७॥
बिन्दुनादसमायुक्तौ बीजौ त्रैलोक्यमोहनौ।
कामबीजं ततः पश्चाज्जलं धरासमन्वितम् ॥८॥

पञ्चमस्वरसंयुक्तौ बिन्दुनादसमन्वितम्।
बीजान्येतानि चान्ते च चन्द्रः सर्गसमन्वितः ॥९॥
शोषणमोहनसन्दीपनतापनोन्मादनानथ।
नामानुरूपफलदान् पञ्चार्णमनुरप्यसौ ॥१०॥

इस मन्त्र के ऋषि आनन्दनारद, छन्द विराट् एवं त्रैलोक्य को मोहित करने वाले अव्यय विष्णु देवता कहे गये हैं। सभी कृष्णमन्त्रों में यह मन्त्र श्रेष्ठ है। सृष्टिन्यास, दश तत्त्वन्यास, मन्त्रसम्पुटित मातृका वर्णों का न्यास एवं छः दीर्घ कामवीज से करन्यास एवं अंगन्यास करना चाहिये। मस्तक, ललाट, हृदय, गुह्य एवं पैरों में क्रमशः पाँच वाणबीजों का न्यास करने के उपरान्त अच्युत का ध्यान करना चाहिये। रेफ, अनन्त शान्ति एवं बिन्दु-नाद से समन्वित 'ध' है अन्त में जिसके अर्थात् 'द' से निष्पन्न 'द्रां' एवं 'द्रीं' ये दोनों बीज त्रैलोक्यमोहन कहे गये हैं। कामबीज लगाने के पश्चात् धरा (ल)-पञ्चम स्वर (ऊ) एवं विन्दु-नादयुक्त जल (क) अर्थात् 'क्लूं' बीज होता है। इसी प्रकार चन्द्र अर्थात् सकार को विसर्ग से युक्त करने पर 'सः' वीज बनता है। इन सभी वीजमन्त्रों का नाम क्रमशः शोषण, मोहन, सन्दीपन, तापन एवं उन्मादन है और ये सभी अपने नाम के अनुरूप ही फल प्रदान करने वाले हैं। इन्हें ही पञ्चाक्षर मन्त्र कहा जाता है।।४-१०।।

भङ्गविद्रुमसङ्काशं सर्वतेजोमयं वपुः।
किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ॥११॥
मुक्तालीरत्नसन्नद्धतुलाकोटियुगान्वितम्।
नानालङ्कारसुभगं पीताम्बरयुगावृतम् ॥१२॥
गरुडोपरिसन्नद्धरक्तपङ्कजमध्यगम्।
उत्तप्तहेमसङ्काशां लक्ष्मीवामोरुसंस्थिताम् ॥१३॥
सर्वालङ्कारसुभगां शुक्लवासोयुगान्विताम्।
सकामा लीलया देवं मोहयन्ती पुनः पुनः ॥१४॥
शङ्खचक्रगदापद्मपाशाङ्कुशधनुःशरान्।
धारयन्तं जगन्नाथं रक्तपद्मारुणेक्षणम् ॥१५॥
लक्ष्मीं पद्मकरां वामे दक्षेणालिङ्गितं पतिम्।
संस्थितां चिन्तयेन्मन्त्री मोहिनीं विश्वमातरम् ॥१६॥
एवं ध्यात्वा जगन्नाथं विंशत्यक्षरपीठके।
समावाह्य यजेन्मन्त्री उपचारैरशेषतः ॥१७॥

भग्न विद्रुम (प्रवाल) के सदृश अतिशय तेजःसम्पन्न शरीर वाले; मस्तक, कानों एवं हाथों में क्रमशः किरीट, कुण्डल एवं केयूर धारण किये हुये; मुक्ता एवं रत्न-

जटित नूपुर धारण किये हुये; अनेक अलंकारों से शोभासम्पन्न; युगल पीत वस्त्र धारण किये हुये; गरुड़ के ऊपर रखे रक्त कमल पर अवस्थित होकर तप्त स्वर्ण के सदृश आभा वाली, समस्त अलंकारों से सुशोभित, दो शुक्ल वस्त्र धारण की हुई वाम जंघे पर आसीन लक्ष्मी द्वारा कामलीला से बार-बार देखे जाते हुये; शंख, चक्र, गदा, पद्म, पाश, अंकुश, धनुष एवं बाण धारण किये हुये; रक्त कमल-सदृश रक्त वर्ण नेत्र वाले; वाम हाथ में कमल धारण की हुई विश्वमोहिनी जगन्माता लक्ष्मी द्वारा दाहिने हाथ से आलिङ्गित भगवान् जगन्नाथ का ध्यान करके विंशाक्षर मन्त्र के पीठ पर उनका आवाहन करके मन्त्रज्ञ को समस्त उपचारों से पूजन करना चाहिये।।११-१७।।

न्यासक्रमेण विधिवद्गन्धपुष्पादिभिर्यजेत्।
लक्ष्मीस्तद्वामतः पूज्या श्रीबीजेन विधानतः ।।१८।।
कौस्तुभं गलदेशे च किरीटं कुण्डलद्वयम्।
श्रीवत्सं वक्षदेशे च वनमालां गलोपरि ।।१९।।
सर्वतेजोमयायेति किरीटाय नम इत्यथ।
नाममन्त्रेण विधिवत् कौस्तुभादीन् समर्चयेत् ।।२०।।
लयाङ्गमेवमभ्यर्च्य भोगाङ्गमथ पूजयेत्।

तदनन्तर न्यासक्रम से गन्ध-पुष्पादि से विधिवत् भगवान् जगन्नाथ का पूजन करके उनके वाम भाग में श्रीबीज से विधिपूर्वक लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद गले में कौस्तुभ की, मस्तक पर किरीट की, कानों में दो कुण्डलों की, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स की एवं गले में वनमाला की उनके-उनके नाममन्त्रों (जैसे 'सर्वतेजोमयाय किरीटाय नमः') से विधिपूर्वक अर्चना करनी चाहिये। इस प्रकार लयाङ्ग पूजन करने के पश्चात् भोगाङ्ग पूजन करना चाहिये।।१८-२०।।

पक्षीन्द्रमग्रे सम्पूज्य कुर्वन्तं स्तुतिमादरात् ।।२१।।
केसरेषु षडङ्गानि कोणे मध्ये च दिक्षु च।
अग्न्यादिदलमूले च बाणानि पुरतो विभोः ।।२२।।
पुर आदिदलाग्रेषु प्रदक्षिणक्रमाद्यजेत्।
लक्ष्मीं सरस्वतीं चैव रतिं प्रीतिं निरन्तरम् ।।२३।।
कीर्तिः कान्तिस्तुष्टिपुष्टी तथास्त्राणि कराग्रतः।
बहिरिन्द्रादयः पूज्याः तदस्त्राणि च तद्बहिः ।।२४।।
एवं यः पूजयेन्मन्त्री भक्त्या श्रीपुरुषोत्तमम्।
करः प्रचेयाः सर्वार्थास्तस्य स्युस्तत्परं यजेत् ।।२५।।

सर्वप्रथम पक्षिराज गरुड़ की पूजा करके आदरपूर्वक उनकी स्तुति करनी चाहिये।

उसके बाद केसरों में षड़ङ्ग पूजन करके उसके कोण, मध्य, दिशाओं, अग्न्यादि अष्टदलमूलों, भगवान् के सामने, पुर आदि दल के अग्रभागों में प्रदक्षिणक्रम से बाण आदि का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वादि क्रम से लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि एवं पुष्टि—इन आठ का पूजन करके उनके हाथों के आगे उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर चतुरस्त्र में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन कर उनके बाहर उनके आयुधों की भी पूजा करनी चाहिये। जो मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार से भक्तिपूर्वक श्री पुरुषोत्तम की पूजा करता है, उसे उसके समस्त मनोरथ हस्तगत हो जाते हैं और अन्त में वह परमपद को प्राप्त होता है।।२१-२५।।

रविलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः।
अमृतत्रयसिक्तेन पायसेन विधानवित्॥२६॥
अथवा रविसाहस्त्रं हुनेत्तावच्च तर्पयेत्।
रक्तपद्मायुतं हुत्वा त्रैलोक्यवशमानयेत्॥२७॥
केवलं घृतहोमेन जीवेद्वर्षशतं सुखी।
पलाशलक्षहोमेन भवेद्वाक्पतिसन्निभः॥२८॥
व्रतस्थः कोटिजापेन कैवल्यं लभते ध्रुवम्।
दशाष्टादशवर्णोक्तं कर्म चानेन साधयेत्॥२९॥

उपर्युक्त विधि से भगवान् जगन्नाथ का सर्वाङ्ग पूजन सम्पन्न करके मन्त्र का बारह लाख जप पूर्ण करने के पश्चात् अमृतत्रय (दुग्ध-घृत-मधु) से सिक्त पायस से विधिज्ञ साधक को हवन करना चाहिये अथवा बारह हजार की संख्या में हवन करके उतना ही तर्पण करना चाहिये।

लाल कमल से हवन करने पर तीनों लोक वश में हो जाते हैं। केवल घृत के हवन से सुखपूर्वक सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है। पलाश के फूलों से एक लाख हवन करने से साधक वाक्पति की समता प्राप्त कर लेता है। व्रत में स्थित रहकर एक करोड़ जप करने पर निश्चित रूप से कैवल्य की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र से दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर मन्त्रोक्त कर्म का भी साधन करना चाहिये।।२६-२९।।

अनेन सदृशो मन्त्रः कृष्णमन्त्रे न विद्यते।
असौ समस्तमन्त्राणां जीवनं कथितं मुने॥३०॥
निर्बीजा ये च मन्त्रा वै शक्तिहीनाश्च कुण्ठिताः।
अरिपक्षे स्थिता ये च केवला वर्णरूपिणः॥३१॥
एतदाद्येन जापेन जीवन्ति च पुनन्ति च।

कृष्णमन्त्रों में इसके समान दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। हे मुने! इस मन्त्र को सभी

कृष्णमन्त्रों का जीवन कहा गया है। जो मन्त्र निर्बीज, शक्तिहीन, कुण्ठित, शत्रुपक्ष में स्थित और केवल वर्णरूप हैं, वे सभी अपने आदि में इसका संयोजन करके जप करने पर जीवित एवं पवित्र हो जाते हैं।।३०-३१।।

हृषीकेशपदं ङेऽन्तं नमोऽन्तं कामपूर्वकः ॥३२॥
अष्टाक्षरमनुः प्रोक्तः समस्तपुरुषार्थदः ।
ऋषिछन्दोदैवतानि पूजा प्रयोगकर्म च ॥३३॥
एकाक्षरं विष्णुवच्च कुर्यात्सर्वार्थसिद्धये ।

'क्लीं हृषीकेशाय नमः' यह अष्टाक्षर मन्त्र समस्त पुरुषार्थों को देने वाला कहा गया है। इसके ऋषि, छन्द, देवता एवं प्रयोगकर्म एकाक्षर विष्णु मन्त्र के समान होते हैं। इस मन्त्र से सर्वार्थसिद्धि होती है।।३२-३३।।

त्रैलोक्यमोहनं ङेऽन्तं विद्महे तदनन्तरम् ॥३४॥
कामदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रोचदयात् ।
कथिता विष्णुगायत्री समस्तजनरञ्जनी ॥३५॥
कामादिजपमात्रेण त्रैलोक्यवशकारिणी ।
सर्वपापप्रशमनी सर्वापत्परिमोचनी ॥३६॥
मन्त्रसिद्धिकरी पुंसां प्रायश्चित्तविशोधिनी ॥३७॥

इति गौतमीये महातन्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः

●

'त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे कामदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्' यह विष्णुगायत्री कही गई है। यह विष्णुगायत्री सभी लोगों को आनन्दित करने वाली होती है। इस विष्णुगायत्री के आरम्भ में कामबीज लगाकर जप करने से यह तीनों लोकों को वशीभूत करने वाली हो जाती है। यह समस्त पापों का शमन करने वाली, समस्त आपदाओं का विनाश करने वाली, मन्त्रसिद्धि प्रदान करने वाली एवं मनुष्यों के प्रायश्चित्त का विशोधन करने वाली होती है।।३४-३७।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के सप्तविंश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

अष्टाविंशोऽध्याय:

[मन्त्रोद्धार प्रसंग, दशाक्षर मन्त्र एवं उसके ऋषि-छन्दादि, सपरिवार श्रीकृष्ण का ध्यान, मन्त्रजप-हवनादि, पदार्थविशेष के हवन से फलभेद आदि का कथन।]

नारद उवाच

अथापरं मन्त्रवरं वक्ष्ये सर्वसमृद्धिदम्।
यमुपास्य सुराणां तु पालकोऽभूच्छतक्रतुः ॥१॥
सत्यशौरी छान्तजान्तौ नक्रेण सह संयुतौ।
शान्तिविद्रुममारूढं प्रोक्तं बीजचतुष्टयम् ॥२॥
जय कृष्णो द्विधा प्रोक्तो नित्यं क्रीडासु संयुतः।
ततः प्रमुदितचेतसे नित्यप्रियाय प्रोक्ता वै ॥३॥
कृष्णं ङेऽन्तं ततो नमः कामान्तो दशवर्णकः।
वाङ्मायाकमलाबीजैः सम्पुटो मन्त्रनायकः ॥४॥
सर्वेषां कृष्णमन्त्राणामयं मन्त्रः शिखामणिः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां आलयः सम्प्रदायतः ॥५॥
सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।
आनन्दनारद ऋषिर्विराट् छन्द उदीरितम् ॥६॥
श्रीकृष्णो देवता चात्र भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
पदषट्केन मतिमान् बीजाद्येनाङ्गकल्पनम् ॥७॥
पूर्ववन्न्यासजालं हि कृत्वा कराङ्गशोधनम्।
ततश्च विधिवन्न्यासं मातृकां मनुसम्पुटाम् ॥८॥
ऋषिश्छन्दो दैवतानि मूर्ध्नि मुखे हृदि न्यसेत्।
ध्याने स्थितस्ततो मन्त्री चराचरगुरुं स्मरेत् ॥९॥

अब दूसरे समस्त प्रकार की समृद्धियों को देने वाले मन्त्र को कहता हूँ, जिसकी उपासना करके इन्द्र देवताओं के पालन करने वाले हुये हैं। 'ॐ छ्रीं त्री ज्रीं जय कृष्ण जय कृष्ण नित्यं क्रीडासु संयुतः प्रमुदितचेतसे नित्यप्रियाय कृष्णाय नमः क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ऐं ह्रीं श्रीं' यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है। समस्त कृष्णमन्त्रों में चूड़ामणि-सदृश यह मन्त्र सम्प्रदाय के अनुसार प्राप्त होने पर धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप

पुरुषार्थचतुष्टय का आगारस्वरूप है; क्योंकि सम्प्रदायरहित मन्त्र निष्फल कहे गये हैं। इस मन्त्र के ऋषि आनन्दनारद, छन्द विराट् एवं देवता भुक्ति-मुक्तिरूपी फल को देने वाले श्रीकृष्ण कहे गये हैं। मतिमान साधक को मन्त्र के छः पदों से इसका कराङ्गन्यास करना चाहिये; जैसे—

ॐ छ्रीं च्रीं ज्रीं जय कृष्ण हृदयाय नमः।
जय कृष्ण नित्यक्रीडासु संयुतः शिरसे स्वाहा।
प्रमुदितचेतसे नित्यप्रियाय शिखायै वषट्।
कृष्णाय क्लीं कवचाय हुं।
गोपीजनवल्लभाय नेत्रत्रयाय वौषट्।
स्वाहा ऐं ह्रीं क्लीं अस्त्राय फट्।

इसके अनन्तर समस्त न्यासों को करने के उपरान्त कराङ्ग-शोधन करके विधिपूर्वक मन्त्रसम्पुटित मातृकान्यास करना चाहिये। तदनन्तर ऋषि, छन्द एवं देवता का क्रमशः मूर्धा, मुख एवं हृदय में न्यास करने के बाद साधक को स्थिरचित्त होकर चराचर जगत् के स्वामी श्रीहरि का ध्यान करना चाहिये।।१-९।।

क्षीराम्भोनिधिमध्यस्थकनकाचलमध्यतः ।
ध्यायेत्स्वर्णमयीं भूमिं तन्मध्ये रत्नमण्डपम् ।।१०।।
अनेकयोजनमितं विस्तीर्णं बहुयोजनम् ।
नानारत्नमयस्तम्भमुक्तादामविराजितम् ।।११।।
लसद्धेममयैर्वस्त्रैश्चन्द्रातपविचित्रितम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णं पङ्कजोत्पलशोभितम् ।।१२।।
मण्डितं दीर्घिकाशतैर्महावाटी परिष्कृते ।
स्वर्णप्राकाररचिते रत्नतोरणचित्रिते ।।१३।।
तत्र रत्नासने रम्ये संस्थितं परमेश्वरम् ।
रुक्मिणीसत्रजित्सुते पार्श्वयोर्धृतचामरे ।।१४।।
नानालङ्कारसुभगे वीजितं परया मुदा ।
कालिन्दीऋक्षतनये पृष्ठतो धृतबर्हके ।।१५।।
महामेघप्रभाश्यामं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ।
पीताम्बरं लसच्छ्रीमच्छ्रीवत्सकौस्तुभान्वितम् ।।१६।।
नानालङ्कारसुभगं तारहारविराजितम् ।
दीप्तरत्नकिरीटं च स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।।१७।।
गोरोचनालसद्भालतिलकं नीलकुन्तलम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणैरावृतं स्निग्धलोचनैः ।।१८।।

हृष्टपुष्टजनाकीर्णैर्नागरैबर्हविस्तरैः ।
सौधैर्गृहैः समुत्कीर्णपताकैः परिमण्डितैः ॥१९॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैराकीर्णैरथ पत्तिभिः ।
रथवाजिद्वीपिवरैः सर्वतः परिमण्डितैः ॥२०॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैः भवनैः पर्वतोपमैः ।
कामिनीभिः सुभव्याभिः सर्वतः परिमण्डिते ॥२१॥
नानाविचित्ररत्नैश्च मण्डिताभिः समन्विते ।
एवं ध्यात्वा मुनिश्रेष्ठ लक्षमेकं जपेन्मनुम् ॥२२॥

तदनन्तर हे मुनिश्रेष्ठ! साधक को सुधासिन्धु के मध्य में अवस्थित कनक पर्वत के मध्य की स्वर्णभूमि के मध्य-स्थित रत्ननिर्मित मण्ड़प का ध्यान करना चाहिये। वह रत्नमण्ड़प अत्यन्त ऊँचा एवं अनेक योजन में फैला हुआ है। उसके खम्भे अनेक रत्नों से निर्मित एवं मुक्ता दाम से सुशोभित हैं। स्वर्णमय वस्त्रों एवं चन्द्रातप से विचित्रित वह मण्डप हंसों एवं कारण्डवों से भरा तथा उत्पल कमल से सुशोभित सैकड़ों दीर्घिकाओं से घिरा हुआ है। वहीं पर स्वर्णप्राकार से रचित एवं रत्नमय तोरणों से चित्रित रमणीय रत्नमय आसन पर परमेश्वर विराजमान हैं। उन परमेश्वर के दोनों ओर विविध अलंकारों से शोभायमान रुक्मिणी एवं सत्यभामा खड़ी होकर अतिशय प्रसन्नतापूर्वक चँवर हिला रही हैं तथा कालिन्दी एवं जाम्ववन्ती बर्ह (मोरपंख) लेकर पीछे की ओर खड़ी हैं।

वे परमेश्वर विशाल मेघ की कान्ति के सदृश श्याम वर्ण वाले; कमलपत्र के सदृश अरुणवर्ण नेत्र वाले; पीताम्बर से शोभायमान; श्रीवत्स एवं कौस्तुभ से सुशोभित; अनेक अलंकारों से अलंकृत; उद्दीप्त रत्ननिर्मित किरीट, चमकते मकरकुण्डल, गोरोचन के तिलक एवं नीले कुन्तलों से सुशोभित; स्निग्धनयन नारद आदि मुनियों से परिवेष्टित हैं।

वह स्थान हृष्ट-पुष्ट लोगों से भरा हुआ है; चारो ओर नगरवासी फैले हुये हैं; प्रासादों एवं गृहों पर पताकायें लहरा रही हैं; ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों एवं शूद्रों के रथों से व्याप्त है; रथों, घोड़ों एवं हाथियों से चारो ओर से घिरा हुआ है; देवताओं की लहराती पताकाओं से समन्वित ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों एवं शूद्रों के भवन सुन्दर-सुन्दर कामिनियों से सुशोभित हैं; साथ ही वह स्थान अनेक प्रकार के विचित्र रत्नों से चारो ओर से घिरा हुआ है।

इस प्रकार का ध्यान करते हुये मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये।।१०-२२।।

बिल्वैः फलैस्त्रिमध्वक्तैः जुहुयात्तदनन्तरम्।
तर्पयेत्तद्दशांशेन मन्त्रशो विप्रमुख्यकान्॥२३॥
रत्नाभिषेकगोपालपीठे देवं प्रपूजयेत्।
षडङ्गावृत्तिबाह्ये तु महिषीः पत्रगा यजेत्॥२४॥
रुक्मिण्याद्या महारत्नभूषिताः प्रकृतयः शुभाः।
तद्बहिरिन्द्रवज्राद्याजात्यधिपास्त्रवाहनम्॥२५॥
एवमभ्यर्चनं कृत्वा सिद्धमन्त्रो द्विजोत्तमः।
प्रयोगान् साधयेद्यश्च कर्त्ता हर्ता च सर्वतः॥२६॥

जप पूर्ण करने के उपरान्त दूध, मधु एवं घी से भिगोये बेलफल के टुकड़ों से जप का दशांश हवन करना चाहिये। फिर मुख्य ब्राह्मणों द्वारा हवन का दशांश तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर रत्नपूरित घट से अभिषेक करके गोपालपीठ पर देव की पूजा करनी चाहिये। पूजन यन्त्र में षट्कोण, अष्टपत्र और भूपुर का निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर उस यन्त्र के षट्कोण में हृदय, शिर, शिखा, कवच, त्रिकोण एवं अस्त्रपूजन करना चाहिये। अष्टपत्र में रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, नाग्नजिती, सुशीला, सुनन्दा, जाम्बवती एवं लक्ष्मणा—इन आठ पटरानियों की पूजा करनी चाहिये। चतुरस्र भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से साधक का मन्त्र सिद्ध हो जाता है। श्रेष्ठ द्विज इस सिद्ध मन्त्र से प्रयोगों का साधन करके कर्ता-हर्ता होता है।।२३-२६।।

श्रीपुष्पैर्लक्षमात्रेण होमाद्भूमिपुरन्दरः।
पलाशैर्लक्षमात्रेण होमाद्वागीशतां व्रजेत्॥२७॥
हयारिरक्तकुसुमैर्जगद्रञ्जनकारकः।
केवलं घृतहोमेन जीवेद्वर्षशतं सुखी॥२८॥
अन्नहोमेन धनवान् पशुमान् दुग्धहोमतः।
कारस्करफलैर्होमाच्छत्रुमुच्चाटयेत् क्षणात्॥२९॥
मरिचहोमान् मतिमान् मारयेद्रिपुमात्मनः।
पुण्डरीकायुतं हुत्वा मुच्यते सर्वपातकैः॥३०॥
तल्लक्षमात्रहोमेन राज्यैश्वर्यमवाप्नुयात्।

श्रीपुष्प से एक लाख हवन करने पर साधक पृथ्वी पर इन्द्र के समान हो जाता है। पलाश के फूलों से एक लाख हवन करने पर उसे वागीशत्व की प्राप्ति होती है। लाल कनैल के फूलों से हवन करने पर वह संसार का रंजन करने वाला होता है। केवल घी से हवन करने पर सौ वर्षों की सुखी आयु प्राप्त करता है। अन्न के हवन से धनवान एवं दूध के हवन से पशुओं का स्वामी होता है। कारस्करफलों से हवन

करने पर शीघ ही शत्रुओं का उच्चाटन करने वाला होता है। मरिच से हवन करने पर साधक अपने शत्रु के मारण में समर्थ होता है। कमल से दश हजार हवन करने पर साधक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है एवं उसी से एक लाख हवन करने पर राज्यैश्वर्य प्राप्त करता है।।२७-३०।।

आत्मानं कंसमथनं रिपुं कंसात्मकं स्मरन्।।३१।।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा दशसाहस्रजापतः।
क्रुद्धाशयस्तथामन्त्री बलिनो मारयेद्रिपुम्।।३२।।
अप्यमृताशनो नित्यं शत्रुर्वैवश्वतातिथिः।
तस्य सन्त्राणकृत्कश्चिन्नास्त्येव जगत्त्रये।।३३।।
न शस्तं मारणं कर्म यदि स्याद्वैष्णवे मनौ।
ब्रह्मन्ब्रह्मास्त्रमादाय शशकादौ न मोचयेत्।।३४।।

अपने को कंस का संहारक एवं शत्रु को कंसस्वरूप मानकर दक्षिण दिशा की ओर मुख करके क्रुद्ध होकर दश हजार जप करने से मन्त्रज्ञ साधक बलवान शत्रु को भी मृत्यु का ग्रास बना देता है; यदि वह शत्रु नित्य अमृत का भी पान करता हो फिर भी वह यमराज का अतिथि बनता है और तीनों लोक में उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं होता। हे ब्रह्मन्! वैष्णव मन्त्र मारण कर्म के लिये प्रशस्त नहीं होते; क्योंकि ब्रह्मास्त्र ग्रहण कर खरगोश आदि को नहीं मारना चाहिये।।३१-३४।।

यदि कुर्यात्प्रमादेन एषु स्थानेषु सम्भवेत्।
पापिने हैतुकायापि शठाय जनतापिने।।३५।।
आत्मवित्तगृहक्षेत्रकलत्राद्यपहारिणे।
अभिचारेणाभिचरेत्तदा दोषैर्न लिप्यते।।३६।।
दुष्टानां दमनं शस्तं कथितं त्वयि गौतम!।
अतः स्वयं प्रयत्नेन दुष्टानां च विनिग्रहे।।३७।।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं प्रायश्चित्ताय देशिकः।
येन पापैर्विमुक्तोऽसौ भवेत्कल्याणसंयुतः।।३८।।

प्रमादवश वैष्णव मन्त्रों से यदि मारण कर्म करना भी हो तो इन स्थानों पर किया जा सकता है—पापियों पर, शठों पर, लोगों को त्रस्त करने वालों पर और अपने स्वयं के धन-गृह-खेत-पत्नी आदि के अपहरण करने वालों पर। इन लोगों पर वैष्णव मन्त्रों से यदि अभिचार कर्म किया जाता है तो कर्त्ता को कोई दोष नहीं लगता; क्योंकि हे गौतम! दुष्टों का दमन करना प्रशस्त कहा गया है।

अतः कुमार्गगमन के विनिग्रह-हेतु साधक को स्वयं प्रयत्नवान होना चाहिये।

एतदर्थ प्रायश्चित्तस्वरूप देशिक को मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये; जिससे देशिक पापमुक्त होकर कल्याणयुक्त होता है।।३५-३८।।

साध्यं संहृत्य कृत्या तु साधकं भोक्तुमिच्छति।
तेनात्मानं सदा रक्षेत् कृत्येनानेन देशिकः ।।३९।।
मृत्युञ्जयं वा प्रजपेन्मन्त्रादौ गुरुवक्त्रतः।
सर्वत्र कर्मणि परं गुरुरेव हि कारणम् ।।४०।।
गुरोरनुज्ञामादाय सर्वकर्माणि साधयेत् ।।४१।।

इति गौतमीये महातन्त्रे अष्टाविंशोऽध्यायः

●

साध्य का संहार करने के पश्चात् कृत्या साधक को भी मारने की इच्छा करती है; अतः देशिक को कृत्या से अपनी रक्षा सदैव करनी चाहिये अथवा गुरु के आदेशानुसार मन्त्र के आदि में मृत्युंजय मन्त्र का जप करना चाहिये; क्योंकि समस्त कर्मों में गुरु ही एकमात्र कारण होता है; अतः गुरु से आज्ञा ग्रहण करके ही समस्त कर्मों का साधन करना चाहिये।।३९-४१।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के अष्टाविंश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

[पुरुषोत्तम मन्त्र का उद्धार, सपरिवार श्रीकृष्ण का ध्यान, मन्त्रजप, हवन, विष्णुगायत्री, मन्त्रान्तर, आयुध-सहित श्रीकृष्ण का पूजन, हवन, पदार्थविशेष के हवन से फलभेद, सर्वतोभद्र यन्त्र और उसका धारण।]

नारद उवाच

अथ शृणु प्रवक्ष्यामि मन्त्रं श्रीपुरुषोत्तमम्।
यज्ज्ञानात् साधकवरो भुक्तिमुक्त्योश्च भाजनम्॥१॥
समस्तसिद्धिसंयुक्तो जीवन्मुक्तो महीं चरेत्।
देहान्ते केवलं धाम याति तत्परमं पदम्॥२॥
सर्वेषु कृष्णमन्त्रेषु श्रेष्ठं श्रीपुरुषोत्तमम्।
भुक्तिमुक्तिकरः साक्षात्स्मरणादेव वै नृणाम्॥३॥

श्री नारद जी बोले—अब मैं पुरुषोत्तम मन्त्र को कहता हूँ; जिसके ज्ञान से साधक भुक्ति एवं मुक्ति का पात्र हो जाता है। वह समस्त सिद्धियों से संयुक्त हो जीवन्मुक्त होकर पृथ्वी पर विचरण करता है एवं देहान्त होने पर एकमात्र पुरुषोत्तम के परमधाम को गमन करता है। सभी कृष्णमन्त्रों में श्रीपुरुषोत्तम मन्त्र श्रेष्ठ है। मनुष्यों द्वारा स्मरण करने मात्र से ही यह साक्षात् भुक्ति एवं मुक्ति देने वाला है।।१-३।।

प्रणवं मारबीजं च रमान्ते नम इत्यथ।
पुरुषोत्तमपदं चोक्तो तथाऽप्रतिहतरूपतः॥४॥
ततो लक्ष्मी निवासान्ते सकलान्ते जगत्तथा।
क्षोभणेति पदं चोक्त्वा समाहितमना भवेत्॥५॥
सर्वस्त्रीहृदयोपेतविदारणपदं तथा।
उक्त्वा ततस्त्रिभुवनमनोन्मादकरः पुनः॥६॥
सुरासुरान्ते मनुजः सुन्दरीजनवल्लभः।
मनांसि तापयद्वन्द्वं दीपयद्वितयं पुनः॥७॥
शोषयद्वितयं भूयो मारयद्वितयं परम्।
स्तम्भयद्वितयं पश्चान्मोहयद्वितयं पुनः॥८॥
द्रावयद्वितयं पश्चादाकर्षययुगं ततः।
समस्तपरमोपेतसुभगेन च संयुतम्॥९॥

सर्वसौभाग्यशब्दान्ते करेति पदसंयुतम् ।
सर्वकामप्रदपदममुकं हनयुग्मकम् ॥१०॥
चक्रेण गदया पश्चात्खड्गेन तदनन्तरम् ।
सर्वान् बाणैर्भिन्धियुग्मं पाशेनेति पदं ततः ॥११॥
बन्धय द्वितयाङ्कुशेन ताडयद्वितयं पुनः ।
कुरुशब्दद्वयमथो किं तिष्ठसि पदं पुनः ॥१२॥
तावद्यावत्पदस्यान्ते समीहितमनन्तरम् ।
ततो मे सिद्धमाभाष्य भवत्यन्ते च वर्म फट् ॥१३॥
नमोऽन्तोऽयं मनुः प्रोक्तो द्विशताक्षरसंयुतम् ।

मूलोक्त श्लोकों का उद्धार करने पर दो सौ अक्षरों के पुरुषोत्तम मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—ॐ क्लीं श्रीं नमः पुरुषोत्तम अप्रतिहतरूप लक्ष्मीनिवास सकलजगत्क्षोभण सर्वस्त्रीहृदयविदारण त्रिभुवनमनोन्मादकर सुरासुरमनुजसुन्दरीजनवल्लभ मनांसि तापय तापय दीपय दीपय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय द्रावय द्रावय आकर्षयाकर्षय समस्तपरमसुभग सर्वसौभाग्यकर सर्वकामप्रद अमुकं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैः भिन्धि भिन्धि पाशेन बन्धय बन्धय अङ्कुशेन ताड़य ताड़य कुरु कुरु किं तिष्ठसि तावत् यावत् समीहितं मे सिद्धं भवति हुं फट् नमः ॥४-१३॥

जैमिनिर्मुनिराख्यातश्छन्दश्चामितमीरितम् ॥१४॥
समस्तजगतामादिर्देवता पुरुषोत्तमः ।
पुरुषोत्तमशब्दान्ते वदेत्त्रिभुवनं पुनः ॥१५॥
मदोन्मादकरान्ते हुं हृदयं सकलं ततः ।
जगत्क्षोभणशब्दान्ते लक्ष्मीदयित हुं शिरः ॥१६॥
मन्मथोत्तमसंयुक्तमङ्गजे कामदायिनी ।
हुं शिखा परमोपेतसुभगाक्षरसंयुतम् ॥१७॥
सर्वसौभाग्यकरे कवचं परिकीर्त्तितम् ।
उक्त्वा सुरासुरोपेतः मनुजान्वितसुन्दरी ॥१८॥
ततः पश्चात्तु हृदयविदारणपदं वदेत् ।
सर्वप्रहरणधरं सर्वकामिकतत्परम् ॥१९॥
हनद्वयं च हृदयवचनानि ततः परम् ।
आकर्षयपदद्वन्द्वं महाबलहुमस्त्रकम् ॥२०॥
त्रिभुवनेश्वरपदं चोक्त्वा ततः सर्वजनान्तकः ।
मनांसि हरयुग्मान्ते दारयद्वितयं पुनः ॥२१॥

वशमानय हुं नेत्रताराद्या फट् नमोऽन्तिकाः ।
षडङ्गकन्तु सन्दिष्टं नेत्रान्तस्तन्त्रवेदिभिः ॥२२॥
त्रैलोक्यमोहनान्ते च हृषीकेशपदं ततः ।
पश्चादप्रतिरूपादिमन्मथानन्तरं पुनः ॥२३॥
सर्वादिस्त्रीपदं चोक्त्वा हृदयाकर्षणं ततः ।
आगच्छागच्छ मन्त्रोऽयं ताराद्यो नमसान्वितः ॥२४॥
अनेन मनुना कृत्वा व्यापकं न्यस्य बाहुषु ।
अष्टायुधानि मुद्राभिर्मन्त्रैः सार्द्धं विचिन्तयेत् ॥२५॥

इस मन्त्र के ऋषि जैमिनि, छन्द विराट् एवं देवता समस्त जगत् के आदिभूत पुरुषोत्तम कहे गये हैं। इसका न्यास इस प्रकार किया जाता है—

ऋष्यादि न्यास—

ॐ जैमिनिऋषये नमः शिरसि।

ॐ विराट्छन्दसे नमः मुखे।

ॐ पुरुषोत्तमदेवतायै नमः हृदि।

करन्यास—

१ ॐ पुरुषोत्तम त्रिभुवन मदोन्मादकर हुं फट् नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

२ ॐ पुरुषोत्तम जगत्क्षोभण लक्ष्मीदयित हुं फट् नमः तर्जनीभ्यां नमः।

३ ॐ मन्मथोत्तमांगजे कामदयिते हुं फट् नमः मध्यमाभ्यां नमः।

४ ॐ परमसुभग सर्वसौभाग्यदायक हुं फट् नमः अनामिकाभ्यां नमः।

५ ॐ त्रिभुवनेश्वर सर्वजनमनांसि हन हन दारय दारय मे वशमानय हुं फट् नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

६ ॐ सुरासुरमनुजसुन्दरीहृदयविदारण सर्वप्रहरणाधर सर्वकामिक हन हन हृदयं बन्धनानि आकर्षय आकर्षय महाबल हुं फट् नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि षडंग न्यास—

१ ॐ पुरुषोत्तम त्रिभुवन मदोन्मादकर हुं फट् नमः हृदयाय नमः।

२ ॐ पुरुषोत्तम जगत्क्षोभण लक्ष्मीदयित हुं फट् नमः शिरसे स्वाहा।

३ ॐ मन्मथोत्तमांगजे कामदयिते हुं फट् नमः शिखायै वषट्।

४ ॐ परमसुभग सर्वसौभग्यदायक हुं फट् नमः कवचाय हुं।

५ ॐ सुरासुरमनुजसुन्दरी हृदयविदारण सर्वप्रहरणाधर सर्वकामिक हन हन हृदयं बन्धनानि आकर्षय आकर्षय महाबल हुं फट् नमः अस्त्राय फट्।

६ ॐ त्रिभुवनेश्वर सर्वजनमनांसि हन हन दारय दारय मे वशमानय हुं फट् नमः नेत्रत्रयाय वौषट्।

'ॐ त्रैलोक्यमोहन हृषीकेश अप्रतिहतरूप मन्मथ सर्वस्त्रीपुरुषविदारण हृदयाकर्षय आगच्छ आगच्छ नमः' इस मन्त्र से व्यापक न्यास करने के बाद बाहुओं में आठ आयुधों का चिन्तन मुद्रामन्त्र से करना चाहिये; मुद्रामन्त्र है—ॐ शंखाय नमः। ॐ चक्राय नमः। ॐ गदायै नमः। ॐ पद्माय नमः। ॐ पाशाय नमः। ॐ अंकुशाय नमः। ॐ धनुषे नमः। ॐ शराय नमः।।१४-२५।।

क्षीराम्भोनिधिमध्यस्थं निरन्तरसुरद्रुमम्।
उद्यदर्केन्दुकिरणं दूरीकृततमोभव।।२६।।
मेघमालोक्य नृत्यद्बर्हिबर्हकदम्बकम्।
उत्फुल्लकुसुमामोदप्रहृष्यद्भृङ्गसङ्कुलम् ।।२७।।
कूजत्कोकिलसङ्घेन वाचालितदिगन्तरम्।
नानाकुसुमसौरभ्यवाहिगन्धवहान्वितम् ।।२८।।
कल्पवल्लीनिकुञ्जेषु क्रीडत्सिद्धकदम्बकम्।
देवगन्धर्वनारीभिर्गायतीभिरलङ्कृतम् ।।२९।।
अनेकदीर्घिकायुक्तमुद्यानं सुमहद्भुतम्।

क्षीरसुधानिधि के मध्य में कल्पवृक्षों से आच्छादित, उदय होते सूर्य-चन्द्र की किरणों से प्रकाशित, मेघ को देखकर अपने पंख फैलाकर मयूरों द्वारा नृत्य किये जाते हुये, प्रफुल्लित पुष्पों के सुगन्ध से हर्षित भौंरों वाले, कूजते कोकिलों के कारण चारो दिशाओं में शब्दायमान, अनेकविध पुष्पों के सुगन्ध को लेकर प्रवहमान हवा वाले, कल्पलता की झाड़ियों में सिद्धों द्वारा क्रीड़ा करते हुये, देवों एवं गन्धर्वों की स्त्रियों के गान से अलंकृत, अनेक दीर्घिकाओं से समन्वित अतिशय विस्तृत एक अद्भुत उद्यान वर्त्तमान है।।२६-२९।।

तस्य मध्ये मणिमये मण्डपे तोरणान्विते।।३०।।
ऋतुभिः षड्भिरनिशं सेवितस्य महीयसः।
सुरद्रुमस्य मूलस्थे महासिंहासने शुभे।।३१।।
रक्तारविन्दमध्यस्थगरुडोपरि संस्थितम्।
ध्यायेद्वल्लभया सार्द्धं जगन्नाथं जगन्मयम्।।३२।।
देवं श्रीपुरुषोत्तमं कमलया स्वाङ्कस्थया पङ्कजं
बिभ्रत्या परिरध्वमम्बुजरुचा तस्यां निरुद्धेक्षणम्।
ध्यायेच्चेतसि शङ्खपाशमुशलांश्चापासिखड्गान् गदान्
हस्तैरङ्कुशमुद्वहे तमरुणं स्मेरारविन्दाननम्।।३३।।

क्षीरसागर-स्थित उस उद्यान के मध्य पताकाओं से समन्वित मणिमय मण्ड़प में

निरन्तर छहों ऋतुओं से सेवित महान् सुरद्रुम (कल्पवृक्ष) के नीचे कल्याणकारी विशाल सिंहासन पर फैले रक्त कमल के मध्य-स्थित गरुड़ के ऊपर अपनी प्रिया के साथ विराजमान जगन्मय प्रभु जगन्नाथ का ध्यान करना चाहिये। अपने हाथों में कमल को घुमाती हुई उन देव पुरुषोत्तम के अङ्क में स्थित कमला उन्हीं को एकटक निहार रही हैं। हाथों में शंख, पाश, मुशल, चाप, असि, खड्ग, गदा एवं अंकुश धारण करने वाले प्रफुल्लितमुख अरुण वर्ण उन प्रभु का हृदय में ध्यान करना चाहिये।।३०-३३।।

एवं ध्यात्वा श्रियः कान्तं मनुं लक्षचतुष्टयम्।
जपेद्वशी विधायाथ कुण्डमर्द्धेन्दुसन्निभम्॥३४॥
जुहुयाद्वैष्णवे वह्नौ पत्रीजातिसमुद्भवैः।
पुष्पैर्यवैः क्रमात्पश्चाद् ब्राह्मणानपि भोजयेत्॥३५॥
अर्चयिष्यन् जगन्नाथं गायत्र्या परिशोधयेत्।
आत्मानं यागवस्तूनि यागभूमिश्च देशिकः॥३६॥
त्रैलोक्यमोहनायेति विद्महे पदमीरयेत्।
स्मराय धीमहि पश्चात्तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥३७॥
गायत्र्येषा समाख्याता वैष्णवी सर्वसिद्धिदा।

इस प्रकार लक्ष्मीपति का ध्यान करके मन्त्र का चार लाख जप करने के उपरान्त जितेन्द्रिय साधक को अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड का निर्माण करके वैष्णव अग्नि में जातिपत्रपुष्पों एवं यव से हवन सम्पन्न कर ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। भगवान् जगन्नाथ का अर्चन कते हुये स्वयं का, यागवस्तुओं का एवं यागभूमि का गायत्री मन्त्र द्वारा शोधन करना चाहिये। गायत्री मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। यह वैष्णवी गायत्री समस्त प्रकार की सिद्धियों को देने वाली कही गई है।।३४-३७।।

प्राक्प्रोक्ते वैष्णवे पीठे कल्पयेदासनं ततः॥३८॥
पक्षिराजपदद्वन्द्वमस्य मन्त्रः प्रकीर्तितः।
कर्णिकायां यजेदादौ विधानेनाङ्गदेवताः॥३९॥
मुक्ताहारलसत्कान्तपयोधरभरालसाः।
जपाकुसुमसङ्काशमदविभ्रममन्थराः॥४०॥
ह्रस्वत्रयक्लीबसर्गरहिताः स्वरशोभिताः।
देवीबीजक्रमादासां मन्त्रमाहुर्मनीषिणः॥४१॥

तदनन्तर पूर्वोक्त वैष्णवपीठ पर 'पक्षिराज पक्षिराज' इस मन्त्र से आसन कल्पित करके पूजनयन्त्र की कर्णिका में विधिपूर्वक अङ्गदेवताओं की पूजा करनी चाहिये।

तत्पश्चात् चमकते मोतियों के हार से रमणीय, विशाल स्तनों के भार से आलस्ययुक्त, अड़हुलपुष्प-सदृश वर्ण वाली एवं मदविभ्रम के फलस्वरूप मन्थरगामिनी अङ्गदेवताओं के शक्तियों का पूजन देर्वीबीज आं ईं ऊं ऐं औं अः से करना चाहिये। पूजनमन्त्र इस प्रकार होता है—

आं श्रीं हृदयाय नमः हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ईं श्रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ऊं श्रीं शिखायै वषट् शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ऐं श्रीं कवचाय हुं कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
औं श्रीं अस्त्राय फट् अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
अः श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रत्रयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।।३८-४१।।

दलाग्रेषु यजेच्छङ्खं शार्ङ्गं चक्रमसिं गदाम्।
अङ्कुशं मुशलं पाशं चान्यान्यस्त्राणि शार्ङ्गिणः।।४२।।
स्वमुद्राभिः स्वमनुभिः कथ्यते मनवः क्रमात्।
आद्यो जलचरायान्ते ठद्वयं मनुरीरितः।।४३।।
शार्ङ्गाय सशरायान्ते स्वाहान्तो परमो मनुः।
सुदर्शनमहाचक्रराजान्ते स्याद्दहद्वयम्।।४४।।
सर्वदुष्टभयं पश्चाच्छिन्धि खण्डयुगं पृथक्।
चतुर्थोऽयं मनुः प्रोक्तः कौमोदकी महाबले।।४५।।
सर्वासुरान्तकपदं प्रसीद युगवर्म फट्।
स्वाहान्तोऽयं मनुः प्रोक्तः किं तिष्ठसि पदं पुनः।।४६।।
तावद्यावत् पदस्यान्ते समाहितमनन्तरम्।
ततो मे सिद्धिमाभाष्य भवद्भिः कौमोदकी परः।।४७।।
अङ्कुशान्ते च मुशलं पोथय द्वितयं पुनः।
हुंफट् द्विगन्तो मन्त्रोऽयं सप्तमः परिकीर्तितः।।४८।।
पाशबद्धद्वयं पश्चात् आकर्षय पदद्वयम्।
वह्निजायावधिः सद्भिरष्टमो मनुरीरितः।।४९।।

तदनन्तर अष्टदल के दलों के अग्रभाग में शंख, शार्ङ्ग, चक्र, खड्ग, गदा, अंकुश, मुशल, पाश की पूजा करनी चाहिये। उनके मन्त्र और मुद्रा क्रमशः इस प्रकार कहे गये हैं—

१. ॐ जलचराय स्वाहा।
२. ॐ शार्ङ्गाय सशराय स्वाहा।
३. ॐ सुदर्शनमहाचक्रराजाय हुं फट्।

८. ॐ खड्ग सर्वदुष्टभयं छिन्धि छिन्धि हुं फट्।
५. ॐ कौमोदकी महाबले सर्वासुरान्तक प्रसीद हुं फट्।
६. ॐ अंकुश कंचु कंचु हुं फट् स्वाहा।
७. ॐ मुशल पोथय पोथय हुं फट् स्वाहा।
८. ॐ पाश बद्ध बद्ध आकर्षय आकर्षय स्वाहा।।४२-४९।।

लोकेशान् पूजयेत् पश्चात् वज्राद्यैरायुधैः सह।
इत्थमभ्यर्चयन्नित्यं यथावत्पुरुषोत्तमम्॥५०॥
प्राप्नोति महतीं लक्ष्मीं सौभाग्यमतुलं यशः।
आयुरारोग्यमन्यानि मनोभीष्टानि विन्दति॥५१॥
हयारिकुसुमैर्देवमर्चयित्वा यथाविधिः।
शशिप्रसूनैर्जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम्॥५२॥
मासमात्रेण वशगास्तस्य स्युः सकला नृपाः।
हुत्वा बिल्वैः फलैः पक्वैः श्रियं विन्देदनिन्दिताम्॥५३॥
प्रफुल्लैररुणाम्भोजैस्तामेव लभते नरः।
हुत्वा ज्योतिष्मतीतैलं सहस्रवसुसंख्यकः॥५४॥
सुभगो जायते सम्यक् सर्वेषां नात्र संशयः।
विधानेनामुना मन्त्री महारोगात्प्रमुच्यते॥५५॥
अश्वत्थसमिधाहोमात् पराहृतधनागमः।
आज्याक्तदूर्वाहोमेन मुच्यते मृत्युतो भयात्॥५६॥
यस्य नामायुतं मन्त्रं जयेदयुतसङ्ख्यया।
स भवेद्दासवत्तस्य नात्र कार्या विचारणा॥५७॥
बहुना किमिहोक्तेन मनुना साधकोत्तमः।
साधयेत्सकलान् कामान् साक्षाद्विष्णुरिवापरः॥५८॥

तदनन्तर चतुरस्र में इन्द्रादि दश लोकपालों और उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार नित्यप्रति यथावत् रूप से पुरुषोत्तम का अर्चन करना चाहिये। ऐसा करने से साधक विपुल लक्ष्मी, सौभाग्य, अतुल यश, आयु, आरोग्य एवं अन्य अभीष्टों को भी प्राप्त करता है। हयारि (कनैल) के पुष्पों से यथाविधि श्रीहरि का पूजन करके कुमुदिनीपुष्पों से एक हजार आठ हवन करना चाहिये। एक मास-पर्यन्त इस प्रकार से पूजन करने से सभी राजा साधक के वश में हो जाते हैं। बेल के फलों एवं प्रफुल्लित रक्त कमलों से हवन करने पर अनिन्दित श्री की प्राप्ति होती है। ज्योतिष्मती के तेल से आठ हजार की संख्या में हवन करने से साधक सर्वाधिक सुन्दर हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है। इस विधान से पूजा करने पर मन्त्रज्ञ

साधक महारोगों से मुक्त हो जाता है। पीपल की समिधा से हवन करने पर अपहृत धन पुन: प्राप्त हो जाता है। गोघृत से सिक्त दूर्वा के हवन से साधक मृत्युभय से मुक्त हो जाता है। जिसके नाम को संयुक्त करके मन्त्र का दश हजार जप किया जाता है, वह व्यक्ति साधक के दास के समान हो जाता है; इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये। अधिक क्या कहा जाय; श्रेष्ठ साधक इस मन्त्र के द्वारा अपने समस्त कामनाओं का साधन करके साक्षात् दूसरे विष्णु के समान हो जाता है।।५०-५८।।

अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि दृष्टादृष्टफलप्रदम्।
पूर्वोत्तरभुवं भित्वा सूत्रं नवनवं न्यसेत्।।५९।।
जायते तत्र कोष्ठानि चतुःषष्टिप्रभेदतः।
ईशानाद्राक्षसं यावद्राक्षसाद्वायुकोणकम्।।६०।।
विलिखेन्मन्त्रवर्णानि अनुष्टुभभवानि च।
यन्त्रमेतत्समाख्यातं सर्वतोभद्रसंज्ञकम्।।६१।।
सर्वरोगप्रशमनं समस्तपुरुषार्थदम्।
लिखितं भूर्जपत्रादौ यन्त्रमेतद्यथाविधि।।६२।।
विधृतं बाहुना नित्यं सर्वकामफलप्रदम्।
फलके खादिरे क्लृप्ते गवां गोष्ठे निवेशयेत्।।६३।।
रक्षाकृच्चोरमारीघ्नं सवत्सानां गवां हितम्।
क्षीरगोपयगोरक्षारक्षमाक्षक्षमाचर।।६४।।
गोमानो गगनो मार्गो विपक्षगमपक्षय।
इत्येवं मन्त्रतत्त्वं च कथितं तव सुव्रत।।६५।।
केवलं त्वत्प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।।६६।।

इति गौतमीये महातन्त्रे एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अब दृष्ट-अदृष्ट फलों को प्रदान करने वाले यन्त्र को कहता हूँ। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर बराबर दूरी पर नव-नव रेखा खींचने से चौंसठ कोष्ठ बनते हैं। ईशान से नैर्ऋत्य और नैर्ऋत्य से वायव्य कोण तक अनुष्टुप् मन्त्रवर्णों को लिखने से बनने वाले यन्त्र को सर्वतोभद्र यन्त्र कहा गया है। यह यन्त्र सभी रोगों का शमन करने वाला एवं समस्त पुरुषार्थों को देने वाला होता है। इस यन्त्र को भोजपत्र पर यथाविधि लिखकर ताबीज में भरकर बाँह पर धारण करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। खैर की लकड़ी के पटरे पर इस यन्त्र को खुदवा कर गोशाला में गाड़ने से चोरों एवं बिमारियों का नाश होता है तथा बछड़ों के सहित गौओं का कल्याण होता है। यन्त्र में लिखा जाने वाला अनुष्टुप् मन्त्र इस प्रकार है—

क्षीरगोपयगोरक्षारक्षमाक्षक्षमाचर ।
गोमानो गगनो मार्गो विपक्षगमपक्षय।।

हे सुव्रत! इस प्रकार तुम्हारे प्रयत्न के कारण मैंने इस मन्त्रतत्व को तुमसे कहा; अब और क्या सुनना चाहते हो।।५९-६६।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के एकोनत्रिंश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

त्रिंशोऽध्यायः

[मन्त्रसिद्धि-कथन, मन्त्रसिद्धि के लक्षण, मन्त्रसिद्धि के तीन प्रकार, मन्त्रसिद्धि के उपाय, मन्त्र के दश संस्कार, संस्कारों में अन्तर, श्रीकृष्ण के पुरश्चरण मन्त्र का वैशिष्ट्य, सिद्धि के अन्य उपाय, ग्यारह प्रकार के मन्त्रप्रयोग, मन्त्रसिद्धि के सात उपाय, अन्यान्य उपाय।]

गौतम उवाच

सर्वज्ञ सर्वशास्त्रज्ञ सर्वतन्त्रार्थपारग! ।
स्वायम्भुव नमस्तुभ्यं कृपां कुरु कृपाकर ।।१।।
तव नाविदितं किञ्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे ।
ऋषिदेवमुनीनाञ्च प्रधान त्वं पुरातन ।।२।।
कृपां कुरु महाभाग जेयया मयि सुव्रत ।
संसारे दुःभूपृष्ठे रोगशोकभयाकुले ।।३।।
भवार्णवेऽभिमग्नं मां त्वमुद्धर्त्तुमिहार्हसि ।
तवावतारो लोकानां क्षेमाय विजयाय च ।।४।।
इदानीं कथय ब्रह्मन् मन्त्रसिद्धेस्तु लक्षणम् ।
सिद्ध्युपायं कतिविधं कथय स्वानुकम्पया ।।५।।

गौतम बोले—हे सर्वज्ञ! समस्त शास्त्रों को जानने वाले! समस्त तन्त्रार्थों के पारगामी! स्वयम्भू से उत्पन्न! आपके लिये नमस्कार है। हे कृपाकर! मेरे ऊपर कृपा करें। इस चराचर त्रैलोक्य में आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। ऋषियों, देवों तथा मुनियों में आप ही प्रधान एवं पुरातन हैं। हे महाभाग सुव्रत! दुःखभूत, रोग, शोक एवं भय से व्याकुल इस संसाररूप समुद्र में डूब रहे मेरा उद्धार करने में आप समर्थ हैं। आपका अवतार ही लोगों के कल्याण एवं विलय के लिये हुआ है। हे ब्रह्मन्! आप अपनी अनुकम्पा से इस समय मुझसे मन्त्रसिद्धि के लक्षणों, सिद्धि के उपायों एवं उनके भेदों को कहिये।।१-५।।

नारद उवाच

मृत्यूनां हरणञ्चैव देवतादर्शनन्तथा ।
प्रयोगाणामतः सिद्धिः सिद्धेस्तु लक्षणं परम् ।।६।।

मनोरथानामक्लेशसिद्धेरुत्तमलक्षणम् ।
परकायप्रवेशं च पुरःप्रवेशनं तथा ॥७॥
ऊर्ध्वोत्क्रगममेवं हि चराचरपुरे गतिः ।
खेचरीमेलनं चैव तत्कथाश्रवणादिकम् ॥८॥
भूच्छिद्राणि च पश्येत्पातालादिषु सङ्गमः ।
आकर्षणं सुरस्त्रीणां नागस्त्रीणां विशेषतः ॥९॥
पादुकागुटिकादीनामञ्जनविवरं तथा ।
अणिमादींश्च सम्प्राप्य केवलं मोक्षमाप्नुयात् ॥१०॥
इत्येव कथितं ब्रह्मन् प्रधानं सिद्धिलक्षणम् ।

नारद जी बोले—मृत्यु का हरण, देवता का दर्शन एवं प्रयोगों की सिद्धि—ये ही मन्त्रसिद्धि के उत्तम लक्षण होते हैं। बिना क्लेश के मनोरथों का सिद्ध होना भी मन्त्रसिद्धि का उत्तम लक्षण है। साधक मन्त्रसिद्धि होने पर परकायप्रवेश, पुरों में प्रवेश, ऊर्ध्वगमन, चराचरों में गति, खेचरी-मेलन एवं इन सबकी कथा-वार्ता का श्रवण, भूच्छिद्र का दर्शन, पातालादि में प्रवेश, देवांगनाओं एवं विशेषकर नागकन्याओं का आकर्षण, पादुका-गुटिका-अंजनादि की सिद्धि तथा अणिमादि की सिद्धि प्राप्त करके कैवल्य मोक्ष प्राप्त करता है। मन्त्रसिद्धि के ये ही प्रधान लक्षण कहे गये हैं।।६-१०।।

इदानीं शृणु वक्ष्यामि मध्यमस्य तु लक्षणम् ॥११॥
ख्यातिवाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ।
नृपाणां तद्गुणानां च वशीकरणमुत्तमम् ॥१२॥
सर्वत्र सर्वलोकेषु चमत्कारकरं सुखी ।
रोगापहरणं दृष्ट्वा विषापहरणं तथा ॥१३॥
पाण्डित्यं लभते मन्त्री चतुर्विधमयत्नतः ।
वैराग्यञ्च मुमुक्षुत्वं त्यागिता सर्ववश्यता ॥१४॥
अष्टाङ्गयोगाभ्यसनं भोगेच्छापरिवर्जनम् ।
सर्वभूतानुकम्पा च सर्वज्ञादिगुणोदयः ॥१५॥
इत्यादिगुणसम्पत्तिर्मध्यसिद्धेस्तु लक्षणम् ।

अब मन्त्रसिद्धि के मध्यम लक्षणों को कहता हूँ। ख्याति, वाहन एवं भूषादि का लाभ, शोभन दीर्घ आयु, राजाओं के गुणों का उत्तम वशीकरण, सर्वत्र सभी लोकों में चमत्कारकारित्व, सुखीत्व, दृष्टिमात्र से रोगों एवं विष का अपहरण, अनायास चतुर्विध पाण्डित्य-प्राप्ति, वैराग्य, मुमुक्षुत्व, त्याग, सर्ववश्यता, अष्टांगयोग का अभ्यास, भोगेच्छा-राहित्य, समस्त भूतों पर दया, सर्वज्ञता आदि गुणों का उदय इत्यादि गुणसम्पत्तियाँ मध्यमसिद्धि के लक्षण कहे गये हैं।।११-१५।।

ख्यातिवाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ॥१६॥
नृपाणामङ्गनानां च वात्सल्यं लोकवश्यता।
महैश्वर्यं धनित्वञ्च पुत्रदारादिसम्पदः ॥१७॥
अधमाः सिद्धयः प्रोक्ता मन्त्रिप्रथमभूमिका।
सिद्धमन्त्रस्तु यः साक्षात्स शिवो नात्र संशयः ॥१८॥
सिद्धलक्षणमित्युक्तं तदुपायमिहोच्यते।

कीर्ति, वाहन, भूषा आदि का लाभ, सुखमय दीर्घायु की प्राप्ति, राजाओं एवं रानियों से वात्सल्य-प्राप्ति, लोकवश्यता, महान् ऐश्वर्य-प्राप्ति, वहुधनित्व एवं पुत्र-पत्नी आदि सम्पत्तियों की प्राप्ति अधम सिद्धियों के लक्षण होते हैं। साधकों को प्रथम भूमिका में ये सिद्धियाँ मिलती हैं। जिसको मन्त्र सिद्ध हो जाता है; वह निःसन्दिग्ध रूप से साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है। इस प्रकार मन्त्रसिद्धि के लक्षण कहे गये; अब मन्त्रसिद्धि के उपायों को कहता हूँ।।१६-१८।।

पितृमातृविशुद्धा ये शुद्धाचारा जितेन्द्रियाः ॥१९॥
सम्प्रदायेनोपदिष्टास्तेषां सिद्धिर्द्रुतं भवेत्।
मलिना मलसञ्छन्ना पापिनस्तरलाशयाः ॥२०॥
देवार्चनादिविमुखा गुरवे शठवृत्तयः।
तेषां कृच्छ्रेण सिद्ध्यन्ति मन्त्राः जपहुतादिभिः ॥२१॥
ये मन्त्रा मलसञ्छन्ना केवला वर्णरूपिणः।
नीर्बीजा सत्त्वहीना ये कुण्ठिताश्च तिरस्कृताः ॥२२॥
अरिपक्षे स्थिता ये च ये च शापादिसंयुताः।
ये मन्त्रा अविधिप्राप्ता ये च सिद्धान्तवर्जिता ॥२३॥
इत्यादिदोषदुष्टाश्च सिद्धिदा नाल्पयोगतः।
पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः ॥२४॥
सौषुम्नध्वन्युच्चरिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते।
वक्ष्यामि चरमेऽध्याये तदुपायं तवानघ! ॥२५॥

जिसके माता-पिता शुद्ध हों, जो सदाचारी एवं जितेन्द्रिय हो, जो सम्प्रदाय द्वारा उपदेश-प्राप्त किया हो, उसे अतिशीघ्र सिद्धि की प्राप्ति होती है।

जो मलिन हो, मल से आच्छन्न हो, पापी एवं अस्थिर आशय वाला हो, देवार्चन आदि से विमुख हो, गुरु के प्रति शठतापूर्वक व्यवहार करता हो, उसे जप-होमादि करने पर भी मन्त्रसिद्धि कठिनता से प्राप्त होती है।

मलाच्छादित, केवल वर्णरूप, निर्बीज, सत्त्वहीन, कुण्ठित, तिरस्कृत, शत्रुपक्ष

में स्थित, शापादि से युक्त, अविधिपूर्वक प्राप्त, सिद्धान्त-वर्जित आदि दोष के कारण दूषित मन्त्र सिद्धि प्रदान करने में सक्षम नहीं होते।

पशुभाव में स्थित मन्त्र केवल वर्णरूप होते हैं। सुषुम्ना मार्ग से उच्चरित मन्त्रों में प्रभुत्व होता है। हे अनघ! उनके उपाय अन्तिम अध्याय में कहूँगा।।१९-२५।।

संस्कारा दश कथ्यन्ते येन मन्त्रस्य सिद्धयः।
स्वल्पयोगेन विधिवत्तांश्च वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥२६॥
जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा।
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने तथा ॥२७॥
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः।
स्वर्णादिपात्रे संलिख्य मातृकावर्णमुत्तमम् ॥२८॥
काश्मीरचन्दनेनाथ भस्मना वाथ सुव्रत!।
काश्मीरं शाक्तसंस्कारे चन्दनं वैष्णवे मनौ ॥२९॥
शैवे भस्म समाख्यातं मातृकामन्त्रलेखने।
वर्णानां मातृकामध्यादुद्धारो जननं स्मृतम् ॥३०॥
पंक्तिक्रमेण विधिना मुनिभिर्मन्त्रनिश्चयैः।
प्रणवान्तरितान्कृत्वा मन्त्रवर्णाञ्जपेत्सुधीः ॥३१॥
प्रत्येकं शतवारं तु जीवनं तदुदाहृतम्।
मन्त्रवर्णान् समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा ॥३२॥
प्रत्येकं वायुबीजेन पूर्ववत्ताडनं मतम्।
भस्मना कुङ्कुमेनाथ चन्दनेनाथवा पुनः ॥३३॥
शैवादितन्त्रभेदेन प्रोक्तं द्रव्यत्रयं शुभम्।
विलिख्य मन्त्रपिण्डं तु प्रसूनैः करवीरजैः ॥३४॥
तद्वर्णसङ्ख्यया हन्यादेकैकंन तु बोधनम्।
तत्तत्तन्त्रोक्तविधिना अभिषेकः प्रकीर्तितः ॥३५॥
अश्वत्थपल्लवैः सिञ्चेन्मन्त्री मन्त्रार्णसङ्ख्यया।
सञ्चिन्त्य मनसा मन्त्रं सुषुम्नामूलमध्यतः ॥३६॥
ज्योतिर्मन्त्रेण विधिवत् हृत् मलत्रयं यतिः।
तारव्योमाग्निमनुयुग्दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः ॥३७॥
स्वर्णे च कुशतोयेन पुष्पतोयेन वा तथा।
तेन मन्त्रेण विधिवदाप्यायनविधिः स्मृतः ॥३८॥
दीपयेत् सर्वमन्त्राणि योगतस्तारकामयोः।
दीप्यमानं च मन्त्रं च गोपयेत्सर्वसिद्धये ॥३९॥

मधुना शक्तितन्त्रं तु वैष्णवे चेन्दुमज्जलैः ।
शैवे घृतेन दुग्धेन तर्पणं सम्यगीरितम् ॥४०॥
एते च कथितास्तुभ्यं दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः ।
यत्कृत्वा सम्प्रदायेन मन्त्री वाञ्छितमश्नुते ॥४१॥

अब मन्त्रों के दश संस्कारों को कहता हूँ; जिनको करने से मन्त्रों की सिद्धि होती है। मन्त्रसिद्धि के संस्कारों को अत्यन्त अल्प योग से उनकी विधि को तत्त्वत: कहता हूँ। उन दश संस्कारों के नाम हैं—जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन एवं गुप्ति।

१. जनन संस्कार—सुवर्ण आदि के पात्र में उनचास मातृकावर्णों को केसर, चन्दन अथवा भस्म से लिखना चाहिये। शाक्त मन्त्रों के संस्कार में केसर से, वैष्णव मन्त्रों के संस्कार में चन्दन से एवं शैव मन्त्रों के संस्कार में भस्म से मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। मातृकावर्णों से मन्त्रवर्णों का उद्धार पंक्तिक्रम से मुनियों और तन्त्रों के द्वारा निश्चित विधान से करना ही जनन संस्कार कहलाता है। इसे इस प्रकार करना चाहिये कि शाक्त मन्त्र के लिये केसर से, वैष्णव मन्त्रों के लिये चन्दन से और शैव मन्त्रों के लिए भस्म से एक समकोण त्रिभुज बनाकर उसे पश्चिम कोण से प्रारम्भ करके सात विभागों में विभक्त करे। इसी प्रकार ईशान और आग्नेय कोण से भी उसे सात-सात समान विभागों में विभक्त कर दे; ऐसा करने से कुल उनचास त्रिभुज योनियाँ बन जाती हैं। जनन संस्कार के यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—

उत्तर
ह ष स य म ब भ ञ झ छ ज आ अ
श ल र प फ ठ ट ङ च ई इ
व ध न ढ़ ड ग घ ऊ उ
पश्चिम द त ण क ख ॠ ऋ पूर्व
थ अं अः लॄ लृ
औ ऐ ए
ओ
दक्षिण

इस यन्त्र में ईशान कोण से आरम्भ करके पश्चिम तक अकार से हकार तक के उनचास वर्ण लिखित हैं। उनमें मातृकाओं का आवाहन करके चन्दनादि से पूजन करने के पश्चात् उनमें से मन्त्र के एक-एक वर्ण का उद्धार करना चाहिये।। मन्त्र के अक्षरों को भोजपत्र पर अलग-अलग लिखना चाहिये। प्रत्येक वर्ण या मातृका की पृथक्-पृथक् पूजा करनी चाहिये। फिर इनका मार्जन करके अपने मन्त्रवर्णों को भोजपत्र पर लिख लेना चाहिये। त्रिकोण को योनि भी कहते हैं। इनमें से वर्णों को निकाल कर लिखने से प्रत्येक का जनन होता है।

२. **जीवन संस्कार**—मन्त्रवर्णों को 'ॐ' से अन्तरित करके प्रत्येक का एक सौ बार जप करने से उनका जीवन संस्कार होता है। जैसे 'रामाय नम:' मन्त्र के जीवन संस्कार के लिये 'ॐ रा ॐ मा ॐ य ॐ न ॐ म:' के रूप में सौ बार जप करना चाहिये।

३. **ताड़न संस्कार**—मन्त्रवर्णों को लिखकर चन्दन एवं जल के घोल से वायुबीज 'यं' से प्रत्येक वर्ण का ताड़न करना चाहिये। यह ताड़न भस्म, कुमकुम या चन्दन से शैवादि मन्त्रभेद से करने के लिये ये तीनों द्रव्य शुभ माने गये हैं।

४. **बोधन संस्कार**—शैवादि मन्त्रभेद से भस्म, कुमकुम अथवा चन्दन से मन्त्रपिण्ड लिखकर कनैल के फूलों से मन्त्रवर्णों की संख्या के बराबर प्रत्येक वर्ण का ताड़न करने से बोधन होता है।

५. **अभिषेक संस्कार**—इसमें तन्त्रोक्त विधि से अभिषेक किया जाता है। पीपल के पत्तों से मन्त्र के वर्णों की संख्या के बराबर सिंचन किया जाता है।

६. **विमलीकरण संस्कार**—इसमें सुषुम्ना मार्ग में 'ॐ ह्रौं' मन्त्र से संस्कार्यमाण मन्त्र के आणव्य मायिक एवं कार्मण तीनों मलों को नष्ट किया जाता है। इसे ही विमलीकरण संस्कार कहते हैं।

७. **आप्यायन संस्कार**—मन्त्र के सभी वर्णों को स्वर्णोदक, कुशोदक अथवा पुष्पोदक से ज्योतिमन्त्र 'ॐ ह्रौं' से आप्यायित करना ही आप्यायन संस्कार कहलाता है।

८. **दीपन संस्कार**—'ॐ ह्रीं श्रीं' से देय मन्त्र को पुटित करके एक सौ आठ बार जप करने से मन्त्र का दीपन संस्कार होता है।

९. **तर्पण संस्कार**—इसमें ज्योतिमन्त्र 'ॐ ह्रौं' से देयमन्त्र का उसके वर्णों की संख्या के बराबर जल से तर्पण कराया जाता है। यह तर्पण शाक्त मन्त्र में मधु से, विष्णु मन्त्र में कर्पूरमिश्रित जल से और शिवमन्त्र में दूध एवं घी से किया जाता है।

१०. **गुप्ति संस्कार**—मन्त्र को प्रकट न करने से उसका गुप्ति संस्कार होता है।

इस प्रकार दश संस्कारों को कहा गया; जिसे करके सम्प्रदाय से प्राप्त मन्त्र से मन्त्री वाञ्छित फल प्राप्त करता है।।२६-४१।।

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां सिद्धिलक्षणम्।
यत्कृत्वा मनुवित्सम्यक् सिद्धिमाप्नोत्ययत्नतः ।।४२।।
निर्बीजा मनवो ये च तेषु बीजं नियोजयेत्।
कामं वा विषबीजं वा जपनात्सिद्धिदो मनुः ।।४३।।

अब मन्त्रसिद्धि के अन्य उपायों को कहता हूँ; जिनके करने से मन्त्रज्ञ अनायास ही सम्यक् सिद्धि प्राप्त करता है। जो मन्त्र बीजरहित होते हैं, उनमें बीजों को नियोजित करना चाहिये। कामबीज 'क्लीं' अथवा विषबीज 'मं' के जप से मन्त्र सिद्धिप्रद होते हैं।।४२-४३।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि सिद्ध्युपायं मुने शृणु।
स्थानस्था वरदा मन्त्रा ध्यानस्थाश्च फलप्रदाः ।।४४।।
स्थानध्यानविहीना ये कोटिजापात्फलं न हि।

हे मुने! अब मन्त्रसिद्धि के अन्य उपाय का श्रवण करो। निश्चित स्थान पर मन्त्र की साधना करने से वह मन्त्र वरदायक होता है; साथ ही ध्यानस्थ रहने पर फलप्रद होता है। स्थान एवं ध्यान से रहित मन्त्र करोड़ों जप करने पर भी फलप्रद नहीं होते।।४४।।

अथ तेऽन्यत्प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धेस्तु लक्षणम् ।।४५।।
मातृकापुटितं कृत्वा स्वमन्त्रं प्रजपेत्सुधीः।
क्रमात्क्रमाच्छतावृत्त्या तदन्ते केवलं मनुः ।।४६।।
एवं तु प्रत्यहं जप्याद्यावल्लक्षं समाप्यते।
निश्चितं मन्त्रसिद्धिः स्यादित्युक्तं तन्त्रवेदिभिः ।।४७।।

अब मन्त्रसिद्धि के अन्य लक्षण को तुमसे कहता हूँ। अपने मन्त्र को मातृकाओं से पुटित करके एक सौ जप करने के बाद केवल मन्त्र का जप करना चाहिये। इस प्रकार का जप तब तक करना चाहिये, जब तक कि जप की संख्या एक लाख न हो जाय। तन्त्रज्ञों के अनुसार इस विधि से अवश्य ही मन्त्र सिद्ध होते हैं।।४५-४७।।

अथ संक्षेपतो वक्ष्ये पुरश्चरणमुत्तमम्।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव शुचिः पूर्वमुपोषितः ।।४८।।
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः।
ग्रहणादिविमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ।।४९।।
होमयेत्तद्दशांशेन तद्दशांशेन तर्पणम्।
अभिषिञ्चेद्दशांशेन दशांशं विप्रभोजनम् ।।५०।।

इत्येवं पञ्चकृत्येन सिद्धमन्त्रो भवेन्नरः।
अथवा मूर्ध्नि देशे च गुरुं सञ्चिन्त्य वाग्यतः ॥५१॥
गुर्वग्रे निवसन्मन्त्री मन्त्रोक्तं जपमाचरेत्।
अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत् ॥५२॥
एवं कृत्वा सिद्धमन्त्रो भवेन्मन्त्री न चान्यथा।
गुरवे दक्षिणां दद्याद्भूषणाच्छादनादिभिः ॥५३॥
गुरुसन्तोषमात्रेण सिद्धिः स्यादपवर्गदा।
नाजप्तः सिद्ध्यते मन्त्रो नाहुतश्च कदाचन ॥५४॥
नापूजितश्च विधिवन्नातर्पितो नापि भोजितः।
पञ्चकृत्ययुते मन्त्रे कालसङ्ख्या न विद्यते ॥५५॥

अव संक्षेप में मन्त्रों के उत्तम पुरश्चरण को कहता हूँ। चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण के पूर्व पवित्रतापूर्वक उपवास करके ग्रहण आरम्भ होने पर समुद्रगामिनी नदी में नाभि-पर्यन्त जल में खड़े होकर ग्रहण से मोक्ष-पर्यन्त एकाग्र होकर मन्त्र का जप करना चाहिये। तदनन्तर जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इस प्रकार के पाँच कृत्यों (जप, हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन) को करने से साधक को मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। अथवा मौन होकर मूर्द्धा में गुरु का चिन्तन करके उन गुरु के आगे स्थित होकर यथोक्त मन्त्र का जप करना चाहिये। इसके वाद दशांश क्रम से हवन, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मणभोजन क्रिया का सम्पादन करना चाहिये। ऐसा करने से साधक को मन्त्र सिद्ध हो जाता है; अन्यथा नहीं। गुरु को दक्षिणा, आभूषण, वस्त्रादि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये; क्योंकि गुरु के सन्तुष्ट होने पर अपवर्ग प्रदान करने वाली सिद्धि प्राप्त होती है। विना जप, विना हवन, विना विधिवत् पूजन, विना तर्पण एवं विना ब्राह्मणभोजन के मन्त्र सिद्ध नहीं होते। इन पाँच कृत्यों से युक्त मन्त्र की साधना में कालसंख्या नहीं कही गई है।।४८-५५।।

कृते चोक्तजपात्सिद्ध्येत्त्रेतायां द्विगुणो जपः।
द्वापरे त्रिगुणश्चैव कलौ सङ्ख्या चतुर्गुणी ॥५६॥
कृष्णमन्त्रेषु देवर्षे युगसङ्ख्या न विद्यते।
जपतर्पणसेकाद्यैः सिद्ध्यन्ते कृतसङ्ख्यया ॥५७॥
सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसेवापरिश्रमः।

सतयुग में उक्त संख्या में जप से सिद्धि प्राप्त होती है। त्रेता में उक्त संख्या का दुगुना, द्वापर में तिगुना एवं कलियुग में चौगुना जप करने से मन्त्र सिद्ध होते हैं।

हे देवर्षि! कृष्णमन्त्रों में युगसंख्या नहीं होती; अतः सत्ययुग के लिये निर्धारित संख्या में जप, तर्पण, मार्जन आदि से ही ये मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। इन मन्त्रों के स्वयंसिद्ध होने के कारण इनके लिये युगसेवा का परिश्रम नहीं करना पड़ता।।५६-५७।।

अथापरं प्रवक्ष्यामि सिद्ध्युपायं महाद्भुतम् ।।५८।।
येन सिद्धेन मनुवित् सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
तत्तत् कर्मानुरूपेण तत्तद्योगं प्रयोजयेत् ।।५९।।

अब मैं मन्त्रसिद्धि के अत्यन्त अद्भुत उपाय को कहता हूँ, जिससे सिद्ध होने पर मन्त्रज्ञ साधक सृष्टि, स्थिति एवं संहार को करने में समर्थ हो जाता है। इस विधि से मन्त्र को सिद्ध करने के उपरान्त उन-उन अभीष्ट कर्मों के अनुरूप ही प्रयोग करना चाहिये।।५८-५९।।

ग्रथनादिप्रभेदश्च मन्त्राणां वक्ष्यतेऽधुना ।
ग्रथितं सुपुटं ग्रस्तं समस्तं च विदर्भितम् ।।६०।।
तथा चाक्रान्तमाद्यन्तगर्भस्थं सर्वतो वृतम् ।
तथा मुक्तिविदर्भं च विदर्भं ग्रथितं तथा ।।६१।।
इत्येकादशधा मन्त्राः प्रयुक्ताः कार्यसिद्धिदाः ।

अब मैं मन्त्रों के ग्रथनादि प्रभेदों को कहता हूँ। ग्रथित, सम्पुटित, ग्रस्त, समस्त, विदर्भित, आक्रान्त, आद्यन्त, गर्भस्थ, सर्वतोवृत, मुक्तिविदर्भित एवं विदर्भग्रथित— ग्यारह प्रकार के इन मन्त्रों के प्रयोग सिद्धिप्रद होते हैं।।६०-६१।।

साध्यनाभार्णमेकैकं मन्त्रान्ते सम्प्रयोजितम् ।।६२।।
ग्रथितं तत्समाख्यातं वश्यावृष्टिकरं परम् ।
मन्त्रमाद्यं च तत्सर्वं साध्यसर्वमनन्तरम् ।।६३।।
विपरीतं पुनश्चान्ते मन्त्रं तत्सम्पुटं स्मृतम् ।
शान्तिपुष्टिकरं ज्ञेयं त्रैलोक्यैश्वर्यदायकम् ।।६४।।
अर्द्धमर्द्धं तथाद्यन्ते मन्त्रं कुर्याद्विचक्षणैः ।
मध्ये चास्य भवेत्साध्यं ग्रस्तमित्यभिधीयते ।।६५।।
अभिचारेषु सर्वेषु यो जपेन्मारणेषु च ।
अभिधानं वदेत्पूर्वं पश्चान्मन्त्रं तथा वदेत् ।।६६।।
एतत्समस्तमित्युक्तं शत्रूच्चाटनकारकम् ।

ग्रथित—मन्त्र के एक अक्षर के बाद नाम का एक अक्षर, फिर मन्त्र का एक अक्षर और फिर नाम का एक अक्षर—इस प्रकार के विन्यास को ही ग्रथित कहा जाता है। इससे वशीकरण एवं आकर्षण किया जाता है।

सम्पुट—पहले मन्त्र तब साध्य नाम तब विलोम क्रम से मन्त्र बोलने को सम्पुट कहते हैं। इसे शान्ति-पुष्टिप्रद कहा गया है और यह तीनों लोकों के ऐश्वर्य को देने में समर्थ है।

ग्रस्त—साध्य नाम के पहले मन्त्रार्द्ध और साध्यनाम के बाद मन्त्रार्द्ध के विन्यास को ग्रस्त कहते हैं।

समस्त—समस्त अभिचारकर्म एवं मारणकर्म के जप में प्रथम अभिधान का उच्चारण किया जाता है और बाद में मन्त्र का उच्चारण किया जाता है। यह शत्रु को उच्चाटित करने वाला कहा गया है।।६२-६६।।

द्वौ द्वौ मन्त्राक्षरौ यत्र एकैकं साध्यवर्णकम् ।।६७।।
विदर्भितं तु तत्प्रोक्तं दुष्टघ्नं वश्यलक्षणम् ।
मन्त्राणां त्वरितं जाप्यं समं सन्तिष्ठते यदि ।।६८।।
आक्रान्तं तद्विजानीयात्सद्यः सर्वार्थदायकम् ।
स्तोभस्तम्भसमावेश्यवश्योच्चाटनकर्मसु ।।६९।।
सकृत्पूर्वं वदेन्मन्त्रमन्ते चैव तथा पुनः ।
मध्ये चास्य भवेत्साध्यमाद्यन्ताविति तद्विदुः ।।७०।।
अन्योन्यप्रीतियुक्तानां विद्वेषणकरं परम् ।

विदर्भित—प्रारम्भ में मन्त्र के दो अक्षर, तब साध्य नाम का एक अक्षर, फिर मन्त्र के दो अक्षर तब साध्य नाम के एक अक्षर के क्रम से विन्यास को विदर्भित कहते हैं। इससे दुष्टों का नाश और वशीकरण होता है।

आक्रान्त—यदि समभाव से वैंठकर मन्त्र का शीघ्रतापूर्वक जप किया जाय तो उसे आक्रान्त जानना चाहिये। यह समस्त कामनाओं को देने वाला होता है।

आद्यन्त—स्तोभ, स्तम्भ समावेश, वशीकरण एवं उच्चाटन कर्म में आदि एवं अन्त में मन्त्र तथा दोनों के मध्य में साध्य के विन्यास को आद्यन्त कहा जाता है। इसके प्रयोग से परस्पर प्रीतियुक्त लोगों में विद्वेषण होता है।।६७-७०।।

आदौ चान्ते तथा मन्त्रं द्विवारं सम्प्रयोजयेत् ।।७१।।
साध्यनाम सकृन्मध्ये गर्भस्थं तु तदुच्यते ।
मारणोच्चाटनं वश्यं प्रयुक्तकारणे नृणाम् ।।७२।।
हेतिनो सैन्यथी गर्भस्तम्भनं च गतेस्तथा ।
त्रिधा मन्त्रं वदेत्पूर्वं तथैवान्ते पुनस्त्रिधा ।।७३।।
सकृत्साध्यं भवेन्मध्ये तद्विद्यात्सर्वतोवृतम् ।
सर्वोपसर्गशमनं महामृत्युनिवारणम् ।।७४।।

सर्वं सौभाग्यजननं मृतानाममृतप्रदम्।

गर्भस्थ—साध्य नाम के पहले और बाद में मन्त्रविन्यास को गर्भस्थ कहते हैं। मनुष्यों के मारण, उच्चाटन, वशीकरण, शस्त्र-सेना-बुद्धि-गर्भ एवं गति के स्तम्भन में इसका प्रयोग किया जाता होता है।

सर्वतोवृत—प्रथमत: तीन बार मन्त्र का उच्चारण करने के पश्चात् एक बार साध्यनाम का उच्चारण करके पुन: तीन बार मन्त्र का उच्चारण सर्वतोवृत कहलाता है। इससे समस्त उपसर्गों का शमन और महामृत्यु का निवारण होता है। यह समस्त प्रकार के सौभाग्य को देने वाला एवं मृतकों को अमृत प्रदान करने वाला कहा गया है।।७१-७४।।

आदौ मन्त्रस्ततो नाम पुनर्मन्त्रं समालिखेत् ।।७५।।
एवमेव त्रिधा कृत्वा भवेन्मुक्तिं विदर्भितम्।
सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं भूतापस्मारमर्दनम् ।।७६।।
एकैकं साध्यवर्णं तु कृत्वा मन्त्रविदर्भितम्।
पूर्ववत्कथितं चान्यत्तस्याद्यन्ते प्रकल्पयेत् ।।७७।।
विदर्भग्रथितं नाम मन्त्रलक्षणमुत्तमम्।
सर्वकर्मकरं प्रोक्तं सर्वैश्वर्यफलप्रदम् ।।७८।।
एवमेव प्रयोगाः स्युः सिद्धमन्त्रस्य सिद्धिदाः।

मुक्तिविदर्भ—मन्त्र-नाम-मन्त्र—इस क्रम से तीन बार विन्यास करने से मन्त्र मुक्तिविदर्भित होता है। यह सभी व्याधियों का हरण करने वाला एवं भूत-अपस्मार का विमर्दक कहा गया है।

विदर्भग्रथित—पहले पूरा मन्त्र, तब साध्य नाम का एक अक्षर, फिर पूरा मन्त्र, तब साध्य नाम का दूसरा अक्षर—इसी क्रम से विन्यास करने पर विदर्भग्रथित होता है। यह समस्त कर्मों का साधक एवं समस्त प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाला होता है।

सिद्ध मन्त्रों के इसी प्रकार के प्रयोग सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं।।७५-७८।।

अथापरं प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धेस्तु लक्षणम् ।।७९।।
यज्ज्ञात्वा साधकश्रेष्ठो मन्त्रसिद्धिं लभेद् ध्रुवम्।
सम्यगनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धिर्न जायते ।।८०।।
पुनस्तथैव कर्त्तव्यं ततः सिद्ध्येन्न संशयः।
पुनः सोऽनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धिर्न जायते ।।८१।।
उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सप्त शङ्करभाषिताः।
भ्रामणं रोधनं वश्यं पीडनं शोषपोषणे ।।८२।।

दहनान्तक्रमात्कुर्यात्ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम्।
भ्रामणं वारुणे बीजे ग्रथनं क्रमयोगतः ॥८३॥
तन्मन्त्रं यन्त्रमालिख्य शिलाकर्पूरकुङ्कुमैः।
उशीरचन्दनाभ्यां तु मन्त्रं संग्रथितं लिखेत् ॥८४॥
क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तल्लिखितं क्षिपेत्।
पूजनाज्जपनाद्धोमाद् भ्रमितः सिद्धिदो भवेत् ॥८५॥
भ्रामितो यदि न सिद्ध्येद्रोधनं तस्य कारयेत्।
सारस्वतेन बीजेन सम्पुटीकृत्य सञ्जपेत् ॥८६॥
एवं रुद्धो भवेत्सिद्धो न वेदैतद्वशी कुरु।
अलक्तं चन्दनं कुष्ठं हरिद्रा मदनं शिला ॥८७॥
एतेषां मेलनात्सिद्धः पीडनं चास्य कारयेत्।
अधरोत्तरयोगेन पदानि परिजप्य वै ॥८८॥
व्यापितदेवतां तद्वदधरोत्तररूपिणीम्।
विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वा क्रमुकाङ्घ्रिणा ॥८९॥
तथाभूतेन मन्त्रेण होमः कुर्याद्दिने दिने।
पीडितो लज्जयाविष्टः सिद्धः स्यादथ पोषयेत् ॥९०॥
बालायास्त्रितयं बीजमाद्यन्ते तस्य योजयेत्।
गोक्षीरमधुनालिख्य विद्यां पाणौ विधारयेत् ॥९१॥
पोषितोऽयं भवेत्सिद्धो न चेत्कुर्वीत शोषणम्।
द्वाभ्यां च वायुबीजाभ्यां मन्त्रं कुर्याद्विदर्भितम् ॥९२॥
एषा विद्या गले धार्या लिखेदवरभस्मना।
शोषितोऽपि न सिद्धश्चेद्दहनीयोऽग्निबीजतः ॥९३॥
आग्नेयेन तु बीजेन मन्त्रस्यैकैकमक्षरम्।
आद्यन्तमूर्ध्वोर्ध्वजं च योजयेद्दाहकर्मणि ॥९४॥
ब्रह्मवृक्षस्य तैलेन मन्त्रमालिख्य धारयेत्।
कण्ठदेशे ततो मन्त्रः सिद्धः स्याच्छङ्करोदितम् ॥९५॥

अब मन्त्रसिद्धि के अन्य उपाय को कहता हूँ; जिसे जानकर उत्तम साधक निश्चित रूप से मन्त्रसिद्धि प्राप्त करता है। सम्यक् रूप से अनुष्ठान करने पर भी यदि मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो पुनः पूर्ववत् अनुष्ठान करने से निश्चित रूप से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। दैववशात् द्वितीय बार के अनुष्ठान से भी यदि मन्त्रसिद्धि नहीं हो तो उस अवस्था में भगवान् शंकर द्वारा कथित सात उपायों का अवलम्ब ग्रहण करना चाहिये। ये सात उपाय हैं—भ्रामण, रोधन, वश्य, पीड़न, शोषण, पोषण और दहन। इनके क्रमशः करने से मन्त्र अवश्य सिद्ध होते हैं।

१. भ्रामण—कपूर, कुमकुम, खस, चन्दन के लेप से भोजपत्र पर वरुणबीज 'वं' से मन्त्र के प्रत्येक वर्ण को ग्रथित करके अर्थात् 'वं—मन्त्र का एक वर्ण—वं' इस प्रकार मन्त्र के समस्त वर्णों को 'वं' बीज से ग्रथित करने के पश्चात् दूध, गोघृत, मधु और जल के घोल में निक्षिप्त करने के उपरान्त पूजा, जप और हवन करने से मन्त्र भ्रमित होकर सिद्धिप्रद हो जाता है।

२. रोधन—भ्रामित मन्त्र भी यदि सिद्ध न हो तो उसका रोधन करना चाहिये। एतदर्थ सारस्वत बीज 'ऐं' से सम्पुटित करके मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

३. वश्य—यदि रोधन करने से भी मन्त्र सिद्ध न हो तब उसका वशीकरण करना चाहिये। एतदर्थ अलक्तक (आलता), लाल चन्दन, कूठ, हल्दी, धतूरे का बीज और मैनसिल को सम भाग में लेकर सबका घोल बनाकर उस घोल से भोजपत्र पर मन्त्र को लिखकर गले में धारण करना चाहिये। इससे साधना में सफलता मिलती है।

४. पीड़न—वशीकरण से भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो उसका पीड़न करना चाहिये। एतदर्थ अधरोत्तर योग से मन्त्र का जप करके अधरोत्तररूपिणी देवी की पूजा करने के पश्चात् अकवन के दूध से भोजपत्र पर मन्त्र को लिखकर उसे बाँयें पैर के नीचे दबाकर मूल मन्त्र से प्रतिदिन एक सौ आठ हवन करने से पीड़ित मन्त्र लज्जित हो कर निश्चय ही सिद्ध हो जाता है।

५. पोषण—पीड़न करने से भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो उसका पोषण करना चाहिये। एतदर्थ बालामन्त्र के तीसरे बीज 'सौः' से मन्त्र को सम्पुटित करके गोदुग्ध एवं मधु के मिश्रण मन्त्र को लिखकर उसे दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिये।

६. शोषण—पोषण करने पर भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तब उसका शोषण करना चाहिये। एतदर्थ वायुबीज 'यं' से मन्त्र को विदर्भित करके यज्ञभस्म से भोजपत्र पर लिखकर उसे गले में धारण करके जप करना चाहिये।

७. दहन—शोषण करने से भी यदि सिद्धि न मिले तब मन्त्र का दहन करना चाहिये। एतदर्थ मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को अग्निबीज 'रं' से सम्पुटित करके एक-एक हजार जप करने के बाद पलाशबीज के तेल से यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर गले में धारण करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है; यह भगवान् शंकर का कथन है।।७९-९५।।

इत्येवं कथितं सम्यक् केवलं तव भक्तितः।
एकेन तु कृतार्थः स्याद्बहुभिः किमु सुव्रत! ।।९६।।

नारद ने गौतम से कहा कि हे सुव्रत! मैंने केवल आपकी भक्ति के कारण इन सबों को सम्यक् रूप से कहा है; इनमें से एक से ही साधक कृतार्थ हो जाता है, फिर वहुत कहने से क्या लाभ।।९६।।

अथापरं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधि महाद्भुतम्।
यत्प्रयोगविधानेन सद्यः सिद्धो भवेन्मनुः।।९७।।
सुवर्णपुष्पमूलेन पिष्टेन निजवारिणा।
तल्लिप्ताङ्गस्य कण्ठस्थो मनुः सद्यः प्रसीदति।।९८।।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः कृष्णं पश्यति चक्षुषा।
जीवन्मुक्तो भवेन्मन्त्री सत्यं सत्यं मयोदितम्।।९९।।
यत्र वा कुत्रचिद्देशे गन्तुं कामयते नरः।
स्वर्गे वा भूतले मन्त्री पाताले वाथ कौतुकात्।।१००।।
तत्क्षणाद्धि प्रयात्येव सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।

अब अन्य महा अद्भुत मन्त्रौषधि उपाय को कहता हूँ; जिसके विधिवत् प्रयोग से मन्त्र सद्यः सिद्ध हो जाता है। स्वर्णपुष्पी के मूल को उसी के रस से पीसकर अपने अंगों में लगाकर मन्त्र को कण्ठ में धारण करने से मन्त्र तत्काल प्रसन्न हो जाता है। इससे साधक सभी पापों से मुक्त होकर अपनी आँखों से कृष्ण का दर्शन करता है और जीवन्मुक्त हो जाता है। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है। वह साधक कौतुकवश स्वर्ग, भूतल अथवा पाताल जहाँ कहीं भी जाने की कामना करता है, वहाँ तत्क्षण ही चला जाता है। इस प्रकार वह समस्त सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।।९७-१००।।

इत्येवं कथितं सम्यग् मन्त्रसिद्धेस्तु लक्षणम्।
तदुपायं तदा ब्रह्मन् किं पुनः श्रोतुमिच्छसि।।१०१।।

इति गौतमीये महातन्त्रे त्रिंशोऽध्यायः

●

इस प्रकार मन्त्रसिद्धि के लक्षणों एवं उसके उपायों को मैंने सम्यक् रूप से कहा। हे ब्रह्मन्! अब और क्या सुनना चाहते हो।।१०१।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के त्रिंश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

एकत्रिंशोऽध्यायः

[आराधन-विधि, दीक्षित का सदाचार, उसके विधि-निषेध, प्रशस्त स्थान, प्रशस्त पुष्प, दीक्षित के नित्य कृत्य, एकादशी आदि व्रत, गोदानादि।]

गौतम उवाच

देवर्षे सर्वतन्त्रज्ञ सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्।
कृष्णानुभावसन्दर्शिन् विषादग्रन्थिभेदक ॥१॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञ विशेषात्कृष्णतत्त्ववित्।
इदानीं कथय ब्रह्मन् मन्त्राचारनिदर्शनम् ॥२॥
वैष्णवं पीठममलं तदावासफलं तथा।
विस्तरेण मम ब्रह्मन् अनुक्तमपि तत्त्वतः ॥३॥
न गोप्यं तद्गुरोः शिष्ये यदि योग्योऽस्मि भाग्यतः।

ऋषि गौतम बोले—समस्त तन्त्रों के ज्ञाता, समस्त शास्त्रों के अर्थतत्त्व को जानने वाले, कृष्णानुभावसंदर्शी, विषादग्रन्थियों का भेदन करने वाले सर्वज्ञ देवर्षि! आप सब कुछ जानते हैं, विशेषत: कृष्णतत्त्व के तो आप ज्ञाता हैं। हे ब्रह्मन्! इस समय आप तन्त्राचार-निदर्शन को कहिये; साथ ही निर्मल वैष्णवपीठ तथा वहाँ निवास करने का फल आपने नहीं कहा है; अत: उसे भी तत्त्वत: विस्तारपूर्व कहें। यदि मैं यह सब जानने के योग्य हूँ तो गुरु को शिष्य से कुछ भी छिपाना नहीं चाहिये।।१-३।।

नारद उवाच

दीक्षया लब्धमन्त्रस्य सदाचारं शृणुष्व मे ॥४॥
अनायासेन सिद्धिः स्यात्सदाचारस्य येन वै।
आचाराल्लभते काममाचाराल्लभते यशः ॥५॥
आचाराद्धनमाप्नोति दीर्घमायुरवाप्नुयात्।
सदाचारेण मनुवित् जयैर्लोकद्वयैः खलु ॥६॥
अनाचारो हि लोकेषु निन्दितः सर्वकर्मसु।
सर्वभूतेषु चानुकम्पा दानं वातिथिपूजनम् ॥७॥
पञ्चेज्या तीर्थसेवा च स्वाध्यायं गृहसेवनम्।
सामान्यं सर्वलोकानामेष धर्मः सनातनः ॥८॥

नारद जी बोले—दीक्षा द्वारा प्राप्त मन्त्र के सम्यक् आचार को मुझसे श्रवण करें; क्योंकि सदाचार के पालन से निश्चित रूप से अकस्मात् सिद्धि की प्राप्ति होती है। आचार से मनोकामना पूरी होती है और आचार से ही यश मिलता है। आचार से धन और दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। सदाचार से ही मन्त्रज्ञ साधक इहलोक एवं परलोक—दोनों लोकों पर विजय प्राप्त कर लेता है। संसार में सभी कर्मों में अनाचार सर्वथा निन्दित है। सभी भूतों के प्रति दया, दान, अतिथिपूजन, पञ्च महायज्ञ, तीर्थसेवा, स्वाध्याय एवं गृहसेवा—ये सभी लोकों में सामान्य धर्म कहे गये हैं।।४-८।।

ब्रह्मचारी दीक्षितश्चेत् त्रिसन्ध्यं देवमर्चयेत्।
स्नानं त्रिसवनं तद्वद्वेदाध्ययनमेव च ।।९।।
भक्ष्यं सम्प्रार्थयेत्साक्षाद्ध्यायेद्देवं सनातनम्।
पर्यटेद्विष्णुक्षेत्रेषु न प्रतिग्रहमाचरेत् ।।१०।।
गृहस्थो दीक्षया युक्तः सर्वकर्माणि व्याचरेत्।
न जपो नार्चनं स्नानं ध्यानं नापि विधिक्रमः ।।११।।
केवलं सततं ध्यानं चरणाम्भोजभागिनम्।
संन्यासिनां मुमुक्षूणां मानसोपहृतिः परम् ।।१२।।
परिव्राड्विविक्तश्च तथा गृही भवेत्सदा।
उभौ तौ नरके घोरे पचेते भूतसम्प्लवम् ।।१३।।
गृहस्थो धर्मपत्नीभिः पूजयेद्देवमन्वहम्।
दद्याद्देवं महार्हाणि येन कृष्णः प्रसीदति ।।१४।।
संन्यासिनां द्रव्यदाने नाधिकारोऽस्ति सुव्रत!।
वर्णिनां वनौकसां चैव को दद्यादपेक्षितम् ।।१५।।
किन्तु वैष्णवमन्त्रेषु विरला अधिकारिणः।

ब्रह्मचारी यदि दीक्षाप्राप्त हो तो उसे तीनों सन्ध्याओं (प्रात:-मध्याह्न-सायं) में देवता का अर्चन करना चाहिये; साथ ही उसे तीनों सन्ध्याओं में त्रिषवण स्नान, स्वाध्याय (वेदपाठ) एवं भोजन-हेतु नित्य भिक्षाटन करते हुये अनवरत रूप से देवता के ध्यान में रत रहना चाहिये। उसे विष्णु के क्षेत्रों में पर्यटन (भ्रमण) करना चाहिये एवं किसी भी अवस्था में प्रतिग्रह-ग्रहण नहीं करना चाहिये।

गृहस्थ को दीक्षा प्राप्त करके समस्त कर्मों का साधन करना चाहिये। जप, पूजन, ध्यान एवं विधिकर्म से विरहित रहते हुये मात्र कृष्णपादारविन्द में सतत निमग्न संन्यासियों एवं मुमुक्षुओं को मानसिक पूजन करना चाहिये। विविक्त (बेसुध) परिव्राजक एवं गृहस्थ—दोनों प्रलयकाल-पर्यन्त घोर नरक में वास करने वाले होते हैं।

गृहस्थ को अपनी भार्या के साथ प्रतिदिन देव का पूजन करने के साथ-साथ बहुमूल्य वस्तुओं का अर्पण करना चाहिये; ऐसा करने से कृष्ण प्रसन्न होते हैं। हे सुव्रत! संन्यासियों को द्रव्यदान करने का अधिकार नहीं होता। वनवासियों एवं गृहस्थों को उनका अपेक्षित देने में कौन समर्थ हो सकता है? फिर भी विष्णुमन्त्रों में कोई-कोई इसके अधिकारी होते हैं।।९-१५।।

संसारवासनारज्जुबद्धं लोलं मनो नृणाम्।।१६।।
ततो यदि विमुक्तः स्याद्बद्धं स्याद्देवपादयोः।
तत्रैवान्यो विशेषोऽस्ति श्रूयतामवधार्यताम्।।१७।।
सर्वसंसारदोषो हि नारीमूलस्ततो यदि।
शक्यते रक्षितुं चेतस्तदा वैष्णवसाधकः।।१८।।
अचञ्चलं मनो यस्य योषित्सङ्गं विवर्जितम्।
योषितां ध्याननिर्मुक्तं तच्छब्दश्रुतिवर्जितम्।।१९।।
तत्रैव साधकः कुर्यात्साधनं सुसमाहितः।
वलयध्वनयो नैव श्रूयन्ते यत्र योषिताम्।।२०।।
न स्त्रीमुखं निरीक्षेत न स्त्रियं मनसा स्मरेत्।
ब्रह्मचारी मिताहारी हविष्याशी जितेन्द्रियः।।२१।।
साधकः साधनं कुर्यात् यागी योगपरायणः।
कदाचिद्यस्य उच्यंन्तस्खलनं वाथ जायते।।२२।।
प्राणायामं विशेषेण समभ्यस्य तु साधकः।
स हि पातकदारूणां दहनः परिकीर्तितः।।२३।।
समस्तपापराशीनां मनोवाक्कायकर्मणाम्।
प्राणसंयममात्रं हि प्रायश्चित्तं सुनिश्चितम्।।२४।।

संसाररूपी वासनारज्जु से विमुक्त होकर मनुष्य का चंचल मन यदि देव के चरणकमलों में आबद्ध हो जाय तो उसका उद्धार हो जाता है। यहाँ पर कुछ विशेष ध्यातव्य कहा गया है, जिसे आप सुनें और सम्यक् रूप से धारण करें।

संसार के सभी दोषों के मूल में नारी अवस्थित होती है; अत: उनसे अपने चित्त की रक्षा करने में व्यक्ति यदि समर्थ हो तभी वैष्णव साधक हो सकता है। जिस साधक का चाञ्चल्य-रहित मन स्त्रियों की सङ्गति से रहित, उनके ध्यान से विनिर्मुक्त एवं उनके शब्द को न सुनता हो, वही साधक समाहित चित्त से साधना कर सकता है।

जहाँ पर स्त्रियों के वलयादि आभूषणों की ध्वनियाँ नहीं सुनाई पड़तीं, स्त्रियों के मुख पर दृष्टिपात नहीं होता, स्त्रियों का मन से स्मरण भी नहीं होता; वहीं पर ब्रह्मचारी,

स्वल्पाहारी, हविष्यान्नभोजी एवं जितेन्द्रिय साधक को त्यागी एवं योगपरायण होकर साधना करनी चाहिये। कभी भी साधक का मन यदि उनमें स्खलित हो जाय तो उसे प्राणायाम का विशेष रूप से अभ्यास करना चाहिये; क्योंकि प्राणायाम दारुण पापों का भी दहन करने वाला कहा गया है। यतः मन, वचन, शरीर एवं कर्म से किये गये समस्त पापों के समूह का प्रायश्चित्त एकमात्र प्राणायाम से ही होता है।।१६-२४।।

पुण्यतीर्थे च पुलिने सरितां देवतालये।
नद्यास्तटेऽथ विवरे विपिने तुलसीवने ॥२५॥
गोष्ठे तथैवोपवने गिरिकाननदिक्तटे।
विशेषतो द्वारवत्यां तथा गोवर्द्धने गिरौ ॥२६॥
यद्वा कलिन्दकन्यायाः कानने पुलिने तथा।
वृन्दावने गोकुले वा मथुरायामथापि वा ॥२७॥
मथ्नाति सर्वपापानि याति तत्परमं पदम्।
उत्तमो हि नरो तत्र तेन सा मथुरा स्मृता ॥२८॥

पावन तीर्थ में, सागरतट पर, देवालय में, नदियों के तट पर, गुफा में, वाटिका में, तुलसीवन में, गोशाला में, उपवन में, पर्वत एवं कानन के समीप; विशेषकर द्वारका, गोवर्धन पर्वत, यमुना के किनारे की झाड़ियों, वृन्दावन, गोकुल अथवा मथुरा रहकर साधक समस्त पापों को मथ ड़ालता है और उसके फलस्वरूप वह परमपद को प्राप्त करता है। यतः वहाँ उत्तम मनुष्य वास करते हैं; इसीलिये उसे 'मथुरा' कहा गया है।।२५-२८।।

बदरीखण्डविपिने गङ्गाद्वारेऽथवा पुनः।
व्यङ्कटे श्रीरङ्गे वा क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥२९॥
उत्तमः पुरुषो यत्र तत्क्षेत्रं पुरुषोत्तमम्।
अतएव साधकेन्द्रो निवसेत्तदपेक्षया ॥३०॥
एषु स्थानेषु विप्रर्षे नित्यं सन्निहितो हरिः।
अत एव साधकेन्द्रो निवसत्तदपेक्षया ॥३१॥
हरेः सन्दर्शनं यावन्निवसेत्सुखनिःस्पृहः।
स्थानान्येतानि शुद्धानि कृत्यं किञ्चिन्निगद्यते ॥३२॥
विशेषतः पशुजनैर्नास्तिकैरन्यदीक्षितैः।
नान्त्यजं च समीक्षेत तदालापं च वर्जयेत् ॥३३॥
स्त्रीसङ्गिनं वर्जयेच्च तत्कथाकथनं तथा।

बदरीधाम के विपिन में अथवा गंगाद्वार (हरिद्वार) में, व्यंकट पर्वत पर, श्रीरंगम्

अथवा श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) में साधना-हेतु निवास करना चाहिये। जिस क्षेत्र में उत्तम पुरुष निवास करते हैं, वह पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा जाता है। अतएव साधक को साधना की अपेक्षा से इन स्थानों पर वास करना चाहिये। हे विप्रर्षे! इन स्थानों पर श्रीहरि नित्य विराजमान रहते हैं; अतएव साधक को साधना की अपेक्षा से वहाँ तब तक सुख से निःस्पृह होकर निवास करना चाहिये, जब तक कि श्रीहरि का दर्शन न हो जाय। ये स्थान अत्यन्त पवित्र कहे गये हैं।

अब कुछ कृत्यों को कहता हूँ। विशेषत: पशुजनों, नास्तिकों, अन्य धर्म में दीक्षितों एवं अन्त्यजों को न तो देखना चाहिये और न ही उनसे वार्तालाप करना चाहिये। स्त्रियों की संगति एवं उनके साथ कथा-वार्ता का त्याग करना चाहिये।।२९-३३।।

जन्मासाद्य मनुष्येषु शुक्ले च पितृमातरि ।।३४।।
वर्त्तमाने च सुकृते तत्रैवेन्द्रियपाटवे ।
ब्रह्मन् ब्रह्मणि कृष्णे च गोपाले देवकीसुते ।।३५।।
त्रिवर्गफलदे किंवा बहुनात्मपदप्रदे ।
यो नार्चयति कल्पः सन् तस्मात्पापतरो हि कः।।३६।।
असारे घोरसंसारे सारं कृष्णपदार्चनम् ।
तत्पदं वार्चितं येन पवित्रं सर्वबोधकम् ।।३७।।
तत्पदं नार्चितं येन पापिना पापकर्मणाम् ।
शरीरभारवहनं तस्य जन्म निरर्थकम् ।।३८।।

हे ब्रह्मन्! शुद्ध माता-पिता से मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण कर वर्तमान में जितेन्द्रिय रहकर पुण्य कर्म करते हुये त्रिवर्गरूप फल अथवा आत्मफल प्रदान करने वाले ब्रह्मस्वरूप देवकीपुत्र गोपाल का जो अर्चन नहीं करता, उससे अधिक पातकी भला कौन हो सकता है? इस निःसाररूप घोर संसार में कृष्णपद का अर्चन ही एकमात्र सार है। जो उनके पद का अर्चन करता है, वह पवित्र होकर सबकुछ जानने वाला हो जाता है एवं जिस पापी ने उनके पद का अर्चन नहीं किया, उस पापकर्मा का शरीर मात्र भार ढ़ोने वाला होता है एवं उसका जन्म निरर्थक होता है।।३४-३८।।

गोपालं पूजयेद्यस्तु निन्दयेदन्यदेवताः ।
अस्तु तस्य परो धर्मः पूर्वधर्मो विनश्यति ।।३९।।
प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत् ।
नाधिरोहेत्तु पर्यङ्के रक्तवासो न धारयेत् ।।४०।।
न रक्तचन्दनं हस्ते गृह्णीयाद्रक्तपुष्पकम् ।
बिल्वपत्रैस्तत्प्रसूनैर्नार्चयेद्देवकीसुतम् ।।४१।।

नैव द्विरशनं कुर्यात्पर्ववर्जमृतौ तथा ।
तथा निषेवयेद्धर्मपत्नी धर्मरिरक्षया ॥४२॥
ततः परदिने कृत्यं कुर्यात्स्नानोत्तरं सुधीः ।
शरीरोद्वर्तनं कृत्वा स्नात्वा नद्यादिवारिणि ॥४३॥
नियते यागकाले च न कुर्यादन्यप्रेक्षणम् ।
नैवाश्लीलं ततो ब्रूयादालापं च निरर्थकम् ॥४४॥

जो व्यक्ति गोपाल की अर्चना करते हुये भी अन्य देवताओं की निन्दा करता है, उसके परधर्म तो नष्ट होते ही हैं, पूर्वकृत धर्म भी विनष्ट हो जाते हैं। साधक को प्रतिदिन शय्या का प्रक्षालन करके निर्भय होकर एकाकी शयन करना चाहिये। पलंग पर कभी नहीं चढ़ना चाहिये और न ही लाल वस्त्र धारण करना चाहिये। हाथों से लाल चन्दन एवं लाल फूलों को ग्रहण नहीं करना चाहिये। विल्वपत्र एवं विल्वपुष्प से देवकीसुत की अर्चना नहीं करनी चाहिये। दो बार भोजन नहीं करना चाहिये। पर्वदिवसों एवं ऋतुकाल के अतिरिक्त दिनों में धर्म की रक्षा-हेतु ही धर्मपत्नी का सेवन करना चाहिये। उसके बाद दूसरे दिन शरीर में उबटन लगाकर नदी के जल में स्नान करके शेष कृत्यों का सम्पादन करना चाहिये। नियत यागकाल में दूसरी स्त्रियों के प्रति नहीं देखना चाहिये, न अश्लील वचन वोलना चाहिये और न ही निरर्थक वार्त्तालाप करना चाहिये।।३९-४४।।

न वृथा गमयेत्कालं ध्यानयोगेन तत्परः ।
केवलं श्रीपदाम्भोजन्यस्तचेता भवेत्सुधीः ॥४५॥
यद्यत्कर्मणि वैगुण्यं नित्ये नैमित्तिके तथा ।
सहस्रं प्रजपेन्मूलमन्त्रं चायुतमेव वा ॥४६॥
नित्ये सहस्रं प्रजपेन्नैमित्तिके तथायुतम् ।
सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते ॥४७॥
प्रायश्चित्तं तु तत्रोक्तमयुतं मन्त्रजापतः ।
सुवर्णं वह्निना ध्मातं यथा भवति निर्मलम् ॥४८॥
तथा सर्वगतं पापं प्रायश्चित्ताग्निना दहेत् ।

विद्वान् साधक को व्यर्थ समय व्यतीत नहीं करना चाहिये; अपितु ध्यानयोग में तत्पर होकर मात्र हरि के चरणकमलों में चित्त को निरन्तर न्यस्त किये रहना चाहिये। नित्य-नैमित्तिक कर्मों को करने में यदि कोई वैगुण्य हो जाय तो नित्य कर्म के वैगुण्य-दूरीकरणार्थ मूल मन्त्र का एक हजार एवं नैमित्तिक कर्म की अवस्था में दश हजार जप करना चाहिये। समस्त पापों का संकर उपस्थित हो जाने पर उनके प्रायश्चित्तस्वरूप मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये। अग्नि में धमन करने से जैसे सुवर्ण निर्मल

हो जाता है, वैसे ही सभी प्रकार के पापों का प्रायश्चित्तरूपी अग्नि से भस्मीकरण हो जाता है।।४५-४८।।

तुलसीदलपुष्पैश्च तथैवामलकीदलैः ।।४९।।
तथैव तुलसीपत्रैर्मालतीकुसुमैरपि ।
यूथिकाभिर्मल्लिकाभिः पङ्कजैः कुसुमैरपि ।।५०।।
चम्पकैः केसरैश्चापि अशोकैः किंशुकैरपि ।
कोविदारैः सहकारैस्तथा वकुलकैरपि ।।५१।।
पाटलाभिर्जपाभिश्च बन्धूकै रक्तकैरपि ।
अन्यैश्च विविधैः पुष्पैर्दर्शनीयैः सुगन्धिभिः ।।५२।।
आरामजैर्विपिनजैर्निषिद्धपरिवर्जितैः ।
इत्येतत्कथितं पुष्पविधानं हरिपूजने ।।५३।।

तुलसीदलमञ्जरी, आमलकीपत्र, तुलसीपत्र, मालतीपुष्प, यूथिकापुष्प, मल्लिकापुष्प, कमलपुष्प, चम्पापुष्प, केसरपुष्प, अशोकपुष्प, किंशुकपुष्प, कोविदारपुष्प, सहकारपुष्प, वकुलपुष्प, पाटलापुष्प, जपापुष्प, रक्तबन्धूकपुष्प और अन्य भी दर्शनीय सुगन्धित पुष्पों से हरि की पूजा करनी चाहिये। आरामज (बगीचे में उत्पन्न) एवं जंगली पुष्प हरिपूजन में निषिद्ध होने से त्याज्य हैं। इस प्रकार हरिपूजन में पुष्प का विधान कहा गया।।४९-५३।।

पशूनां हिंसनं नैव कुर्यात्कस्यापि पीडनम् ।
कटुवाक्यं वर्जयेच्च ब्रूयान्मधुरभाषणम् ।।५४।।
संस्कृतेनैव कथयेन्नान्यां भाषां वदेत्सुधीः ।
आत्मदैवतयोरैक्यं गुरुदैवतयोरपि ।।५५।।
ऐक्यं सम्भावयेद्बुद्ध्या न गुरोः शासनं त्यजेत् ।
एकग्रामे गुरोर्नित्यं गत्वा वन्देत भक्तितः ।।५६।।
योजनानन्तरं ग्रामं मासं मासं च वन्दयेत् ।
अतः परं तस्य दिशि नमः कुर्याच्च भक्तितः ।।५७।।
अथवा मानसीं पूजां प्रकुर्यान्निजमूर्द्धनि ।
पितृवंशे मातृवंशे शुद्धः सत्यपरायणः ।।५८।।
न जारजो न कानीनो न राक्षसविवाहतः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव वैश्यः शूद्रस्तथैव च ।।५९।।
निरपेक्षो हरिं जप्त्वा हरिर्भवति नापरः ।
गृह्णंस्तस्य च नामानि तत्कथाश्रवणोत्सुकः ।।६०।।

नमस्यंस्तत्पदाम्भोजं भक्तोऽयं प्रेमलक्षणः ।
पक्षद्वयेऽपि मतिमान्न लङ्घयेद्धरिवासरम् ॥६१॥

साधक को कभी भी पशुओं को मारना नहीं चाहिये। किसी को पीड़ा नहीं देनी चाहिये। कठोर वचनों का त्याग करके मधुर वचन बोलना चाहिये। विद्वान् साधक को सदा संस्कृत भाषा में ही बोलना चाहिये; अन्य भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये। स्वयं में और देवता में तथा गुरु और देवता में ऐक्य की भावना रखनी चाहिये। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। एक ही ग्राम में गुरु एवं शिष्य दोनों के निवास करने पर शिष्य को प्रतिदिन गुरु के पास जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये। एक योजन की दूरी पर रहने वाले गुरु को प्रत्येक मास में एक बार जाकर प्रणाम करना चाहिये। इससे भी अधिक दूरी पर रहने वाले गुरु की दिशा में भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये अथवा अपने मस्तक पर ही गुरु का मानसिक पूजन करना चाहिये।

पितृ और मातृवंश से शुद्ध, सत्यनिष्ठ, जार अथवा अविवाहिता अथवा राक्षस विवाह से अनुत्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपेक्षारहित होकर हरि का जप (भजन) करते हुये स्वयं भी साक्षात् हरि ही हो जाता है; दूसरा नहीं रह जाता। हरि का नामग्रहण, उनकी कथा को सुनने की उत्सुकता एवं उनके चरणकमलों में नति प्रेमलक्षण भक्ति का स्वरूप कहा गया है। बुद्धिमान साधक को दोनों पक्षो में हरिवासर (एकादशी) का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।।५४-६१।।

अपि चाण्डालगेहान्नं मातॄणां गमनं वरम् ।
न लङ्घेन्मतिमान्क्वापि सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥६२॥
वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकादश्यां प्रमादतः ।
विष्ण्वर्चनं वृथा तस्य नरकं घोरमाप्नुयात् ॥६३॥
शुक्लोपचारसम्भारैर्नित्यशो हरिमर्चयेत् ।
निवेद्य कृष्णाय भुञ्जीत आमान्नं न कदाचन ॥६४॥
अथवा सात्वते दद्याद्यदि लभ्येत भक्तितः।
निवेदयेदुत्तमान्नं न कदन्नं कदाचन ॥६५॥
उत्तमं विधिना प्राप्तं कदन्नं मुनिदूषितम् ।

चाण्डाल के घर का अन्न ग्रहण करना अथवा अपनी माता के साथ गमन करना फिर भी प्रशस्त होता है; लेकिन बुद्धिमान को किसी भी दशा में हरिवासर के प्राप्त होने पर उसका लंघन नहीं करना चाहिये। वैष्णव व्यक्ति यदि प्रमादवश एकादशी में भोजन करता है तो उसका विष्णुपूजन व्यर्थ हो जाता है और वह घोर नरक को प्राप्त होता है। स्वच्छ उपचारों से प्रतिदिन हरि का अर्चन करना चाहिये एवं कृष्ण को

निवेदित कर पक्वान्न का भोजन करना चाहिये अथवा कोई विष्णुभक्त यदि भक्तिपूर्वक ग्रहण करे तो वह निवेदितान्न उसे दे देना चाहिये। आमान्न (अपक्व अन्न) कभी भी हरि को निवेदित नहीं करना चाहिये। हरि को सदा उत्तम अन्न ही निवेदित करना चाहिये; कभी भी कुत्सित अन्न निवेदित नहीं करना चाहिये। उत्तम विधि से प्राप्त होने पर भी कदन्न को मुनियों ने दूषित कहा है।।६२-६५।।

शिलोञ्छविधिना प्राप्तमथवा यदयाचितम् ।।६६।।
स्वचित्तोपचितं वाथ कृष्णाय परिकल्पयेत् ।
शूद्राल्लब्धं छलाल्लब्धमथवा दूषिकान्वितम् ।।६७।।
इत्याद्यन्नं कदन्नं तु दानान्नरकमावहेत् ।
रात्रौ हविष्यं भुञ्जीत चान्द्रायणफलार्थिभिः ।।६८।।
हरिभक्तस्य युक्तस्य विरुद्धं दिवसाशनम् ।

शिलोञ्छ विधि से प्राप्त अथवा विना याचना किये प्राप्त अथवा स्वयं एकत्र किया गया अन्न ही कृष्ण को समर्पित करना चाहिये। शूद्र से प्राप्त, कपट से प्राप्त अथवा दूषित अन्न हरि को कभी अर्पित नहीं करना चाहिये; अन्यथा नरकगामी होना पड़ता है। चान्द्रायण फल की प्राप्ति के लिये रात्रि में हविष्यान्न का भोजन करना चाहिये। हरिभक्त एवं योगयुक्त के लिये दिन में भोजन करना नियमविरुद्ध कहा गया है।।६६-६८।।

कार्तिके मासि विधिवदर्चयेत्कृष्णमन्वहम् ।।६९।।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय निर्वर्त्य सकलाः क्रियाः ।
यजेत् सुशोभने स्थाने पशुदृष्टिविवर्जिते ।।७०।।
सर्वोपचारैराराध्य प्रदीपान् घृतपूरितान् ।
अष्टोत्तरशतं दद्यादथवा शक्तितो मुने ।।७१।।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्री दशांशं होममाचरेत् ।
एवं नित्यक्रमं कुर्याद्दिवा मौनं समाचरेत् ।।७२।।
इत्थं विधिवदाराध्य यावन्मासं प्रपूजयेत् ।
स तल्लोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ।।७३।।
इह लोके वरान् भोगान् भुक्त्वा मनोरथातिगान् ।
अस्मिन्मासि चामलायां द्वादश्यां हरितोषणम् ।।७४।।
सर्वोपचारैः कुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
अनेनार्चनमात्रेण भवबन्धात् प्रमुच्यते ।।७५।।
एतदर्चनमात्रं हि हरितोषणकारणम् ।

कार्तिक मास में प्रतिदिन कृष्ण का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। एतदर्थ ब्राह्म

मुहूर्त में उठकर समस्त नित्यकृत्यों को सम्पन्न करने के उपरान्त पशुदृष्टि से रहित सुन्दर स्थान पर समस्त उपचारों से पूजन करके घृतपूर्ण एक सौ आठ अथवा यथाशक्ति दीपक जलाना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र का एक हजार जप करने के पश्चात् जप का दशांश हवन करना चाहिये। प्रतिदिन यह विधि करते हुये दिन में मौन का अवलम्ब ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार विधिवत् आराधन करते हुये जो साधक एक मास तक पूजन करता हे, वह पुनरावृत्ति-वर्जित श्रीहरि के लोक को प्राप्त करता है। वह इस संसार में सभी काम्य भोगों का भोग कर मनोरथों से रहित हो जाता है। इस महीने की अमला द्वादशी को वित्तशाठ्य से रहित होकर समस्त उपचारों से श्रीहरि को प्रसन्न करना चाहिये। इस प्रकार अर्चन करने से मनुष्य भववन्धन से मुक्त हो जाता है। एकमात्र यह अर्चन ही हरि की प्रसन्नता का कारण कहा गया है।।६९-७५।।

मार्गशीर्षे तथा मासि प्रातः स्नात्वा नरोत्तमः ।।७६।।
क्रमपूजां समासाद्य जपहोमौ समाचरेत् ।
पायसं गुडमिक्षुं च प्रत्यहं विनिवेदयेत् ।।७७।।
एवं मासार्चनं कृत्वा भवेद्भाग्यालयः पुमान् ।
देहान्ते मोक्षमाप्नोति प्रसादाच्छार्ङ्गधन्विनः ।।७८।।

श्रेष्ठ साधक को मार्गशीर्ष मास में प्रातःकाल स्नान करने के उपरान्त क्रमपूजा का सम्पादन करके जप-हवनादि करने के पश्चात् प्रतिदिन पायस और ईख का गुड़ निवेदित करना चाहिये। इस प्रकार एक मास तक पूजन करने से मनुष्य भाग्य का अधिष्ठान हो जाता है; एवं शरीरान्त होने पर शर्ङ्गधन्वा कृष्ण के प्रसाद से मोक्ष प्राप्त कर लेता है।७६-७८।।

अथ भाद्रासिताष्टम्यां प्रादुरासीत्स्वयं हरिः।
ब्रह्मणा प्रार्थितः पूर्वं देवक्यां कृपया विभुः ।।७९।।
रोहिण्यर्क्षे शुभतिथौ दैत्यानां नाशहेतवे ।
महोत्सवं प्रकुर्वीत यत्नतस्तद्दिने शुभे ।।८०।।
राजन्यैर्ब्राह्मणैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव स्वशक्तितः ।
उपवासं प्रकुर्वीत न भोक्तव्यं कदाचन ।।८१।।
कृष्णजन्मदिने यस्तु भुङ्क्ते स तु नराधमः ।
निवसेन्नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम् ।।८२।।
अष्टमी रोहिणीयुक्ता चार्द्धरात्रे यदा भवेत् ।
उपोष्यतां तिथिं विद्धां कोटियज्ञफलं लभेत् ।।८३।।
सोमाह्नि बुधवारे वा अष्टमी रोहिणीयुता ।
जयन्ती सा समाख्याता लभ्यते पुण्यसञ्चयैः ।।८४।।

अस्यामुपोष्य यत्पापं लोके कोटिभवोद्भवम्।
विमुच्य निवसेद्विप्र वैकुण्ठे विरजे पुरे ।।८५।।

पूर्व में ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने के फलस्वरूप दैत्यों के नाश के लिये उनपर कृपा करते हुये विभु श्रीहरि भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में देवकी के गर्भ से स्वयं आविर्भूत हुये थे; अतः उस शुभ दिन को राजाओं, ब्राह्मणों, वैश्यों एवं शूद्रों को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार यत्नपूर्वक महोत्सव मनाना चाहिये; साथ ही उस दिन उपवास रखना चाहिये; कभी भी भोजन नहीं करना चाहिये। कृष्ण के जन्मदिन में जो भोजन करता है, वह नराधम महाप्रलय-पर्यन्त घोर नरक में वास करता है। अर्द्धरात्रि में जब अष्टमी रोहिणी से विद्ध होती है, तब उपवास करने से करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है। सोमवार अथवा बुधवार को रोहिणीयुता अष्टमी जयन्ती कही गई है और यह अतिशय पुण्य से ही प्राप्त होती है। विप्र इस तिथि में उपवास करने से इस लोक में उत्पन्न करोड़ों पापों से मुक्त होकर विष्णु के वैकुण्ठ लोक में निवास करता है।।७९-८५।।

अष्टमी नवमीविद्धा उमामाहेश्वरी तिथिः।
सैवोपोष्या सदा पुण्याकांक्षिणां रोहिणीं विना ।।८६।।
परविद्धा सदा कार्या पूर्वविद्धा तु वर्जयेत्।
अष्टमी सप्तमीविद्धा हन्यात्पुण्यं पुरा कृतम् ।।८७।।
ब्रह्महत्याफलं दद्याद्धरिवैमुख्यकारणात्।
परेऽह्नि पारणां कुर्यात्तिथ्यन्ते वाऽथ ऋक्षतः ।।८८।।
यदृक्ष या तिथिर्वापि रात्रिं व्याप्य व्यवस्थिता।
केवलं ऋक्षयोगेन उपवासस्तिथिं विना ।।८९।।
न तत्र शुभकार्यं तु मुनिभिः परिनिश्चितम्।
दिवसे पारणं कुर्यादन्यथा पतनं भवेत् ।।९०।।

नवमी-विद्धा अष्टमी उमामाहेश्वरी तिथि कहलाती है। उस अष्टमी के रोहिणी-विनिर्मुक्त रहने पर पुण्य चाहने वालों को बराबर उपवास करना चाहिये। पूर्वविद्धा का त्याग करते हुये परविद्धा में ही सदा उपवास करना चाहिये। सप्तमीविद्धा अष्टमी में उपवास करने से पूर्वकृत पुण्यों का क्षरण हो जाता है; साथ ही श्रीहरि से विमुख होने के कारण ब्रह्महत्या-सदृश फल की प्राप्ति होती है। नक्षत्र के अनुसार तिथि के अन्त में अथवा दूसरे दिन पारणा करनी चाहिये। मुनियों के निश्चय के अनुसार तिथि के बिना केवल नक्षत्र का योग होने पर भी उपवास तो किया जा सकता है; किन्तु उसमें कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिये। पारणा दूसरे ही दिन करनी चाहिये; अन्यथा साधक का पतन होता है।।८६-९०।।

परेऽह्निकं प्रदद्याच्च गवां कण्डूतिमाचरेत्।
विप्राय वेदविदुषे गाञ्च दद्यात्पयस्विनीम्॥९१॥
सवत्सां युवतीं रम्यां सगुणां समलंकृताम्।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः॥९२॥
ददामि ते विप्रवर्य्य कृष्णप्रीत्यर्थमुत्तमम्।
इत्युक्त्वा विप्रवर्येभ्यो दद्याद्गाश्च सदक्षिणाः॥९३॥
रात्रौ जागरणं कुर्यादर्चयेच्च क्रमावृतीः।
स्वर्णप्रतिकृतिं कृत्वा तस्यां कृष्णं समर्चयेत्॥९४॥
वसुदेवं देवकीं च पूर्ववत्कारयेत्तथा।

दूसरे दिन ब्राह्मण को दी जाने वाली गाय को सहलाना चाहिये। वेदज्ञानी ब्राह्मण को दूध देने वाली गाय का दान देना चाहिये। बछड़े से युक्त, युवती, सुन्दर, गुणवती, सम्यक् रूप से अलंकृत, स्वर्णजटित शृङ्ग एवं रजत-जटित खुर वाली गाय को वस्त्र से आच्छादित करके 'हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! कृष्ण की प्रसन्नता के लिये इस उत्तम गौं को आपको प्रदान करता हूँ' ऐसा कहते हुये श्रेष्ठ ब्राह्मण को दक्षिणा-सहित गोदान करना चाहिये। तदनन्तर रात्रिजागरण करके दूसरे दिन आवरण-सहित पूजन करना चाहिये। सुवर्ण की कृष्ण की मूर्त्ति बनवाकर उसमें कृष्ण का सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये। साथ ही वसुदेव, देवकी का भी पूर्ववत् पूजन करना चाहिये।।९१-९४।।

सुवर्णनियमं चात्र श्रूयतां मुनिसत्तम॥९५॥
पलैश्चतुर्भिः गोपालं तदर्द्धेनाथ देवकीम्।
वसुदेवं तथा कुर्यादथवा विभवावधिः॥९६॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय कृत्वावश्यं प्रसन्नधीः।
स्नात्वा पूर्ववदाराध्य आहूय वेदपारगम्॥९७॥
कुटुम्बिनं दरिद्रञ्च विप्रं बहुगुणान्वितम्।
दत्वा तस्मै सुशीलाय दक्षिणामुक्तलक्षणाम्॥९८॥
प्रीयतां कृष्ण इत्युक्त्वा उत्सृज्य कृष्णमानसः।

हे मुनिसत्तम! अव प्रतिकृति-निर्माण के लिये ग्राह्य सुवर्ण के निर्धारित मान का श्रवण करें। गोपाल की प्रतिकृति चार पल (१८६ ग्राम) सुवर्ण से एवं देवकी तथा वसुदेव की दो पल (९३ ग्राम) सुवर्ण से अथवा अपने सामर्थ्य के अनुरूप निर्मित करवानी चाहिये। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर प्रसन्नता-पूर्वक आवश्यक कृत्य सम्पन्न कर स्नान करके पूर्ववत् पूजन करने के पश्चात् वेदपारगामी, कुटुम्वी (परिवार वाले), दरिद्र, अनेक गुणसम्पन्न सुशील ब्राह्मण को उक्त लक्षण वाली दक्षिणा 'कृष्ण प्रसन्न हों' कहते हुये कृष्ण में अपने चित्त को निविष्ट करते हुये प्रदान करनी चाहिये।।९५-९८।।

घृतखण्डाज्यभोज्यानि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥९९॥
महान्तमुत्सवं कुर्यात्प्रीतये शार्ङ्गधन्विनः।
पारणञ्च प्रकुर्वीत बन्धुभिः सह हृष्टवत् ॥१००॥
एवं यः कुरुते भक्त्या शक्त्या च हरितोषणम्।
इह भुक्त्वा वरान्भोगान् साक्षाद्भूमिपुरन्दरः ॥१०१॥
एवमाराधनादेव भक्तिः स्यात्प्रेमलक्षणा।
देहान्ते विरजे लोके वैकुण्ठे हरिवच्चरेत् ॥१०२॥
इति ते कथितं किञ्चिदाराधनविधिं हरेः।
केवलं तव यत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१०३॥

इति गौतमीये महातन्त्रे एकत्रिंशोऽध्यायः

●

दक्षिणा प्रदान करने के उपरान्त ब्राह्मणों को घृत, खाँड़ एवं आज्ययुक्त भोज्य प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर कृष्ण की प्रसन्नता के लिये महान् उत्सव करना चाहिये। इसके बाद स्वयं भी बन्धु-बान्धवों के साथ प्रसन्न मन से पारणा करनी चाहिये। इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक जो साधक श्रीहरि को सन्तुष्ट करता है, वह इस संसार में श्रेष्ठ भोगों का भोग करके पृथ्वी पर साक्षात् इन्द्र के समान हो जाता है। इस प्रकार की आराधना ही प्रेमलक्षणा भक्ति कहलाती है। पुनः शरीरान्त होने पर वह साधक वैकुण्ठ लोक में विष्णु के समान विचरण करता है। इस प्रकार आपके प्रयत्न के कारण हरि के आराधन की कतिपय विधियों को मैंने आपसे कहा। अब और क्या सुनना चाहते हैं।।९९-१०३।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के एकत्रिंश अध्याय का श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

●

द्वात्रिंशोऽध्यायः

[योग पद की निरुक्ति, योग के आठ अंग एवं उनके लक्षण, मन्त्रयोग, दश मुख्य नाड़ियाँ, षट्चक्र एवं उसके अभ्यास का फल, धारणा एवं उसके स्थान, अभ्यासयोग, समाधि, ज्ञान-माहात्म्य, अपक्व योगी के और्ध्वदैहिक संस्कार, गौतम तन्त्र का माहात्म्य।]

गौतम उवाच

देवर्षे योगयुक्तात्मन् योगानुभवदर्शक।
साङ्ख्ययोगानुभवन् प्रभोऽनुभवदर्शक ॥१॥
साङ्ख्ययोगविशेषज्ञ कर्मयोगनिषेवकः।
विना योगेन न सिद्ध्येत् कुण्डलीचक्रचक्रिम ॥२॥
मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् किञ्चिन्न सिद्ध्येत मन्त्रयन्त्रार्चनादयः ॥३॥
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसञ्चयैः।
तदा प्रसादमायान्ति मन्त्रयन्त्रार्चनानि च ॥४॥
शिववद्विहरेल्लोके अष्टैश्वर्यसमन्वितः।
योगयोगान्भवेन्मुक्तिर्मन्त्रसिद्धिरखण्डिता ॥५॥
सिद्धे मनौ परावाप्तिरिति शास्त्रार्थनिश्चयः।
तस्मात्कार्ष्णं परं योगं कथयस्व मुनीश्वर ॥६॥
मुक्तात्मा येन विहरेत् स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
जीवन्मुक्तश्च देहान्ते परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥७॥

गौतम बोले—योग से युक्त आत्मा वाले, योगानुभव का साक्षात्कार कराने वाले, सांख्ययोग के साक्षात्कार कराने वाले, प्रभु का दर्शन करने वाले, सांख्ययोग के विशेषज्ञ, कर्मयोग का सेवन करने वाले हे देवर्षि! कुण्डलिनी चक्र की सिद्धि योग के विना सम्भव नहीं होती। हे प्रभो! मूलाधार में जब तक कुण्डलिनी सुप्तावस्था में रहती है, तब तक मन्त्र, यन्त्र, अर्चनादि कुछ भी सिद्ध नहीं होते। अतिशय पुण्यों का सञ्चय होने के फलस्वरूप जब वह जागृत होती है तभी मन्त्र, यन्त्र एवं अर्चन भी प्रसन्न होते हैं अर्थात् सिद्ध होते हैं और आठो ऐश्वर्य से समन्वित होकर साधक शिव के समान संसार में विहार करता है। योग के योग से मुक्ति प्राप्त होती है एवं मन्त्रसिद्धि

अखण्ड़ित रहती है। शास्त्रों का यह निश्चय है कि मन्त्र के सिद्ध होने पर परमपद की प्राप्ति होती है। इसलिये हे मुनीश्वर! आप कृष्ण से सम्बद्ध परम योग का कथन करें; जिससे साधक मुक्तात्मा होकर स्वर्ग, भूतल एवं रसातल में विहार करने में समर्थ हो सके तथा शरीरान्त होने पर जीवन्मुक्त होकर परमनिर्वाण प्राप्त कर सके।।१-७।।

नारद उवाच

कथयामि तव स्नेहाद्योगयोग्योऽसि गौतम।
संसारोत्तरणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते ।।८।।
योगो हि नन्दतनयो निश्चितं विद्धि गौतम।
न योगो नभसः पृष्टे न भूमौ न रसातले ।।९।।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदः।
तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरा मुने ।।१०।।
कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यसंज्ञकाः।
योगाङ्गैरेभिर्जित्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः ।।११।।

नारद बोले—हे गौतम! क्योंकि आप योग के योग्य हैं, इसलिये आपके स्नेह के कारण मैं उक्त विषय का विवेचन कर रहा हूँ। हे गौतम! नन्दपुत्र कृष्ण ही योग हैं; ऐसा तुम निश्चित समझो। आकाश के पृष्ठ अर्थात् स्वर्ग, भूतल अथवा रसातल में योग नहीं हैं; अपितु योगज्ञों ने जीव एवं आत्मा के ऐक्य को ही योग कहा है। हे मुने! उस योग के विघ्नकारक प्रत्यूह छः कहे गये हैं और वे हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य। योगांगों द्वारा इन पर विजय प्राप्त करके ही योगियों ने योग प्राप्त किया है।।८-११।।

यमनियमासनप्राणायामाश्च ततः परम्।
प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्द्धं समाधिना ।।१२।।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनो योगसाधने।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।।१३।।
क्षमाधृतिर्मिताहारः शौचं चैते यमा दश।
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ।।१४।।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम्।
दशैते नियमाः प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः ।।१५।।

योग के आठ अंग कहे गये हैं, जिनका आश्रय ग्रहण का योगियों द्वारा योगसाधना की जाती है; वे योगांग इस प्रकार हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ योगांगों में से यम दश प्रकार का कहा गया

है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच। योगवेत्ताओं द्वारा नियम भी दश कहे गये हैं और वे हैं—तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, देवपूजा, सिद्धान्तश्रवण, ह्री, मति, जप और हवन।।१२-१५।।

पद्मासनं स्वस्तिकाख्यं भद्रं वज्रासनं तथा।
वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम्।।१६।।
ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक् पादतले उभे।
अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः।।१७।।
पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम्।
जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।।१८।।
ऋजुकायो वसेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते।
सिमिन्याः पार्श्वयोः न्यस्येद्गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम्।।१९।।
वृषणाधः पदे पार्ष्णि पाणिभ्यां परिबन्धयेत्।
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः परिपूजितम्।।२०।।
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुलीः।
करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम्।।२१।।
एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम्।
ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम्।।२२।।

आसन पाँच प्रकार का कहा गया है—पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन। इनका स्वरूप निम्नवत् होता है—

पद्मासन—बाँयें पैर को दाहिनी जंघा पर और दाहिने पैर को बाँयीं जंघा पर इस प्रकार रखे कि दोनों एड़ियाँ नाभि के नीचे जुड़ जायँ। हाथों को व्युत्क्रम करके दोनों अँगूठों को पकड़ने से पद्मासन का स्वरूप बन जाता है। यह पद्मासन योगियों को अतिशय प्रिय होता है।

स्वस्तिकासन—स्वस्ति का अर्थ होता है—शुभ अथवा कल्याण। इसमें जानु और जंघा के मध्य में पादतलों को अच्छी तरह से स्थापित किया जाता है। एड़ी को जानु और जंघा के बीच में रखा जाता है एवं शरीर को पूर्ण रूप से सीधा तना हुआ रखा जाता है।

भद्रासन—योनिस्थान के दोनों ओर पैरों की एड़ियों को इस प्रकार रखना चाहिये कि दक्षिण भाग में दाहिनी एड़ी और बाँयें भाग बाँयीं एंड़ी अण्ड़कोश के निम्न स्थान में रहे। तदनन्तर पीठ की ओर निकले पैरों के अग्रभाग को हाथों से पकड़ने से भद्रासन का स्वरूप बन जाता है। यह भद्रासन योगियों द्वारा परिपूजित है।

वज्रासन—पैरों को लम्बा फैलाकर परस्पर मिलाकर बैठे। दोनों पैरों को घुटनों में फिराकर नितम्ब के दोनों ओर इस प्रकार लगाकर रखे कि उनके तलवे ऊपर की ओर रहें। इसके बाद घुटनों को एक-दूसरे के समीप ले जाकर उस पर हाथों को उलट कर रखने से उत्तम वज्रासन का स्वरूप बन जाता है।

वीरासन—वज्रासन में बैठकर बाँयें घुटने को ऊपर उठाकर उस पर बाँयीं केहुनी को रखकर हाथ पर ठुड्डी को स्थापित कर सीधा बैठने से वीरासन का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।१६-२२।।

ईडयाकर्षयेद्वायुं द्वादशषोडशमात्रया।
धारयेत्पूरिते योगी चतुःषष्ट्या च मात्रया॥२३॥
सुषुम्नामध्यगं सम्यक् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः।
नाड्या पिङ्गलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः॥२४॥
प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः।
भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन समाचरेत्॥२५॥
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश।
जपध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भं तं विदुर्बुधाः॥२६॥
तदपेतं विगर्भञ्च प्राणायामं परे विदुः।
क्रमादभ्यसतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः॥२७॥
मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः।
उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते॥२८॥

प्राणायाम—बाँयें नासाछिद्र-स्थित इड़ा नाड़ी से सोलह मात्रा में श्वास ग्रहण करने को पूरक कहते हैं। पूरित वायु को शरीर के भीतर चौंसठ मात्रा तक रोकना कुम्भक कहलाता है। इस प्रकार पूरक एवं कुम्भक को करने के उपरान्त दाँयें नासाछिद्र-स्थित पिङ्गला नाड़ी से बत्तीस मात्रा में वायु को धीरे-धीरे बाहर छोड़कर रेचक करना चाहिये। योगविशारदों ने इस क्रिया को ही 'प्राणायाम' अभिधान से अभिहित किया है। विपरीतक्रम से बार-बार इसका अभ्यास करना चाहिये। इसे मात्रावृद्धि करते हुये क्रमशः बारह से सोलह करना चाहिये। जप-ध्यान आदि के साथ किया गया प्राणायाम 'सगर्भ' एवं विपरीतक्रम से किया गया अर्थात् जप-ध्यानादि से रहित प्राणायाम 'विगर्भ' कहलाता है। साधक को क्रमशः इसका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायाम करते-करते शरीर से जब पसीना निकलने लगे तो उसे अधम प्राणायाम कहते हैं। शरीर में कम्प उत्पन्न हो जाय तो उसे मध्यम प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम करते-करते साधक यदि भूमि से ऊपर उठ जाय तो वह उत्तम प्राणायाम

कहलाता है। उत्तम गुणों की प्राप्ति होने तक बार-बार इस प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।।२३-२८।।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम्।
बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारो विधीयते ॥२९॥
अङ्गुष्ठगुल्फजानुरूसीवनीलिङ्गनाभिषु ।
हृद्ग्रीवकण्ठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि ॥३०॥
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि।
धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ॥३१॥
समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना।
आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ॥३२॥
समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः।
समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ॥३३॥
इत्यादिकथितं विप्र कामादिषट्कनाशनम्।

प्रत्याहार—निरर्थक विषयों में विचरने वाले इन्द्रियों को बलपूर्वक आहरित करना अर्थात् रोकना ही 'प्रत्याहार' कहलाता है।

धारणा—अङ्गुष्ठ, गुल्फ, जानु, सीवनी, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, लम्बिका (जिह्वा), नासिका, भ्रूमध्य, मस्तक, मूर्धा एवं द्वादशान्त में यथाविधि प्राणवायु को धारण करना ही 'धारणा' कही गई है।

ध्यान—एकाग्र मन से अन्तर्वर्ती चैतन्य आत्मा में अभीष्ट देवता का ध्यान ही 'ध्यान' पदवाच्य होता है।

समाधि—जीवात्मा और परमात्मा में नित्य समत्व भावना को मुनिजन 'समाधि' कहते हैं।

इस प्रकार मुनियों ने योग के आठो अंगों का लक्षण-प्रतिपादन किया है। हे विप्र! इन्हें कामादि छः प्रत्यूहों का विनाशक कहा गया है।।२९-३३।।

इदानीं कथयेऽहं ते मन्त्रयोगमनुत्तमम् ॥३४॥
विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं मनुम्।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥३५॥
तिस्रः कोट्यस्तदर्द्धेन शरीरे नाडयो मताः।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्रो व्यवस्थिताः ॥३६॥
प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी।
इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चन्द्ररूपिणी ॥३७॥

शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा।
दक्षिणे या पिङ्गलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा ।।३८।।
दाडिमी केसरप्रख्या विषाख्या मुनिभिः स्मृता।
मेरुमध्ये स्थिता या तु मूलादाब्रह्मविग्रहा ।।३९।।
सर्वतेजोमयी सा तु योगिनां हृदयङ्गमा।
तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतस्राविणी शुभा ।।४०।।
सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयङ्गमा।
विसर्गाद्बिन्दुपर्यन्ता व्याप्य तिष्ठति तत्त्वतः ।।४१।।
मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम्।
मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ।।४२।।
तदूर्ध्वं कामबीजं तु कलशान्तिविन्दुनादकम्।
तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुण्डली श्यामविग्रहा ।।४३।।
कृष्णात्मिका परा सा तु कृष्णतत्त्वात्मवेदिका।
तद्बाह्ये हेमवर्णाभं वं शं षं सं चतुर्दलम् ।।४४।।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत्।

अब मैं उत्तम मन्त्रयोग को तुमसे कहता हूँ। चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि के तेज से जीव एवं ब्रह्म का सम्मिलित स्वरूप ही मन्त्र कहलाता है और पञ्चभूतात्मक विश्व ही उस मन्त्र का शरीर कहा गया है। शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों की स्थिति कही गई है। उनमें से दश नाड़ियाँ मुख्य होती हैं और उनमें भी तीन प्रधान नाड़ियाँ मेरुदण्ड में चन्द्र, सूर्य, अग्निरूप में अवस्थित हैं। इनमें से मेरुदण्ड के वाम भाग में अवस्थित चन्द्ररूपिणी शुभ्र इड़ा नाड़ी है, शक्तिरूपा यह नाड़ी साक्षात् अमृतस्वरूपा है। मेरुदण्ड़ के दक्षिण भाग में अवस्थित पिंगला नाड़ी पुंरूपा सूर्यविग्रहा है। मुनियों द्वारा 'विषनाड़ी' के नाम से अभिहित यह नाड़ी दाड़िमपुष्प के केसर के सदृश कही गई है। इन दोनों के मध्य मेरुमध्य में मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त अवस्थित वह्निरूपिणी सर्वतेजोमयी सुषुम्ना नाड़ी विद्यमान है। सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में अमृतस्राविणी शुभ्रा विचित्रा नाम की नाड़ी है, जो कि योगियों द्वारा सर्वदेवमयी कही गई है। तत्त्वतः यह विसर्ग से बिन्दु तक व्याप्त होकर अवस्थित रहती है। मूलाधार के इच्छा-ज्ञान-क्रियारूप त्रिकोण में करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान स्वयम्भू लिंग अवस्थित है और उसके ऊपर 'क्लीं'रूप कामबीज अवस्थित है; फिर उसके भी ऊपर वह्निशिखा-सदृश आकृति वाली श्यामविग्रहा कुण्डलिनी अवस्थित है। वह श्रेष्ठ कुण्ड़लिनी कृष्णात्मिका एवं कृष्ण के तत्त्वों को जानने वाली है। उसके बाहर स्वर्ण की आभा से समन्वित 'वं शं षं सं' ये चार दल हैं; वहीं पर तप्त स्वर्ण-सदृश कान्तिमान चतुर्दल पद्म की भावना करनी चाहिये।।३४-४४।।

तदूर्ध्वेऽग्निसमप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ।।४५।।
बादिलान्तषडर्णेन युक्तं स्वाधिष्ठानसंज्ञकम् ।
मूलमाधारषट्कानां मूलाधारं ततो विदुः ।।४६।।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ।
तदूर्ध्वे नाभिदेशे तु मणिपूरं महत्प्रभम् ।।४७।।
मेघाभं वैद्युताभञ्च वह्नितेजोमयं ततः ।
मणिवद्भिन्नतत्पद्मं मणिपूरं तथोच्यते ।।४८।।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरावृतम् ।
विष्णुनाधिष्ठितं पद्मं विश्वालोकनकारणम् ।।४९।।

उस चतुर्दल पद्म के ऊपर अग्निवर्ण-सदृश हीरे के समान कान्तिमान 'बं भं मं यं रं लं' इन छः वर्णों से युक्त षड्दल स्वाधिष्ठान चक्र अवस्थित है। छः चक्रों के मूल में होने के कारण प्रथम चक्र को मूलाधार कहा जाता है। तदनन्तर 'स्व' शव्द से परलिङ्गस्वरूप स्वाधिष्ठान की अवस्थिति जाननी चाहिये। उस स्वाधिष्ठान के ऊपर नाभिदेश में अतिशय प्रकाशमान मणिपूर चक्र की अवस्थिति है; जो कि मेघ एवं विद्युत् की आभा से समन्वित होकर अग्नितेजःस्वरूप है। मणि के सदृश होते हुये भी उससे भिन्न होने के कारण इसे मगिपूर कहा जाता है। यह दश दलों से युक्त एवं 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' इन दश वर्णों से आवृत है। यह पद्म विष्णु द्वारा अधिष्ठित है एवं विश्व के प्रकाशमान होने का कारण है।।४५-४९।।

तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ।
कादिठान्तदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ।।५०।।
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ।
शब्दब्रह्ममयं शब्देनाहतस्तत्र दृश्यते ।।५१।।
तेनाहताख्यं पद्मं तन्मुनिभिः परिकीर्त्यते ।
आनन्दसदनं तत्तु पुरुषेणाधिष्ठितं परम् ।।५२।।
तदूर्ध्वञ्च विशुद्धाख्यं दलषोडशपङ्कजम् ।
स्वरैः षोडशकैर्युक्तं धूम्रवर्णैर्महाप्रभम् ।।५३।।
विशुद्धं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ।

उसके ऊपर उदीयमान आदित्य के सदृश आभा से समन्वित 'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ' वर्णों से युक्त एवं द्वादश दलों से अधिष्ठित अनाहत पद्म विद्यमान है। इस अनाहत पद्म के मध्य में दश हजार सूर्यों के प्रकाश से युक्त बाणलिंग अवस्थित हैं; उसमें शव्दब्रह्ममय अनाहत शव्द सुनायी देता है; इसीलिये मुनियों ने इसे अनाहत

पद्म के नाम से अभिहित किया है। आनन्द का आगारस्वरूप यह पद्म परमपुरुष का अधिष्ठान है।

उसके ऊपर विशुद्धि नामक षोडश दल कमल है। इसके दलों में सोलह स्वर 'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः' समन्वित हैं। धूम्र वर्ण वाला यह विशुद्ध चक्र अतिशय कान्तिमान है। हंसस्वरूप जीव द्वारा दृष्ट होने के कारण ही इसे विशुद्ध कहा जाता है।।५०-५३।।

आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाधिष्ठितं परम् ।।५४।।
आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनाज्ञेति प्रकीर्तिता ।
द्विदलं हक्षसंयुक्तं पङ्कजं सुमनोहरम् ।।५५।।
कैलाशाख्यं तदूर्ध्वे तु रोधिनी च तदूर्ध्वतः ।
विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ।।५६।।
एवं तु कृष्णचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत! ।

उस विशुद्ध पद्म के ऊपर आत्मा का अधिष्ठानभूत आज्ञाचक्र अवस्थित है। यहीं से आज्ञा प्रसरित होती है; इसीलिये इसे 'आज्ञा' कहा गया है। 'ह' एवं 'क्ष' इन दो अक्षरों से समन्वित दो दलों वाला यह पद्म अत्यन्त मनोहर है। इस आज्ञाचक्र के ऊपर कैलाश है और उसके भी ऊपर रोधिनी है।

विशुद्धि पद्म को अत्यन्त अद्भुत आकाशपद्म भी कहा जाता है। हे सुव्रत! इस प्रकार मैंने तुमसे कृष्णचक्रों का विवेचन किया।।५४-५६।।

सहस्राराम्बुजं बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ।।५७।।
इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ।

उसके ऊपर सहस्रदल कमलस्वरूप बिन्दुस्थान है। इस प्रकार समस्त उत्तम योगमार्ग को कह दिया गया।।५७।।

आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मनः ।।५८।।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ।
लिङ्गभेदक्रमेणैव बिन्दुचक्रं च प्रापयेत् ।।५९।।
शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभावं विचिन्तयेत् ।
तत्रोत्थितामृतं यत्तु द्रुतं लाक्षारसोपमम् ।।६०।।
पाययित्वा च तां शक्तिं कृष्णाख्यां योगसिद्धिदाम् ।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया ।।६१।।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं पुनः सुधीः ।
एवमभ्यर्च्यमानस्य अहन्यहनि निश्चयम् ।।६२।।

जरामरणदु:खाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ।

विद्वान् साधक द्वारा सर्वप्रथम पूरक योग के माध्यम से मन को मूलाधार से युक्त करके गुदा एवं मेढ्र (लिंग) के मध्य अवस्थित शक्ति को गुदा एवं मेढ्र को आकुञ्चित करते हुये (सिकोड़ते हुये) प्रबुद्ध करके लिङ्गभेदनक्रम से बिन्दुचक्र में ले जाकर उस पराशक्ति के शम्भु के साथ एकीभूत होने की भावना करनी चाहिये। वहाँ उत्पन्न लाक्षारस-सदृश स्निग्ध अमृत का योगसिद्धिदा कृष्णा-नाम्नी शक्ति को पान कराना चाहिये। वहीं पर अमृतधारा से षट्चक्र-स्थित देवताओं का तर्पण करके (षट्चक्रों में अमृतपान कराकर) उस शक्ति को पुन: यथावत् उसी मार्ग से मूलाधार में लाना चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन मानसिक अर्चन करने से निश्चित ही साधक जरा-मरणरूप दु:खादि से समन्वित भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।।५८-६२।।

पूर्वोक्तदूषिता मन्त्रा: सर्वे शुद्ध्यन्ति नान्यथा ।।६३।।
ये गुणा: सन्ति देवस्य पञ्चकृत्यविधायिन: ।
ते गुणा: साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा ।।६४।।
इत्येतत्कथितं विप्र वायोर्धारणमुत्तमम् ।

ऐसा करने से पूर्वोक्त सभी दूषित मन्त्र शुद्ध हो जाते हैं और पंचकृत्य करने में समर्थ देवताओं में जो गुण होते हैं, वे गुण निश्चित ही साधकों में भी समाहित हो जाते हैं। हे विप्र! इस प्रकार उत्तम वायुधारण को कहा गया।।६३-६४।।

इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मया ।।६५।।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्ने कृष्णे चेतो निधाय च ।
तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात् ।।६६।।
अथवा सबलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्ध्यति ।
तदावयवयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत् ।।६७।।
पादाम्भोजे मनो दध्यान्नखकिञ्जल्कचित्रिते ।
जङ्घायुग्मे तथारामकदलीखण्डशोभिते ।।६८।।
ऊरूद्वये मत्तहस्तिकरदण्डसमप्रभे ।
गङ्गावर्तगभीरे तु नाभौ सिद्धिविले तत: ।।६९।।
उदरे वक्षसि तथा हारश्रीवत्सकौस्तुभे ।
पूर्णचन्द्रायुतप्रख्ये ललाटे चारुकुन्तले ।।७०।।
शङ्खचक्रगदाम्भोजदोर्दण्डपरिमण्डिते ।
सहस्रादित्यसङ्काशे किरीटे कुण्डलद्वये ।।७१।।
स्थानस्थानजपान्मन्त्री विशुद्धशुद्धचेतसा ।
मनो निवेश्य कृष्णे वै तन्मयो भवति ध्रुवम् ।।७२।।

न इन्द्रिय हूँ, न मन हूँ, न बुद्धि हूँ, न चित्त हूँ, न अहंकार हूँ। न तो मैं पृथ्वी हूँ, न ही जल, अग्नि, वायु, आकाश, शव्द, स्पर्श, रस, गन्ध या रूप हूँ। न मैं माया हूँ, न ही संसार हूँ; अपितु सदा साक्षिस्वरूप होने के कारण मैं केवल कृष्ण हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार की धारणा को ही समाधि कहते हैं।।७९-८६।।

अथवा पञ्चभूतेभ्यो जातमण्डं महामुने ।।८७।।
भूतमात्रं तथा दग्ध्वा विवेकेनैव वह्निना।
पुनः स्थूलानि भूतानि सूक्ष्मभूतात्मना तथा ।।८८।।
विलाप्यैव विवेकेन ततस्तान्यपि बुद्धिमान्।
मायामात्रतया दग्ध्वा मायात्वं प्रत्यगात्मना ।।८९।।
सोऽहं कृष्णो न संसारी न मत्तोऽन्यत्कदाचन।
इति विद्यात्स्वमात्मानं स समाधिः प्रकीर्तितः ।।९०।।

अथवा हे महामुने! यह अण्ड पञ्चभूतों से उत्पन्न है। इसलिये विवेकरूपी अग्नि द्वारा उन पञ्चमहाभूतों को दग्ध करके स्थूल भूतों को सूक्ष्म भूतों में विलीन करने के उपरान्त उन सूक्ष्म भूतों को भी विवेक से मायामात्र से दग्ध करके उस माया को भी प्रत्यगात्मा से विनष्ट कर देना चाहिये और अपनी आत्मा में भावना करनी चाहिये कि मैं ही वह कृष्ण हूँ, मैं संसारी नहीं हूँ; मुझसे अन्य कुछ भी नहीं है। यही समाधि कही गई है।।८७-९०।।

अथवा योगिनां श्रेष्ठः कृष्णः प्रणवमीक्षयेत्।
पञ्चवर्णात्मना विद्यात्ककारादिक्रमेण तु ।।९१।।
अनिरुद्धः ककारस्तु विश्वाख्यः स्थूलविग्रहः।
प्रद्युम्नाख्यो लकारेण अन्तःकरणवृत्तयः ।।९२।।
अन्तःकरणवृत्त्या तु प्रद्युम्नस्तैजसात्मकः।
सङ्कर्षणो लयाख्यस्तु निर्विकल्पस्वरूकः ।।९३।।
समाधौ तु स्वरूपोऽसौ तुरीयस्वर एव हि।
तुरीयांशो वासुदेवो चिदात्मा ब्रह्म केवलम् ।।९४।।
प्राज्ञात्मानं वदन्त्येके एकेऽपि ब्रह्मकेवलम्।
जीवमीश्वरभावेन विद्यात्सोऽहमिति ध्रुवम् ।।९५।।
एषा बुद्धिश्च विद्वद्भिः समाधिरिति कीर्तितः।
यथा फेनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः ।।९६।।
समुद्रे लीयते तद्वज्जगदात्मनि लीयते।
तस्मान्मत्तः पृथङ् नास्ति जगन्माया च सर्वदा ।।९७।।
इति बुद्धिः समाधिः स्यात्स समाधिरिहोच्यते।

अथवा योगीश्वर कृष्ण का प्रणवरूप से दर्शन करना चाहिये; वह प्रणव ककारादि क्रम से पञ्चवर्णात्मक होता है। विश्वरूप स्थूलविग्रह अनिरुद्ध ककार हैं। अन्त:-करणवृत्तिस्वरूप प्रद्युम्न लकार हैं। अन्त:करणवृत्तिस्वरूप होने के कारण वे प्रद्युम्न तैजसात्मक हैं। निर्विकल्प स्वरूप वाले संकर्षण लय हैं। समाधि में ये ही तुरीय पदवाच्य हैं। तुरीयांश वासुदेव ही एकामात्र चिदात्मा ब्रह्म हैं। इन्हें ही कोई प्राज्ञ कहता है तो कोई केवल ब्रह्म कहता है। जीव भी स्वयं को ईश्वरभाव से 'सोऽहं' के रूप में अनुभव करता है। यहीं बुद्धि विद्वानों द्वारा समाधि कही गई है। जिस प्रकार फेन-तरंग आदि समुद्र से उठकर पुन: समुद्र में ही विलीन हो जाते हैं, वैसे ही जगत् भी आत्मा में लीन हो जाता है। इसलिये जगत् एवं माया मुझसे कभी भी पृथक् पदार्थ नहीं हैं। इस प्रकार बुद्धि जब स्थिर हो जाती है तो उसे ही समाधि कहते हैं।।९१-९७।।

यस्यैव परमात्मायं प्रत्यग्रत: प्रकाशित: ॥९८॥
स याति परमं भावं स्वयं साक्षात्परामृतम् ।
यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्र सर्वदा ॥९९॥
योगिनोऽव्यवधानेन तदा सम्पद्यते स्वयम् ।
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ॥१००॥
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।
यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति ॥१०१॥
एकीभूत: परेणासौ तदा भवति केवलम् ।
यदा जन्मजरादु:खव्याधीनामेकभेषजम् ॥१०२॥
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा हरि: ।
तस्माद्विज्ञानतो मुक्तिर्नान्यथा भवकोटिभि: ॥१०३॥
कर्मसाध्यस्य नित्यत्वं केचिदिच्छन्ति तान्त्रिका: ।

जिसके समक्ष यह परात्मा प्रकाशित होता है, वह परमभाव को प्राप्त होकर स्वयं साक्षात् परम अमृतस्वरूप हो जाता है। जब मन में चैतन्यभाव सर्वत्र सर्वदा विद्यमान रहता है तब योगिगण अव्यवहित रूप से स्वयं चैतन्यस्वरूप हो जाते हैं। योगी जब समस्त भूतों को अपनी आत्मा में ही देखता है, तब सभी भूतों में स्वयं ही ब्रह्मस्वरूप में भासित होने लगता है। समाधि में स्थित योगी जब समस्त भूतों को नहीं देखता, स्वयं से पृथक् कुछ भी नहीं देखता, तब एकमात्र वही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। जब जन्म-जरा-दु:ख-व्याधियों के एकमात्र ओषधिरूप ब्रह्मविज्ञान का साक्षात्कार हो जाता है तब वह योगी स्वयं हरि ही हो जाता है। एकमात्र इसी ब्रह्मविज्ञान के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है; अन्यथा करोड़ों बार जन्म ग्रहण करने पर भी मुक्तिलाभ नहीं होता। कतिपय तान्त्रिकों को कर्मसाध्य का नित्यत्व अभीष्ट है।।९८-१०३।।

ज्ञानं वेदान्तविज्ञानमज्ञानमितरं पुनः ॥१०४॥
अहो ज्ञानस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते।
यथा वह्निर्महादीप्तः शुष्ककाष्ठं विनिर्दहेत् ॥१०५॥
तथा शुभाशुभं कर्म ज्ञानाग्निर्दहति क्षणात्।
पद्मपत्रं यथा तोयैः स्वल्पैरपि न लिप्यते ॥१०६॥
तथा शब्दादिभिर्ज्ञानं विषयैर्न हि लिप्यते।
मन्त्रौषधिबलैर्यद्वज्जीर्यते भक्षितं विषम् ॥१०७॥
तद्वत्सर्वाणि पापानि जीर्यन्ते ज्ञानिनः क्षणात्।
बहुनोक्तेन किं सर्वं संग्रहेणोपपादितम् ॥१०८॥
श्रद्धया गुरुभक्त्या च विद्धि कैवल्यसंग्रहम्।

वेदान्त का विशिष्ट ज्ञान ही 'ज्ञान' है एवं तद्विपरीत अज्ञान होता है। ज्ञान के माहात्म्य का कथन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। जिस प्रकार पूर्ण रूप से प्रज्वलित अग्नि शुष्क काष्ठ को जला ड़ालती है, उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि समस्त शुभाशुभ कर्मों को क्षण भर में ही दग्ध कर देती है। जिस प्रकार कमल के पत्ते जल से थोड़े भी लिप्त नहीं होते, उसी प्रकार शब्दादि का ज्ञानी विषयों से लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार मन्त्र एवं औषधि के बल से भक्षित विष जीर्ण हो जाता हैं, उसी प्रकार ज्ञानियों के समस्त पाप क्षण भर में ही नष्ट हो जाते हैं। बहुत कहने से क्या लाभ; संक्षेप में यही समझना चाहिये कि श्रद्धा एवं गुरु भक्ति के द्वारा ही कैवल्य-प्राप्ति होती है।।१०४-१०८।।

देहाभिमाने गलिते विदिते परमात्मनि ॥१०९॥
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।
अहं कृष्णो न चान्योऽस्मि मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥११०॥
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्।
त्वमेवाहमहं त्वं च सच्चिन्मात्रवपुर्भवान् ॥१११॥
आवयोरन्तरं कृष्ण नश्यत्वाज्ञाबलात्तव।
एवं समाधियुक्तो यः समाधानाय कल्पते ॥११२॥
सदा कृष्णोऽहमित्युक्त्वा स्वेच्छया विहरेद्यतिः।
लिप्यते न च पापेन बध्यते न च कर्मणा ॥११३॥
यथाग्निना द्रुतं स्वर्णं मालिन्यं दहति क्षणात्।
तथा कृष्णार्पितात्मासौ कर्मभिर्न च बद्ध्यते ॥११४॥
आत्मस्थां देवतां त्यक्त्वा बहिर्देवं विचिन्वते।
करस्थं कौस्तुभं त्यक्त्वा भ्रमते काचतृष्णया ॥११५॥

देहाभिमान के अन्त हो जाने पर परमात्मा का ज्ञान हो जाता है और ऐसा होने पर जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहीं-वहीं समाधि लग जाती है। उस अवस्था में ऐसी भावना करनी चाहिये कि मैं कृष्ण ही हूँ, दूसरा नहीं हूँ; मैं मुक्त हूँ। मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ, मैं नित्य मुक्त स्वभाव वाला हूँ। आराध्य देव को लक्ष्य कर कहना चाहिये कि तुम ही मैं हूँ और मैं ही तुम हो। आप केवल सच्चिदानन्द शरीरमात्र हैं। हे कृष्ण! हम दोनों का अन्तर आपकी आज्ञा के बल से नष्ट हो जाय। इस प्रकार से समाधियुक्त होकर जो अपने को उन्हीं के समान कल्पित करता है, वह सदैव 'मैं कृष्ण हूँ' इस प्रकार कहता हुआ अपनी इच्छा के अनुसार विहार करता है। वह न तो पापों से लिप्त होता है और न ही कर्म के बन्धन से बद्ध होता है। जिस प्रकार अग्नि द्वारा तप्त किये जाने पर सुवर्ण अपनी मलिनता का तत्क्षण ही त्याग कर देता है, उसी प्रकार अपनी आत्मा को कृष्ण के लिये समर्पित कर देने पर जीव कर्मबन्धनों से बद्ध नहीं होता। जो लोग आत्मा में स्थित देवता का त्याग करके अपने से बाहर देवता को खोजते हैं, उनका वह कार्य हाथ में स्थित कौस्तुभ का त्याग करके काच के लिये इधर-उधर भ्रमण करने के समान होता है।।१०९-११५।।

एतत्तु कथितं ब्रह्मन् ब्रह्मप्राप्तिनिदर्शनम्।
विज्ञाय गुरुतो भक्त्या संसारगरलं तरेत्।।११६।।
यत्र तत्र मृतश्चायं श्मशाने श्वपचालये।
ब्रह्मविद् ब्रह्मभूयाय कल्पते नान्यथा मुने।।११७।।
इति विज्ञाय विधिना ज्ञानविज्ञानलोकतः।
आनन्दोन्मेषसन्दर्शी विहरेत्काश्यपीमिमाम्।।११८।।
अपक्वयोगी यदि चेन्म्रियते ज्ञानवर्जितः।
मन्त्रेण तस्य विधिवत् कुर्यात्तत्साम्परायिकम्।।११९।।
प्रतिमां तस्य यत्नेन कल्पयेत् पटकेन तु।
त्रिरात्रे दशरात्रे वा कृष्णं सर्वोपचारकैः।।१२०।।
विधिज्ञः पूजयेद्भक्त्या तन्मन्त्रेण च साधकः।
गुरुभिश्चैकतां नीत्वा कृष्णे चैकात्मतां नयेत्।।१२१।।
जीवन्मुक्तिक्रिया ह्येषा प्रेतत्वादिविमोक्षणे।
कुर्यात्तत्कृष्णभूतोऽसौ जायते नान्यथा मुने।।१२२।।
अन्नं दद्यात्सात्वतेभ्यो बहुमानपुरःसरम्।
क्षीरखण्डाज्यभोज्यैश्च वस्त्रालङ्करणादिभिः।।१२३।।

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार यह ब्रह्मप्राप्ति के उपायों का वर्णन किया। इन उपायों को गुरु से भक्तिपूर्वक जान करके संसाररूपी विष को पार करना चाहिये। हे मुने! इस

प्रकार का ब्रह्मज्ञ पुरुष श्मशान में अथवा चाण्डाल के घर में जहाँ-कहीं भी मृत्यु को प्राप्त करे, वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। इस प्रकार विधिपूर्वक ज्ञान प्राप्त करके ज्ञान-विज्ञानरूप नेत्रों से समन्वित होकर आनन्दातिरेक से इस पृथिवी पर विचरण करता है। ज्ञान-विज्ञान में अपरिपक्व योगी यदि ज्ञानप्राप्ति के विना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो उसकी साम्परायिक क्रिया विधिपूर्वक समन्त्रक ही सम्पन्न करनी चाहिये। तदनन्तर यत्नपूर्वक उसकी प्रतिमा बनवाकर तीन अथवा दश रात्रि तक सभी उपचारों से सविधि कृष्णमन्त्र द्वारा उसका पूजन करके गुरु से ऐक्य-सम्पादन कराकर कृष्ण से एकात्मकता का सम्पादन कराना चाहिये। जीवन्मुक्ति की यह क्रिया प्रेतत्व से विमुक्ति कराने वाली होती है। ऐसा करने से वह ज्ञान-विरहित मृत योगी कृष्ण के समान हो जाता है। तदनन्तर बहुत मान-सम्मान के साथ वैष्णवों को अन्न के साथ दुग्ध-घृत-खाँड़ समन्वित भोज्य पदार्थ, वस्त्र, अलंकार आदि प्रदान करना चाहिये।।११६-१२३।।

एतत्ते कथितं तन्त्रं सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम्।
अस्य विज्ञानमात्रेण कृष्णात्मैक्यं समश्नुते ।।१२४।।
न प्रकाश्यमिदं तन्त्रं न देयं यस्य कस्यचित्।
मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति आपदश्च पदे पदे ।।१२५।।
इह लोके च दारिद्र्यं परेऽपि पशुतां व्रजेत्।
यद्गेहे विद्यते ग्रन्थं लिखितं तस्य वेश्मनि ।।१२६।।
कमलापि स्थिरा भूत्वा कृष्णेन सह मोदते।
इत्येवं कथितं ग्रन्थं मया ते मुनिसत्तम! ।।१२७।।
अस्यालोकनतश्चित्तं कृष्णात्मा सम्प्रसीदति ।।१२८।।

इति गौतमीये महातन्त्रे द्वात्रिंशोऽध्यायः

●

इस प्रकार समस्त तन्त्रों में उत्तमोत्तम इस तन्त्र को मैंने तुमसे कहा। इसे जानने मात्र से ही कृष्ण के साथ ऐक्य-स्थापन हो जाता है। इस तन्त्र को जिस-किसी के समक्ष न तो प्रकाशित करना चाहिये और न ही इसे जिस-किसी को प्रदान करना चाहिये। अन्यथा करने से मन्त्र पराङ्मुख हो जाते हैं और पग-पग पर आपदायें आती हैं। वह इस संसार में दरिद्र होता है और दूसरे जन्म में पशुत्व प्राप्त करता है। लिखित रूप में जिस घर में यह ग्रन्थ विद्यमान रहता है, लक्ष्मी भी उस घर में स्थिर रहकर कृष्ण के साथ आनन्दित होती है। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार मैंने इस ग्रन्थ को आपसे कहा। इसके अवलोकन से चित्त में कृष्णरूपी आत्मा प्रसन्न होती है।।१२४-१२८।।

इस प्रकार गौतम-प्रणीत गौतमीय महातन्त्र के द्वात्रिंश अध्याय का
श्रीनिवास शर्मा-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्य पूर्ण हुआ

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

●